१९६०

मूल्य
बारह रुपए पचास नये पैसे

प्रकाशक : साहित्य प्रकाशन, मालीवाडा, दिल्ली।
मुद्रक : सुरेन्द्र प्रिटर्स (प्रा०) लि०, डिप्टी गंज, दिल्ली।

समर्पण

हिन्दी-साहित्य के परम प्रसिद्ध आलोचक, एकाकीकार तथा कवि आदरणीय डाक्टर श्रीयुत् रामकुमार वर्मा जी को

सादर

—सियारामशरण प्रसाद

'आलोचना आपने बहुत विस्तार के साथ की है। विद्वतापूर्ण है। आप ठीक मर्म तक जा पहुचे हैं। बहुत अच्छी लिखी है। अधिकाश आलोचक इतना परिश्रम नही करते। धन्यवाद के साथ मेरी हार्दिक बधाई है, यो कहिए कि ये सब मैं मानो अपने को ही भेंट कर रहा हू।"

—वृन्दावनलाल वर्मा

दो शब्द

श्री सियारामशरण प्रसाद प्रतिभाशाली आलोचक है। कला के सौन्दर्य की सूक्ष्म परख उनमें है। कुशल कहानीकार और एकाकी लेखक होने के कारण उनकी अभिव्यक्ति में कलाकारोचित सयम है। उनकी भाषा में प्रवाह और सौष्ठव है :

प्रस्तुत पुस्तक उनके अनेक वर्षों के अध्ययन और मनन का फल है। आलोचनात्मक सूक्ष्मदर्शिता के साथ-साथ उनमें मूल्याकन की ईमानदारी भी है। श्री वृन्दावनलाल वर्मा हिन्दी के श्रेष्ठतम उपन्यासकारो में हैं। जिस विचारशीलता के साथ उनके साहित्य का अध्ययन अपेक्षित था, उसका परिचय इस पुस्तक में पाठक को बराबर मिलेगा। उन्होंने वर्मा जी के गुण-दोष, प्रवृत्ति, प्रेरणा, रचनागत प्रक्रिया, कलात्मक उपलब्धियाँ आदि सभी अनिवार्य दिशाओं को सूक्ष्मता से देखा और परखा है। वर्मा जी के सम्बन्ध में इतनी विशद और सारगर्भित सामग्री एक स्थान पर पाकर पाठक को प्रसन्नता होगी। वर्मा जी केवल ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यासों के प्रणेता ही नहीं हैं, वे कहानी लेखक और नाटककार भी हैं। इस पुस्तक में वर्मा जी के नाट्य और कहानी-साहित्य का भी समुचित मूल्याकन किया गया है।

मुझे इस कृति से पूर्ण सन्तोष मिला है। इसमें आलोचना के एक नये दृष्टिकोण का परिचय भी लेखक ने दिया है। ऐतिहासिक सामाजिकता का सूक्ष्म विश्लेषण लेखक की अपनी विशेषता मानी जायगी।

सियारामशरण प्रसाद में सफल एव समर्थ समालोचक के बीज हैं। सतत अध्ययन एव अध्यवसाय से वह पल्लवित, पुष्पित हो, यही मेरी एकान्त कामना है।

रामेश्वर शुक्ल 'अचल'
अध्यक्ष हिन्दी-विभाग
जब्बलपुर विश्वविद्यालय

२-५-५९

विषय-सूची

: १ :

युग चेतना और पृष्ठभूमि

कलाकार सत्य, शिव, सुन्दर समन्वित सृष्टि की योजना सूक्ष्म और ग्रहणशील शक्तिमत्ता के अपूर्व आग्रहस्वरूप, संवेदन का प्रस्फुरण, सौन्दर्य के जागरण, आनन्द और आदर्श के गौरव-गिरि पर अवस्थित विराट के दर्शन निमित्त कर, स्वयं सदृश जन-दृष्टि को भी गहराई और विस्तार प्रदान करना चाहता है और इस प्रयत्न एवं चेष्टा मे अपनी विकसित प्रतिभानुकूल अमरत्व ग्रहण कर पाता है, प्रशंसित हो पाता है। भावानुभूति की सृष्टि के स्थापन निमित्त वह भूत, भविष्य, वर्तमान पर अंतर्दृष्टि डाल मर्म-सत्य का अन्वेषण जगत् को सुंदरतम् वाणी में दे पाता है। इस मार्ग में उसे कभी यथार्थ, कभी आदर्श, कभी करुण सौंदर्य के वृक्ष विभिन्न मनोवृत्तियो की पुष्पावलिया बिखेरते दीख पडते हैं। एकाकी सत्य ज्योति का प्रचण्ड पुंज है जिसे हृदयगम करना महाकठिन है तो एकाकी सुंदरम् और शिवम् भी विविध विकारो, संवेगो से संयुक्त मानव के सम्मुख श्रेय प्राप्त नही कर सकते। निश्चय ही कला वही पूज्य है जो सत्य, शिव, सुंदर समन्वित हो; जो असत्य से सत्य, अंधकार से प्रकाश, मृत्यु से अमरत्व की ओर उन्मुख करे। स्मरण रहे, इसी वस्तु-आधार पर सौंदर्यवादी और उपयोगितावादी कला की कोटियाँ निर्धारित की जाती रही हैं। क्रोचे, स्पिनगार्न आदि ने अभिव्यक्ति को ही कला का परम लक्ष्य स्वीकार किया, तो उनके विपरीत आर्नल्ड, टाल्स्टॉय, प्लेटो, अरस्तू दांते, मिल्टन, शैली, आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त आदि मनीषियो ने उपयोगितावादी दृष्टिकोण को प्रश्रय दिया। 'कांता सम्मित उपदेश' में वही आधारभूत, प्रभूत सत्य मुखरित हो उठा है। टाल्स्टॉय ने स्पष्ट शब्दो में लिखा है—"In every age and in every human society there exists a religious sense of what is good and what is bad common to that whole society, and it is this religious conception that decides the value of feeling transmitted by art"

जब कलाकार की दृष्टि सत्य पर जाती है तो सुन्दर-असुन्दर का उसे साक्षात्कार होता है। शिव की प्रेरणा सक्रियशाली रूप में एक निर्दिष्ट दिशोन्मुखी हो जाती है। कलाकार उन सभी कामनाओ-भावनाओ, यथार्थ और आदर्श संवेगो (emotions) को, अनुभूत सत्यो को, दैवी प्रदत्त कला के माध्यम से अभिव्यक्त कर पाता है, मूर्त कर पाता है। इन चेष्टा और व्यष्टि में समष्टिगत, भावगत, प्रेरणामूलक अभियोजनो के परिणामस्वरूप उसकी अधिकार-सीमा के अत्यधिक प्रसार के साथ ही कर्तव्य का भी विस्तार हो जाता है। "अधिकारो और कर्तव्यो के सम्यक ज्ञान से ही सत्कर्म की प्रेरणा होती है।"[1]

---

१ गोरखनाथ चौबे—नागरिक शास्त्र।

श्री वृन्दावनलाल वर्मा की कला को श्रेणीवद्ध करते समय मैं बहुत पूर्व ही कई लेखो में अपनी मान्यता और धारणा स्पष्ट करते हुए उद्घोषित कर चुका हूँ कि वह उपर्युक्त योजना-समन्वित जीवत सृष्टि है, जिसमें अनुपात और सतुलन के उचित निर्वाह के साथ सत्य, सुदर, शिव समाहित है। जहाँ वे सुदर और सत्य की आकर्षक दृश्यावलिया उपस्थित कर पाते है, वही वे शिवम् के प्रशस्त-पथ का आलोक भी विकीर्ण कर देते है। वर्मा जी ने स्वय लिखा है—"मैं तथ्य का उपासक हूँ, तथ्य को सृजनात्मक ढग से प्रस्तुत करना मैं सत्य की पूजा और कला का प्राण समझता हूँ। यदि यह प्रस्तुतीकरण निरुद्देश्य है या 'कला के लिए कला' आदर्श है—तो व्यर्थ है। केवल मनोरजन या मनोविश्लेषण लेखक का सामाजिक कर्त्तव्य नही है। सामाजिक कर्त्तव्य की सीमा दिखलाई नही पडती, परतु अपनी-अपनी परिधि की स्थापना तो की ही जा सकती है। अपने लिए मेरा यही मत है। मैंने ऐतिहासिक उपन्यासो के साथ-साथ सामाजिक उपन्यास भी लिखे है और नाटक भी। अपनी बात कहने के लिए जो माध्यम रुचा, ग्रहण कर लिया।"[1] उदाहरण स्वरूप 'मृगनयनी' (ऐतिहासिक उपन्यास) को ही लें, जहाँ 'मृगनयनी' में सौंदर्यपूरित रोमाचकारी, भव्य, रम्य, क्रिया-कलापो, मानसिक व्यापारो का चित्रण है, वहाँ शिवम् की दृढ उपासना और आराधना का अर्घ और गव भी है। 'अमर बेल' (सामाजिक उपन्यास) में जहाँ यथार्थ ग्रामीण भाव-भूमियो का ठोस धरातल है, वहाँ अनेकत्व में एकत्व, परस्पर द्वेष में प्रेम की एक-सूत्रता की स्थापना इसी दिशा का सूचक है। 'प्रत्यागत' में सामाजिक कटुता, विद्वेष की दावाग्नि स जहाँ तीक्ष्ण चिनगारियाँ निकलती है, वहाँ उसका पर्यवसान होता है प्रेम के अटूट बधन में, जहाँ शिव, सुख, जीवन का चरम आनद है। श्री वृन्दावनलाल वर्मा के साहित्य में प्रेम मूल तत्व है जिसके आधार पर उन्होने अपने साहित्य का आकर्षक और भव्य प्रासाद अधिष्ठित किया है। 'अहिल्या बाई' (ऐतिहासिक उपन्यास), 'भुवन विक्रम', 'प्रेम की भेंट', 'सगम', 'निस्तार' (नाटक), 'मूग की लाल', 'सच्चो शुद्धि' (कहानी), 'ललित विक्रम' (नाटक), 'खिलौने की खोज', आदि उनके सभी उपन्यासो, नाटको और कहानियो में यह देख सकते है, जो केन्द्रीदगत मूल तत्व है। प्रेमचद-साहित्य में भी प्रेम मुख्य रूप में है। बगला-साहित्य में शरतचद्र में भी प्रेम तत्व का अपूर्व अभियाजन-नियोजन है। 'देवदास', 'शेष-प्रश्न', 'श्रीकात' सभी में प्रेम के विभिन्न परतु विशद रूप और भिन्न-भावपरक दीखते है, इसे हम अस्वीकार नही कर सकते। प्रेम जीवन का अभिन्न और नितान्त शाश्वत् सत्य है जिसकी उचित प्रतिष्ठा

---

१ श्री वृन्दावनलाल वर्मा—'उपन्यास कैसे लिखे गए?' 'साहित्य सदेश' का जुलाई-अगस्त (१९५६) अक। इसी प्रकार के विचार प्रकट करते हुए वर्मा जी ने 'अचल मेरा कोई' (उपन्यास) के पृष्ठ १२८ में लिखा है—"कला उस कारीगरी को कहते हैं जो मन को उन कल्पनाओं और विचारों की सेवा करके आकृष्ट करती है जो उस कला के बाहर की है और साथ ही सौन्दर्य की भावना को उन सधानों के द्वारा जागृत करती है जो कला में स्वय निहित है। कला अपने ही गुणों की सेवा आदर्शों को भेंट करती है और इस क्रिया द्वारा उन आदर्शों को हृदय में ला बिठलाती है और साथ ही अपने रस के सन्धानों द्वारा सौन्दर्य के सुमन चढ़ाती है। कला के लिए कला तो निरर्थक है। बिना किसी प्रेरणा के कला का विकास हो ही नहीं सकता।"

'As You Like It' में शेक्सपीयर ने करते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा है—"Men have died from time to time and worms have eaten them, but no for love" कवि बर्न्स ने भी ऐसी पवित्र, प्रेरणामूलक, एकत्व की प्रतिष्ठागत, शक्ति-सृजनशील क्रिया के लिए कहा है

'O, my love is like a red, red Rose
That's newly spring in June
'O' My love is like the melodie
That's sweetly play'd in tune."[1]

वर्मा जी के साहित्य-सृजन का युग वह युग है जब अनास्था, विरक्ति, अहमावृत्ति, विशृंखलता चातुर्दिक पूरे उभार पर थी। परतंत्रता की हीन भावना स्वरूप राष्ट्रीय भावना, मानवता के उज्ज्वल स्वरूप का कोई अस्तित्व नहीं था। प्रेम, मानवीय चेतना को एक सूत्र में पिरोने वाली शक्ति का ह्रासकालीन युग था। हिंसा, घृणा के प्रचार के अस्त्र शासक वर्ग,अंग्रेजों की ओर से छोड़े जा रहे थे, जो इनके स्थायित्व में योगदान दे सके। महत्तशील चेतापुरुष युग की आत्मा की पुकार को, गम्भीर स्वर को अवश्यमेव सुन लेते हैं। तथैव शरतचन्द्र ने जहाँ वैयक्तिक प्रेम के विस्तार की आवश्यकता समझी, वहाँ प्रेमचंद और वृन्दावनलाल वर्मा ने सामाजिक, राष्ट्रीय प्रेम-सूत्र को दृढ़ करने का सफल अभियान किया। राजनैतिक क्षेत्र में महात्मा गांधी उसका शंखनाद कर रहे थे। प्रेम युग की मांग बन गया था—मानवता की पुकार बन गया था; और वह दृढ़ चेताओं का समर्थ आश्रय पा गया। एक आलोचक ने ठीक ही कहा है—"The effect of any writing on the public mind is mathematically measurable by its depth of thought. . . . if the pages instruct you not, they will die like flies in the hour" प्रेमचंद, वृन्दावनलाल वर्मा, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, गांधी, शरत आदि अपनी इस सूक्ष्म पकड़, विचारों के गाम्भीर्य और गहराई की देन के परिणामस्वरूप ही जीवित हैं, अमर हैं।

यह पूर्ण सत्य है कि कलाकार, असाधारण पुरुष, शाश्वत् समस्या के साथ ही सामयिक उद्बुद्ध समस्याओं का निश्चितरूपेण उपेक्षणीय स्वीकार नहीं कर सकता। महान् साहित्यकार में सृष्टि और स्रष्टा दोनों रूप अन्तर्हित रहते हैं। कलाकार सामाजिक प्राणी होने के कारण आवेष्ठनगत परिव्याप्त भावनाओं और परिवेश से प्रभावित होता एवं अपनी अन्तःसूक्ष्मता से चतुर्दिक प्रभाव-विस्तार भी करता रहता है। अपनी अनुभूति और अनुभव द्वारा वह (साहित्यकार) इस महत्ती योजना में कुशलतापूर्वक दत्तचित्त होता रहता है। हाल्वेशियस, लॉक, फंडल, हेवर्ड आदि मनोवैज्ञानिकों ने मनुष्य का अध्ययन कर इसी तथ्य का पता लगाया कि वातावरण का प्रभाव मनुष्य पर अवश्य पड़ता है।[2] Sir H Hadow का कथन सत्य है—"The work of every true artist largely reflects the formative influences that have gone to make up his character, and among these race and environment are obvi-

१. Burns—'A Red, Red Rose'

२ विस्तार के लिए 'दिनकर एक अध्ययन' (सियारामशरण प्रसाद कृत) पृष्ठ ३० और 'आधुनिक कवि पंत' (सियारामशरण प्रसाद कृत) देखें।

ously the two most powerful" फ्रेंच कविता भी इसके लिए प्रसिद्ध है।[1]

प्रेम जिसे शाश्वत् स्वीकार किया जाता रहा है वह बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में सामयिक समस्या भी बन चुका था। प्रेम के अस्तित्व के अभाव में भारतवासी मनुष्य के मूल्य को नहीं अनुभव कर सकते थे, सगठन और शक्ति एव दृढता का स्वप्न नहीं देख सकते थे। इन समस्त समवेत अभावों की पूर्ति था प्रेम। उस युग में प्रेम के विशद और भव्य रूप-दर्शन का मैं यही कारण समझता हू। सभी नेताओं ने चाहे वे राजनीतिज्ञ हों या साहित्यिक इसी आराधना का व्रत लिया। छायावादियों ने भी इस देवता की प्राण-प्रतिष्ठा की, परतु व्यष्टि की सीमाबद्धता के कारण वे श्लाघनीय नहीं हो सके।

दूसरी ओर प्रेमचद ने जहा यथार्थ, कटु छवियों को, तथा निम्न स्तर के लोगों की निर्धनता और दैन्य तथा अभिजात वर्ग तथा जमींदारों के अत्याचारों को चित्रित कर एक सवाद दिया, वहा वर्मा जी ने ऐतिहासिक उपन्यासों के माध्यम से मुख्यत ओज एव वीरतत्व के प्रस्फुरण का प्रयास किया, लेकिन शिवम् के सयमित और मर्यादित रूप की सदा रक्षा की। इसी मर्यादित साहित्य-सृजन के परिणामस्वरूप वर्मा जी हिंदी के आदर्शवादी कलाकारों की श्रेणी में परिगणित किये जाते हैं। सत्य ही है—"Poetry clothes its thought through in the imagery of sense—perception, and expresses it through a speech that has been chiefly framed for the empirical world"[2]

जब मनुष्य यथार्थ सत्य या मानव दृढ प्रगति सचरण के दृष्टिकोण से सचालित भावभूमि उपस्थित करता है तो वह ओज को विस्मरण नहीं कर पाता। वह प्रेरणा-परक, जीवत तत्वों को सुदरतापूर्वक सजा देता है। वर्मा जी के ऐतिहासिक उपन्यासों के साथ भी यह सत्य सतुलित रूप में दर्शनीय है। ओज की परिभाषा देते हुए हमारे शास्त्रकारों ने कहा है—"जिस काव्य रचना के श्रवण से मन में तेज उत्पन्न होता है, उसे ओज गुण कहते हैं।"[3] निश्चय ही ओज तत्व चित्त में आवेग उत्पन्न करता है, उससे स्फूर्ति, वीरता, उत्साह का जागरण होता है। वीर, रौद्र आदि रसों में इसकी विवृत्ति मुख्यत होती है। उक्त तत्व के निर्वाह के लिए कविता में तो कठोर वर्णों के प्रयोग की भी व्यवस्था है। रवि बाबू ने भी नवजागरण निमित्त, हृदय में उद्दाम वेग और दुर्जेय शक्ति के अमित तेज का चतुर्दिक प्रसार आवश्यक समझ, युवकों के लिए प्रेरणामयी वाणी स्वरित की थी—

उठें वीर आजि नव जीवनेर प्राते
नवीन आशार खड्ग तोमार हाते

---

१ वर्मा जी ने स्वय लिखा है—"जैसे-जैसे अध्ययन, अवलोकन और मनन करता गया, मेरा निश्चय दृढ होता गया कि आधुनिक समस्याओं का समावेश उपन्यासों में अवश्य होना चाहिए और मैं अपना हल न देकर पाठकों को सुझाव मात्र दे दूँ।" (साहित्य-सदेश, अङ्क १–२, १९५६)।

२ Sir H Hadow—"Collected Essays" Wordsworth ने भी इसी प्रकार कहा है—"Every great poet is a teacher I wish to be either considered as a teacher or as nothing at all"

३. सेठ कन्हैयालाल पोद्दार—काव्य-कल्पद्रुम (प्रथम भाग), पृ० ३४३।

हानो सुकठोर घाते······
जीर्ण जरार बन्धक हो क जय।
नव जीवनेर संकट पथे
हे तुमि अग्रगामी
तोमार यात्रा सीमा मानिवेना (मिलिवेना)
कोथाय जावे ना थाकि।

इसी भाव-लहरी से उस युग का साहित्य आंदोलित हो रहा था जिसकी छाप सर्वश्री जयशंकर प्रसाद, वृन्दावनलाल वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान, माखनलाल चतुर्वेदी, प्रेमचन्द, मैथिलीशरण गुप्त आदि के साहित्य पर स्पष्ट है।[1] दूसरी ओर बंकिमचंद्र ने 'आनंदमठ' से मानवता के अंदर पिसते स्वातन्त्र-अधिकार के लिए विद्रोह को कसमसाहट उत्पन्न करने का प्रयास किया। ओज तत्व की दृष्टि से 'मृग नयनी', 'झांसी की रानी-लक्ष्मी बाई' आदि ज्ञातव्य हैं।

'मृगनयनी' उपन्यास में श्री वृन्दावनलाल वर्मा जी ने (क) मृगनयनी तथा लाखी एवं अटल की युवावास्था के साहसपूर्ण, रोचक कार्यों में, (ख) मानसिंह तोमर के चारित्रिक संगठन में, (ग) युद्धकाल में अटल, तोमर, लाखी के चमत्कारिक क्रिया-कलाप में तथा अन्य छोटे-मोटे स्थलों पर उपर्युक्त तत्व का समावेश कौशल से किया है, जिससे उन सभी महिमामंडित चरित्रों का मनोविश्लेषण, धैर्य, दृढ़ता, वीरता आदि का प्रदर्शन स्वाभाविक रूप से हो सका है और उक्त गुणों से विभूषित चित्रित करने में इतिहास की रक्षा के साथ ही भारतीय वीर प्राणियों के प्रति अपनी प्रकाश-दीप्त संस्कृति के प्रति श्रद्धाभिसिंचित भावनाओं का उन्मेष भी होता है। ऐतिहासिक उपन्यास 'दिव्या' (यशपाल कृत) में जहां भारतीय-संस्कृति की उपेक्षा का प्रबल भाव-स्रोत है, वहाँ मृगनयनी, झांसी की रानी, अहिल्याबाई, गोरी, विराटा की पद्मिनी आदि की सृष्टि भारत की पवित्र भूमि से होकर भारतीय आदर्श तथा वीर नारी का प्रतीक बनती हैं। वे दिव्या की तरह अनैतिकता का प्रश्रय जीवन-सिद्धि हेतु स्वीकार नहीं करतीं। 'दिव्या' में जहां नायिका दिव्या का चरित्र भीरू, परिस्थितियों के वश के कारण भिन्न-भिन्न दिशा ग्रहण करता है, वहाँ मृगनयनी आदि तेजस्वी नारियाँ हैं, ओजपूर्ण कर्तव्य उनके जीवन के श्रृंगार हैं। मृगनयनी और लाखी बाल्यकाल से ही जीविकोपार्जन के निमित्त कर्तव्य करती हैं, जंगली अरने, भैंसे और अनेकों हिंसक तथा बलिष्ट जानवरों का लक्ष्य-वेध करती हैं, और मृगनयनी के इसी ओजपूर्ण कार्य से मुग्ध हो मानसिंह तोमर, उसे अन्य जाति की होने पर भी, धर्म-पत्नी के रूप में स्वीकार करते हैं। मृगनयनी जहाँ वैवाहिक सम्बन्ध में आबद्ध हो मुख्यतः कला की सेविका बन जाती है, वहाँ लाखी आजन्म यातनाओं, पीड़ाओं से मुक्ति के लिए अस्त्र-ग्रहण किये रहती है। वह नटों के जाल को काटकर अपने चरित्र तथा देश की सुरक्षा करती है, शत्रुओं को तीर से बेधकर गढ़ की रक्षा करती है। और अन्त भी हाथों में धनुष-बाण लिए शत्रुओं से युद्ध करते होता

---

१. 'आधुनिक हिंदी काव्य में नारी भावना' (डा० शैलकुमारी कृत) इस दृष्टि से पठनीय है। जयशंकरप्रसाद कृत 'उद्बोधन' कविता आदि इसी तत्व के द्योतक हैं।

है। इस प्रकार के ओजस्वी चित्रो और वर्णनो से आलोच्य उपन्यास पूर्णतया भरा है। मानसिंह का चरित्र भी बडा ओजस्वी, दृढ तथा आदर्श, वीर नृपति का है जो अपनी भूमि की स्वतन्त्रता के लिए सर्वदा शत्रुओ से युद्ध करता रहता है, चतुराई से उनके विपुल सैनिक बल का दमन कर अजय बना रहता है। उदाहरणार्थ 'मृगनयनी' उपन्यास का उत्तरार्द्ध देख सकते है।

'झासी की रानी—लक्ष्मीबाई' मे रानी लक्ष्मीबाई के सम्पूर्ण कार्य-कलाप तथा उनके सहयोगियो रघुनाथसिंह, जवाहरसिंह, गुल मुहम्मद, गौसखा, काशी बाई, झलकारिन कोरन, जूही, मोतीबाई सुदर-मुदर आदि का जीवन-चित्रण तथा युद्ध-काल में किये गये अकथ परिश्रम ओज तत्व के प्रकाश हैं, जिन्हें देखकर शुष्क नसो में भी अगार भर जाते है, और जिन्हें देखकर ही झासी की सम्पूर्ण जनता में स्वतन्त्रता की लहर उद्वेलित होती रही और अग्रेजो की सम्मिलित तथा अनुशासनपूर्ण सेना का दृढतापूर्वक सामना करती रही, पराजित करती रही जो इतिहास के पृष्ठो में स्वर्णाक्षरो से लिखा है। रानी की नारी-सेना तथा दासी, सहेलियो आदि ने भी पौरुष दीप्त वह कार्य किया जिसे पुरुष भी कठिनाई से कर पाते। वे युद्ध करती, जनता को वेश बदलकर जाग्रत करती, न जाने कितने तूफानो, पर्वतो को लाँघती वीर-गति को प्राप्त कर गईं।

इस प्रकार (क) वैयक्तिक जीवन, (ख) राष्ट्रीय-चेतना, (ग) आदर्श-भावना आदि के सयोजन में ओज तत्व का यथेष्ठ उपयोग है। निश्चय ही हिन्दी साहित्य में ऐसे उपन्यासो की बडी कमी है जिनसे मनुष्य के अन्दर चेतना और स्फूर्ति हो। मेरी दृष्टि में इस क्षेत्र में भी वर्मा जी सफल हैं। 'गढ कुडार' आदि में भी उक्त तत्व का अपूर्व आग्रह है। वर्मा जी के उपन्यासो में "इतिहास की दूरी से घटना-विवरणो का आकर्षण बढ जाता है और स्वच्छदता के वातावरण में घटने वाले वीरतापूर्ण दृश्य, वन्य-व्यवहार तथा प्रेम-चर्चा आदि एक अनोखी सबल सभ्यता का हवाला देती है। आदर्शवादी पद्धति पर जीवनानुभव से पूर्ण वर्णन-प्रधान कृतियाँ प्रस्तुत करने वाले ये उपन्यास-लेखक हमारी नई वृहत्त्रयी में आते है।"[1] हिंदी-साहित्य में ऐसे उपन्यासो की कमी है जिसमें ओज-तत्व का इतना प्रबल आग्रह हो, और यह भी सत्य है कि इस तत्व का समादर वर्मा जी ने युग की आवश्यकता का अनुभव करके ही किया है। परतन्त्रता के विकृष्ट परिग म मे ही हीन भावना (Inferiority Complex), नैराश्यजनित व्यथा आदि प्रक्रियाए उद्बुद्ध हो रही थी। साहित्य युग, राष्ट्र, मनुष्य की अपूर्णता में पूर्णता लाने का अधिष्ठान है। साहित्य-युग की प्रवृत्ति, मानसिक भावधाराओ को स्पर्श और ग्रहण करता है तो भविष्यदृष्टा की तरह उज्ज्वल सदेश भी देता है, प्रगति-पथ का आलोक भी दृष्टिगत कराता है। वर्मा जी के साहित्य मे ओज तत्व के इतना प्रबल आग्रह का कारण आवेष्ठन और परिवश ही है। वक्तृत्व की प्रशसा करते हुए शेक्सपीयर ने लिखा है —

> Since brevity is the soul of wit
> And tediousness the limbs and outward flourishes,
> I will be brief "[2]

१ नन्ददुलारे बाजपेयी—आधुनिक साहित्य, पृ० ४२–४३ (भूमिका)।

२ Shakespeare—Hamlet

मनुष्य पौरुष-जागृति की भावना से अपने भूतकालीन पौरुषवानों की कथा सुनाता है, प्रेरणा का अंकुर समाविष्ट करता है। वर्मा जी के साहित्य में भी यह मूल भावना है। वर्मा जी के मानस में, चेतन या उपचेतन में यह बात भी बैठी था—"अंग्रेजी में लिखा मार्सडन कृत भारतवर्ष का इतिहास पढाया जाता था। उसमे पढा कि भारत 'गरम-मुल्क' है, इसीलिए यहा के निवासी कमजोर है, और इसी कारण वे बाहर से आए ठडे देशो के मुकाबले हारते चले गये। आगे कभी नही हारेंगे क्योंकि ठडे देश वाले अंग्रेज आगए हैं—सदा बने रहेंगे!! मेरा (वृन्दावनलाल वर्मा जी का) रोम-रोम जल उठा! राम, कृष्ण, अर्जुन, भीम के देशवासी कमजोर! और ये सदा अंग्रेजों के गुलाम बने रहेंगे!! पुस्तक का वह सफा नोच डाला। अभिभावक ने मेरी पिटाई की क्योंकि पुस्तक आठ आने की थी। जब अभिभावक को कारण मालूम हुआ तब पछताये और बोले—'अंग्रेज लेखक ने गलत लिखा है। जब बडे हो जाओगे तब अन्य पुस्तको में सही बात पढने को मिलेंगी। मैंने उसी दिन गाठ बाधी कि खूब पढूगा और सही बातो का पता लगाकर कुछ लिखूगा भी।"[1]

एक अन्य घटना भी महत्वपूर्ण है जिसकी चर्चा स्वय लेखक ने स्पष्ट शब्दो में की है—" एक पजाबी मित्र के घर किसी भोज में गया। वहाँ बुन्देलखण्डियो की दरिद्रता के साथ उनकी निंदा ठठोली के रूप में सुनी। छत्रसाल, वीरसिंह इत्यादि के पहले चदेले—आल्हा ऊदल—भी यही हुए थे। यहीं लक्ष्मी बाई हुई। भारत के ऐसे प्रदेश की निंदा जहा मेरे माता-पिता ने जन्म लिया और जहा की मेरी मिट्टी है। उन लोगों को उत्तर तो न दे सका, परतु प्रण किया कि इतिहास और परपरा के पीछे पडकर कुछ लिखूंगा और दिखलाऊगा कि जैसी यहा की प्रकृति-पहाड, जगल, झीलें, नदिया और मैदान—मनोहर है वैसा ही यहा का इतिहास भी शक्तिशाली और स्फूर्तिदायक है।"[2] यह घटना और मनोदशा लेखक की तब की है, जब वह नवम् वर्ग में थे। इन पक्तियो के माध्यम से उनके साहित्य में बुदेलखड का प्रेम, कारणसहित, स्पष्ट हो जाता है और पृष्ठभूमि भी।

परतु एक प्रश्न किया जा सकता है कि वृन्दावनलाल वर्मा जी ने मुख्यत नारी-पात्रों के माध्यम से ही यह कार्य क्यो करना चाहा? उत्तर स्पष्ट है। अहिल्याबाई, लक्ष्मीबाई आदि की घटनाए अभी पुरानी नही पडी थीं; वह आग बुझी नही थी, परतु उन पर राख का हल्का आवरण पड गया था, जिसे फूक कर हटा देने से अंगारो का तेज अनुभवन और ग्रहण सभव था। इन स्त्रियो ने नारी होकर भी पुरुष से अधिक तेजस्वी रूप व्यतीत किया जिसके प्रति भारत के हरएक प्राणी के मन में स्मृति थी, श्रद्धा थी। इसलिए उनसे बढकर उपयोगी विषय के आधार का मिलना कठिन था।

साथ ही वह युग नारी के अशक्त और हीन (inferior) समझने का युग था और दूसरी ओर कुछ सचेष्ट स्त्रिया अपने अधिकार-प्राप्ति के लिए सक्रिय थी। उस

---

१ श्री वृन्दावनलाल वर्मा—'उपन्यास कैसे लिखे गए?' ('साहित्य-सन्देश', जुलाई-अगस्त अक, १९५६)।

२ वही।

युग में "सुखर्जावी स्त्रिया केवल शृगार की गुडिया हैं (थी) केवल पति का एक खिलौना बनकर जीवित रहती हैं (थी)।"[1] उनकी स्थिति मार्मिक थी—"साधारण रूप-वैभव के साधन ही नही, मुट्ठी भर अन्न भी स्त्री के सपूर्ण जीवन से भारी ठहरता।"[2] इसीलिए राजनैतिक क्षेत्र में गाधी जी तथा काग्रेस एव अन्य भारतीय सस्थाओ द्वारा भी नारियो के उद्धार तथा उनके विकास का समुचित अवसर प्रदान एव मूल्याकन किया जा रहा था। उन्होने भारतीय जनता का आह्वान किया कि नारी समाज को भी कार्य करने का उचित अवसर प्रदान करें। गाधी जी ने स्वय अपने आश्रम में महिलाओ को सम्मानित स्थान दिया। सरोजिनी नायडू आदि जाग्रत महिलाए यथावसर, समय की माग के अनुसार कार्य क्षेत्र में तत्पर हो गईं; और अनेक माताओ और बहनो ने इस क्षेत्र में पदार्पण कर कार्यारभ किया। पूज्य बापू ने तो सशक्त शब्दो में कहा—"स्त्री को अपना मित्र या साथी मानने के बदले पुरुष ने अपने को उसका स्वामी माना है। काग्रेसवालो का यह खास हक है कि वे हिंदुस्तान की स्त्रियो को इस गिरी हुई हालत से हाथ पकडकर ऊपर उठावें।" उन्होने और आगे कहा—"मैं भारतवर्ष को यह रूप देना चाहूगा जिसमें निर्धन-से-निर्धन व्यक्ति भी अनुभव करे कि यह उनका देश है और इसके निर्माण में उनका महत्वपूर्ण योग है, जिसमें ऊचे वर्ग और नीच वर्ग नही होगे, जिसमें सभी लोग पूर्ण सद्भाव और एकता के साथ रहेंगे। ऐसे भारतवर्ष में अस्पृश्यता के अभिशाप के लिए कोई स्थान नही रहेगा और न मादक द्रव्य के पान या सेवन के अभिशाप का ही कोई स्थान होगा। स्त्रिया भी पुरुषो के समकक्ष अधिकारो का उपयोग करेंगी।" हम स्पष्ट देखते हैं, वर्मा जी का सपूर्ण साहित्य इस दिशा में बडी कुशलता से सचरण करता है। 'निस्तार', 'मृगनयनी', 'प्रत्यागत', 'झासी की रानी-लक्ष्मीबाई', आदि कृतिया इस दृष्टि से द्रष्टव्य हैं। निराला आदि हिंदी के समर्थ कलाकार भी इसी प्रकार के मनोभाव रखते थे। वृन्दावनलाल वर्मा जी ने स्पष्ट लिखा है—"ठीक अर्थ में इस देश को स्वाधीन उस दिन कहा जायगा जिस दिन यहा स्त्रिया स्वतत्र हो जायगी।"[3] स्मरण रहे, नारी-स्वतत्रता का आदोलन भारत में चल रहा था। १७५२ में सर्वप्रथम नारी-स्वतत्रता पर Mery Wellstonecraft ने पुस्तक लिखी थी 'A Vindication of the Rights of Woman' और उस भावना का प्रसार, परिष्कार और विस्तार युगानुरूप होता रहा। पाश्चात्य साहित्य एव विचार का भी इस दृष्टि से भारत पर प्रभाव पडा, इसे हम अस्वीकार नही कर सकते। 'शारदा एक्ट' आदि को भी पृष्ठभूमि में रखा जा सकता है। यशपालजी ने तो इसी समस्या से क्षुब्ध हो[4] 'दिव्या' की सृष्टि द्वारा

---

१ खांडेकर—क्रौंचवध (उपन्यास)।

२ महादेवी वर्मा—अतीत के चलचित्र।

३ वृन्दावनलाल वर्मा—अचल मेरा कोई (उपन्यास), पृ० ७।

४ लगता है नारी के इस रूप में समझे जाने के कारण ही यशपाल की आत्मा क्षुब्ध हो उठी—"स्त्री भोग्या है। नारी का कुल क्या है? उसे भोगने वाले पुरुष के कुल से नारी का कुल होता है। वह आत्म निर्भर नहीं।. कुल वधू का सम्मान, कुल माता का आदर और कुल महादेवी का अधिकार आर्य पुरुष का आश्रय मात्र है।" ('दिव्या' उपन्यास)

अपना समाधान[1] प्रस्तुत किया।

श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने युग की आवश्यकता के अनुरूप ही नारी को परम महत्वपूर्ण अनुभव किया। मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, जयशकर प्रसाद आदि ने भी नारी की महिमा और तेज के अधिकार को उद्घोषित करने के लिए नारी पात्रो पर ध्यान दिया। उर्मिला, ध्रुवस्वामिनी आदि पात्रो का अध्ययन इस दृष्टि से अपेक्षित है। वृन्दावनलाल वर्मा जी ने ऐसी सशक्त और गौरवशालिनी वीर नारियो के चित्र उपस्थित किये जिनके सम्मुख पुरुष भी नत मस्तक हो जाते है। 'कचनार' में अचलपुरी से स्पष्ट कहलाया भी है—"तुम्हारी (कचनार) सरीखी स्त्रिया हमारे समाज में हो जायें तो घर-घर उजाला छा जाये।"[2] और भावावेश में महन्त से तो यहा तक कहला डाला है—"स्त्रिया पुरुषो की अपेक्षा अधिक बुद्धिशाली और चतुर होती है।"[3] बर्नार्ड शा के 'Arms and the Man' में रेना कहती है—"The world is really a glorious world for women who can see its glory and men who can act its Romance "स्त्रियो को उसने (शा ने) कला के रूप में अधिक देखा है, वासना पूर्ति के साधन में नहीं के बराबर।" ('नई धारा,' शा अक, पृष्ठ १००)।

प्रसाद जी ने जहा कामायनी के माध्यम से नारी को महत्वपूर्ण परम पद दिया वहा वर्मा जी ने दुर्बल और अशक्त समझी जाने वाली नारी को बतलाया कि तुममें कितना तेज, कितना गुण केंद्रित है। 'झासी की रानी-लक्ष्मीबाई' में लेखक के परिशिष्ट[4] में अकित विचार से मेरी धारणा की पुष्टि होती है।

आज के युग के अनुरूप ही उपेक्षितो, दलितो के उद्धार के युग में[5] डा० रामकुमार वर्मा, दिनकर, प्रभात, मैथिलीशरण गुप्त आदि की दृष्टि क्रमश एकलव्य, कर्ण, कैकेयी, उर्मिला पर पडी है। यह पूर्ण सत्य है कि न्यायसगत मार्ग पर सूक्ष्म दृष्टिचेता, सवेदनशील कलाकार की दृष्टि पडनी ही है। यह स्मरणीय तथ्य है कि वर्मा जी ने नारी-स्वातत्र्य के युग में उनके अतर्जातीय ब्याह, स्वच्छन्द विचरण तथा तेजोमय रूप का निर्माण किया, आदर्श नारी की प्रतिष्ठा की, वहा जैनेन्द्र, भगवतीचरण वर्मा, अज्ञेय आदि ने मौन परिकल्पनाओ तथा वासना के निकृष्ट रूप में, भोग्य में भी उसे छूट दी, आदर्शवाद पर कुठाराघात किया जो राष्ट्रीय निर्माण में किसी दृष्टि से प्रशसनीय प्रयत्न स्वीकृत नहीं हो सकता। यह तो नारियो को पथ-भ्रष्ट करने का मोह-जाल-सा है।

खत्री जी ने उपन्यास का उदय रोचकता से पूर्ण, लम्बे एय्यारी कथानक से किया

---

१. यशपाल ने अपनी बौद्धिक चेतना एव चिंतन-प्रणाली के अनुरूप स्वतत्रता और अधिकार भक्षण के निमित्त उस पुरुष का सहयोग औचित्य ठहराया है जो मस्तिष्क की तरह विचार रखता हो, जो "ससार के सुख-दु ख अनुभव करता है। अनुभूति और विचार ही उसकी शक्ति है। उस अनुभूति का आदान-प्रदान कर सकता है। नश्वर जीवन में सतोष की अनुमति दे सकता है। सतति की परम्परा के रूप में मानवता को अमरत्व दे सकता है।" (दिव्या)

२. वृन्दावनलाल वर्मा—कचनार, पृ० ४१८।

३ वही, पृ० ३८७।

४ झासी की रानी—लक्ष्मीबाई, पृ० ५०६।

५ दिनकर ने रश्मिरथी की भूमिका में लिखा है—"यह युग दलितों और उपेक्षितों के उद्धार का युग है।" पृ० ग।

और हिन्दी-पाठकों की वृद्धि के साथ हिन्दी-भाषा का उपकार किया। प्रेमचन्द, वृन्दावनलाल वर्मा आदि समर्थ उपन्यासकारों ने कथानक की रोचकता को अक्षुण्ण रखते हुए साहित्य को एक अन्य दिशा में उन्मुख किया। लम्बा कथानक कथा जिज्ञासा के इतने सशक्त प्रयोग की पृष्ठभूमि में यही तत्व कार्य कर रहा था, अन्यथा जनता की अभिरुचि उर्ध्वमुखी, परिष्कृत कदापि नहीं हो पाती, या जनता उन्हें अपना नहीं पाती, स्वागत नहीं कर पाती।

इस प्रकार डा० रामदरश मिश्र का यह अभिमत—"वर्मा जी के उपन्यासों में नवयुग की समस्याओं को भरने की प्रवृत्ति लक्षित नहीं होती। इनके उपन्यासों का मुख्य लक्ष्य उत्तर मध्यकालीन समाज के रोमानी सम्बन्धों को ही व्यक्त करता ज्ञात होता है।"[1] पूर्ण सत्य की व्यंजना में असफल है। वस्तुतः वे वर्मा जी के साहित्यकार का मर्म न पहचान सके। मिश्र जी ऊपरी स्तर को ही अवलोकन कर रह गये, मर्म तक प्रवेश नहीं पा सके।

आलोचना का मुख्य एवं परम कर्त्तव्य है कि साहित्य-सृष्टि में पैनी दृष्टि डाल, अन्तर्सूक्ष्म और सत्य का पूरी निरपेक्षता से प्रसार करे। सत्यों और मूल्यों का समुचित मापदंड उपस्थित कर, रसान्वेषण कर, मर्म की पहचान करे। समस्त पृष्ठाधारों का परीक्षण और निरीक्षण भी आलोचना का कर्त्तव्य है। कलाकार की कृति विविध क्षेत्रों से, विभिन्न उपकरणों का संयोजन कर जनता के, समाज के, सम्मुख प्रकट होती है। अतः उस पर निष्कर्ष देने में पूरी सावधानी की आवश्यकता है। "अधिकांश आलोचकों में अच्छे-बुरे साहित्य को पहचानने की क्षमता बहुत कम हो गई है, वे प्रायः अपनी कमी को साहित्यिक 'वादों' से पूरी करना चाहते हैं।"[2] पूर्ण सत्य तो यह है कि ' One may view the evolution of every literary genre as the exploitation of some pre-eminent technical principles, positive or negative, on the poetic value of all other available materials "

ऐतिहासिक उपन्यासों में रोमांस एक महत्वपूर्ण पक्ष है। वर्मा जी में भी रोमांस है। रोमांस के सम्बन्ध में शिवदान सिंह चौहान ने भी ध्यान दिया है[3] परन्तु यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि वर्मा जी का रोमांस कर्त्तव्य के सम्मुख झुका रहता है (विशेष रूप से उनके उत्तरकालीन ऐतिहासिक उपन्यासों में)। 'झांसी की रानी-लक्ष्मीबाई,' 'मृगनयनी' द्वारा यह सत्य व तथ्य है जिस पर उपर्युक्त आलोचकों ने ध्यान नहीं दिया। उनके रोमांस के सम्बन्ध में खलीलजिब्रान की महत्ती भावना सन्निहित है—"Then we left that sea to seek the greater sea वर्मा जी के पात्र राष्ट्रीय और देश कर्त्तव्य के सम्मुख शारीरिक प्रेम को न्यौछावर कर देते हैं। निश्चय ही, पवित्र प्रेम का भव्य रूप वर्मा जी में अंकित है। यहाँ वियोगी हरि की पंक्तियाँ स्मरण हो आती हैं—"साहित्यकार वृन्दावनलाल वर्मा को पाकर हमारे भारत-राष्ट्र का मस्तक ऊंचा हुआ है।"

---

१ डा० रामदरश मिश्र—ऐतिहासिक उपन्यासकार श्री वृन्दावनलाल वर्मा।

२ डा० देवराज—पथ की खोज।

३ शिवदानसिंह चौहान—हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, पृ० १५६।

: २ :

हिन्दी उपन्यासों की परम्परा और वर्माजी

हिन्दी-साहित्य के इतिहास के विद्यार्थियों को निश्चितरूपेण ज्ञात है कि गद्य-साहित्य का जीवन पद्य की अपेक्षा अल्पका का है। सर्वप्रथम जब मनुष्य को वाणी का अपूर्व वरदान प्राप्त हुआ तो आदिकवि वाल्मीकि के मुख से अनायास कविता फूट पड़ी। मनुष्य ने अपनी भावनाओं को अपनी कोमलतम तथा सघर्षशील क्रियाओं की अभिव्यक्ति साहित्य के माध्यम से की। इसलिए सुमित्रानन्दन पंत ने कहा है :

वियोगी होगा पहिला कवि,
आह से उपजा होगा गान;
निकलकर आखों से चुपचाप
वही होगी कविता अनजान!

परन्तु, यह भी पूर्ण सत्य है कि लगभग १००–१५० वर्षों में हिन्दी गद्य साहित्य की जो प्रगति हुई है वह महत्त्वपूर्ण, प्रशंसनीय और संतोषप्रद है। आज सर्वश्री राहुल सांकृत्यायन, वृन्दावनलाल वर्मा, राजा राधिकारमण, प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, उषादेवी मित्रा, अचल, भगवतीचरण वर्मा, विष्णु प्रभाकर, रांगेय राघव, यज्ञदत्त शर्मा कमल जोशी, ब्रजकिशोर नारायण, डा० देवराज, भारती, रेणु आदि का कलापूर्ण योगदान हमारे साहित्य को विश्व-उपन्यास-साहित्य में स्थान ग्रहण कराने का अधिकारी घोषित कर रहा है।

यह पूर्ण सत्य है कि हिंदी कविता के सदृश गद्य का आविर्भाव अधिक काल का नहीं। "उपन्यास का जगत खुले हुए आकाश के नीचे फैली हुई विस्तृत हरीतिमा के समान है जिसमें नाना वर्ण जो वृक्ष, लता, गुल्म, पशु, पक्षी आदि स्वच्छंद रूप से विहार करते हैं यद्यपि इस स्वच्छंदता में भी एक समग्रता तो रहती ही है।"[1] उपन्यास साहित्य का आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग से हुआ और सन् १८८२ में हिंदी का प्रथम उपन्यास श्री निवासदास कृत 'परीक्षा गुरु' आया। इसके पूर्व भारतेन्दु ने गद्य पर दृष्टिपात करते हुए उपन्यास भी लिखना चाहा परन्तु इस कार्य का श्रेय उन्हें प्राप्त न हो सका और वे काल कवलित हो गये। तत्पश्चात देवकीनन्दन खत्री तिलस्मी और एय्यारी कथानक लेकर साहित्य-संसार में अवतीर्ण हुए और सन् १८९० में 'चन्द्रकांता' उपन्यास प्रकाशित हुआ। खत्री जी का साहित्यिक योगदान महत्त्वपूर्ण न होकर भी हिंदी के प्रसार में अपूर्व महत्व का है। क्योंकि उन पुस्तकों के पढ़ने को न जाने

१. डा० नन्ददुलारे वाजपेयी— आधुनिक साहित्य, पृ० २२५।

लालसाभिभूत अनेक व्यक्तियों ने हिंदी पढना आरम्भ किया, एतर्थं, हिंदी पाठको की सख्या की अभिवृद्धि हुई। श्री गोपालराम गहमरी और कार्तिकप्रसाद खत्री ने बगला की छाया पर अनेकानेक उपन्यासो की सृष्टि की। सन् १८९८ में किशोरीलाल गोस्वामी ने 'उपन्यास' मासिक पत्र निकालकर उसके माध्यम से हिंदी को लगभग पैंसठ उपन्यास दिये। उन्हें ही हिंदी के प्रथम ऐतिहासिक-उपन्यास-लेखक होने का श्रेय मिला। इस दिशा में उनके उपन्यास सफल नही हुए क्योकि वातावरण और स्थानीय रग (Local colour) का अभाव बुरी तरह खटकता है, जो ऐतिहासिक उपन्यासो के लिए अपेक्षित तत्व है। फिर भी यह सत्य है कि उपन्यासो के लिखने की परम्परा बन गई। व्रजनन्दन सहाय ने भावात्मक उपन्यासो की सृष्टि की जिसमें सुदृढ कथासूत्रता के विपरीत भावात्मक उद्‌गार, आदि अनावश्यक अनपेक्षित तथ्यो का विस्तार है।

बगला, अग्रेजी आदि से अनुवाद कार्य भी अनेक हुए—मौलिक कृतियाँ भी आईं, परन्तु नददुलारे वाजपेयी ने ठीक ही कहा है--"अनेक वर्षों तक उपन्यास का स्वरूप स्पष्ट न हो सका। लेखको के सामने कोई निश्चित लक्ष्य न था, उपन्यास की कोई निर्धारित प्रणाली या रूप-रेखा न थी। अनेक प्रकार के प्रयोग हो रहे थे। सभी लेखक अपनी रुचि और प्रवृत्ति के अनुसार उपन्यास-रचना का कार्य कर रहे थे।"[१] स्मरण रहे, अग्रेजी-साहित्य में भी आरम्भ में औपन्यासिक दृष्टि से अस्त-व्यस्तता तथा स्पष्ट दृष्टिकोण का सर्वथा अभाव लक्षित होता रहा जो स्वाभाविक दशा ही स्वीकार की जायेगी, फिर भी अग्रेजी उपन्यासो की हिंदी उपन्यासों के रूप-निर्माण और स्थायित्व में महत्वपूर्ण देन है, इसे हम अस्वीकार नही कर सकते।

उपन्यासकार

ऐतिहासिक उपन्यासकार	*सामाजिक आदि*
किशोरीदास गोस्वामी	निवासदास
जयशकर प्रसाद	प्रेमचद
वृन्दावनलाल वर्मा	प्रसाद
राहुल साकृत्यायन	वृन्दावनलाल वर्मा
चतुरसेन शास्त्री	राजा राधिकारमण
डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी	उषा देवी मित्रा, जैनेंद्र कुमार
डा० रागेय राघव	विश्म्भरनाथ कौशिक
यशपाल	भगवतीचरण वर्मा
भगवतीचरण वर्मा आदि	भगवती प्रसाद वाजपेयी
	यशपाल
	यज्ञदत्त शर्मा
	विष्णु प्रभाकर, अज्ञेय
	रामेश्वर शुक्ल 'अचल'
	इलाचद्र जोशी, आदि

१ नन्ददुलारे वाजपेयी— प्रेमचन्दके पूर्व (आधुनिक साहित्य, पृ० १३५)।

अनेक पगडडियो पर चलने वाली औपन्यासिक धारा, प्रेमचद का सयोग प्राप्त कर, अपेक्षित महत्व ग्रहण कर गई। प्रेमचद के उपन्यास-क्षेत्र में आते ही हिंदी उपन्यासो का व्यवस्थित एव महत्वपूर्ण रूप अधिष्ठित हो गया। प्रेमचद जन-युग के यथार्थमय वातावरण के बोलते चित्र हैं। शिवदानसिंह चौहान ने ठीक ही कहा है "प्रेमचद के उपन्यासो मे विशाल जनजीवन, विशेष रूप से उत्तर भारत के किसान और मध्यवर्ग का जीवन, और उसकी बहुमुखी समस्याए कलात्मक रूप मे प्रतिबिम्बित हुई हैं।"[1] निश्चय ही प्रेमचद के उपन्यासो में निम्न और मध्यवर्गी समाज का यथावत् चित्रण है। वृन्दावनलाल वर्मा, राजा राधिकारमण आदि ने प्रेमचद से अनेक साम्य रखते हुए भी अपनी भिन्न दिशाओ का भी निर्माण सफलता से किया जो ऐतिहासिक महत्वाकन के लिए प्रेरित करती हैं और जिसकी विस्तृत चर्चा दूसरे लेखो में हुई है। प्रसगवश हम यहाँ इतना ही कहेंगे कि वृन्दावनलाल वर्मा सामाजिक, राजनैतिक उपन्यासो में प्रेमचद से अत्यधिक साम्य रखते हैं। परन्तु, प्रेमचद आदर्शोन्मुख प्रवृत्ति से सचालित भावना की प्रेरणा से जहा कुछ सीमा तक उपदेशक के रूप में खटकने लगते हैं, शिवम् की प्राण प्रतिष्ठा में सत्य और सुन्दर का रूप उनमें कुछ धुधला पडने लगता है वहा वर्मा जी इस दोष से मुक्त रह, सफलता के अधिकारी स्वभावत सिद्ध होते हैं। प्रेमचंद पर इस दृष्टि से प० रामचद्र शुक्ल ने दोषारोपण करते हुए लिखा था:—"उनमें भी जहा राजनीतिक उद्धार या समाज-सुधार का लक्ष्य बहुत स्पष्ट हो गया है वहा उपन्यासकार का रूप छिप गया है और प्रचारक (propagandist) का रूप ऊपर आ गया।"[2]

'गोदान' प्रेमचद की अतिम और इस दोष से मुक्त कृति है। परन्तु 'सेवा-सदन', 'प्रेमाश्रम' आदि उपर्युक्त सत्य के द्योतक हैं। प्रेमचद के पश्चात उपन्यास का विकास-धरातल और भी विविधता को प्राप्त कर सशक्त बना। उपन्यास क्षेत्र में 'इरावती,' 'तितली' और 'ककाल' के रचयिता श्री जयशकर प्रसाद का नाम भी हम नही भूल सकते।

वृन्दावनलाल वर्मा ने 'अमरबेल' की सृष्टि द्वारा प्रेमचद की परम्परा को विकसित और समुन्नत ही किया जिसमें प्रेमचद की कृतियो के सदृश ही ग्रामीण जीवन की मार्मिक और यथार्थ अभिव्यक्ति एव झाकी है और 'विकसित' तथा 'समुन्नत' शब्दो के प्रयोग का अभीष्ट यह है कि उसमें अनावश्यक उपदेशक का रूप कदापि नही आ सका है और सम्पूर्ण मन्तव्य को आदर्शोन्मुख कर कलात्मक और साहित्यिक स्वरूप की भी सर्वदा रक्षा की गई है। 'प्रत्यागत' (वृन्दावनलाल वर्मा कृत) में भी विजय सत्य की, आदर्श की होती है। परतु फिर भी 'प्रेमाश्रम' और 'सेवा-सदन' सदृश उपदेश-प्रधान नही होता। ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में वर्मा जी की चर्चा, क्रमबद्धता की दृष्टि से हम आगे प्रस्तुत करेंगे।

प्रेमचद जी का अत जहा जबर्दस्ती किया गया मोड और कुछ अशो तक थोपा गया दीख पडता है वहाँ वर्मा जी के उपन्यासो की परिणति आदर्शवाद में ही परतु

---

१ शिवदानसिंह चौहान—हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष, पृ० १४८।
२ प० रामचन्द्र शुक्ल—हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० ५४२।

स्वाभाविक ढग मे है और इसी दृष्टि से वर्मा जी प्रेमचद से आगे बढ जाते हैं ।

'अमरबेल' ग्रामीण-राजनैतिक, सामाजिक जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण तथा विश्लेषणात्मक रूप का दिग्दर्शक उपन्यास है । ग्रामीण वातावरण, मनोदशा आदि के चित्रण मे यह उपन्यास भी प्रेमचद के उपन्यासो के समकक्ष है, परतु इसकी परिणति (end) की सफलता और चातुर्य पुन उन्हें (वर्मा जी को) प्रेमचद मे अधिक सफल कलाकार की श्रेणी में समादृत कर देती है । इसमें भी आदर्शवाद में, समाधान मे स्वाभाविक क्रियाए और अवस्थाए उत्पन्न हुई हैं । चित्रित अवस्थाए, घटनाए तथा वातावरण का अवसान स्वय अपनी स्वाभाविक धारा में है ।

तथैव वर्माजी आदर्शवादी कलाकारो में शीर्षतम स्थान के अधिकारी माने जायेंगे । जिस कला में आदर्शवादी प्रयास दीख पडे, वह द्वितीय श्रेणी के अतर्गत निर्दिष्ट की जायगी, परतु जब स्वय स्वाभाविक दिशा एव मार्ग निर्दिष्ट करे तो स्वाभाविकता (naturality) के परिणामत उसे प्रथम श्रेणी में हम स्वीकार करेंगे । एतर्थ, प्रेमचद से वृन्दावनलाल वर्मा का स्थान श्रेष्ठ ही माना जायगा ।

प्रेम परक साहित्य और 'प्रेम की भेंट'

प्रेमपरक साहित्य-प्रणेताओ में शरतचन्द्र का स्थान बडा महत्वपूर्ण है । रवीन्द्रनाथ के साहित्य में भी प्रेम का अपूर्व आग्रह है । 'देवदास' (शरतचन्द्र कृत) उपन्यास प्रेम-साहित्य की अमर कृति है । प्रेम को यहाँ मैंने वैयक्तिक रूप में रखा है । अत सामाजिकता की सीमा भी सकीर्ण होकर वह मात्र पारिवारिक प्राणी के व्यक्तित्व से सबध रखता है । प्रेमचद तथा अज्ञेय के 'शेखर' का प्रेम जहाँ समाज से भी आलोडित-विलोडित होता है, क्रिया-प्रतिक्रिया ग्रहण करता है, वहा देवदास तथा वृन्दावनलाल वर्मा के लघु उपन्यास 'प्रेम की भेंट' में प्रेम (Love) मुख्यत कुछ व्यक्तियो को परिधि बनाकर सतत चलता रहता है । वैयक्तिक पहलू प्रधान बना रहता है ।

एच० जी० वेल्स कृत 'Kipps', कीट्स की 'Lamia', अमृता प्रीतम कृत 'डा० देव' तथा हजारीप्रसाद द्विवेदी की 'वाणभट्ट की आत्म कथा' पुस्तक में जहाँ प्रेम सामाजिक पहलू रखता है, वहाँ 'प्रेम की भेंट' का प्रेम विस्तृत नही है । प्रेमपरक साहित्य की दृष्टि से भी प्रेम की भेंट' के आधार पर वृन्दावनलाल वर्मा जी का महत्व आका जा सकता है, और इस क्षेत्र मे उन्हें महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होगा । 'प्रेम की भेंट' में ऐसे पुरुषो और नारियो का प्रेम अकित है जो हृदय में गहरे प्यार की प्रतिमा की प्रतिस्थापना कर भी उसे व्यक्त नही करते । 'वाणभट्ट की आत्म कथा' में भी एक पात्री ऐसा ही आचरण प्रस्तुत करती है, परतु उसका यह प्रयत्न आदर्श और त्याग के साथ अधिष्ठान तथा सामाजिक प्रेरणा के लिए है । आलोच्य कृति पर दृष्टिपात करते समय राजा राधिकारमण कृत 'सूरदास' के नायक और नायिका का प्रेम भी स्मरण हो जाता है । निश्चय ही इस छोटी-सी पुस्तक में व्यञ्जित प्रेम की तीव्रता, मार्मिकता, प्रभावशीलता को देखकर उक्त पुस्तक को प्रेमपरक साहित्यिक कृतियो में शीर्षतम कोटि मे परिगणित किया जायगा क्योकि यह 'देवदास' की तरह प्रभावपूर्ण, पूर्णता प्राप्त कर चुका उपन्यास है । परतु स्मरण रहे, देवदास की पात्राए जहा शात और

गंभीर हैं, वहां आलोच्य कृति में चंचल, घरेलू की पात्राएं जहां खुलकर अपनी भावनाओं को प्रेमी के सम्मुख रखती हैं, वहां इनके विपरीत आचरण की पात्राएं 'प्रेम की भेंट' की हैं—वे सदा अपने मनोभावों को प्रच्छन्न रखने का प्रयत्न करती हैं।

ऐतिहासिक क्षेत्र तथा वर्माजी

हिंदी-साहित्य में सर्वश्री वृन्दावनलाल वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, किशोरीलाल गोस्वामी हजारीप्रसाद द्विवेदी, चतुरसेन शास्त्री, यशपाल आदि के ऐतिहासिक उपन्यासों का उसी प्रकार महत्व सुरक्षित है जिस प्रकार पाश्चात्य-साहित्य में Walter Scott, Ratcliffe, Alexander Dumas Victor Hugo, James, Kingsley आदि की ऐतिहासिक कृतियों का है। G Horton ने इतिहास के संबंध में लिखा है—"History is like a surveyors theodolite, unless we use it frequently to look back and get our bearing, it will not be of much help to us in running a straight line ahead."[1] परंतु, ऐतिहासिक लेखक और इतिहासकार में स्पष्टतया भिन्नता है। सर डब्ल्यू डेवनेंट के शब्दों में हम कह सकते हैं "भूतकाल का यथार्थ वर्णन इतिहास लेखकों का आदर्श है, परंतु कार्यात्मक सत्य का सजीव विवेचन कवियों का ध्येय है। काव्य की आत्मा सांसारिक पदार्थों, मानव के मस्तिष्क में निवास करती है।" निश्चय ही कलाकार जहां आत्मा के सत्यों को, उसके वास्तविक रूपों को अंतर्दृष्टि से ग्रहण कर लेता है, वहां इतिहासकार तथ्यों तथा बाहरी आवरण पर ही केंद्रित रह सीमा स्वीकार कर लेता है, वह अंतर में प्रवेश नहीं कर पाता और न वह आवश्यक ही समझता है। वह तो महल देखता है, तथ्य देखता है, परंतु उसमें अंतर्हित सूक्ष्म, अव्यक्त सौंदर्य-असौंदर्य का अवगाहन कदापि नहीं कर पाता।[2] वाल्टर बैगहोट ने ऐतिहासिक उपन्यास की तुलना 'बहते हुए जल-प्रवाह में पड़ी हुई प्राचीन दुर्ग-मीनार की छाया' से की है; पानी तो सतत् प्रवहमान होने के फल-स्वरूप नवीन रहता है, परंतु मीनार प्राचीन।[3] प्रभाकर माचवे के शब्दों में कह सकते हैं—"वह (ऐतिहासिक उपन्यासकार) सांस इस युग और निमिष में ले रहा है, परंतु उसका स्वप्न पुरातन है, और फिर भी नवीन। एक ही ऐतिहासिक विषय पर विभिन्न युग के लेखक इसी कारण से विभिन्न प्रकार से लिखेंगे।"[4] रवि बाबू का अभिमत भी

---

१ सर डब्ल्यू डेवनेन्ट—प्रेफेस टु गांडीबर्ट।

२. अमृतलाल नागर भी मेरे समान विचार रखते हैं—" . किसी बात का ब्योरा देना इतिहासकारों की शैली है, कलाकार उसी को उचित बैकग्राउन्ड (Background) देकर सजीव कर देता है।" (बूंद और समुद्र)।

३ "इतिहास सत्य की खोज करते हुए भी स्वभाव से तथ्योन्मुख एवं तथ्यापेक्षी और इस लिए नीरस बना रहता है, जब कि उपन्यास मानवीय सत्य की सरस उपलब्धि और स्थापना में तथ्यों की उपेक्षा भी कर सकता है। तथ्य उसके लिये बन्धन नहीं बनते। पोषक अवश्य ही होते हैं। वह तथ्यों को कल्पित भी कर सकता है, किन्तु इतिहासकार के लिये यह असम्भव है। इतिहासकार केवल द्रष्टा है, उपन्यासकार द्रष्टा और स्रष्टा दोनों।. ऐतिहासिक उपन्यास, कला की दृष्टि से अतिरिक्त दायित्वों की अपेक्षा रखता है।"—'आलोचना' के उपन्यास अंक में प्रकाशित डा० जगदीश गुप्त के 'इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यासकार' शीर्षक लेख से।

४ प्रभाकर माचवे—ऐतिहासिक उपन्यास ('आलोचना' का इतिहास अंक)

कुछ इसी प्रकार है।[1]

ऐतिहासिक उपन्यासकारों की प्रत्येक साहित्य मे न्यूनता है। हिंदी-साहित्य में इस परपरा के प्रथम प्रयोक्ता किशोरीलाल गोस्वामी ही हैं। परतु, अपने ऐतिहासिक ज्ञान तथा औपन्यासिक तत्वों के समुचित सयोजन की कला के अभाव में सफल ऐतिहासिक उपन्यासकार की कोटि में नही आ सके, पात्रो और घटनाओ के अतिरिक्त अन्य अपेक्षित सतुलन और तत्वो का अभियोजन नही कर सके फिर वृन्दाननलाल वर्मा, राहुल साकृत्यायन, हजारीप्रसाद द्विवेदी, चतुरसेन शास्त्री, आदि ने ऐतिहासिक उपन्यासो के सृजन में महत्वपूर्ण कार्य किया। महापडित राहुल साकृत्यायन ने साम्यवादी दृष्टिबिंदु को आधार मानकर युग की मान्यताओ और परिवेशो का वैज्ञानिक पृष्ठाधार उपस्थित किया। निश्चय ही यह कहना अप्रासगिक नही होगा कि राहुल जी के ऐतिहासिक उपन्यासो की पृष्ठभूमि में मार्क्सवादी दृष्टि चेतना प्रमुख रूप से कार्य करती रही है, परतु वृन्दावनलाल वर्मा इससे नितात भिन्न हैं। हिंदी ऐतिहासिक उपन्यास सम्राट् श्री वृन्दावनलाल वर्मा की वस्तुमयता, भावपूर्णता आदि सभी तत्व सतुलित एव सयोजित कला के यथार्थ से मुखरित हैं। परतु स्मरण रहे, ऐतिहासिक दृष्टि से ही नही, प्रत्युत् अन्यान्य दृष्टियों से भी आलोच्य कथाकार के साहित्य का महत्व सुरक्षित है जिसकी चर्चा मे अन्यान्य अध्यायो तथा 'दिव्या एक अध्ययन' पुस्तक में कर चुका हू।

वर्मा जी ने १४ वीं शताब्दी से लेकर आधुनिक युग के ऐतिहासिक काल खडो को ही अपनी कृतियो में ग्रहण किया है और मुख्यत मध्य भारत एव बुदेलखड की वीर नारियो एव पुरुष पात्रो को अद्भुत और जीवत रूप में चित्रित किया है, जिसमे ऐतिहासिक वातावरण, राजनैतिक परिस्थितिया, सामयिक उद्बुद्ध प्रक्रिया तथा सामाजिक राष्ट्रीय भावना के उपयोग में निश्चय ही सफलता प्राप्त हुई है, और जिसका अभाव गोस्वामी जी में खटकता था, वह अभाव नही रहा। यशपाल कृत 'दिव्या' उपन्यास की तरह दृष्टि की सीमाबद्धता के परिणामस्वरूप उन्होंने ऐतिहासिक सत्यो को तोड-मरोड नहीं किया। इसीलिए तो प्रभाकर माचवे ने लिखा है—"साहित्य के इतिहास में सस्मरणीय ऐतिहासिक उपन्यास-लेखक केवल चार-पाच ही हैं, राहुल साकृत्यायन, भगवतशरण उपाध्याय (जिनकी उपन्यास से अधिक बडी कहानिया हैं), हजारीप्रसाद द्विवेदी, यशपाल, रागेय राघव, चतुरसेन शास्त्री, और इन सब में गुण और परिमाण दोनो दृष्टियों से सर्वाधिक और अच्छा लिखने वाले श्री वृन्दावनलाल वर्मा। 'कचनार' की आलोचना दिल्ली रेडियो से मार्च १९४८ में करते हुए कहा गया

---

१ 'इस प्रकार के लेखन में लेखक को अपने-आपको भुलाकर उस काल में प्रक्षेपित करना होता है और उस काल के भग्न-प्राचीर-खण्डों और पाषाण स्तम्भों को लेकर पुन नव स्थापत्य निर्माण करना होता है।' श्री वृन्दावनलाल ने भी स्वय कहा है—"इतिहास लेखकों का 'अपना-अपना दृष्टिकोण कुछ न-कुछ काम करता ही रहता है। इतिहास के आधार पर उपन्यास लिखने वाला भी अपना दृष्टिकोण रखता है, परन्तु वह केवल इतिहास लिखने वालों की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्र है।"—'नये पत्ते' के जनवरी फरवरी, ५३ के अक में प्रकाशित एव 'विचार परिमल परिसवाद' में पठित 'ऐतिहासिक उपन्यास और मेरा दृष्टिकोण' से।

था कि वर्मा जी जनतंत्र युग के उपन्यासकार हैं। उनकी भाषा शैली जैसी सादी और प्रवहमान है उनकी विषय-वस्तु का आदर्श भी वैसा ही सहज और प्राकृत है। यह उनके व्यक्तित्व की विशेषता है, यही उनकी कृति की भी विशेषता है। उनकी रचनाओं में हजारीप्रसाद द्विवेदी जी का वाग्वैदग्ध्य या यशपाल या राहुल जी का सोद्देश्य मत-प्रचार नहीं मिलता, इतिहास के प्रति निर्भय प्रामाणिकता का भगवतशरण या रांगेयराघव का-सा आग्रह भी नहीं मिलता, तो भी उनकी सबसे अच्छी विशेषता यह है कि वे अपनी भूमि के निकट का ही विषय चुनते हैं, उससे बाहर नहीं जाते। बहुत कम लेखकों में अपनी मर्यादा का इतना अच्छा भान होगा।"[1]

गुलाबराय[2] और पंडित रामचंद्र शुक्ल[3] ने भी वर्मा जी की मुक्तकंठ से प्रशंसा की थी। कुछ लोगों का आक्षेप है कि ऐतिहासिक कथाकार तत्युगीन राजनीति आदि वातावरण में अपनी दृढ़ता के अभाव में, पलायन कर ऐतिहासिक क्षेत्र में प्रवेश करता है और उसके माध्यम से समाधान, अप्रत्यक्षत प्रस्तुत करता है क्योंकि प्रत्यक्षीकरण का धैर्य और साहस उसमें नहीं होता। "आमतौर पर किसी भी ऐतिहासिक उपन्यास की रचना के पीछे न्यूनाधिक रूप में एक-सी ही प्रेरणा होती है, जिसे सामान्यत तीन कोटियों में इस प्रकार बाँटा जा सकता है—(१) लेखक यह मानता है कि इतिहासकारों ने किसी युग, घटना अथवा पात्र विशेष के साथ न्याय नहीं किया। अपनी शोध और सहानुभूति लेकर उपन्यासकार उनके साथ न्याय करना चाहता है, (२) किसी युगविशेष की सभ्यता, संस्कृति और जीवन-दर्शन से लेखक इस कदर प्रभावित होता है कि अपनी लेखनी के सहारे उनके पुनरुत्थान के लिए प्रयत्न करता है, और (३) लेखक में इतना साहस नहीं होता है कि वह अपने विचारों को वर्तमान समाज की पृष्ठभूमि बनाकर सीधे-सादे पेश कर सके। समाज और सत्ता के आक्रोश से बचने के लिए इतिहास के पन्नों में एक ऐसी सदृश घटना चुनता है जो उसके विचारों की अभिव्यक्ति का सफल माध्यम बन सके।"[4]

उपर्युक्त कथित निष्कर्ष वर्मा जी के साथ पूर्णतया सत्य नहीं। पहली बात तो निश्चय ही वर्मा जी के साथ पूर्णतया सत्य है जिसकी चर्चा 'युग चेतना और पृष्ठभूमि' में हो चुकी है। 'झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई' के परिचय में श्री वर्मा जी ने इसी सत्य की ओर इंगित किया है।[5] ग्रामोपाध्ये ने अपने मराठी लेख 'ऐतिहासिक कादम्बरी : यांही विचार' में कुछ प्रश्न उठाते हुए इसी तथ्य को दूसरे शब्दों में कहा है—"ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना ऐसे काल में होती है जब समाज में गत इतिहास के लिए

---

१ प्रभाकर माचवे—आलोचना, पृ० १२४।

२ गुलाबराय—काव्य के रूप, पृ० २००-२०१।

३. पं० रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ० ५३८।

४. महावीर अधिकारी—आलोचना, पत्रिका।

५ वर्मा जी ने 'झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई' के परिचय में इसी तथ्य पर विस्तार से चर्चा की है, यहाँ संक्षेप में देखें—"मैंने निश्चय किया कि उपन्यास लिखूँगा, ऐसा जो इतिहास के रग-रेशे से सम्मत हो और उसके संदर्भ में हो। इतिहास के कंकाल में मांस और रक्त का संचार करने के लिए मुझ को उपन्यास ही अच्छा साधन प्रतीत हुआ।"

आदर और श्रद्धा होती है।" परंतु इनके अन्य प्रश्न बड़े विवादास्पद और व्यर्थ हैं।[1] दूसरी बात भी स्पष्ट है कि वर्मा जी उन चरित्रों और कथानकों से प्रेरणा ग्रहण कराना चाहते हैं। 'भुवन विक्रम' की भूमिका इस दृष्टि से ध्यातव्य है।

परंतु, साहस का अभाव वर्मा जी में नहीं कहा जा सकता। यदि उनमें उक्त तत्व का अभाव होता तो वह भारतीय-जीवन की इतनी समस्याओं का दृढ़तापूर्वक साहस-पूर्ण समाधान की ओर प्रवृत्त न करते। 'प्रत्यागत,' 'अमर बेल', 'कचनार' आदि को ध्यान में रखते हुए हम यह स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। वस्तुतः इस मनोवृत्ति की पृष्ठ-भूमि में कौन-कौन से तत्व कार्य करते हैं इसका समुचित मूल्यांकन अपेक्षित है। साहित्य का सौंदर्य इस में है कि वह अंतर्मुखी रह, अप्रत्यक्षतः ही, संदेश दे, संकेत मात्र ही करे। साहित्य और नीति एवं उपदेश में यही विभाजन-रेखा है कि नीतिशास्त्र स्पष्ट शब्दों में मन्तव्य प्रकट करता है परंतु साहित्य द्वारा अभिव्यक्त भावनाएं विचार सुंदरम् के आवरण में, नव विवाहित, घूंघट वाढे नारी की तरह सिद्ध होते हैं। समग्र साहित्य ही संकेत है। इस दृष्टि से कलाकार पर आक्षेप अनुचित होगा। वर्मा जी ने 'लक्ष्मी-बाई', 'मृगनयनी', 'कचनार', 'गढ़ कुंडार', 'विराटा की पद्मिनी', 'टूटे कांटे', 'अहिल्याबाई' आदि में वर्णित पात्रों का वीरत्वपूर्ण ओजस्वी चित्र सफलता से अंकित किया है और ऐतिहासिक उपन्यासकारों में वृन्दावनलाल वर्मा को सर्वश्रेष्ठ स्थान उपर्युक्त कृतियों के आधार पर ही दिया गया है। एक ओर वर्मा जी में जहां इतिहास की रक्षा हुई है वहाँ साहित्य भी अपना पूर्ण निखार पा सका है। वे दोनों एक दूसरे के लिए व्यवधान नहीं बन सके और इन दोनों के समुचित संतुलन और विन्यास की सफलता ने उन्हें गौरवपूर्ण पद पर अधिष्ठित कर दिया है। जिज्ञासा, रोचकता, पात्रों का मनोवैज्ञानिक सफल विश्लेषणात्मक रूप, कौशल, सम्भवता आदि औपन्यासिक तत्व भी इतनी सुंदरता से सजाये गए हैं कि वर्मा जी के नैपुण्य और दक्षता के प्रति पूरी आस्था उत्पन्न हो

---

१ प्रा० ग० व ग्रामोपाध्ये—'ऐतिहासिक कादम्बरी वाई विचार' लेख, नवभारत, फरवरी, १९४९। डा० जगदीश गुप्त ने ऐतिहासिक उपन्यासों की सृष्टि के पीछे निम्न भावनाओं की प्रेरणा स्वीकार की है, जिसमें वस्तुतः नवीनता नहीं है (i) वर्तमान से पराजित अथवा असन्तुष्ट होने के फलस्वरूप पलायन की भावना, (ii) अतीत को वर्तमान से अधिक श्रेष्ठ एवं महत्वपूर्ण समझते हुए उसके पुनर्संस्थापन की भावना, (iii) वर्तमान को शक्तिशाली बनाने के लिए अतीत से उपजीव्य खोजने की भावना, (iv) कतिपय ऐतिहासिक पात्रों या घटनाओं के प्रति न्याय की भावना, (v) इतिहास-रस में लिप्त रहने की सहज भावना, (vi) जातीय गौरव, राष्ट्र-प्रेम, आदर्श स्थापना तथा वीर-पूजा की भावना, (vii) जीवन की किसी नवीन व्याख्या को प्रस्तुत करने की भावना।"—आलोचना।

सामन्तवाद की उपासना, पुनरोद्धार, पलायनवादी प्रवृत्ति आदि का दोषारोपण करने वालों को वर्मा जी ने 'अमरबेल' में स्नेही के माध्यम से स्पष्ट उत्तर दिया है—"आजकल की समस्याओं के हल करने योग्य प्रचुर मात्रा में स्फूर्ति और शक्ति देने के लिए उसे परछाहीं के पीछे दौड़ना नहीं कह सकते। एक बड़ा आवश्यक ढंग वह भी है। हाँ, राजा के राज्य विस्तार की ही कथा होती तो तुम्हारा कहना ठीक बैठता इसको तो सामन्तवाद-उपासना या पुनरोत्थान नहीं कह सकते। उन भविष्य के काल में यदि तब का लेखक आज के कर्मी क्रांतिकारी का त्याग तपस्या का वर्णन हाल आकर्षक ढंग से लिखे और उससे पाठक को शक्ति और स्फूर्ति मिले, तो क्या उस कहानी को पुनरोत्थानवाद कहा जायगा?" (विस्तार के लिए देखें 'अमर बेल', पृ० ३६०—३६६)।

जाती है। यशपाल के 'दिव्या' उपन्यास में और 'बाण भट्ट की आत्मकथा' में ऐतिहासिकता के तंतु टूटते है, भगवतीचरण वर्मा में दर्शन का बोझिलपन तथा अपनी कल्पनात्मक कथानूनता, ऐतिहासिक सतुलनहीनता का बोध कराती है, जहा राहुल जी में वर्गगत सघर्ष हा मूल दिखने लगता है और चतुरसेन शास्त्री की 'वैशाली की नगर वधू' की शैली अनाकर्षक हो गई वहाँ वर्मा जी की वर्णन शैली रोचक और आकर्षणपूर्ण है। उनके पात्र अपने स्वाभाविक निर्माण-विकास और मार्ग पर अग्रसर होते हैं। निश्चय ही इस क्षेत्र में वर्मा जी अद्वितीय हैं, सर्वश्रेष्ठ हैं। डा० द्विवेद कृत 'वाणभट्ट की आत्मकथा' की बड़ी प्रशसा सुनने को मिलती है, परतु इसमें जहा कल्पना की ही प्रधानता रही, ऐतिहासिक प्रकाश के अभाव में, वहा वर्मा जी के साथ इतनी स्वतत्रता न रहने पर भी जिस प्रतिभा और कौशल का परिचय प्राप्त होता है, वह उनकी कोटि के निर्धारण में स्वीकार किया जायगा। इतिहास और साहित्य का सतुलन कितना कष्ट-साध्य है इसका ज्ञान कोई उक्त दिशा का प्रयासी ही समझ सकता है। प्रस्तुत स्थल पर जार्ज सेंट्सबरी का कथन स्मरण हो आता है—"The historical novel is a good kind, good friends, a marvellous good kind · and it is much less subject to obsolescence, (प्रयोग से हटना), if it is really well done, while it can practically annex most of the virtues of that novel of manners itself"[1]

प्राय ऐतिहासिक उपन्यासो में रोमास[2] रहता है। स्कॉट के Ivanhoe में रेबेका (Rebecca) और ब्लैक नाइट (Black Knight) का प्रेम मूलाधार है। ड्यूमा आदि ऐतिहासिक उपन्यासकारो की कृतियो द्वारा भी यह तत्व स्पष्ट है। 'Black Tulip' में ड्यूमा ने रोमास का त्याज्य नही किया है। 'Notre Dame de Paris' (V Hugo कृत), Fouque कृत 'Der Zauberring, Rossetti कृत 'Girlhood' में भी रोमाटिक प्रेरणा है। हिंदी उपन्यासकारो के साथ भी यह सत्य है। इसीलिए C. Reckett ने लिखा है—" Strictly considered every historical novel is a romantic speculation," 'अहिल्याबाई', 'गढकुडार', विराटा की पद्मिनी' आदि में रोमास ध्य तत्व हैं। परन्तु वर्मा जी के रोमास में निष्क्रियता और वैयक्तिक स्वार्थ एव वायवीपक्ष प्रबल नही है। झासी की रानी-लक्ष्मीबाई' में तो देश प्रेम और राष्ट्रीय कर्तव्य के सम्मुख प्रेम को गौण महत्व दिया गया है।

---

१ George Saintsbury—The English Novel

२ (i) 'दी इंगलिश नोवेल' में जार्ज सेन्ट्सबरी ने लिखा है—The origin of Romance itself is a very debatable subject or rather it is a subject which the wiser mind will hardly care to debate much The opinion of the present writer—the result at least of many years' reading and thought—is that it is a result of the marriage of the older East and newer (Non classical) West through the agency of the spread of Christianity and the growth and diffusion of the "Saints' life" उनके रोमान

(क्रमशः)

बंगला साहित्य में राखाल बाबू के ऐतिहासिक उपन्यास 'करुणा' और 'शशांक' सुन्दर हैं। पं० रामचंद शुक्ल ने इनका अनुवाद कर उनकी ओर हिंदी पाठकों और लेखकों का ध्यान आकृष्ट कर हिंदी में ऐतिहासिक उपन्यासों के लिखने का आवाहन किया था। वर्मा जी इस दिशा में प्रवृत्त हुए और जिनकी रचनाओं से शुक्ल जी ने भी

(पादटीका क्रमश)

में दो मूल तत्वों को स्वीकार किया है–"The two great romantic motives, Adventure and Love, are quite maturely present in it" उसने आगे कहा—"You must mix prose and poetry to get a good Romance" वह रोमांस और नोवेल को एक दम अलग अलग देखने के पक्ष में न था—"The separation of Romance and novel—of the story of incident and the story of character and motive is a mistake logically and psychologically "

(ii) Romantic के कोशों में 'sentimental', 'fanciful', 'wild', 'extravagant' 'chimerical' आदि अर्थ मिलते हैं।

(iii) "Pertaining or appropriate to the style of the Christian and popular literature of the Middle Age, as opposed to the classical antique"—Critical definition

(iv) "The various dialects which sprang from the corruption of the Latin were called by the common name of Roman. The name was then applied to any piece of literature composed in vernacular instead of in the ancient classical Latin—" Bears, H A (*A History of English Romanticism*)

(v) Mr. Perry रोमांस के लिए strangeness को आवश्यक मानता है। और उससे सौंदर्य भी मानता है।

(vi) Pater का मत है, "The desire of Beauty being a fixed element in every artistic organization, it is the addition of curiosity to this desire of beauty that constitutes the romantic temper"

(vii) Dr Hedge ने रहस्य को रोमांस का मूल मानते हुए लिखा है—"The essence of Romance is mystery."

(viii) Pater ने स्कॉट के उपन्यासों को रोमांटिक मानने का कारण प्रचलित पुरानी प्रणाली (Tradition) के विपरीत धारा आरम्भ करने और आश्चर्यजनक साहसिकता का उपयोग और मध्ययुगीन कथानक का चयन माना है।

(ix) De Stendhal—"Romanticism is the art of presenting to the nations the literary works which in the actual state of their habits and beliefs, are capable of giving them the greatest possible pleasure."

(x) रोमांटिक साहित्य व्यक्तिगत प्रेम और साहस की मूलभूत प्रेरणाओं से प्रस्फुटित होता है। यह कविता और गद्य का सामंजस्य है—यज्ञदत्त शर्मा।

(xi) मैंने यहाँ पर रोमांस को प्रेम के रूप में ही ग्रहण किया है। उनमें साहसिकता भी देख सकते हैं।

मतोष प्रकट किया यह इतिहास का प्रत्येक विद्यार्थी जानता है। और डा० रामदरश मिश्र भी जिन्होंने कोई महान् लक्ष्य वर्मा जी के साहित्य में नही देखा (अपनी आलोचक दृष्टि के अभाव में) वे भी स्वीकार करते है कि वर्मा जी इस क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ है। हिंदी के सभी आलोचक इस बात से सहमत है। जहा अन्य ऐतिहासिक लेखक मुख्यत आलोचक या सामाजिक उपन्यासकार है वहा वर्मा जी इनके विपरीत मुख्यत ऐतिहासिक उपन्यासकार है। इनकी अधिक औपन्यासिक कृतिया ऐतिहासिक भूमि पर निर्मित है। साहित्य और इतिहास का अपूर्व सयोजन तथा सन्तुलन इनकी कला की विशिष्टता है। दोनो तत्वो के वास्तविक रूप की रक्षा करते हुए निखार लाना, म न्दर्य विवृत करना मैं ऐतिहासिक उपन्यासकारो की सबसे बडी सफलता की सीढी मानता हू। इस दृष्टि से राहुल साकृत्यायन ने विकासवाद के सिद्धात पर (डार्विन के सिद्धात पर) भौतिक सघर्षशीलता का उचित विन्यास कर साहित्य-सृजन किया है। वह सिद्धातो का भारी बोझ उपन्यास में न लादते तो अत्यधिक सफल होते।

प्रभाकर माचवे ने मोटे तौर पर ऐतिहासिक उपन्यासो का युग के अनुसार कुछ वर्गीकरण किया है (१) प्राग् ऐतिहासिक युग तथा आदिम वैदिक युग, (२) रामायण-महाभारत पुराण-काल, (३) जैन-बौद्ध प्रभाव के गुप्त मौर्यादि युग, (४) मध्ययुग और मुस्लिम राज्यकाल, (५) अग्रेजी राज्यकाल और वर्तमान काल।

वृन्दावनलाल जी की समस्त ऐतिहासिक कृतियाँ ('भुवन विक्रम' को छोडकर जिसमें उत्तर वैदिककालीन कथा है) अतिम दो वर्गों में रखी जायेंगी। और इन दोनो वर्गों के युग को उन्होंने बडी सफलता से चित्रित किया है, दोनो कालो की भावनाओ, विचार-धाराओ और आवेष्ठ मत-सघर्षों का सफल अकन किया है। इनकी कृतियो में कहाँ तक ऐतिहासिकता की रक्षा है इसकी चर्चा अन्य अध्याय में हुई है।

इन्ही सफलताओ को देखकर डा० बाबूराम सक्सेना ने तो यहाँ तक कहा है—"हिन्दी साहित्यकारो में वर्मा जी का स्थान बहुत ऊचा है। उपन्यासकार तो उनकी तुलना का कोई है ही नही।" निश्चय ही अपने ऐतिहासिक क्षेत्र में, वह अपना अद्वितीय स्थान रखते है। औपन्यासिक तत्वो का जितना कलात्मक प्रयोग इनके उपन्यासो में है वह आज के पाश्चात्य देशानुसरणकर्ता उपन्यासकारो मे कदापि नही।" यह सत्य है यूलिसीज आदि की नकल में मौलिकता नही रह पायी है। परन्तु वर्मा जी ने अपनी कृतियो में मौलिकता के स्रोत को सूखने नही दिया है। "यह निश्चित है कि वर्मा जी हिन्दी के श्रेष्ठ मौलिक लेखक है।"—डा० धीरेन्द्र वर्मा

: ३ :

वर्मा जी की रचनाओं का वर्गीकरण

वृन्दावनलाल वर्मा जी हिंदी के उन प्रौढ और सफल कलाकारों में हैं जिन्होंने हिन्दी साहित्य को उपन्यास, नाटक और कहानी से सतत समृद्ध और गौरवान्वित कर अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। जहां उनमें कहानी सृजन की सफल कला है, वहां विविध समस्याओं को रंगमंच के माध्यम से, सहज ढंग से हमारे सम्मुख उपस्थित करने की अपूर्व दक्षता है। जहां उनकी रंगीन लेखनी ऐतिहासिक पृष्ठों से कथा-वस्तु का चयन कर तद्युगीन चिन्तनधारा और वातावरण का यथार्थ (accurate) चित्र उपस्थित कर देती है, वहां उनकी दृष्टि सामाजिक, राजनैतिक विषयो से वंचित नहीं होती। और सबसे बडी विशेषता उनकी यह है कि वे सभी चित्र फोटोग्राफी मात्र नहीं वरन् कवि के काव्य से सरस और जीवत हैं। ऐतिहासिक कथाकार में जो दोहरी शक्ति (साहित्यकार और इतिहासकार की पैनी शक्ति) वांछित है, वह वर्मा जी में वर्तमान है, ऐसा कोई भी पाठक निस्संकोच कह सकता है।

निश्चय ही लगभग सत्तर वर्ष की गयी उनकी साहित्याराधना महत्वपूर्ण है, प्रशंसनीय है। हम उनके विस्तृत साहित्य को अध्ययन की सरलता के लिये तीन श्रेणियों मे विभक्त कर सकते हैं यथा *(क) उपन्यास साहित्य* जिसके अंतर्गत उनके राजनैतिक, सामाजिक सभी उपन्यास चले आते हैं। इस खंड को भी विषयगत दृष्टि से तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं—1) ऐतिहासिक उपन्यास जैसे (*i*) झाँसी की रानी, (*ii*) गढ कुंढार, (*iii*) विराटा की पद्मिनी, (*iv*) कचनार, (*v*) मृगनयनी, (*vi*) अहिल्याबाई, (*vii*) मुसाहिब जू, (*viii*) टूटे कांटे, (*ix*) माधव जी सिंधिया, (*x*) भुवन विक्रम, जिसमें लगभग पन्द्रहवीं शताब्दी से अठारवीं शताब्दी तक के काल-खंडों से चरित्रों और घटनाओं को ग्रहण कर उपन्यास का निर्माण किया गया है। केवल 'भुवन विक्रम में उत्तर-वैदिककालीन कथा है। ऐतिहासिक उपन्यासों में कुछ को छोडकर नारी की प्रधानता स्वीकृत है, जैसा पुस्तकों के नाम से भी स्पष्टतया समझा जा सकता है और नारी पर विशेष ध्यान केन्द्रित करने का आधारभूत कारण है जिसकी मैंने अलग चर्चा की है। मुसाहिब जू, माधवजी सिंधिया आदि कुछ उपन्यास हैं जिनमें पुरुष पात्र प्रधान हैं।

(2) सामाजिक उपन्यास जैसे (*i*) प्रेम की भेंट, (*ii*) प्रत्यागत, (*iii*) लगन, (*iv*) सोना, (*v*) कुंडली चक्र, (*vi*) शबनम्, (*vii*) हृदय की हिलोर, (*viii*) कभी-न-कभी, आदि हैं जिनमें पारिवारिक तथा वैयक्तिक जीवन के बडे ही कटु परंतु सत्य रूप अंकित हैं, जैसे जात-पांत, दहेज, प्रेम आदि।

(3) पुरातनः राजनैतिक और समन्य प्रधान हैं जैसे (i) अमर बेल, (ii) अचल मेरा कोई, जिनमें आधुनिक विकृत मनोवृत्ति, राजनैतिक, जमींदारी-प्रथ -समाप्ति-आंदोलन आदि के मर्मस्पर्शी चित्र हैं।

(ख) कहानी साहित्य

द्वितीय श्रेणी में कहानी साहित्य आता है जिसमें अभी तक (१) दबे पाँव, (२) अम्बरपुर के अमरवीर, (३) ऐतिहासिक कहानियाँ, (४) मेंढकों का व्याह, (५) शरणागत, (६) कलाकार का दंड आदि पुस्तकें हमारे सम्मुख हैं। इन पुस्तकों के अतिरिक्त भी अनेक कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओं में देखी गई हैं, जिनका पुस्तकों में अभी तक उपयोग नहीं हो सका है। कहानियों में भी सामाजिक, ऐतिहासिक, व्यंग्यात्मक, शिकारपरक आदि विभाग किए जा सकते हैं। 'मूंग की दाल' में यदि व्यंग्य की गहरी पुट है, तो 'सच्चा शुद्धि' तथा 'अम्बरपुर के अमरवीर' आदि में ऐतिहासिकता की छाप। 'दबे पाँव' में शिकारपरक रचनाएं हैं। अत: विविध कहानियाँ विविध विषयक पृष्ठभूमि पर आधारित हैं। विस्तार से कहानी-साहित्य पर प्रकाश आगे डाला जायगा।

(ग) नाटक

(i) झाँसी की रानी, (ii) हंस मयूर, (iii) राखी की लाज, (iv) पूर्व की ओर, (v) केवट, (vi) खिलौने की खोज, (vii) नीलकंठ, (viii) बीरबल, (ix) कनेर, (x) बाँस की फाँस, (xi) फूलों की बोली, (xii) मंगल सूत्र, (xiii) काश्मीर का काँटा, (xiv) लो भाई पंचो लो, (xv) पीले हाथ, (xvi) जहाँदारशाह, (xvii) सगुन, (xviii) ललित विक्रम, (xix) टूटा गुरू, (xx) कब तक, (xxi) शासन का डंका आदि जिनमें मानवीय-जीवन के विविध पहलुओं और क्षेत्रों से वस्तु का चयन किया गया है। इनके नाटकों को भी (१) सामाजिक, (२) राजनैतिक, (३) पौराणिक, (४) ऐतिहासिक, इन चार खंडों में बाँट सकते हैं जिनमें हंस मयूर, झाँसी की रानी, जहाँदारशाह, ललित विक्रम, ऐतिहासिक, लो भाई पंचो लो, बाँस की फाँस, खिलौनों की खोज, पीले हाथ आदि सामाजिक तथा काश्मीर का काँटा, निस्तार आदि राजनीति विषयक हैं। स्मरण रहे उपन्यासों और कहानियों की तरह उन्होंने भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से कथानक का चयन किया है। कल्पना का समुचित संयोग इनके ऐतिहासिक नाटकों में है और मौलिकता की छाप सर्वत्र देख सकते हैं। 'बीरबल' में बीरबल की सत्यवक्ता के रूप में चित्रित कर उसके महत्वपूर्ण रूप पर प्रकाश डाला गया है।

इस प्रकार आलोच्य कलाकार की मर्मभेदिनी दृष्टि जीवन के प्रत्येक अंग-उपांग, क्रिया-प्रतिक्रियाओं पर पड़ी है। उन्होंने अपनी विस्तृत प्रतिभा और विकसित ज्ञानानुभव के आधारभूत नींव पर विविध विषयक सरणी का सचरण किया है। जीवन में जहाँ शाश्वत समस्यायें हैं वहाँ युगानुकूल सामयिक समस्याएँ निरंतर प्रकट होती रहती हैं, और अनुपाततः अपनी आवश्यकता और समाधान की वाञ्छा रखती हैं। वर्मा जी ने उन समग्र वस्तुओं को देखा है और गहराई से, और अपने दृष्टिकोण से आवश्यकतानुसार समाधान की योजना की है जो कर्मठ और सृजनशील कलाकारों से अपेक्षित भी है। प्रेमचंद भी अपने साहित्य को पात्रों और समस्याओं के उतरगो **बेमहूटों**

और भाव-भूमियो मे अग्रसर कर एक समाधान उपस्थित करते थे। उदाहरणार्थ हम 'सेवा सदन', 'प्रेमाश्रम' आदि कृतियो का ले सकते है। परतु, ऐसी चेष्टा मे प्रेमचद कही-कही पूरे आदर्शवादी और उपदेशक का रूप धारण कर लेते है, उनका उपस्थित किया गया समाधान अत्यधिक सीमा तक असम्भव नही तो कठिनतम अवश्य दीख पडने लगता है। परन्तु वर्मा जो के समाधान अधिक सरल और उपयोगी दीख पडते है, जिन रचनात्मक सत्यो का सहजता से उपयोग किया जा सकता है और किया गया है। उदाहरणार्थ 'निस्तार' में छूत-छात के समाधान का उपयोग। स्मरण रहे, मेरा यह विचार-बिंदु सामाजिक और राजनैतिक कृतियो के सम्बन्ध में मुख्यत है, और ऐतिहासिक कृतियो में सयोजित महत्वान्वित लक्ष्य की चर्चा में अन्यत्र कर चुका हूँ।

ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक, सभी पक्षो के ग्रहण के फलस्वरूप वर्मा जी के क्षेत्र विस्तार के साथ ही मूल्याकन की कसौटी भी कडी हो जाती है, कर्त्तव्य और कलाशक्ति के व्यापक उत्तरदायित्व की अभिवृद्धि हो जाती है। इस दृष्टि से इन सभी पक्षो में वह किस सीमा तक सफलता के अधिकारी हो सके, इस पर विस्तार से समुचित मूल्याकन, विषयो के आधार पर, अलग-अलग लेखो में किया जा सकता है।

पात्रों का चरित्र-चित्रण

साहित्य-क्षेत्र में उपन्यास का मूलाधार मानव-जीवन है, इस दृष्टि से चरित्र का अत्यधिक महत्व अनिवार्यत सिद्ध हो जाता है और चरित्र-चित्रण का मूल्याकन आलोचक का मुख्य कर्म, जिसमें कलाकार की पैनी दृष्टि, मौलिक प्रतिभा, मानसिक व्यापारो का परिज्ञान अपेक्षित हो सफलता की सीमा-रेखा नही तो अनुभवन अवश्य करा पाता है और वर्णित पात्रो की नैसर्गिकता से अपनत्व स्थापित कर पाठक 'काता सम्मित उपदेशत' ग्रहण कर पाता है। अपनी सवेगात्मक शक्तिमत्ता की विकास-सीमा के अनुपात से, अत. इस दृष्टि से आलोच्य तत्व किसी भी साहित्य में अनुपेक्षनीय स्वीकृत होता रहा है। हार्डी, लारेंस, डिकेन्स, थेकेरे, स्कॉट, जार्ज इलियट, मेरेडिथ, प्रेमचन्द, शरतचद्र, डास्तोवस्की, वृन्दावनलाल, राजा राधिकारमण, अचल, जैनेंद्र, यज्ञदत्त शर्मा आदि सभी के साहित्य में चरित्रो का महत्व सुरक्षित है और हिंदी-साहित्य में उपर्युक्त हिंदी-लेखक अग्रगण्य है जिनकी गणना सफल साहित्कारो में की जायगी। जोला ने उपन्यास पर विचार प्रकट करते हुए लिखा है—"ए बुक ऑफ लाइफ विजुअलाइज्ड थ्रू ए टेंपेरामेंट" (एक स्वभाव विशेष के माध्यम से देखा हुआ जीवन कोण अर्थात उन्होंने जीवन का, चरित्र का महत्व स्वीकार किया है। थेकरे (Thackeray) अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'वेनिटी फेयर' (Vanity Fair) का उपशीर्षक 'A Novel without Hero' रखकर भी चरित्र की अप्रधानता उद्घोषित नही कर सका। एक दृष्टि से वह एक प्रयोगशाला कलाकृति थी जिसमें पूर्वाग्रह और प्रतिमान मे अतर उपस्थित किया गया—नवीन चेतना अतर्भुक्त हुई। हेनरी जेम्स ने १८८८ में 'The Art of Fiction' में चरित्र और घटना को अन्योन्याश्रित स्वीकार करते हुए लिखा—"चरित्र क्या है ? घटनाओ के निर्णीत वस्तु और घटनाए ? चरित्र के उदाहरण मात्र।" प्रभा-

कर माचवे ने एक लेख[1] में अपना मन्तव्य व्यक्त करते हुए लिखा— "उपन्यास आधुनिक काल में चरित्र प्रधान, घटना प्रधान, भाषा प्रधान, या सामाजिक, ऐतिहासिक, यथार्थवादी, आदर्शवादी इत्यादि आलोचकों के अपनी सुविधा के लिए बनाए गए दरबे छोड़कर कहीं ऊंचा उड़ने लगा है, कहीं गहरे में उसने गोते लगाए हैं।" परन्तु नवीनता के आग्रह में वे स्वयं भटक गए। क्योंकि किसी आलोचक का कहना ठीक ही है कि आलोचक लेखक और कवि तथा जनता की बीच की खाई को समाप्त करने का कार्य करता है, और इसी चेष्टा में प्रधानता के अनुसार श्रेणीबद्ध करता है। उसे दरबा कहना भ्रांतिमूलक धारणा को प्रश्रय देना है। माचवे ने आगे लिखा है—"विश्व-साहित्य में उपन्यास और उपन्यास कला के मान बहुत पहले बदल चुके हैं। हम चाहे अपना छकड़ा लेकर उसी को पुष्पक मानते बैठे रहें, दुनिया हेलीकॉप्टर के युग में है। सो अब उपन्यासकार का काम उपदेश देना या झंडा लादे फिरना नहीं है।"

परंतु, माचवे जी भूल गए कि कला-सृजन के पीछे कोई-न-कोई उद्देश्य अन्तर्हित रहता है और कलाकार अपनी कला के सशक्त माध्यम से जन-जीवन को कुछ प्रेरणा प्रदान करना चाहता है, क्रियात्मक एवं सृजनात्मक शक्ति का उद्रेक करना चाहता है। सैम्युल जॉनसन ने लिखा है—"The seeds of knowledge may be planted in solitude, but must be cultivated in public. Argumentation may be taught in colleges and theories formed in retirement, but the artifice of embellishment, and the powers of attraction, can be gained only by the general consent" (*Johnson—The Rambler*)। निरुद्देश्य कला महत्त्वहीन है। प्रयोग भी एक उद्देश्य का साधन है।

इस विषय को हिन्दी के प्रतिभाशाली उपन्यासकार तथा आलोचक श्री यज्ञदत्त शर्मा ने बहुत सुन्दर ढंग से स्पष्ट किया है। "उपन्यास साहित्य को यदि युग-चेतना के प्रकाश में पढ़ने का प्रयास किया जाय तो उपन्यास का सही रूप सामने आता है। देखना चाहिए कि शैली और कला से पृथक रचना में क्या है? क्या रचना में पाठक का मनोरंजन ही है या राष्ट्र के ऐतिहासिक उत्थान और पतन की रोचक और आकर्षक कहानियाँ हैं? यथार्थ और कल्पना का सामंजस्य है? मनुष्य और प्रकृति का कलात्मक चित्रण है? मानव समाज के सुन्दर सामाजिक चित्रों का कोष है? समाज की समस्याओं का स्पष्टीकरण है? कहानी है इन्सान के जीवन की—ऐसे जीवन की जो राष्ट्र के जीवन का प्रतीक हो, सजीव चित्रण हो?"[2]

पात्रों का वर्गीकरण

१ पात्र-पात्राएँ मानसिक बनावट की दृष्टि से

सामान्य Normal	असामान्य (abnormal)	दिव्य (Super)
बादल जू, सोना,	नासिरुद्दीन	लक्ष्मीबाई

1. 'आधुनिक उपन्यास को समस्याएँ : कुछ विचार', प्रभाकर माचवे।
2. हिन्दी गद्य का विधान—पृ० ५८।

२. पात्र-पात्राए काल की दृष्टि

- ऐतिहासिक
  - उच्च वर्ग — दलीपसिंह, माधवजी
  - मध्य वर्ग — झलकारी
  - निम्नवर्ग — जूही, सिंदूरी आदि
- मिश्रित
  - उच्च वर्ग — भुवनविक्रम
  - मध्य वर्ग — बैजू, कलावती आदि
  - निम्न वर्ग — छोटी
- सामाजिक
  - उच्च वर्ग — बाघराज
  - मध्य वर्ग — अजीत, अचल, ललित
  - निम्न वर्ग — पैलू, मुन्ना

३ पात्र-पात्राए विचार की दृष्टि से

- उच्च विचारवान — लक्ष्मीबाई, अहिल्याबाई, मानसिंह, (प्र० न०) मलहार, माधवी आदि
- निम्न विचार से — रामदयाल, मेघ, हिसाबी
- नीचे विचार से क्रमश ऊपर उठने वाले — डाकूसागरसिंह (झा० ला० बाई) भुवन विक्रम
- उच्चविचार से क्रमश नीचे गिरने वाले — दूल्हाजू (झा० ला० बाई)
- जो ऊपर-नीचे पुन ऊपर उठने वाले — रोमक

४ पात्र पात्राए भावना ग्रन्थियों (Mental Complex) की दृष्टि से

- Inferiority Complex (हीनत्व-ग्रन्थि) — कुंजरसिंह
- Social Complex (समाज-ग्रंथि) — सुखलाल ('संगम' में)
- Religious Complex (धर्म-ग्रंथि)
- Sex Complex (काम-ग्रंथि) — गयामुद्दीन (मृगनयनी में)

५. पात्र पात्राओ का गत्यात्मक (Dynamic) दृष्टि से विचार

- Id (अबोधात्मा) — दलीपसिंह (कचनार में)
- Ego (बोधात्मा) — रूपा
- Super ego (आदर्शात्मा) — अहिल्याबाई, मृगनयनी

ऐसे पात्र में सुख की भावना ही प्रमुख होती है।

६. पात्र पात्राए कार्य-कलाप की दृष्टि से

- चेतन
- उपचेतन
- अचेतन — दलीपसिंह की क्रियाओ को इस दृष्टि से देख सकते हैं।

चेतन, उपचेतन के अनेक उदाहरण प्रत्येक पात्र से दिए जा सकते हैं।

७. पात्र-पात्राओं के मुख्य भेद

- सामान्य या वर्गगत (Type)
  अजीत, सोना, फूलरानी आदि
- व्यक्तित्व प्रधान
  मृगनयनी, लक्ष्मीबाई
  माधवजी सिंधिया आदि

८ पात्र-पात्राएं व्यक्तित्व की दृष्टि से

- बहिर्मुखी (Extrovert)
  भुवन विक्रम
- अंतर्मुखी (Introvert)
  कुंजर, कचनार, सरस्वती

९. पात्र-पात्राएं दृष्टिकोण की दृष्टि से

- भौतिकवादी (Materialistic)
  बाघराज, जमादार
- अध्यात्मवादी (Spiritual)
  माधवजी, अहिल्याबाई

मानसिक बनावट की दृष्टि से चरित्रों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है (क) सामान्य, (ख) असामान्य, (ज) दिव्य (super)

Tiffin, Knight, Ascher ने अपना मत प्रतिपादन करते हुए सामान्य (Normal) की परिभाषा इन शब्दों में दी है—"In normal person there is a blade of many interest Abnormal deviates from normal सामान्य मनुष्य के क्रिया-कलाप, व्यवहार सभी साधारण और व्यवहारिक होते हैं, परन्तु असामान्य के असामान्य। वे ऐसे कार्य करते हैं जो साधारण और सामान्य व्यक्ति से भिन्न होते हैं। वर्मा जी के कुछ पात्र, जैसे रूपा, नोना, बादल जू कुमुद, दुल्हाजू, हरमत सिंह, अर्जुन, मर्दान, कुंजर, धीर, मानसिंह (मृगनयनी) रोमक, भुवन विक्रम आदि सामान्य चरित्र हैं जो हम लोगों के समान, सामाजिक और दोषगुण युक्त हैं। उनके वही व्यवहार होते हैं जो सामान्यतः मनुष्य करता है। फिशर का मत है—Normal person is that who lives at least moderately, independent and industrious life who also gets along with his fellowmen sufficiently well to keep himself out of mental hospital or feeble minded institution"

Edmund and Conklin ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है, "A study of those forms of human behaviour which differs sufficiently from those which are commonly accepted as normal to be recognised as irregular" असामान्य ऐसे व्यवहार और कार्य करते हैं, ऐसे मनोभाव प्रकट करते हैं जो सामान्य रूप से स्वाभाविक नहीं। उनके व्यवहार सामाजिक व्यक्ति के साधारण विचार से मेल नहीं खाते।" "Personality is abnormal if an individual who was

otherwise in good health grew seriously diversant as a social person'[१] और As widely diversant from the normal or tribe characterised actions "[२] असमान्य के अतर्गत हम ऐसे मनुष्यो को रखते है जो पागलो आदि की तरह करते है, जिनमें क्रिया को समुचित प्रतिक्रिया उत्पन्न नही होती। 'विराटा की पद्मिनी' का नायक सिह, 'कचनार' का परिवर्तित दलीप ऐसी ही कोटि के पात्र है जो सामान्य जीवन से उद्बुद्ध और प्रतिक्रिया के प्रतिकूल कुछ ऐसी बातें करते दृष्टिगत होते है जो असामान्य के परिचायक है। दलीप सिह का विचित्र कार्य करना, नायक सिह का पद्मिनी को रनिवास में रखने की भावना, हर एक बात को विचित्र और प्रतिकूल दिशा में सोचना इसी के उदाहरण है।

दिव्य मनुष्य के अतगत महात्मा गाधी, आल्फ्रेड दी ग्रेट (Alfred the Great), आँस्टिन आदि रखे जायेंगे। वर्माजी के पात्रो में लक्ष्मीबाई, माधव जी सिधिया आदि इसी कोटि के व्यक्तित्व है, जिनका सपूर्ण कार्य-कलाप, सपूर्ण चितन समाजोन्मुख है। समाज, राष्ट्र तथा देश का हित ही जीवन का मूल ध्येय है। 'दिव्य' के अतर्गत ऐसे महिमामडित व्यक्ति होते है जो अपने व्यवहार से अद्भुत दीखते है। ऐसे व्यक्ति राष्ट्र और देश में यदाकदा ही उत्पन्न होते है जो अपने विचारो और कार्यों से युग का प्रवर्तन करते है। ऐसे युग-प्रवर्तक देश के गौरव, नवीन विचारो के प्रतिष्ठापक होकर मानवता का दिशा निर्देशन करते है।

अततोगत्वा हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि मनुष्य में अपनी सीमाओ, सवेगो और ग्रहणशील प्रक्रियानुरूप वैयक्तिकता रहती है। इसी स्थान पर ऑल पोर्ट की पक्तिया स्मरण हो आती है—'व्यक्तित्व व्यक्ति के अदर उन मनोदैहिक गुणो का गत्यात्मक सगठन है जो वातावरण के प्रति होने वाले उसके अपूर्व अभियोजनो का निर्णय करते है।" (Personality is the dynamic organization within the individual of those psychophysical systems that determine his unique adjustment to his environment) पूर्णतया सत्य है कि एक ही परिस्थिति में हम अपने व्यक्तित्व वैशिष्ट्य के फलस्वरूप भिन्न-भिन्न क्रिया करते दृष्टिगोचर होते है। कलाकार को अपनी विकसित ग्रहणशील प्रतिभा द्वारा उन समग्र अतरो, क्रिया कलापो, सवेगात्मक सहज शक्ति, सूक्ष्म-दैहिक मनोयोग, मानसिक धरातल का परीक्षण, विश्लेषण और वैविध्य का दिग्दर्शन अपेक्षित कर्तव्य होता है। उनमें गहराई, विस्तृतता और स्थानुरूप महत्व प्राप्त कर पाता है।

हिंदी के प्रौढ उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासो का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत है जिनमें सामान्य, असामान्य, दिव्य, ऐतिहासिक, सामाजिक, ऊँच, नीच, सामन्तीय, मध्य और निम्न वर्ग आदि सभी वर्गों का समावेश है और उस दृष्टि से जहाँ प्रेमचद ग्रामीण किसान-मजदूर, मध्य वर्ग तथा जमीदारो तक ही सीमित रहे वहाँ वर्मा जी को निम्न, महिम्न पात्रो के साथ ही, विविध वर्गो, क्षेत्रो (जैसे ऐतिहासिक आदि)

---

१ Psychology of Behaviour disorder—Cameron

२ Fisher

का भी अध्ययन अपेक्षित हुआ। शरतचद्र के पात्रो के क्षेत्र से भी वर्मा जी को आगे बढना पडा है, यह सत्य स्वीकार करना ही पडेगा। जहाँ एक ओर फूलरानी, अटल, रहल जैसे सामान्य श्रेणी के पात्रो का सूक्ष्मतापूर्वक मनोविश्लेषण करना पडा है, वहा दूसरी ओर नायक सिंह असामान्य तथा लक्ष्मी बाई जैसे दिव्य व्यक्तित्व का चित्रण भी अनिवार्य हुआ है। मनोवैज्ञानिक जटिलता का नैसर्गिकता के सयोग से अविकृत स्वरूप बना रहा है। तदर्थ उन्हें (वर्मा जी को) विविध अनुभवो को और सूक्ष्मातिसूक्ष्म दृष्टि के विकास को सतुलित रखना पडा। स्मरण रहे वर्मा जी अनुभवी के साथ ही मानव-विज्ञान अध्येता रहे हैं।[1]

पात्र चित्रण में (१) स्वाभाविकता, (२) गतिशीलता, (३) सभवता, (४) सूक्ष्म मनोविश्लेषण आदि अनिवार्य तत्व है। जो कलाकार पात्रो के निर्माण में इन तत्वों का जितनी सफलतापूर्वक सयोजन कर पायेगा, उसका चरित्र (पात्र) उतना सजीव, प्राणवान तथा रसमयता की स्थिति उत्पन्न कर सकेगा और पाठक उन पात्रो में उतना सामीप्य बोध करेंगे। डा० श्यामसुदर दास ने सत्य ही कहा है—"पहला प्रश्न जो स्वभावत उपस्थित होता है, वह यह है कि क्या ग्रंथकार अपने पात्रो को हमारे सम्मुख वास्तविकता के परिधान से वेष्ठित करने में सफल हुआ है ? क्या हम इन्हें वैसा ही समझते और मानते है ? क्या हमारी सहानुभूति उनके साथ वैसी ही है ? क्या हम उनसे वैसा ही स्नेह या घृणा करते हैं, जैसा हम ससार के अन्य जाने-बूझे लोगो से करते है ? यदि ये मनोवेग हमारे मन में उदित हो सके, तो समझना चाहिए कि ग्रंथ-कार अपने उद्योग में सफल हुआ।

वर्मा जी के पात्र स्वाभाविक, सजीव तथा उपर्युक्त गुणो से युक्त होते हैं। मृगनयनी, माधव जी सिंधिया, कचनार, अजीत, कुमुद, गोरी आदि पात्रो के पाठक अवश्य ही मेरे कथन को स्वीकार करेंगे। प्रत्येक कृति की विस्तृत चर्चा करते समय इस पर पूर्णतया विचार उपस्थित किया जायेगा।

पात्र चित्रण के प्रायः चार प्रकार हैं—(क) लेखक अपने शब्दो द्वारा, (ख) दूसरे पात्रों से कहलाकर, (ग) क्रिया-कलाप द्वारा व्यक्त कर, (घ) वेश-भूषा द्वारा।

वर्मा जी ने इन सभी विधियों का प्रयोग चरित्र-चित्रण में किया है। स्वय लेखक ने अपने शब्दो में, उनके क्रिया-कलापो द्वारा, वेशभूषा, आकृति द्वारा (मेघ में देखें), दूसरे से कहलाकर पात्रो के समुचित व्यक्तित्व को प्रकट करने का प्रयत्न किया है।

उदाहरणार्थ देखें —

(क) (i) "मुसाहिब जू का नियम था कि जब कभी जितने सैनिक उनके घर पर आ जाते, वे उनको भोजन कराते।"—'मुसाहिब जू'

(ii) "बहुत लम्बे, काले बाल, भवरारे बालो के जुट' केशो की एक छोटी-सी लट गोरे माथे पर हिलुड रही थी।"—'सोना'

(iii) "मेरे उतरती अवस्था का दीर्घकाय सावला पुरुष था।" आकृति

---

१. साहित्यालोचन, पृ० १६६।

से जान पडता था कि हठी, क्रोधी आर हिंसक प्रवृत्ति का है।"
—'भुवन-विक्रम'

(ख) दत्ता जी की आख द्रुत गति वाली थी, चेहरा च.डा--खिला हुआ, । मुस्कुराकर बो'ा—"माधव जी बहुत विचारशील है · ।"— (माधव जी सिंधिया, पृ० ७)

(ग) (1) 'प्रभो ! उनको बचाओ। उनके बदले में यमराज चाहे मुझे ले लें।'— गौरी (भुवन-विक्रम) का यह वाक्य, उसकी नारीगत कोमलता और भुवन के प्रति प्रेम भाव प्रकट करता है।

(11) रूपा का ('सोना' में) प्राप्त आभूषण को छिपा लेना उसकी प्रवृत्ति का ही परिचायक है।

(111) सरस्वती का ('प्रेम की भेंट' में) रुग्णावस्था में द्वारा दी गई साडी को न छोडना—यह कार्य उसके · · प्रति प्रेम को अभिव्यक्त करता है।

(घ) वेशभूषा द्वारा भी वर्मा जी ने चारित्रिक विशिष्टता व्यक्त की है—

(1) "रेशमी धोती, कुर्ता और सिर पर लाल रंग के रेशम का उष्णीष। कमर में म्यान में पडी तलवार, जो पीले रेशमी फेंटे से कसी लटक रही थी। गले में मोतियों की माला, भुजा पर सोने के भुज-बंधन और कलाइयों पर कडे ।'—'भुवन-विक्रम'।

(11) "सिर पर जटा-जूट, ठोडी के नीचे लहराने वाली खिचडी रंग की दाढी, कमर में सफेद सूती करधनी, गले में रुद्राक्ष, पैरों में खडाऊ, शरीर पर ऊनी उत्तरीय।"—'भुवन विक्रम'

जीवन और प्रेरणा

उपन्यास सम्राट श्री वृन्दावनलाल वर्मा का जन्म मऊरानीपुर में जनवरी १८८९ को हुआ और मैकडेनल हाई स्कूल झांसी में उनकी शिक्षा हुई, जहाँ उन्होंने प्रथम श्रेणी से पास किया और १२) वजीफा उन्हें मिलने लगा। आर्थिक सकट को समझकर वर्मा जी सरकारी नौकरी करने लगे। परन्तु वहाँ के कुंठित वातावरण से क्षुब्ध हो कुछ ही महीनों में उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। पुन वे अध्ययन करने लगे। ग्वालियर से बी० ए० पास कर, उन्होंने आगरा में एल० एल० बी० और एम० ए० कक्षा में नाम लिखाया। इसी समय वे मातृप्यार से वंचित हो गए। मा के स्वर्गवास होने पर केवल एल० एल० बी० पास कर ही वे वकालत करने लगे।

वर्मा जी के चचा श्री विहारीलाल साहित्यिक व्यक्ति थे। उनसे भी इन्हें साहित्यिक बनने की प्रेरणा मिली। बचपन में ही उन्होंने 'नाशतक वध' नाटक लिखा और कुछ दिन 'झांसी' के सपादक भी बन रहे। बंग-भंग से वर्मा जी पर भी प्रभाव पडा और वे क्रांतिकारी बन गए। उसी समय 'सेनापति ऊदल' पुस्तक (नाटक) उन्होंने लिखा, जो सरकार द्वारा जब्त कर ली गई।

वर्मा जी लगभग १९१० से ही लिखा करते हैं। विद्यार्थी जीवन से ही उनकी

रचनाएं हिन्दी के विभिन्न पत्रों में प्रकाशित होने लगीं। "आगरे में तो वर्मा जी, स्वर्गीय श्री बद्रीनाथ भट्ट, श्री मन्नन द्विवेदी गजपुरी ने मिलकर एक गोलमाल कारिणी सभा ही स्वर्गीय श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' के लिए स्थापित कर ली थी।"

वृन्दावनलाल वर्मा जी विद्यार्थी जीवन से ही साहित्यिक थे। परन्तु १९२७ से उनका पूर्ण उभार मानना चाहिए। इसी वर्ष उनकी 'गढ़कुंढार', 'लगन', 'प्रत्यागत', 'संगम', 'कुण्डली चक्र', 'हृदय की हिलोरें', 'प्रेम की भेंट' आदि पुस्तकें निकलीं और उनका साहित्यिक जगत में काफी स्वागत हुआ। तत्पश्चात उनकी लेखनी अबाधगति चलती रही और अबतक चल रही है।

यह पूर्ण सत्य है, मनुष्य संस्कार, अध्ययन और समाज तथा आवेष्ठन की सम्मिलित मूर्ति है, जिनमें उपर्युक्त समग्र तत्व अपने प्रभावानुसार जीवन में प्रेरणा-स्रोत बन मूर्ति को दिव्यता और 'अदिव्यता' प्रदान करते हैं। वर्मा जी में राष्ट्रीयता और स्वदेश प्रेम सांस्कारिक तत्व हैं। इनके परदादा ने तो लक्ष्मीबाई की सेना में कार्य भी किया था और इस प्रबल संस्कार के फलस्वरूप उनमें भारतीयता, आदर्शवादिता, धार्मिकता आदि तत्व उत्कट रूप में उदित हुए। इनके परिवार में धार्मिक जीवन की उत्प्रेरणा सर्वदा कार्य करती रही, तभी तो वे बचपन में ही 'हनुमान चालीसा' का पाठ नित्य किया करते थे और इसका प्रभाव वर्मा जी पर अवश्य ही स्वीकार किया जायगा।

स्वदेश-प्रेम की प्रबल भावना के उदय में उनके अध्ययन का भी प्रभाव स्वीकार किया जायगा, जिसने गरजती ज्वालिनी के सम्मुख पत्थर बनकर उसके वेग को प्रचंड बना दिया। मार्शमैन तथा अन्य अंग्रेज एवं विदेशी लेखकों द्वारा भारत का अपमान, यहाँ की वीरता और महानता पर व्यंग देख उनका मन तिलमिला उठा।[1] वर्मा जी ने अपने पूर्वजों और समाज से वीरात्माओं के प्रति जो यश और शौर्य गान सुना था, किंवदंतियों ने जो उनके हृदय पर एक कोमल प्रभाव डाल दिया था, उनके विपरीत विदेशी लेखकों कृत पुस्तकों ने गहरी प्रतिक्रिया उत्पन्न की, और उन्होंने सच्ची घटनाओं, कथाओं द्वारा सत्य को दृढ़ता से समाज के सम्मुख उपस्थित किया। और सत्य भी है, बुंदेलखंड की लोक कथाओं, किंवदंतियों और इतिहास का वर्मा जी ने जितना अध्ययन किया है, जितनी गहराई और ईमानदारी से छानबीन की है, शायद ही अन्य किसी लेखक ने किया हो। उक्त प्रदेश और भूमि की जीवित आत्मा का उनमें दर्शन होता है।

यहीं पर मैं यह भी कह दूं, इनमें तथ्यों के प्रति गहरी आस्था तथा तथ्यों के आधिक्य का मूल कारण यही है। वह भारतीय समाज के सत्य-ज्ञान के निमित्त तथ्यों का विस्मरण नहीं कर सकते, जिनसे निराधार उत्पन्न की गई विदेशी इतिहास लेखकों की भ्रामकता पाठकों के सम्मुख प्रकट हो जाए।

---

१ श्री वृन्दावनलाल वर्मा जी ने ३-१० १५ की डायरी में स्वयं लिखा है—"मैं मनुष्य हूँ। मनुष्य का कर्तव्य स्पष्ट है। देश के लिए साहित्य-सेवा और समाज-सुधार और घर के लिए रुपये कमाना।"

यह भी स्मरणीय है, उपर्युक्त तत्त्वो और प्रेरणा-स्रोतो के कारण वर्मा जी सर्वप्रथम जीवनी लिखने को दत्तचित हुए और जीवनी लिखना आरम्भ भी किया। परतु समाज में व्यापक प्रभाव पडने की भावना से उन्होने उपन्यास, कहानी, नाटक आदि को सफल माध्यम स्वीकार किया। स्कॉट की पुस्तको ने भी उन्हे इस दिशा का सकेत किया, जैसा वर्मा जी ने स्वय सच्चाई के साथ स्वीकार भी किया है।

अपनी भूमि से वर्मा जी को बाल्यकाल से ही प्रेम रहा है जिस प्रकार हम वाल्टर स्कॉट में देखते हैं। जन्मभूमि-प्रेम मनुष्य की स्वाभाविक दशा है। साथ ही एक पजाबी मित्र के किए बुदेलखड की दरिद्रता आदि पर व्यग ने उनके जीवन में प्रतिक्रिया उत्पन्न की। लेखक के मन में अपनी भूमि के अगाध प्रेम पर यह ठेस लगी और उसको पूर्णतया प्रतिकार स्वरूप वहाँ की भव्यता, सद्य सौदर्यपरता दुनिया के समक्ष उपस्थित करना चाहा और यह स्वीकार किया जायगा कि वे इस उत्कट प्रेरणा में निश्चय ही पूर्णतया सफल रहे। 'झासी की रानी—लक्ष्मीबाई' आदि पढने के पश्चात् इसे कौन अस्वीकार कर सकता है। बुदेलखड के कण-कण को सहिष्णुता से स्पर्श कर इतने जीवत रूप में उपस्थित करने की क्षमता वर्मा जी में ही है। उन्होने अधकाराछन्न भूमियो पर प्रकाश द्वारा, उनकी मोहकता और मूकता का सौंदर्य हमारे सम्मुख रखा। इनकी प्राय सभी पुस्तको में यही सत्य मुखरित है।

उपर्युक्त उल्लिखित मेरे विचारो से वर्मा जी के साहित्य के कुछ अनिवार्य तत्वो पर पाठको को प्रकाश अवश्य पड गया होगा। अब हम कुछ अन्य तत्वो की चर्चा करेंगे जो वर्मा जी के साहित्य में निश्चितरूपेण कार्य करते हैं।

बुदेलखण्ड प्रकृति का सागर है। वर्मा जी के साहित्य में प्रकृति को बडा सरस और स्वाभाविक रूप प्राप्त है, जिसके कई मूल कारण हैं। वर्मा जी जिस क्षेत्र की कथावस्तु ग्रहण करते हैं उस क्षेत्र में वे भ्रमण करते हैं, वहाँ कुछ समय निवास करते हैं, वहाँ के कण-कण के सौंदर्य के सगीत को कीट्स कवि की तरह ग्रहण करते हैं। मेरे मतानुसार यही प्रमुख कारण है उनके प्रकृतिपरक वर्णन की हृदयग्राहिता का। मेरे कथन की प्रामाणिकता 'विराटा की पद्मिनी', 'गढ़ कुडार' तथा उनकी अन्य पुस्तकों की भूमिका तथा वर्मा जी के ही कथनो से देखी जा सकती है। साथ ही वर्मा जी स्वय उस क्षेत्र के हैं और वहाँ की प्रकृति से उनका गहरा सबध है। इसके फलस्वरूप भी प्रकृति-वर्णन की सरसता, पत की तरह, उनके साहित्य में प्रकट हो जाती है। स्वाभाविक सौंदर्य किताबी या काल्पनिक वस्तु नही, प्रत्युत अनुभूतिग्राह्य तत्व है।

वर्मा जी के साहित्य में अनुभव का गहरा कोष है, और इसका कारण उनका स्वय का विस्तृत ज्ञान है। उन्होने जीवन के कई क्षेत्रो का स्वय अनुभव किया है, जैसे खेती, वकालत, भ्रमण आदि और उनको अपने साहित्य में सफलतापूर्वक उपस्थित किया है।[1] यही कारण है जब वर्मा जी 'अमर वेल' उठाते हैं तो ग्रामीण जीवन के चित्रण

१ वर्मा जी ने कभी सैकड़ों बीघे में कभी पपीता, कभी तम्बाकू की खेती कर कृषि-जीवन का अनुभव ग्रहण किया है। भले ही उन्हें इस क्षेत्र में काफी घाटा हुआ और कर्ज से लद गए। मैथिलीशरण (क्रमश)

में अस्वाभाविकता कदापि नही आती, या 'प्रत्यागत' या 'कुण्डली चक्र' उठाते है तो समाज और परिवार के स्वरूपो के चित्रण मे भी प्राणपूर्णता आ जाती है। मेरा तो स्पष्ट मत है, जिस लेखक के पास जीवन का जितना गहरा और विस्तृत अनुभव होगा, वह उतनी स्वाभाविकता और गहराई साहित्य में उपस्थित कर सकेगा। ससार के बडे-बडे लेखको और कलाकारो की सफलता की मूल शक्ति यही है।

वर्मा जी के साहित्य में आखेट, युद्ध तथा शिकारी जीवन का गहरा हाथ है। मैथिलीशरण गुप्त ने, साहित्यकार ससद के वार्षिकोत्सव के अवसर पर भाषण देते हुए, वृन्दावनलाल के सबध में कहा था—"• •जब देखो तब कही जगल मे, नदी-नालो में, पर्वत-पहाडो में बदूक लिए घूमता रहता है। उसे शेर-चीते का डर नहीं। कहता है—जब शेर-चीता आयगा तो देखा जायगा।" वर्मा जी ने स्वय भी लिखा है—"मैं जगलो, पहाडो और नदियो में इतना घूमा हू कि घटनाए कभी भूल नहीं सकता हू। अनेक घटनाओ की तो मुझको तारीखे तक याद हैं।• कभी-कभी तो बरसात में तेज बहते हुए नालो में होकर घूमता फिरा हू। घटों भीगा रहा परतु मुझको इस से हानि कभी नही हुई। •शिकार कोई खेले या न खेले, परतु मैं अनुरोध करूगा कि जगलो और पहाडो मे घूमे जरूर। घूमे ही नहीं, भटके और दो-चार बार अपने घुटने भी फोडे। • •जगल पहाडो के लाघने के अभ्यास को यदि हम जीवन की कठिनाइयो से लडने और उनसे पार पाने की क्रिया में परिणत कर दें तो किसी को क्या शिकायत हो सकती है? न भी कर सकें तो उस भ्रमण का आनद ही क्या कम मूल्यवान है'।' (वक्तव्य: 'दबे पाव')।

यही मूल कारण है, जिससे वर्मा जी के साहित्य में शिकार, युद्ध आदि के वर्णन मे इतनी सूक्ष्मता और प्राणमयता का दर्शन होता है। उक्त चित्रण मे लेखक का स्वत: अनुभूत समग्र ज्ञान समाविष्ट हो जाता है। 'झांसी की रानी-लक्ष्मीबाई, 'विराटा की पद्मिनी', 'कचनार', 'मृगनयनी' आदि के रोमाचकारी सफल चित्रण की प्रेरणा-भूमि यही है।

दृढता और शारीरिक बल के प्रति आस्था भी वर्मा जी की कृतियो में देखने का मैं कुछ कारण ही मानता हू। सर्वप्रथम वर्मा जी स्वय जीवन में चारित्रिक दृढता और शरीर पर पर्याप्त ध्यान रखने वाले व्यक्ति है। वे कुश्ती और व्यायाम के प्रेमी है। सात-आठ सेर दूध को थोडा समझना और पी जाना इनके बलिष्ठ शरीर और

पादटीका क्रमश:

गुप्त जी ने लिखा है—"एक बार इन्हे (वर्मा जी को) धुन समाई खेती करने की। बस एक गाव खरीद लिया। स्वप्न बना, पेपेन की बडी माग है, पेपेन बनाया जायगा। बस फिर क्या था, पन्द्रह हजार पेड़ पपीते के लगा दिए गए। बगीचा बना, तीन हजार पेड आम के लगाए गए। • •पर दो बरस हुए ता गया, तो वहा बस एक ठूठा-सा पड़ा दिखाई पड़ा। उस गाव का नाम 'चूरा' है। तो सचमुच उस गाव में चालीस हजार डूब गए।"—('नई धारा' मासिक, वर्ष २, अक १-२, अप्रैल-मई, १९५१)

शक्ति के परिचायक हैं।[1] यही कारण है कि आज भी उनके शरीर को देखने वाले उनके वास्तविक उम्र का सही अंदाज नहीं लगा पाते हैं। उनकी दृढ़ता और धैर्य की सीमा तो उस समय देखने को मिली जब उनके पुत्र सत्यदेव वर्मा प्लूरिसी और मोतीझरा से पीडित थे। उनके निकटवर्ती व्यक्ति निश्चित रूप से जानते हैं, वर्मा जी कठिन से कठिन परिस्थिति में भी विचलित नहीं होते और अटूट आस्था और विश्वास से श्रमशील बने रहते हैं।

एक और महत्वपूर्ण पक्ष आदर्श और वीरत्व के प्रस्फुरण का है। वीरत्व और आदर्श के लिए दृढता, चारित्रिक सबलता, अनिवार्य है। वर्मा जी ने स्वयं लिखा है—"चरित्र की रक्षा करने की सदा से चेष्टा करता हूँ। ब्रह्मचर्य पालन की सदा चेष्टा करता हूँ।" (उनकी डायरी से २-१०-१५) एक बार वर्मा जी खुजली से पीड़ित हो गए। उनके पिता जी को मालूम हुआ तो उन्होंने वर्मा जी के चरित्र पर शक प्रकट करते हुए पत्र लिखा—"अपना चाल-चलन सम्हाल रखना।" वर्मा जी इस पत्र से बहुत व्यथित हुए और उन्होंने अपनी माता जी को सूचित किया। माता जी ने उनके पिता जी से दुखी होकर कहा—"लड़के को तुमने यह क्या लिख मारा?" पिता जी को अपनी चिट्ठी के लिए दुःख हुआ। पुनः उन्होंने कभी भी वर्मा जी के चरित्र पर शंका नहीं की। ये सारी घटनाएं वर्मा जी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालती हैं। वर्मा जी द्वारा चित्रित पात्रों में उक्त स्वाभाविक मनोदशा का अधिष्ठान हमें मिलता है। इसी लिए 'मृगनयनी' में मानसिंह भी कई सौ रानियाँ रखने वाला नहीं स्वीकार किया गया है। वर्मा जी जब अपने पात्रों को वीर, आदर्श तथा भारतीयता के प्रतीक मानते हैं तो उपर्युक्त तत्वों को स्वीकार करना स्वाभाविक है। मेरे कथन के प्रमाण के लिए मानसिंह, माधव जी सिन्धिया आदि प्रमुख चरित्रों को देखा जा सकता है।

वर्मा जी स्वयं संगीत, चित्रकला, और मूर्तिकला के गहरे प्रेमी हैं। वर्मा जी के पुत्र श्री सत्यदेव वर्मा ने मुझे स्वयं बतलाया था कि पिता जी सितार बजाने में अत्यंत पटु हैं और घंटों सितार बजाया करते हैं और कभी-कभी संगीत के मोहक, मादक प्रभाव में इतने खो जाते हैं कि खाना भी भूल जाते हैं और इस दशा में कई बार उनकी ट्रेन भी छूट गई है। हम उनके इस संगीतकला के ज्ञान का उपयोग कई पुस्तकों में देखते हैं। उदाहरणार्थ 'मृगनयनी' का बैजनाथ गायक और संगीतज्ञ है, 'माधव जी सिंधिया' में गन्ना बेगम सितार में दक्ष है और इनके माध्यम से जितने सूक्ष्माति-सूक्ष्म संगीत-ज्ञान और कौशल का प्रदर्शन है, यह एक कुशल संगीतज्ञ एवं संगीत-प्रेमी ही समझ सकता है। निश्चय ही वर्मा जी ईमानदारी और सचाई के कलाकार हैं। उनके

---

१ देवगढ़ की घटना है, वर्मा जी वहाँ वकील के नाते किसी मुकदमे के सिलसिले में गए। वहाँ कारिन्दा ने खाने-पीने के विषय में उनसे पूछा तो वर्मा जी ने कहा "कुछ भी नहीं, थोड़ा दूध का इन्तजाम हो जाए तो काम चल जायगा।" और पुनः मात्रा बताते हुए कहा—"सात आठ सेर दूध।" कारिन्दा तो घबरा गया क्योंकि साधारण व्यक्ति इतना दूध पी ही नहीं सकता। कहा जाता है शिकार के कारण "एक बार सुअर से अपनी पिंडली चबवा लाए और एक बार कान के पास ऐसा चोट लगी कि जीने के लाले पड़ गए।" (श्री वृन्दावन लाल वर्मा—लेखक भगवान दास, नवराष्ट्र दैनिक, ६ फरवरी १९५८ में प्रकाशित) फिर भी वर्मा जी साहस से शिकार आदि करते ही रहे, छोड़ा नहीं।

साहित्य में कुछ भी प्रदर्शन नहीं लगता। मैथिलीशरण गुप्त जी ने 'गढ कुडार' की चर्चा करते हुए सतोष प्रकट करके कहा है कि वर्मा जी ने प्रतिनायकों के प्रति भी, जो विजातीय हैं, पूर्ण न्याय किया है।

गांधीवाद का प्रभाव वर्मा जी की कृतियों पर पर्याप्त पाते हैं। वर्मा जी का युग गांधीवाद का युग है। मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचद, राजा राधिकारमण, यज्ञदत्त शर्मा सभी में यह उत्कट प्रभाव देखा जा सकता है। कोई साहित्यकार अपने युग के महान् आन्दोलन और विचार से प्रभावित हुए बिना बच भी नहीं सकता। वर्मा जी की कृतियों में गांधीवादी भावना का प्रश्रय है। सोहनी (अमरबेल) तो धर्म भावना के प्रतीक हैं। देशराज का हृदय-परिवर्तन और सुधार भी इसी मनोभूमि की उपज है। इसी धारा का प्रभाव 'अचल मेरा कोई' में भी देखा जा सकता है। 'झांसी की रानी-लक्ष्मी बाई' का सम्मिलित रूप से हिंदू और मुसलमान सैनिक-सगठन और दोनों धर्मों के व्यक्तियों का हिंदुस्तान पर न्योछावर होना भी गांधीवादी भावना की पुष्टि है। 'माधव जी सिंधिया' में भी यही तत्व पर्याप्त मात्रा में कार्य करता दीख पडता है। वर्मा जी ने स्वयं प्राणों की बाजी लगाकर १९४७ में झांसी में दगा होने से बचाया। भगवान दास जी ने लिखा है—"बात सन् ४७ की है। देश में हिंदू-मुस्लिम तनाव बडे जोरों पर था। हमारे नगर में एक वयोवृद्ध जन हैं। उस समय सुना गया कि उनके सगे सबंधियों के साथ सरहद पर मुसलमानों ने बुरा बर्ताव किया, जिससे उनमें प्रतिहिंसा भडक उठी और झांसी को मुसलमानों से रहित कर देने का उन्होंने बीडा उठाया। कहते हैं कि उन्होंने कुछ हिंदू सैनिक अधिकारियों को मुसलमानों के खिलाफ मशीनगनों का प्रयोग करने के लिए फुसला लिया। योजना तैयार हुई। चार-छः आदमी पहले कसाई खाने (मुसलमानों का बडा मुहल्ला) के मुसलमानों पर हमला करें और जब मुसलमान अपना बचाव करें तो उन चार-छः आदमियों की रक्षा की आड में उन्हें फौजी मशीन-गनों द्वारा भून दिया जाए। नियत समय के कुछ पहले ही वर्मा जी को यह सब विदित हुआ उस महान कुकृत्य को न होने दिया। वर्मा जी के कारण सैकडों निर्दोषों के प्राण बचे ही, साथ-ही-साथ हिंदू-मुस्लिम तनाव भी नगर से तिरोहित हो गया।" वर्मा जी के साहित्य में भी यही सहिष्णुता मुखरित है। 'माधव जी सिंधिया' में इब्राहीम गार्दी कहता है—"वह मुसलमान, मुसलमान कहलाने लायक नहीं जो दूसरे मुसलमानों को बेईमानी करने या अपने मुल्क के खिलाफ काम करने के लिए वरगलावे।" (पृ० २५६) और सर काटे जाते समय वह धैर्य से आवाज उठाता है—"दुनिया में वहशी और जालिम नहीं रहेंगे, नहीं रहेंगे। हम हिंदू-मुसलमानों की मिट्टी से ऐसे सूरमा पैदा होंगे जो वहशियों और जालिमों का नाम-निशान मिटा देंगे। (पृष्ठ २८०) और वह धर्मगत भेद (भाषा के कारण) को अनुचित ठहराता है। उदाहरणार्थ उक्त पुस्तक का पृष्ठ २७८ देख सकते हैं। भाषा के सम्बन्ध में राजा राधिकारमण जी ने भी ऐसा ही विचार अपने साहित्य में प्रकट किया है। 'अमरबेल' का निर्माण तो पूर्णतया इसी प्रेरणा-स्रोत का सम्बल लिए है, यह इसका पाठक निष्पक्ष रूप से स्वीकार करेगा। यह प्रभाव वर्मा जी पर आरोपण का नहीं है। पचवर्षीय योजना लेकर चलने वाली कृति 'अमरबेल' तो इस तत्व का गहरा प्रभाव-उपस्थित

करती है। नारी-स्वातन्त्र्य चेतना के अंतर्गत भी यही प्रेरणा दीखती है।

वर्मा जी स्वयं मध्यवर्गीय परिवार के व्यक्ति हैं। इसलिए सामाजिक उपन्यासों में मध्यवर्ग की छाप देख सकते हैं। 'प्रत्यागत', 'लगन', 'प्रेम की भेंट', 'अचल मेरा कोई', 'अमर वेल' 'कुण्डली चक्र' सभी में मध्यवर्ग का बडा रोचक, मनोवैज्ञानिक तथा सत्य रूप अंकित है। जिस वर्ग और परिवार के मध्य मनुष्य सदा निवास करता है, उनकी समग्र विधियो को देखता और समझता है उसकी छाप इस वर्ग के चित्रण में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सन्निहित होगी ही, ऐसा सभी मनोवैज्ञानिक स्वीकार करेंगे।

वर्मा जी सामंतीय वर्ग के पात्र नही हैं। उन्होने युग की आवश्यकता देखी है। वह जनता और समाज के कलाकार हैं और जिससे स्वाभाविक रूप में उनके ऐतिहासिक उपन्यासो में भी जनता ने स्थान ग्रहण कर लिया है। यह युग की माग तथा युग-चेतना का ही प्रभाव है जिस पर अन्य अध्यायो में प्रकाश डाला जा चुका है। डा० रामविलास शर्मा ने भी 'झासी की रानी-लक्ष्मी बाई' पर ऐसा ही अभिमत प्रकट किया है। साथ ही यह भी स्मरणीय तत्व है कि आज का युग प्रजातंत्र का युग है। भारत में यही मूल भावना प्रबल रूप में समादृत है। वर्मा जी में यह भावना आवेष्ठन की ही प्रक्रिया स्वीकार की जायगी। प्रजातन्त्र-भावना उनकी पुस्तक 'अमर वेल' में भी स्पष्टया उपस्थित है। 'झासी की रानी-लक्ष्मी बाई' में प्रजा को अमर कह कर इसी की स्वीकृति की गई है।

वर्मा जी प्रदर्शन के विपरीत मौन साधना पर विश्वास करने वाले व्यक्ति हैं। विज्ञापन का मोह उन्हें छू तक नहीं सका है। वर्मा जी ने स्वयं अपने एक पत्र में मेरे पास लिखा था—" • सन् १९१३ का अगस्त या सितंबर होगा जब मैं एल-एल बी० के लिए आगरा कालेज में पढता था। गुरुदेव (टैगोर) का भाषण सुना। इसी साल उन्होने **Nobel Prize** पाया था। बोले, 'जब तक मुझे नोबेल पुरस्कार नहीं मिला था मैं कुछ नही था। जब मिल गया, देशवासी मुझे सब-कुछ समझने-कहने लगे। परदेशियो की प्रशसा पर हम अपने लोगो को पहिचान पाते हैं, यह देश का दुर्भाग्य है। गुरुदेव ने लगभग ऐसा ही कहा था। मैं तो सोचता रहता हू कि हमें अच्छे-से-अच्छा लिखते रहने की भावना करते जाना चाहिए, कोई कुछ कहे।" (६-४-५७)

पुन उनका लेखन के सबध में विचार है—"कागज, कलम, स्याही की तो है ही, स्थान भी एकात हो। विध्याचल के पहाड, जगल, और नदी-नाले उस एकात के निकट हो तो क्या कहना।" श्री भगवानदास का स्पष्ट मत है—"वर्मा जी को लोग अपने-अपने दृष्टिकोण से भिन्न-भिन्न रूपो में महान् मानते हैं, परतु और कुछ महान् होने के पहले वह महान् मानव ही हैं।"

वर्मा जी पूर्ण प्राचीनतावादी न होकर भी परपरा की प्रत्येक बात के विरोधी नही हैं और न वे पूर्ण नवीनता के आग्रही ही है। इसलिए 'भुवन विक्रम' में धौम्य ऋषि कहते हैं—"विवेक के साथ प्राचीन को जानो-पहचानो और समझो, वर्तमान को भली-भाँति देखो, परखो और उनमें चलो और भूत तथा वर्तमान दोनो की सहायता से भविष्य को प्रबल बनाओ।" (पृ० १९२)

वे सभी से आवश्यक एवं जीवन-पोषक तत्वों को ग्रहण करने के आग्रही हैं। तभी तो कभी-कभी यात्रा में छींक से भी डर जाते हैं।

इस प्रकार वर्मा जी पर परिवेश, आवेष्ठन, संस्कार, अध्ययन आदि का गहरा प्रभाव है और उनसे उनकी प्रेरणाएं तथा प्रक्रिया और प्रतिक्रिया स्वाभाविक दिशा में संचालित होती हैं।

अंत में मैं यह भी कह दूं, वर्मा जी अध्ययनशील तथा संयमी प्राणी हैं, और उसकी अभिव्यक्ति उनके साहित्य में पर्याप्त है। वह नियमित रूप से अध्ययन,-मनन करते और लिखते हैं। कभी-कभी तो वे आठ-आठ, दस-दस घंटे बराबर लिखते रहते हैं। यही कारण है वह हिंदी संसार को इतनी बहुमूल्य कृतियों से समृद्ध कर सके हैं। हम उनका अभिनंदन करते हुए यही कहेंगे—

'पिछार जे आशें, तेने डाको जाओ नियें जाओ साथ करे
केऊ नाहि आशे एका चले जाओ महवर पथ धरे।'

—(रवीन्द्रनाथ)

वर्मा जी के उपन्यास

(क) प्रेमपरक, (ख) सामाजिक, (ग) ऐतिहासिक।

अभी तक वर्मा जी के अनेक उपन्यास हिंदी संसार के सन्मुख आ चुके हैं जिनमें कई हिंदी साहित्य में अद्वितीय प्रसिद्धि प्राप्त भी कर चुके हैं, अतः उनका पुनर्मूल्यांकन धैर्य और उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है।

उपन्यास 'मानव जीवन का चित्र है' जिसमें अनेक अपेक्षित तत्वों का समावेश रहता है। वह काटा हुआ टुकड़ा (Slice) नहीं है, उसमें चरित्र, कथानक, शिल्प, वातावरण, वार्तालाप, भाषाशैली, उद्देश्य, चेतनानुभव और अन्य साधनों-प्रसाधनों पर दृष्टिपात करते हुए, मूल्य निर्धारण आवश्यक है, क्योंकि इन समग्र तत्वों के संतुलन और कौशलपूर्ण संयोजन पर उपन्यास का सौंदर्य और उसकी सफलता अवस्थित है।

हम प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत, उपर्युक्त कृतियों का मूल्यांकन करेंगे। हाँ, यह भी सत्य है, अन्य दृष्टियों से भी उनकी कृतियों का विभिन्न वर्गीकरण किया जा सकता है; हाँ, मात्र वर्गीकरण ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण नहीं है, प्रत्युत उनकी आलोचना और मूल्य निर्धारण महत्वपूर्ण है।

'प्रेम की भेंट'

यह प्रेमपरक पारिवारिक, सामयिक उपन्यास है, परंतु प्रेम इतना रहस्यपूर्ण और जिज्ञासायुत है कि पाठकों को अंत में ही ज्ञान होता है कि कौन किसने प्रेम करता है और स्वाभाविक रूप से, इस जिज्ञासा के सद्गुण से, इस छोटे १०३ पृष्ठों के उपन्यास का सौंदर्य अत्यधिक बढ़ गया है।

धीरज अपने ग्राम में भयानक अकाल और महामारी को भागते देख, निकट के एक ग्राम तालबेहट के दम्मोद नामक किसान के यहाँ आश्रय लेता है, जहाँ वह दम्मोद की पुत्री सरस्वती के प्रति आकृष्ट होता है। दम्मोद की एक विधवा नातेदार छबि-प्यारी जो दम्मोद के साथ ही रहती थी, वह धीरज को प्यार करने लगती है। एक

अन्य सम्बंधी स्वस्थ, सुंदर युवक नंदन भी कम्भोद के यहाँ रहने लगता है जो सरस्वती को चाहने लगता है। इस प्रकार प्रेम का एक चक्र बन जाता है जो निरंतर चलता रहता है—परंतु यह प्रकट सुस्पष्ट ढंग से कभी नहीं होता। उजियारी और सरस्वती समवयस्क होने के फलस्वरूप सरस्वती का धीरज के प्रति प्रेम जानकर, वह (उजियारी) विषपूर्ण खीर तैयार करती है जिसे सरस्वती को खिलाकर समाप्त कर देना चाहती है। खीर तैयार होने पर, उजियारी कुछ क्षण के लिए बाहर जाती है। इसी बीच धीरज आकर खीर खा लेता है। उसे विष के सम्बंध में कुछ भी ज्ञान नहीं था। विषपान के परिणामस्वरूप धीरज मरने लगता है, उजियारी छटपटा उठती है, पर भय के कारण बोल नहीं पाती, उसी स्थल पर सरस्वती का प्रेम अधीर हो प्रकट हो जाता है क्योंकि अस्वस्थावस्था में भी, धीरज द्वारा दी गई भेंट स्वरूप साड़ी पहनना चाहती है। ऐसी मार्मिक और विचित्र अवस्था में धीरज की मृत्यु होती है और इसी पराकाष्ठा पर जाकर उपन्यास समाप्त हो जाता है।

निश्चय ही कथावस्तु रोचक, जिज्ञासापूर्ण, गतिशील और सशक्त है। हिंदी के प्रेमपरक उपन्यासों में इसका वही स्थान है जो 'देवदास' को बंगला साहित्य में उपलब्ध है। प्रेम की मार्मिकता और गहराई जो शरत साहित्य में प्राप्य है, उससे कम आलोच्य कृति के पात्रों में नहीं है।

चरित्र-चित्रण भी बड़ा मनोवैज्ञानिक और सफल है, जिस आधार पर कोई भी आलोच्य उपन्यास की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। विषपूर्ण खीर से जब धीरज की मृत्यु होने लगती है तो अपने विध्वंसक क्रिया-कलाप के कारण वह (उजियारी) इतनी भयभीत हो उठती है कि उसे साहस ही नहीं होता कि धीरज के निकट जाय। प्रस्तुत स्थल पर शेक्सपीयर के मैकबेथ नाटक का वह दृश्य स्मरण हो आता है जब हत्या के पश्चात मैकबेथ भयाक्रांत होकर बोलता है—

"Methought I heard a voice cry 'Sleep no more!
Macbeth does murder sleep' the innocent sleep,
Sleep that knits up the ravell'd sleave of care,
The death of each day's life, sore labour's bath,
Balm of hurt minds, great nature's second course,
Chief nourisher in life's feast—
.. . . .
Will all great Neptune's ocean wash this blood,
Clean from my hand? No, this my hand will rather
the multitudinous seas incarnadine,
Making the green one red"[1]

यद्यपि उजियारी एक शब्द नहीं बोलती परन्तु उसके कर्तव्य उसे भयभीत करते हैं। परंतु, मनोवैज्ञानिक सत्य एवं मानसिक स्थिति वही है तभी तो सरस्वती के कहने पर कि धीरज को जाकर देखे, वह अपनी अवस्था प्रकट करती है—"मैं न जाऊंगी।

१ Macbeth, Act II, Scene II

• मुझको डर लगता है। मुझे ऐसा लगता है, जैसे कोई खाने को दौड़ता हो।'[1] और अनजान सरस्वती जब उसे 'डाकिनी' कहती है तो वह घबराकर बोल उठती है—"नहीं, मैंने कुछ नहीं किया है। सच कहती हूं। मैं तो उनको चाहती थी।" (पृष्ठ ११७) स्मरण रहे, सरस्वती को उस कांड का कुछ ज्ञान नहीं है कि विषपूर्ण खीर खाने के कारण यह अवस्था हुई है और उजियारी ने विष देकर खीर तैयार की थी। इसी प्रकार 'टूटे कांटे', 'अमरबेल', 'प्रत्यागत' आदि अन्य उपन्यासों में भी मनोविज्ञान का सूक्ष्म और स्वाभाविक संयोग मिलता है, जिससे पात्रों के व्यक्तित्व में बड़ी स्वाभाविकता और सजीवता आ गई है। सरस्वती एक विशिष्ट नारी है जिसे सामान्य की कोटि में आसानी से नहीं रखा जा सकता। इसके अतिरिक्त धीरज, नन्दन आदि मुख्य पात्र हैं जो स्वाभाविक रूप में गुण-दोषों से युक्त हैं, वे प्रेम करते हैं, प्रतिदान चाहते हैं।

कथोपकथन स्वाभाविक और पात्रोचित हैं। भाषा शैली भी सरल है जैसा कि हम उनके अन्य उपन्यासों और नाटकों में देखते हैं।

किसी भी कला-कृति के पीछे उद्देश्य की परीक्षा भी आलोचक का आवश्यक फर्ज है और हम पूर्व ही स्पष्ट बता चुके हैं कि वृन्दावनलाल वर्मा आदर्शवादी कलाकार हैं, अतः एक निश्चित उद्देश्य का विद्यमान होना अनिवार्य ही है। 'प्रेम की भेंट' में प्रेम की विचित्र भाव दशा पर प्रकाश डालने के साथ ही लेखक ने यह बताना चाहा है कि प्रेम में संयमहीन मनुष्य अंधा होकर असावधानी कर बैठता है, हिंसक बन जाता है और जिसका दुष्परिणाम अंततोगत्वा सभी के लिए हानिकारक होता है। Love is blind इसी तथ्य को व्यक्त करता है। दुष्यन्त (शकुन्तला नाटक) भी इसी दशा में हुए, कर्तव्य और प्रेम के संतुलन में अक्षम रहे। वर्षों कष्ट में रहना पड़ा। उजियारी ने प्रतियोगी सरस्वती की हत्या करनी चाही, जिससे धीरज उससे छिन न सके, वह सर्वदा उनका बना रहे। परंतु, इस प्रकार और हिंसाजनित प्रेम का परिणाम होता है धीरज की मृत्यु। उजियारी प्रेम की इस पवित्र स्थिति को नहीं अपना सकी—Love is not getting, but giving, not a wild dream of pleasure and a madness of desire oh, no, Love is not that "[2] उसका प्रेम शेक्सपीयर के मर्चेन्ट ऑफ वेनिस (Merchant of Venice) में वर्णित प्रेम के सदृश है।[3]

निश्चय ही वर्मा जी प्रेम को महिमामंडित रूप में अधिष्ठित देखने के पक्ष में हैं जहां स्वयं और अहम् का विलयन हो। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यास में ऐसा ही त्यागमय उज्ज्वल प्रेम का दिव्य रूप चित्रित है। शरत बाबू के प्रेम में भी विस्तार है। प्रेमचंद और प्रसाद का प्रेम भी इस दृष्टि से विचारणीय है। हिंदी कथा-

---

१. प्रेम की भेंट—पृ० ११७।

२. हेनरीवान डाइक। प्रेम का सम्बन्ध 'प्री' धातु से है जिसका अर्थ है 'प्रसन्न करना'। खलील जिब्रान ने भी 'प्रेम और विवाह' में स्पष्ट कहा है—'प्यार अपने आपको ही विसर्जित करता है।' लोंगफैलो ने भी कहा है, "प्रेम तो स्वयं ही न्योछावर हो जाता है। इसे खरीदा नहीं जा सकता।"

३. ' But love is blind and lovers cannot see
The pretty follies that themselves commit "

कारो के साहित्य में वर्णित प्रेम इस दिशा में उर्द्धगामी है। उर्दू के कथाकारो में प्रेम कुछ विचित्र रूप में स्वीकृत होता रहा है।[3]

वर्नस् कवि प्रेमपरक रचनाओ के सृजन में प्रसिद्ध हैं। उनके साथ यह सत्य है—" He (Burns) has written more passion perhaps, and more variety of natural feeling, on the subject of love, than any other poet whatever but with a fervour that is sometimes indelicate, and seldom accommodated to the timidity and 'sweet austere composure of woman of refinement." कवि कीट्स भी प्रेम और सौंदर्य का अनन्य उपासक था। उदाहरण स्वरूप उनकी अनेक पक्तिया देख सकते हैं।[१]

जिज्ञासा उपन्यास के लिए परमावश्यक तत्व है। इस दृष्टि से भी आलोच्य कृति अपूर्व मानी जायगी। अंग्रेजी साहित्य के प्रसिद्ध कथाकार एच० जी० वैल्स की पुस्तक 'Invisible Man' में जिज्ञासा का प्रबल वेग है, परतु उसका क्षेत्र मुख्यतः वैज्ञानिक विकास के गुण-दोषो पर प्रकाश डालना है। 'प्रेम की भेंट' में ऐसी कोई बात नही। यह वैयक्तिक प्रेम पर आधारित कृति है। जिज्ञासा की दृष्टि से वृन्दावनलाल की अन्य कृतिया भी सशक्त हैं। प्रेमचद, डा० रागेय राघव, प्रसाद, मुल्कराज आनन्द, चतुरसेन, यज्ञदत्त शर्मा, अमृतलाल नागर ने भी इस पर पूर्ण ध्यान दिया है ऐसा उनकी कृतियो से ज्ञात होता है।

अन्ततोगत्वा हम इसी निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि यह एक सफल, सशक्त तथा मार्मिक रचना है।

'लगन' (१६२८)

'लगन' वर्मा जी का ११५ पृष्ठो का सामाजिक लघु उपन्यास है जिसमें दहेज प्रथा के कारण उत्पन्न सामाजिक अस्तव्यस्तता, क्षोभ और पीडन का समुचित चित्रण है तथा उसके निस्तार का भी कलात्मक परतु व्यावहारिक समाधान उपस्थित किया गया है।

दहेज, तिलक आदि प्रथा पर कितने आदोलन भारतवर्ष में उठाए गए और कितने साहित्यकारो जैसे प्रेमचद ('निर्मला' उपन्यास देखें) आदि ने, इस विषय पर सफलतापूर्वक लेखनी दौडाई, ऐसी अवस्था में आलोच्य कृति की कथावस्तु उस विषय को आधार लेकर अवश्य चली, परतु अरोचकता और प्रभावहीनता नही उत्पन्न हुई,

---

१. (i) Happy in beauty life, and everything
A song of love too sweet for earthy lyres
While like low breath, the stars drew in the panting fires.
—Keats

(ii) A thing of beauty is a joy for ever
Its loveliness increases, it will never pass into nothing ness —Keats (Endymion)

(iii) इसी प्रकार Lamia और उसकी अनेक प्रकृतिपरक रचनाओं में अनेक पंक्तिया देख सकते हैं।

और मौलिकता अक्षुण्ण बनी रही। इसमें लेखक का चातुर्य और कलाकौशल ही प्रकट होता है। "कहानी के चरित्र नायक देवसिंह का असली नाम नन्दलाल था। वह बड़ा शक्तिशाली पुरुष था। नन्दलाल का भीषण पराक्रम जो इस कहानी में वर्णन किया गया है, सच्ची घटना है। किम्वदंति के रूप में अब भी आस-पास के देहात में वह प्रसिद्ध है।"[1] यह 'प्रेम की भेंट' की तरह पूर्णतया कल्पनामूलक कहानी नहीं है। संक्षेप में कथावस्तु यों है—"बजरा का शिवू माते और बरोल का बादल चौधरी समाज के धनी थे। तीन-तीन, चार-चार सौ गाए-भैंसें दोनों के पास थीं।"[2] शिवू माते के पुत्र देवसिंह से बादल जू ने अपनी एकलौती पुत्री के परिणय-संस्कार में दहेज निमित्त सौ भैंसें देने का वचन दिया परंतु शिवू को बारात के समय पता चला कि बादल भैंसे नहीं देगा। अतः वह क्षुब्ध हो, बादल के वंशजों को गाली देता, विवाह के उपरान्त देवसिंह को लेकर लौट आया और बादल को कहला भेजा कि वह अपनी लड़की का पुनर्लग्न करा ले। देवसिंह पितृभक्त था। उनकी आज्ञा पर चलना कर्तव्य समझता था। वह सोचने लगता है—"रामा मेरी पत्नी है। मेरी विवाहिता है, मेरा उसके ऊपर अधिकार है। उसे कोई परित्यक्त नहीं कर सकता। अब किसी और की नहीं हो सकती।" (पृष्ठ ५१)। देवसिंह रामा को निर्दोष समझता है और वह उसका पुनर्लग्न नहीं चाहता परंतु पिता के सम्मुख पूर्णतया मौन बना रहता है। रामा भी इस घटना से पीड़ित होती है और पुनर्विवाह नहीं चाहती। वह भी अपने परिवार और पिता के सम्मुख एक शब्द नहीं बोल पाती और अपनी सहेली सुभद्रा से स्पष्ट कहती है—"मेरे लिए चाहने-न-चाहने का सवाल ही नहीं है, घर के लोग जो कुछ भी कर देंगे सिर के बल मानना पड़ेगा।"[3] देवसिंह साहस बटोर कर, रामा से स्वयं मिलकर उसकी इच्छा जानना चाहता है परन्तु मिलना पूर्णतया कठिन समस्या है। इसी उधेड़बुन में वह एक दिन नदी पार कर बरोल जाना चाहता है। नदी पार कर, विश्राम के लिए, चिंतातुर मन एक शिलाखण्ड पर बैठता है, उसी समय नदी में स्नान के लिए रामा को अपनी सहेली सुभद्रा के साथ आते देखता है। बादल जू का पुत्र बैताली रामा के पुनर्लग्न के लिए पन्ना नामक एक आवारा युवक को चुनना चाहता है। पन्ना इसे अपना सौभाग्य मानता है क्योंकि उसमें धन-प्राप्ति की लालसा भी जगती है। परन्तु बादल जू ऐसा नहीं चाहता। पन्ना को गंगा दशहरा के दिन बैताली अपने यहाँ भोजन के लिए आमंत्रित करता है। बादल जू के यहाँ जाते हुए मार्ग में अकेला शिलाखण्ड पर देवसिंह को देखकर, बिना पूर्व परिचय के उससे इधर-उधर की बातें करता है। देवसिंह उसे अपना वास्तविक परिचय नहीं देता। पन्ना चला जाता है, और दूर से ही रामा आदि को स्नान निमित्त आते देख देवसिंह कुछ ओट में चला जाता है जिससे वे स्त्रियाँ निःसंकोच स्नान करें। पन्ना तुरंत बैठकर उन युवतियों से छेड़खानी करना चाहता है और स्नान देखने का बहाना बनाता है। वह ओट में देवसिंह को देखकर क्रुद्ध होता है और स्नान-

---

१ लगन, ([illegible])।
२ वही, पृ० २।
३ वही, पृ० ७५।

चोरी का झूठा अपराध उस पर आरोपित करता है। देवसिंह भी इस व्यवहार से क्रोधित हो उठता है और युद्ध होने की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। उसी समय रामा देवसिंह को पहचानकर, युद्ध न करके घर लौटने को कहती है। देवसिंह उसकी आज्ञा का पालन कर लौट जाता है। पन्ना को जब ज्ञात होता है कि वह बादल जू की ही पुत्री है तो लज्जा से सिर झुका कर रूमाल खोजने के बहाने लौट पड़ता है। देवसिंह पुन एक दिन अधेरी रात में तूफान-सी उफनाती नदी पार कर बादल जू के घर पहुचता है। कुत्ते भौंकने लगते हैं। बादल जू उसे देख लेता है और सकेत से उसे ऐसा करने से रोकता है, बिगड़ता भी है। देवसिंह इसी प्रकार नित्य आने लगता है और जान लेता है कि रामा अटारी पर अकेली सोती है। वह धीरे से पुकार लगाता है और रामा सुनकर धोती लटका देती है, जिसके सहारे देवसिंह ऊपर चढ़ता है और इसी प्रकार नित्य मिलन होने लगता है।

एक दिन पुन पन्ना भोजन के लिए बादल जू के यहा पहुचता है और रात अधिक बीत जाने के कारण उसके सोने का प्रबध रामा की कोठरी में किया जाता है। रामा मा के पास सोने चली जाती है। परतु पन्ना हठकर दूसरी जगह सोता है और रात में मलिन भाव से रामा की कोठरी में पहुचता यह सोच कर कि रामा इसमें अकेली सोई होगी। निराश हो वह लौटना ही चाहता है कि नीचे देवसिंह की आवाज सुनता है। यह धीरे से धोती लटका देता है। देवसिंह ऊपर चढ़ आता है। उसी समय रामा उक्त कोठरी के पास आती है और किवाड भीतर से बद देख सारी परिस्थिति समझ लेती है। पन्ना झट देवसिंह को दबोच कर हल्ला मचाता है। सभी दौडते हैं। उसी क्षण रामा चुपचाप घर से निकल पडती है। भीड उक्त कोठरी के किवाड को तोडने पर तत्पर हो जाती है। देवसिंह पन्ना को परास्त कर, भागने का कोई मार्ग न देखकर, किवाड खोल देता है। बेताली क्रोध में उस पर कुल्हाडी चलाना चाहता है परन्तु बादल जू बीच में आकर रोक देता है। उसी समय स्त्रियाँ रामा को न देख हल्ला आरभ करती हैं। उसे ढूढने के लिए लोग यत्र-तत्र दौडते हैं। यह सोचकर कि कहीं रामा डूब तो नहीं मरी, देवसिंह भी खोजने जाना चाहता है परतु बादल जू उसे भी खोना नही चाहता। अत देवसिंह वही रह जाता है।

रामा अद्भुत साहस द्वारा बेतवा (नदी) पार कर, किसी प्रकार पता लगाती हुई शिबू माते के यहाँ पहुचकर सम्पूर्ण कहानी कह डालती है। शिबू को रामा पर अगाध स्नेह और करुणा उमड आती है। वह रामा को अपने यहाँ रोककर, गाव वालो के साथ अपने अपराधों का प्रायश्चित्त करने बादल जू के यहाँ उपस्थित होता है। दोनो सबधी अपनी-अपनी गलती के लिए परस्पर क्षमा याचना करते हैं और आपसी सबध दृढ बना लेते हैं।

इस प्रकार 'लगन' की कथावस्तु लगन का आधार लेकर चली है जिसमें रोचकता, जिज्ञासा, वेग सभी का सफलतापूर्वक सम्मिश्रण है। यथावसर मोड उपस्थित होकर सौंदर्याभिवृद्धि करता चलता है। बरात का बिना दुलहन लिए एकाएक लौट जाना, देवसिंह का चुपचाप बरौल पहुच जाना, रामा का परिस्थिति की भयानकता अनुमान कर शिबू के निकट पहुचना, आदि ऐसे मोड और वेगपूर्ण तत्व हैं जिनसे गति-

शीलता और जिज्ञासा का स्रोत अनवरत प्रवाहित होता रहा है।

यह एक सामाजिक परिवार केन्द्रित उपन्यास है जिसमें दो परिवारों के पिता, पुत्र, पुत्री आदि का व्यवहार, धन का लोभ, दहेज की लालसा आदि का स्वाभाविक चित्र है। किस प्रकार लोग छोटी बात में नमक-मिर्च लगाकर बिगाड़ डालते हैं, इसका भी सुन्दर उदाहरण देवसिंह की शादी के समय मिलता है जिसके कारण सिबू, वादर जू, नैनाली सभी एक दूसरे पक्ष वाले से नाराज होते हैं और बात बढ़कर झगड़े में परिवर्तित हो जाती है। धन-वृद्धि की हेय कामना के परिणामस्वरूप किस प्रकार निर्दोष जीवन, लड़के-लड़की का जीवन खंडित किया जाता है, इसका आलोच्य कृति में जीवन चित्रण है।

वर्मा जी ने प्रस्तुत कृति में उच्च वृत्तियों से निम्न कृति का भी सफल अंकन किया है जिसके सुदृढ़ साहस पर जीवन विनष्ट होने से बचना संभव है। समाज में दहेज-प्राप्ति की प्रवृत्ति चहुँदिक कार्य करती रहती है। इस अनिष्ट से समाज की रक्षा के लिए, सुकुमार और निर्दोष युवतियों की रक्षा की मनोकामना के लिए आवश्यक है कि देवसिंह की तरह दृढ़ कदम उठाया जाए। संभव है, इस अमरत्व के लिए प्राणों की बाजी लगानी पड़े। यही प्रेरणा मूलभूत है। प्रेम का विस्तार, करुणा का अंगीकार मानवता के हित के लिए परमावश्यक है।

रामा ने जो नारीयोचित साहसपूर्ण कार्य किया, अवसादाच्छन्न रात्रि की निस्तब्धता में प्रचण्ड वेगवती वेतवा को पार कर, परिस्थितवश ससुराल जाकर जो आदर्श तथा बुद्धिकुशल नारी का रूप अक्षुण्ण रखा, वह प्रशंसनीय है। यदि आधुनिक युग में समाज इस अनैतिकतापूर्ण प्रथा को समाप्ति चाहता है, इसके दुष्परिणाम से मुक्त होना चाहता है तो युवक-समाज को इसी प्रकार कटिबद्ध होकर इस समस्या से संघर्ष करना होगा, अपने अभिभावकों को अपनी चेतना और स्फूर्ति से जागृत करना होगा, अनुप्राणित करना होगा, केवल रुदन और आँसू बहाने से इसका अन्त कदापि संभव नहीं।

स्मरण रहे इस कृति का निर्माण उस युग में हुआ था जब भारत के सभी युग-नेता, सभी संस्थाएँ (जैसे आर्य समाज आदि) इस कुप्रथा से मुक्ति के लिए प्रयत्नशील सचेष्ट थीं। आज भी दहेज के इसे अवैधानिक ठहराने पर भी यह प्रथा चल रही है और इसके विरुद्ध आन्दोलन भी चल रहे हैं। और इसीलिए आज के नवीनतम उपन्यासों में भी यह विषय उठाया जा रहा है।[1]

इसमें वार्तालाप छोटे-छोटे, सजीव, स्वाभाविक तथा सरल एवं प्रभावपूर्ण हैं। भाषा का नियम अन्य कृतियों के सदृश ही है।

तात्पर्य यह निष्कर्ष ही कहा जायगा कि यह एक छोटी परन्तु पूर्ण सफल, आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कृति है। प्रेमचंद जी को 'लगन' बड़ी प्रिय रचना लगी थी और इसीलिए उन्होंने अपना विचार प्रकट करते हुए लिखा था—"*It is not a*

---

१ प्रेमचंद तथा अन्य पुराने लेखकों के साहित्य के अतिरिक्त आज के उपन्यासों में भी इस विषय ने स्थान पा लिया है जैसे 'तट के बन्धन' (विष्णु प्रभाकर), 'डा० देव' (अमृता प्रीतम), 'रूपा का रोमांस और शोर' (लक्ष्मीनारायण), 'कुलिया की शादी' (यादवेन्द्र शर्मा), 'बूँद और समुद्र' (अमृतलाल नागर), 'तीन वर्ष' (भगवतीचरण वर्मा) आदि।

novel but pastoral poetry." यह पूर्णतया सत्य है कि आलोच्य कृति में वर्मा जी की कवित्व शक्ति का अपूर्व सामजस्य है जो उत्कृष्ट साहित्य के लिए अपेक्षित है। इसमें चरागाह पर निर्भर करने वाले ग्वालो का वडा मार्मिक जीवन मुखरित है।

'सगम'

वर्मा जी की आरम्भिक कृति है, जिसमें सामाजिक क्षेत्र से कथानक का चयन किया गया है। इसमें जीवन का यथार्थ मुखरित है, साथ ही रोचकता भी पर्याप्त है। तत्कालीन जातिवाद और उसके परिणामस्वरूप उद्बुद्ध अराजकता और पतन का जीवत चित्रण है।

लालमन नामक व्यक्ति साधारण परिश्रम से बहुत सपत्ति मिलती न देखकर (पृ० २८९) डकैती आरभ करता है। वह अपने जीवन में भाजी जानकी को बहुत स्नेह करता है और बरूआसागर के नाई धनीराम के यहा पलने के लिए छोड देता है क्योकि "उसके माता-पिता बिलकुल छुटपन ही में मर चुके थे" (पृष्ठ १४, तृ० स०) और "उसकी आयु १४-१५ वर्ष की हो चुकी थी। पढी-लिखी थी, रूप में भी अच्छी थी, परतु अच्छे घर का कोई ब्राह्मण विवाह करने को तैयार न होता था। उसे एक दयावान, निस्सतान, धनवान्, नाई ने अपनी पुत्री के समान पाला-पोसा और बडे उत्साह से पढाया-लिखाया था। नाई उस लडकी को उसके सजातीय ब्राह्मण के घर ब्याहना चाहता था। कई हजार रूपये दहेज में देने को तैयार था, परतु जाति खोने के भय से और बरूआसागर के भलेमानसो के अपवाद तथा सक्रिय प्रतिवाद के डर के मारे कोई इस झझट को अपने सिर लेने को तैयार न होता था। कई बार इसलिए शादी लगकर बारात आकर भी शादी न हो सकी।" भिखारी लाल ब्राह्मण, धन के लोभ में, अपने पुत्र सपतलाल की शादी उससे करता है, परतु शादी मे मजाक और हसी में ही बात बहुत बढ जाती है और मारकाट तथा रक्तपात हो जाता है। इसी स्थिति में नदराम नामक व्यक्ति जो बहुत मार खाता है, सभी के समझाने पर पुलिस-केस कर देता है। पुलिस पैसा लेकर बात समाप्त करती है तो वह कोर्ट में मुकदमा ले जाता है। नदराम, गरीबी के कारण, एक धनी व्यक्ति सुखलाल से ऋण मागता है, परतु सुखलाल भी यह घटना समाप्त करने के पक्ष में थे अत वे ऋण देने के लिए इकार करते हैं। नदराम की इस मुकदमे में लगे रहने के कारण बुरी दशा हो जाती है। घर भी बिकने को होता है। अत वह अपना क्रोध सुखलाल पर उतारने के लिए, ढिमलौनी से आते हुए मार्ग में देख, उस पर गोली चला देता है और स्वय जगल में भाग जाता है। लालमन सुखलाल का सबधी था और उससे वह प्रेम करता था, इसलिए मार्ग में पडा देख उठाकर एक स्थान पर ले जाकर सेवा-सुश्रुषा करता है। प्लेग के प्रकोप से सुखलाल का पुत्र मर जाता है और पुत्र वधू भी कालकवलित हो जाती है। उसकी बहन राजबेटी की ओर से रामचरण जो सुखलाल के आश्रम में ही रहता था, मुकदमा लडता है। परतु भिखारीलाल की जीत होती है। सपत, धनाभाव और बुरी सगति के परिणामत चोरी तथा अन्य निकृष्ट कर्म करता है। मुकदमा जीतने के लोभ से एक पजाबी के हाथ स्त्री का रूप धारण कर बिक जाता है, जहाँ यह छद्मवेष में पकड लिया जाता है और अपमानित हो, पश्चात्ताप कर सुधर जाता है। उसी बीच रामचरण पर सदेह

तर पुलिस पकड़ लेती है और गंगा तथा राजवेटी निराश्रित हो डिमलौनी चली जाती और परिश्रम कर पेट पालती है। रामचरण पर जब कोई दोष प्रमाणित नहीं होता तो वह छोड़ दिया जाता है और वह अपनी मालकिनों की खोज में डिमलौनी प्रस्थान करता है। मार्ग में लालमन से बातचीत होती है, परन्तु लालमन उस पर आक्रमण नहीं करता। रामचरण जो नये खून का व्यक्ति है, समाज सुधार पर विश्वास रखता है, लालमन को पकड़ने तथा हत्या करने की प्रतिज्ञा करता है। गंगा के आग्रह पर भी अपने हठ पर अटल रहता है।

डिमलौनी में एक दिन लालमन सुखलाल को लेकर आता है, और उनके घर पर जहाँ पुलिस का ताला पड़ा था, उसे तोड़कर अंदर घुसाकर लौटना ही चाहता है कि रामचरण जग जाता है और लालमन के साथियों पर प्रहार कर, कई को मार डालता है। लालमन क्रुद्ध हो रामचरण पर टूटता है। गंगा बीच में आकर बचाव करना चाहती है परन्तु लालमन अत्यधिक क्रोध के कारण उसे मार डालना चाहता है जिसमें गंगा बुरी तरह आहत होती है। लालमन अचेत हो जाता और पुलिस द्वारा पकड़ लिया जाता है। सुखलाल को जीवित होने के परिणामतः अपना पूर्व धन प्राप्त हो जाता है। लालमन की मृत्यु हो जाती है और मरने के पूर्व अपना सारा वृत्तांत कह सुनाता है। नरतलाल सुखलाल से मुकदमा हटा लेता है। नदनन भी स्वयं लज्जित हो अपनी गलती स्वीकार कर अभियुक्त हो, बंदी हो जाता है। सुख-लाल रामचरण और गंगा का परिणय-संस्कार करा डालते हैं। जाति तथा वर्णगत भावना परित्याग कर रामचरण को भी अपना आधा धन देकर और आधे को राज-वेटी को दे डालते हैं। और तब कथानक समाप्त हो जाता है।

यह मुख्यतः घटना प्रधान उपन्यास है जिसे चरित्रों की दृष्टि से विशेष महत्व नहीं दिया जायगा। एक रामचरण का ही चरित्र अधिक व्यापकता से चित्रित हुआ है।

प्रारम्भ में जिज्ञासा परिस्फुटित है और अन्त तक मोड़ लेती चलती है। कथानक का विकास स्वाभाविक है। एक घटना दूसरे से सम्बद्ध और अविच्छिन्न अवश्य प्रतीत होती है। शादी में हंसी-खेल में ही अचानक मारपीट और मुकदमा, परस्पर द्वेष, प्रतिशोध की भावना, हत्या आदि सभी नाटकीय योजनाएं हैं जिनकी हम उपेक्षा नहीं कर सकते।

यह निश्चय ही स्वीकार किया जायगा कि प्रारम्भ में सुखलाल के यहाँ लाल-मन का आना प्रयोजन नहीं रखता क्योंकि उसे हटाकर भी जिज्ञासा और गति लाई जा सकती थी। दूसरी बात कथानक के सम्बन्ध में यह भी उठाई जा सकती है कि लाल-मन का सुखलाल के प्रति गहन प्रेम था तो उसे (सुखलाल को) पाते ही उसने अपनी स्नेहसिक्त भावना [illegible] गंगा को [illegible] दिया, [illegible] में भी [illegible]। यदि ऐसा [illegible] में [illegible] उद्देश्य [illegible] तो [illegible] पर पुलिस [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

लडकी के व्याह में वर-वधू के पक्षों में मन-मुटाव, द्वेष, बात बढ़ने पर हिंसात्मक प्रदर्शन को हम सामाजिक जीवन में निश्चित रूप में देखते हैं। लेखक ने अपनी इस कृति में भी अपना यथार्थ ज्ञान रखा है। ऐसी घटना होते लेखक ने छत्रपुर रियासत के अंतर्गत रामपुर नामक ग्राम में देखी थी।

एक आवश्यक प्रश्न का उत्तर लेखक ने स्वयं दिया है—"पाठकों को आश्चर्य होगा कि पसलियों के बीचोबीच गोली लग जाने पर भी सुखलाल कैसे जीवित बच गया। सन् १९१७ के करीब तहसील ललितपुर के अंतर्गत नारहट के ग्राम के निवासी सेठ मोहनलाल सतभैया पर तरावली ग्राम के कुंजरसिंह नामक एक ठाकुर ने दीवानी अदालत का वारंट निकालने के कारण क्रुद्ध होकर गोली चलाई थी। वह इस ओर की दो पसलियों के ठीक बीच में होकर घुसी और उस ओर की दो पसलियों के बीचोबीच छेदती हुई बायें हाथ की मांसपेशी में अड गई। भाग्यवश वह बच गये और अभी तक जीवित हैं।[1]

"सन्तलाल का विवाह, नाई के हाथ से व्रण लग जाने दूल्हा का कठिन स्थिति उत्पन्न होने पर भात खाना, सुखलाल और लालमन के सम्बन्ध का पूर्वाभास और डाका इत्यादि कुछ घटनायें भिन्न-भिन्न समयों की भिन्न-भिन्न सत्य घटनाओं के आधार पर हैं।"[2] इसलिये भी यथार्थ जीवन का चरित्र स्वभावत इसमें मुखरित हैं।

वर्मा जी ने स्वयं वकील होने के कारण कानून की त्रुटियों को बहुत निकट से देखा और अनुभव किया है। इसमें कोर्ट, वकील और न्यायाधीशों आदि के यथार्थ चित्र हैं। साथ ही, भाई की मृत्यु के पश्चात बहन सम्पत्ति की अधिकारिणी सिद्ध न होकर, दूर के अवारे दावा सिद्ध कर लेते हैं, उस पर आक्षेप करते हुए लेखक ने स्पष्ट लिखा है—"जब से इस देश में हमारी अदालतें कायम हुई हैं, तबसे हिंदू-शास्त्र का विकास बंद हो गया है और केवल नजीर की लकीर पीटने की चाल हो गई है। यदि यह क्रम जारी रहा तो या तो समाज वर्तमान कानूनों के अस्वस्थ और अहितकर बन्धनों में जकडा जाकर भीषण अवनति को प्राप्त होगा या कानून के बांध को तोड-फोडकर अपनी स्वाभाविक गति से आगे निकल जायगा और कानून अपनी नादानी पर रोता हुआ रह जायगा (पृ० २९३)। आज इस नियम में परिवर्तन लाये जा रहे हैं। हिन्दू कोड बिल इसी का उदाहरण है।[3]

वर्मा जी ने पुरुषों के अत्याचार का कारण कुछ अंश तक स्त्रियों की मनोदशा को भी स्वीकार किया है क्योंकि यदि वे पुरुषों के अत्याचार का अतिक्रमण देख, विद्रोह करें, तो सम्भवत यह दुष्परिणाम उत्पन्न न हो। सपत, जिसकी स्त्री साध्वी और शात है और अत्याचारों को मौन हो सहती है, अंत में स्पष्ट कहता है—'जानकी, हमारी स्त्रियां यदि ऐसी देवियां न हों, तो पुरुष बडे राक्षस न हो पाए। तुमने जैसे ही नरक-गृह में पदार्पण किया था, वैसे ही यदि मुझ पर थूक दिया होता तो मैं सुधर

---

१ परिचय (संगम)—लेखक।

२ वही।

३ हिन्दू कोड बिल के अन्तर्गत लडकियों के लिए भी धन का हिस्सा स्वीकार किया गया है जिस प्रकार लडकों को अधिकार दिया जाता है।

जाता।"[1] अर्थात् स्त्रियाँ देवी से मानवी बन, अत्याचार का प्रतिकार करें यह प्रेरणा मूलरूप में केन्द्रित है। इसी स्थल पर 'बहता तिनका'[2] उपन्यास का स्मरण हो आता है जिसमें उषा (नायिका) सोच-समझकर प्रेम-क्षेत्र में पाँव रखती है और भविष्य के प्रति सजग रहने पर भी उसका भावी पति डाक्टर भाग खड़ा होता है और वह ठगी-सी, हारी-सी रह जाती है। वहाँ जानकी सजग न रहकर भी, हारकर भी, जीत प्राप्त करती है।

वातावरण की दृष्टि से भी इस कृति द्वारा १९३५ के लगभग के भारतीय समाज मुख्यतः बुन्देलखण्ड का चित्र ध्यातव्य है। जातीयता, डकैती, पुलिस का असामंजस्य और अनुचित व्यवहार सभी का बड़ा मार्मिक चित्र है। किस प्रकार जानकी का ब्याह ब्राह्मण नहीं करना चाहते हैं, पुलिस के हथकंडे आदि दृश्य अपना यथार्थ महत्व रखते हैं। जातीयता की संकीर्णता में आबद्ध हो हम मानवता तक का विस्मरण कर बैठते हैं, यह रामचरण पर ब्राह्मण वर्ग के आक्षेप और सामाजिक विशृंखलता द्वारा देख सकते हैं। रतनलाल जैसे दुराचारी पति और जानकी जैसी पत्नी, बिहारीलाल जैसे लोभी व्यक्तित्व सभी पूर्णतया हमारे सामाजिक चित्र हैं।

कथानक की परिसमाप्ति आदर्श धारा के अंतर्गत है। मुन्नालाल अंत में जातीयता का कठोर बंधन तोड़कर, रामचरण को साथ रखकर एक उच्चादर्श प्रतिष्ठापन को सफल करता है। रतनलाल का सुधार भी इसी दिशा की सूचना है। परंतु यथार्थ छवियाँ महत्त्व रखती हैं। और यथार्थ पर आदर्श थोपा हुआ-सा नहीं लगता। अनुभव द्वारा आदर्श-ज्ञान-ज्योति फूटती है, जिसका गहरा मानव संबंध है।

वर्मा जी की भाषा सरसता और चित्रण-क्षमता में अपूर्व है। आलोच्य कृति की भाषा भी सहज, सरल, प्रवाहपूर्ण है। इसमें भी बुंदेलखंडी शब्दों (क्षेत्रीय) का यथासंभव प्रयोग मिलता है। उदाहरणार्थ पृष्ठ २९ देख सकते हैं। ग्रामगीतों के अंतर्गत (Idyll) में स्थानीय रंग की स्वाभाविकता तथा सरसता निमित्त क्षेत्रीय गीत दिये गए हैं जिनमें उन स्थानवासियों का मनोराज्य तथा कोमल हृदय निवेदित है—

'हिमाचल जू की कुँअरि लड़ायती,
नारे सुअटा।
गौरा बेटी नेरा वो अनहाएं,
नारे सुअटा।

यहाँ की युवतियों द्वारा गाए ये गीत देखें—

"तिल के फूल, तिली के दानें,

---

१. सम्भव है रतन की स्त्री अपनी कोमल वृत्ति तथा उदारता से जो प्रभाव रतनका मन में सुधार लाती है वह प्रतिकूल व्यवहार से न कर पाती। निश्चय ही यह एक विवादास्पद तथ्य है। इसका अर्थ यह नहीं कि मैं नारियों के अधिकार का समर्थक नहीं हूँ परन्तु यदि एक गलती करे तो दूसरा भी गलती करे तो सम्भव है घर बनने के बदले बिगड़ ही जाये। गांधी जी का 'सुधारवाद' भी इसकी स्वीकृति नहीं देता। परन्तु, पुरुषों से भी नारियों को समतुल्य अधिकार देने की भावना तो अवश्य ही है। इसे तो वैसे स्वीकार कर सकता हूँ।

२ 'बहता तिनका', [illegible]।

लडकी के व्याह में वर-वधू के पक्षो में मन-मुटाव, द्वेष, बात बढने पर हिंसात्मक प्रदर्शन को हम सामाजिक जीवन में निश्चित रूप में देखते हैं। लेखक ने अपनी इस कृति में भी अपना यथार्थ ज्ञान रखा है। ऐसी घटना होते लेखक ने छत्रपुर रियासत के अतर्गत रामपुर नामक ग्राम में देखी थी।

एक आवश्यक प्रश्न का उत्तर लेखक ने स्वय दिया है—"पाठको को आश्चय होगा कि पसलियो के बीचोबीच गोली लग जाने पर भी सुखलाल कैसे जीवित बच गया। सन् १९१७ के करीब तहसील ललितपुर के अतर्गत नारहट के ग्राम के निवासी सेठ मोहनलाल सतभैया पर तरावली ग्राम के कुजरसिंह नामक एक ठाकुर ने दीवानी अदालत का वारट निकालने के कारण क्रुद्ध होकर गोली चलाई थी। वह इस ओर की दो पसलिया के ठीक बीच में होकर धसी और उस ओर की दो पसलियो के बीचोबीच होती हुई बायें हाथ की माँसपेशी में अड गई। भाग्यवश वह बच गये और अभी तक जीवित है।[1]

"सपतलाल का विवाह, नाई के हाथ से व्रह्माग दूल्हा का कठिन स्थिति उत्पन्न होने पर भात खाना, सुखलाल और लालमन के सबध का पूर्वाभास और डाका इत्यादि कुछ घटनायें भिन्न-भिन्न समयो की भिन्न-भिन्न सत्य घटनाओ के आधार पर है।"[2] इसलिये भी यथार्थ जीवन का चरित्र स्वभावत इसमें मुखरित है।

वर्मा जी ने स्वय वकील होने के कारण कानून की त्रुटियो को बहुत निकट से देखा और अनुभव किया है। इसमें कोर्ट, वकील और न्यायाधीशो आदि के यथार्थ चित्र हैं। साथ ही, भाई की मृत्यु के पश्चात बहन सम्पति की अधिकारिणी सिद्ध न होकर, दूर के अबारे दावा सिद्ध कर लेते हैं, उस पर आक्षेप करते हुए लेखक ने स्पष्ट लिखा है—"जब से इस देश मे हमारी अदालतें कायम हुई हैं, तबसे हिंदू-शास्त्र का विकास बद हो गया है और केवल नजीर की लकीर पीटने की चाल हो गई है। यदि यह क्रम जारी रहा तो या तो समाज वर्तमान कानूनो के अस्वस्थ और अहितकर बन्धनो में जकडा जाकर भीषण अवनति को प्राप्त होगा या कानून के बाध को तोड-फोडकर अपनी स्वाभाविक गति से आगे निकल जायगा और कानून अपनी नादानी पर रोता हुआ रह जायगा (पृ० २९३)। आज इस नियम में परिवर्तन लाये जा रहे हैं। हिन्दू कोड बिल इसी का उदाहरण है।[3]

वर्मा जी ने पुरुषो के अत्याचार का कारण कुछ अश तक स्त्रियो की मनोदशा को भी स्वीकार किया है क्योकि यदि वे पुरुषो के अत्याचार का अतिक्रमण देख, विद्रोह करें, तो सम्भवत यह दुष्परिणाम उत्पन्न न हो। सपत, जिसकी स्त्री साध्वी और शात है और अत्याचारो को मौन हो सहती है, अन्त में स्पष्ट कहता है—'जानकी, हमारी स्त्रिया यदि ऐसी देविया न हो, तो पुरुष बडे राक्षस न हो पाए। तुमने जैसे ही नरक-गृह में पदार्पण किया था, वैसे ही यदि मुझ पर थूक दिया होता तो मैं सुधर

---

१ परिचय (सगम)—लेखक।

२ वही।

३ हिन्दू कोड बिल के अन्तर्गत लड़कियों के लिए भी धन का हिस्सा स्वीकार किया गया है जिस प्रकार लड़कों को अधिकार दिया जाता है।

जाता।"[1] अर्थात स्त्रिया देवी से मानवी बन, अत्याचार का प्रतिकार करें। यह प्रेरणा मूलरूप में केन्द्रित है। इसी स्थल पर 'बहता तिनका'[2] उपन्यास का स्मरण हो आता है जिसमें लता (नायिका) सोच-समझकर प्रेम-क्षेत्र में पाव रखती है और भविष्य के प्रति सजग रहने पर भी उसका भावी पति डाक्टर भाग खड़ा होता है और वह ठगी-सी, हारी-सी रह जाती है। वहा जानकी सजग न रहकर भी, हारकर भी, जीत प्राप्त करती है।

वातावरण की दृष्टि से भी इस कृति द्वारा १९३५ के लगभग के भारतीय समाज मुख्यत बुन्देलखडी का चित्र ध्यातव्य है। जातीयता, डकैती, पुलिस का अमानवीय और अनुचित व्यवहार सभी का बडा मार्मिक चित्र है। किस प्रकार जानकी का ब्याह ब्राह्मण नही करना चाहते है, पुलिस के हथकडे आदि दृश्य अपना यथार्थ महत्व रखते है। जातीयता की सकीर्णता में आबद्ध हो हम मानवता तक का विस्मरण कर बैठते है, यह रामचरण पर ब्राह्मण वर्ग के आक्षेप और सामाजिक विशृ-खलता द्वारा देख सकते है। सन्त लाल जैसे दुराचारी पति और जानकी जैसी पत्नी, भिखारीलाल जैसे लोभी व्यक्तित्व सभी पूर्णतया हमारे सामाजिक चित्र है।

कथानक की परिसमाप्ति आदर्श-धारा के अतर्गत है। मुन्नलाल अत में जातीयता का कठोर बंधन तोडकर, रामचरण को साथ रखकर एक उच्चादर्श प्रतिष्ठा न का सकल्प करता है। सन्तलाल का सुधार भी इसी दिशा की सूचना है। परतु यथार्थ छवियां महत्व रखती है। और यथार्थ पर आदर्श थपा हुआ-सा नहीं लगता। अनुभव द्वारा आदर्श-ज्ञान-ज्योति फूटती है, जिसका गहरा मानव मवव है।

वर्मा जी की भाषा सरसता और चित्रण-क्षमता में अपूर्व है। आलोच्य कृति की भाषा भी सहज, सरल, प्रवाहपूर्ण है। इसमें भी बुदेलखडी शब्दों (क्षेत्रीय) का यथा-सभव प्रयोग मिलता है। उदाहरणार्थ पृष्ठ २९ देख सकते है। ग्रामवासियों के लोक गीत (Idyll) में स्थानीय रग की स्वाभाविकता तथा सहजता निमित्त क्षेत्रीय गीत दिये गए है जिनमें उक्त स्थानवासियों का मनाराज्य तथा कोमल हृदय निवेष्टित है—

'हिमाचल जू की कुँअरि लड़ायती,
नारे सुअटा।
गौरा बेटी नेरा वो अनहाएं,
नारे सुअटा।

वहा की युवतियों द्वारा गाए ये गीत देख—

"तिल के फल, तिली के दानें,

---

१. सम्भव है सपत की स्त्री अपनी कोमल वृत्ति तथा उदारता से जो प्रभाव डालकर सपत में सुधार लाती है वह प्रतिकूल व्यवहार से न कर पाती। निश्चय ही यह एक विवादास्पद तथ्य है। इसका अर्थ यह नहीं कि मैं नारियों के अधिकार का समर्थक नहीं हू परन्तु यदि एक गलती करे तो दूसरा भी गलती करे तो सम्भव है बात बनने के बदले बिगड ही जाये। गाधी जी का 'सुधारवाद' भी इसकी स्वीकृति नहीं देता। परन्तु, पुरुषों में भी नारियों को समकक्ष अधिकार देने की भावना तो अवश्य ही है। इसे कोई कैसे अस्वीकार कर सकता है।

२ 'बहता तिनका', लेखक कमल जोशी।

चंदा ऊगों बड़े भुन्सारें।

आलोच्य कृति म भी लेखक का वुदेलखड-प्रेम स्पष्ट व्यक्त हुआ है। पृष्ठ २८७ देखें जहा वहा की नारियो की प्रशसा उनके आचरण द्वारा कराई गई है।

प्रकृति-चित्रण का सौंदर्य भी प्रस्तुत रचना में अक्षुण्ण है। कथावस्तु भी प्राकृतिक क्षेत्र की ही है जहाँ पहाड, वृक्ष आदि अपना सौंदर्यमय स्थान रखते हें, ऐसी स्थिति में पृष्ठ १६ आदि देव सकते हें जिसमे धूलपूर्ण सध्या का सुन्दर और यथार्थ वर्णन प्रतीत होता है।

इन सभी दृष्टियो से आलोच्य कृत का मूल्याकन करते हुए हम इसकी सुन्दर कृतियो में गणना करेंगे, यह सत्य है।

चरित्र चित्रण

'सगम' में रामचरण, सपत, केशव, सुखलाल, लालमन, भिखारी, नदराम मुख्य पुरुष पात्र और राज बेटी, गगा और जानकी मुख्य नारी पात्र हे जिसमें यह पूर्ण सत्य है कि इसमें सभी पात्रो का चरित्र पूर्णतया उभर नही सका है।

सुखलाल—यह एक धनी ब्राह्मण है जो लालमन का सवधी है, और इस सबध को किसी को भी ज्ञात नही कराता, अपने यहा रहने वाले रामचरण को भी पता लगने नहीं देता। इससे स्पष्ट पता चलता है कि सुखलाल डकैती को बुरी दृष्टि से देखता है और डकैत को अपना सबधी भी प्रकट करना उचित नहीं समझता।

सुखलाल में शारीरिक बल भी पर्याप्त है तभी तो पसली में गोली लगने पर भी अच्छा हो जाता है और आवश्यकतानुसार लालमन के दल के एक डाकू की बुरी तरह मरम्मत करता है।

वह शात प्रकृति का व्यक्ति है तभी तो नदराम के मुकदमे को सदा समाप्त करना चाहता है और अत में भिखारी जो कट्टर सबधी है और उसकी (सुखलाल) सपत्ति अपने नाम करा लेता है, उसके हारने पर उसे वापस कर अपनी उदारता तथा सहिष्णुता का परिचय देता है।

परतु सुखलाल में यह वडा दोष है कि वह समाज से अत्यधिक भय खाता है। सामाजिक आक्षेप सहने की भी उसमें शक्ति नही है, तभी तो रामचरण, जो दूसरी जाति का है, अपने यहा से अलग कर देता है, परतु अत में वह अपने इसी दोष के परिहार निमित्त रामचरण को अपने यहा रखता है और अपनी सपत्ति का (आधे का) उत्तराधिकारी घोषित कर देता है।

उसमें वडी महत्ता यह भी है कि वह सदा अहिंसात्मक वृत्ति का परिचय देता है। उसके उपर्युक्त कथित आचरण से भी यह स्पष्ट समझा जा सकता है।

लालमन—एक ब्राह्मण है जो साधारण परिश्रम से पर्याप्त धन-प्राप्ति सभव न देखकर डकैती आरभ करता है और इस प्रकार वह वहुत वडा डाकू वन जाता है। किसानो, ग्रामीणो, का विश्वास है कि उसके साथ दैवीय शक्ति है। परतु, लालमन का यह विश्वास कि साधारण परिश्रम से डकैती द्वारा अत्यधिक धन प्राप्त कर सकेगा,

गलत लगता है क्योंकि उस (डकैती) कार्य में बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता है। परिश्रम के अतिरिक्त दुस्साहस और प्राण का खतरा सर्वदा बना रहता है, जिससे अन्त में लालमन की मृत्यु भी होती है।

लालमन डकैत अवश्य है, परतु वृद्ध तथा बच्चो और स्त्रियो को कदापि कष्ट नही देता। इतने से ही वह उदार और शोषको को लूटकर गरीबो और शोषितो की रक्षा करने वाला नही माना जा सकता क्योकि वह कभी भी किसी गरीब आदि की सहायता करता नही देखा जाता। 'ल.भ.', सपत्ति का इच्छुक कर भी कैसे सकता है। वह जीवन में केवल दो व्यक्तियो को विशेष स्नेह पात्र मानता है, जानकी और सुखलाल को, जो दोनो उसके सबधी हैं।

उसमें हिंसात्मक वृत्ति प्रचुर है। कभी भी अवसर आने पर हिंसा में पीछे नही रहता। रामचरण जब उसके साथियो पर प्रहार करता है तो वह उस (रामचरण) पर व्याघ्र सदृश टूटता है, और समाप्त ही कर डालना चाहता है। गगा द्वारा जानकर भी कि वह सुखलाल का आदमी है, वह शान्त नही होता। गगा के बीच-बचाव करने पर भी बिना गगा का ध्यान किए प्रहार करता है जो उसकी क्रूरता तथा अमानवीयता का द्योतक है।

वह डाकू वर्ग का प्रतीक है। घटनाओ पर ध्यान विशेष केंद्रित होने के फलस्वरूप इसका चरित्र भी पूर्णतया उभर नही सका है।

नन्दराम—एक साधारण परिवार का ईमानदार व्यक्ति है तभी तो भिखारी उसे ही आभूषण लाने अकेले भेजता है। साथ ही वह निडर पुरुष है जो मार्ग में छद्मवेषधारी लालमन के यह कहने पर—"देखना चाहो तो एक चपत में तुम्हारी अंटली-पोटली छीन लू और तुमको दे भी दू।" वह वीरत्व पूर्ण ढग से उत्तर देता है—"महाराज, आप ब्राह्मण हैं सो मैं कुछ नही कहता। परतु मैं भी अहीर हू।" उस समय भी वह अपने बल का प्रदर्शन करता है जब मजाक में (शादी के समय) बात बढ जाती है। अपने पर मजाक करने वाले की वह खूब मरम्मत करता है। उसमें साधारण मनुष्य की तरह भयानक क्रोध है तभी तो स्वय मजाक आरभ कर अत में अपने विपक्षी के मजाक तथा उपहास से चिढ जाता है। उसकी इसी प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्ति का प्रमाण है कि मुकदमा चलने पर सुखलाल से सहायता न मिलने पर, उस पर गोली चला देता है। परन्तु अततोगत्वा वह पश्चात्ताप करता है और जगल मे यातनाओ के सहने पर अपनी भूल पर दुःखी होता हुआ स्वय न्यायाधीश के सम्मुख प्रकट हो जाता है।

उसमें सबसे बड़ा दुर्गुण जिद्दी होना है। वह अपने दुश्मनो से प्रतिशोध लेने के लिए इतना अधा हो उठता है कि अपने से बडो की भी किंचित परवाह नही करता, बात नही मानता। सुखलाल के मना करने के बावजूद भी वह पुलिस को सूचित कर देता है। और इसी उपक्रम में वह स्वय विनष्ट हो जाता है। अर्थात् वह समुचित सोचने वाला व्यक्ति भी नही है। फिर भी कथानक की प्रगति के साथ ही इसका चरित्र भी सदैव क्रियाशील रहा है और सामान्य मानव सदृश क्रिया-प्रतिक्रिया प्रकट करता दीख पड़ता है। निश्चय ही वह सामान्य व्यक्ति है।

रामचरण—"सुखलाल की मृत अहीरिन रखेली से जो लडका हुआ था, उसका

नाम रामचरण था। हृष्ट-पुष्ट शरीर का लंबा जवान था। बाल की खाल खींचने का अभ्यासी और बहुत जल्दी-जल्दी बातचीत करने वाला, अविवाहित, दृढ निश्चयी युवक था। हसते हसते जब जल्दी-जल्दी बातचीत करता था, तब मालूम पडता था कि स्वर की लपेटो में शब्द डूबते-उतराते वहते चले जाते है।" (पृष्ठ ३६, तृ० स०)

"रामचरण स्वतंत्र प्रकृति का युवक था। सुखलाल का आश्रित नही था। उसे उन्होने पढा-लिखा अवश्य दिया था परतु उसका हृदय सुखलाल के साधारण थोडे से—भयभीत प्रेम से परितृप्त नही हुआ था। छुटपन में ही मा के मर जाने के कारण उसने विस्तृत ससार में अपनी एकातता का अनुभव करना सीख लिया था। इसीलिए आत्म-निर्भयता और स्वाभिमान की उसमें काफी मात्रा थी। हठी था, और दूसरो में उजड्ड-पन देखकर खुश होता था।" (पृष्ठ ३७, तृ० स०)

इस प्रकार स्पष्ट है कि उसके (क) शारीरिक स्वस्थता, (ख) जल्दबाजी करने की प्रवृत्ति, (ग) दृढ निश्चयता, (घ) हसमुख स्वभाव, (ङ) स्वतंत्र प्रकृति, (च) एकात प्रेम, (छ) प्रेम की प्यास, (ज) आत्म निर्भयता, (झ) स्वाभिमान, (ञ) हठीपन आदि अनेक गुण-अवगुण हैं।

अहीरिन मा की मृत्यु के पश्चात् सुखलाल को ब्राह्मण होने के कारण उसे भर-पूर प्यार नहीं दे पाता है जिससे वह सदा स्वतंत्र रह, मास्टरी आदि कर, जीवनयापन करता है और ब्राह्मण-सभा के अवसर पर, सुखलाल के रुक्ष व्यवहार से क्षुब्ध एव दुखी होकर अलग रहता है। फिर भी उसमें चारित्रिक बल है और सुखलाल की मृत्यु-सूचना बाद अपना सर्वस्व न्योछावर कर अकथ परिश्रम से राजबेटी के हक के लिए चेष्टा करता है।

प्लेग आदि के समय स्वयसेवक बनकर सेवा-सस्था स्थापित कर, निराश्रित तथा बीमारो की सेवा-सुश्रूषा करना, शवदाह कर्म करना ये सभी दृश्य उसके अदर में बैठी सुधार-भावना प्रकट करते हैं। और डाकू को जनता का दुश्मन स्वीकार कर, लालमन पर आक्रमण करना तथा उसके साथियो को मार डालना उसकी सामाजिक कल्याण भावना प्रकट करता है।

उसके अदर लोभ की मात्रा जरा भी नहीं है तभी तो वह सुखलाल की मृत्यु के पश्चात् उसके धन का हिस्सेदार बन खडा नही होता। वह तो राजबेटी के निमित्त ही मुकदमा लडता है, सब कुछ करता है। और अपना अर्जित धन भी आवश्यकता-नुसार मुकदमे में समाप्त कर डालता है।

यो तो यह एक आदर्शवादी पात्र ही माना जायगा। परतु वह भी मनुष्य है, देवता नही है जिसमें एक भी दुर्गुण न हो। सुखलाल द्वारा तिरस्कृत होने पर, उसकी मृत्यु के पश्चात उसके यहाँ क्रिया-कर्म में अधिक सचेष्ट नही होता क्योकि उसका मन अज्ञात रूप में सुखलाल के व्यवहार से खीझ से भर गया था। इतना तो अवश्य कहा जायगा कि सभी पात्रो में सबसे अधिक सुस्पष्ट और विस्तृत चरित्र-चित्रण आलोच्य कृति में रामचरण का ही हो पाया है।

भिखारी लाल—साधारण और लोभी पुरुष है। *धनीराम* पितृ-हृदय वाला निः सतान व्यक्ति है, जानकी पर पिता तुल्य स्नेह रखता है, लालन-पालन करता है

और व्याह में धन खर्च करना चाहता है। *चंपत लाल* एक युवा परन्तु चरित्रहीन पुरुष है, जो शराब-पान करता है, पैसे के लिए चोरी करता है और इसी लोभ में सुखलाल के धन की प्राप्ति की मनोकांक्षा से एक पंजाबी के हाथ नारी का छद्मरूप धारण कर बिकता है और फिर अपने दुर्गुणो पर पश्चात्ताप कर, जीवन में सुधार लाता है।

राजबेटी और गंगा[1]—ये दोनो मुख्य नारी पात्र है फिर भी इनके चरित्र में गतिशीलता रखने के बावजूद भी उभार नही आया है। ये साधारण मनुष्य-से व्यवहार करते है। गंगा इस दिशा में अधिक उदार और सुहृदय पात्री है जिसका उदाहरण रामचरण और लालमन में युद्ध होने के समय मिलता है, वह अपनी चिंता न कर बीच में आ पडती है। वह हिंसक लालमन से रामचरण की रक्षा निमित्त रामचरण के शरीर से लिपट जाती है जिससे रामचरण की हत्या नही हो पाती है और अंत में रामचरण की पत्नी, सुखलाल की इच्छानुसार, बन जाती है।

'प्रत्यागत' (सन् १९२८)

'प्रत्यागत' एक सामाजिक उपन्यास है जिसमे व्यक्ति, समाज तथा रुढिग्रस्त वातावरण का संघर्ष मार्मिकता एवं सत्यता से व्यंजित है। जहा धार्मिक वातावरण तथा खिलाफत आंदोलन लेकर एक मसजिद में की गई धर्मान्धता और विषाक्त वृत्ति का प्रदर्शन बडा कटु है वहा इसके प्रतिकूल मानवता का सूत्र लिए रहमतुल्ला की स्त्री का अपने पति के मित्र तथा संरक्षक मंगल के प्रति पवित्र तथा आकर्षक कर्तव्य, व्यापक प्रेम का सौंदर्य, गांधीवादी धारा और सात्विक स्नेहशीलता के आकर्षण से महिमान्वित है।

कथानक—बांदा के टीकाराम एक वैष्णव शांत पुरुष थे जिनका दुलारा पुत्र मंगलदास युवावस्थानुरूप[2] उच्छृंखल तथा चंचल व्यक्ति है। एक दिन रामायण पाठ मे नवलविहारी, जो संकीर्तन समाज के संचालक थे, उनके गाने की विधि देख, उसका हसना, और उन्हे 'भैंस की तरह रेंकना' उपाधि से विभूषित कर अपने हमजोली मित्र से कहना, नवलविहारी को ज्ञात हो जाता है। वे क्षुब्ध हो उठते है और दंड देने की प्रतिज्ञा कर संकीर्तन समाप्त कर देते है। टीकाराम को अपने पुत्र का यह आचरण तथा व्यवहार अधार्मिक और अनुचित लगता है अत: उसे भला-बुरा कहते है। परन्तु मंगल अपने को उचित तथा ईमानदार समझता है और पिता द्वारा निकम्मा, कपूत कहे जाने के फलस्वरूप पीडित हो उठता है। पत्नी भी मंगल के प्रति सहानुभूति न प्रदर्शित कर, नवलविहारी को चिढाना अनुचित मान, मंगल को कोई कार्य करने को

---

१. "गंगा १८-२० वर्ष की जवान लड़की थी। इसके सब अंग सुडौल, सुरूप थे। यह भी छुटपन में ही विधवा हो गई थी। इसका बाप सुखलाल का कामकाज किया करता था। इसके मरने पर सुखलाल ने इसका पालन-पोषण किया था। विधवा वह अपने पिता के मरने के पहले हो गई थी। अभी तक दूसरी जगह न बैठी थी, और न उसके मनमें सुखलाल का घर छोड़ने की इच्छा थी।"—(पृ० ७०, द० सं०)

२. 'मित्रलाभ' में स्पष्ट कहा गया है—

यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥

राय देती है क्योंकि इसके निकम्मा बने रहने से पड़ोस की स्त्रियां उस पर टिप्पणी करती हैं। मगल को और भी बुरा लगता है, जो ऐसे क्षण में स्वाभाविक है, और वह विक्षुब्ध हो बम्बई भाग जाता है। वहां अच्छी नौकरी न पाने पर पूना, फिर एक यात्री मुसलमान मित्र के साथ मलाबार पहुंचता है। वहां अपने यात्री साथी मित्र रहमतुल्ला के साथ एक मसजिद में जाता है, जहां उसपर अन्य लोगों को जासूस होने का भ्रमण होता है और वे उसे मुसलमान बना डालते हैं जिससे वह धर्म खिलाफत न करे, मसजिद में आयोजित गुप्त विषयों का अन्यत्र प्रचार न करे। मगल निस्सहाय और भयभीत हो अनिच्छापूर्वक इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेता है और वह मगल खा बन जाता है। मगल का बड़ा परिताप होता है और मृत्यु को वरण करना चाहता है। परन्तु रहमतुल्ला के आग्रह पर और उसके बच्चों और स्त्री का ध्यान कर उन लोगों को सुरक्षित स्थान पर पहुंचाने के लिये रहमतुल्ला के यहां आता है और रहमतुल्ला अपने अन्य सहवर्गियों के साथ गुप्त आंदोलन की योजनानुसार पुलिस पर आक्रमण करता है। मगल खा रहमतुल्ला के परिवार के साथ जब मतव्य स्थान नेचलगद्दी गाव पहुंचता है तो वहां के मुसलमान उसे हिन्दू समझ हत्या करना चाहते हैं, परतु रहमतुल्ला की उदार और कृतज्ञ स्त्री डटकर रक्षा करती है जो उसके पति की इच्छा से उन लोगों को सुरक्षित स्थान पर पहुंचाने आया था। यह अराजकता शीघ्र ही समाप्त होती है। पुलिस स्थिति अधिकार में कर लेती है और नेचलगद्दी पहुंचती है। मोपले भयाक्रांत हो छिप जाते हैं। पुलिस वहां मगल के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष को न देखकर, उसे (मगल को) हिन्दू समझ, उसके प्रति सहानुभूति प्रकट कर, मापलों, रहमतुल्ला आदि का पता पूछती है। उस स्थल पर भी जब पुलिस अफसर मगल को मुसलमान कहता है तो रहमतुल्ला की स्त्री विरोध करती हुई उसकी रक्षा के लिए उसे हिंदू कहती है। जब पुलिस अफसर उसके घर की तलाशी लेना चाहता है तो मगल भी सगर्व उसकी रक्षा करता है। पुनः वह हिरासत में रखा जाता है, और जाच के पश्चात, उसे निरपराधी हिन्दू मान, उसका स्त्री सोमवती के पत्र के आधार पर, उसे वादा भेज दिया जाता है। मगल की मा फूलरानी को जब पता चलता है कि उसका पुत्र आया है तो विह्वल हो उठती है[1] और टीकाराम की अनुपस्थिति के कारण हरीराम नौकर तथा मगल के मित्र बाबूलाल को थाना से ले आने को भेजता है, फिर टीकाराम पहुंचकर छुड़ा लाते हैं।

यहां से कथावस्तु में पुनः नया मोड़ आता है और कथावस्तु गम्भीर तथा अधिक आकर्षक हो जाती है। मगल को पुनः जाति में स्वीकार करने की बड़ी भयानक समस्या उठ खड़ी होती है। वेदोक्त नीति से ब्राह्मण-भोज तथा सत्यनारायण-पूजा द्वारा निष्कृति निश्चित होने पर, मगल पचगव्य ग्रहण करना स्वीकार नहीं करता।

---

१ प्रस्तुत स्थल पर कालिदास कृत 'कुमार सम्भव' की निम्न पंक्तियां स्मरण हो आती हैं। जब कार्तिकेय और मां पार्वती का साक्षात्कार होता है —

स्वर्गापगा पावककृत्तिकादीन्कता जलीनापमतोऽति भूय।
हित्वोत्सुका त स्तनामसाद पुत्रोत्सवे मापपि का न हृषात ॥

—एकादश सर्ग

उसके पिता और माता ही, शास्त्रोक्त व्यवहार द्वारा सर्व विधि अतिरिक्त अन्य कार्यों के मंगल द्वारा सम्पन्न होने पर, पंचगव्य ग्रहण करना चाहते हैं। नवलविहारी जो वहां अपनी धाक रखते थे, इस ढंग के धर्म-परिवर्तन को अनुचित ठहरा कर, टीकाराम के यहाँ हुई घटना से अप्रसन्न लोगों को एकत्र कर इसका विरोध करते हैं। परंतु हेतसिंह और पीताराम तथा अन्य लोग इसके विपरीत विचार रखने के कारण उक्त प्रायश्चित्त का समर्थन करते हैं और टीकाराम का साथ देते हैं और उनके यहां भोज खाते हैं। स्कूल के प्रगतिशील विद्यार्थीगण भी नवलविहारी के विरोध को अन्याय मानते हैं, और उत्साह से भोज में सम्मिलित होते हैं। नवलविहारी के दल के बहुत से व्यक्ति जिनके पुत्रादि उक्त भोज में सम्मिलित हो गए, मंदिर में टीकाराम के भगवान मूर्ति-दर्शन तथा चरणामृत पान के पश्चात प्रायश्चित्त को पूर्ण मान लेना चाहते हैं।

अतएव अब समस्या और गम्भीर हो उठती है। नवलविहारी उन्हें अपने मंदिर में प्रवेश-निषेध करते हैं, चरणामृत से वर्जित करते हैं और पुलिस को सूचना देते हैं। पुलिस उक्त अवसर पर उपस्थित हो, शान्तिपूर्वक दर्शन तथा चरणामृत पान करना चाहती है। नवलविहारी आदि के विरोध से व्यथित अपार छात्र भीड़ तथा जनता उतावली हो मंदिर में प्रवेश करती है। मंगल पंचपात्र उठाकर चरणामृत पी लेता है और अन्य लोगों को पिलाता है। भगवान् का दर्शन भी करता है।

नवलविहारी के अप्रगतिशील दल में मात्र पाँच-छः व्यक्ति ही बच जाते हैं, वे भी बड़ी भीड़ का सामना करने में अक्षम समझ नवलविहारी को वहाँ से लेकर अलग चल देते हैं। नवलविहारी धर्म की ओट ले कुचक्र रचते हैं, ईश्वर की प्रतिमा को उलट कर रख देते हैं और यह प्रचार करना चाहते हैं कि पापी मंगल आदि के मंदिर प्रवेश तथा छात्रों के आचरण के अशुभ परिणाम से मूर्ति स्वयं उलट गई है जो किसी अचानक दैवी प्रकोप का सूचक है। परन्तु, कोई इस बात की सत्यता पर विश्वास नहीं करता, प्रत्युत् सभी उस पर व्यंग-बाण छोड़ते हैं। एक भी व्यक्ति उसका साथ इस परिस्थिति में नहीं देता है। पंचायत का निर्णय नवलविहारी को दोषी ठहराता है। इस प्रकार उसकी पूर्णतया हार होती है। उसके पाप का, कुचक्र का, परिणाम मिल जाता है।

निश्चय ही, कथावस्तु बड़ी रोचकता और स्वाभाविकता से अग्रसर होती हुई चरम परिणति को पहुँचती है। यथार्थपूर्ण वातावरण का निर्माण तथा जिज्ञासापूर्ण मोड़ बड़ी सफलता का द्योतक है। आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कोटि की कला-कृतियों में निश्चय ही इसकी भी चर्चा होगी।

लेखक का मंतव्य है "हमारा समाज ऐसी मूढ़ता में उलझा हुआ है कि आगे बढ़ने में घोर कठिनाई हो रही है। धार्मिक अन्धविश्वास, रूढ़िग्रस्त धारणा, जाति-परिवर्तन आदि ऐसी अनेक समस्याएं है जिनमें भारतीय समाज उलझा है और रूढ़िवादिता, हठवादिता के परिणामस्वरूप सामाजिक प्रगति में गत्यावरोध उपस्थित है। समाज संस्कारगत वैषम्यता, कट्टरपन में आसक्त है तथैव समाज को अत्यंत क्षति हो रही है। जब तक हम परिवेश तथा आवेष्ठन की आवश्यकता और प्रगति

से अवगत न होंगे, हम अपने अहम् में विश्रृंखलित रहेंगे, जडबद्ध रहेंगे, हमारी उन्नति कठिन है। नवलविहारी जैसे कट्टरपंथी, धर्म की ओट में स्वार्थसिद्धि करने वाले पुरुषो का सशक्त विरोध न किया गया तो हमारा कल्याण सम्भव नही। युग-दर्शन, युग-चेतना में रूढिग्रस्तता एक कठिन रोग स्वीकार हो चुका था—वर्मा जी ने भी नवीन प्रतिमानो के अनुरूप समस्या का निदान दिया।

जिस युग में इस कृति की सृष्टि हुई थी वह युग गाधीवाद और आर्य समाज का युग था, जब धार्मिक सहिष्णुता तथा परिस्थितिनुकूल अपेक्षित परिष्कार आवश्यक समझा गया। सामाजिक रूढि का बन्धन अनावश्यक प्रतीत हुआ। हिन्दू-समाज अन्धानुकरण और कट्टरपन के लिए अपनी सहानुभूति को सीमित कर, भ्रष्ट हुए बान्धवो को भी सहलतापूर्वक अपनाना नही चाहता था, क्योकि उसकी दृष्टि में ऐसा करने से धर्म और भगवान की उपेक्षा होती। यदि कोई पुन हिन्दू बनना चाहता तो सनातन हिन्दू-धर्म वडी अन्यमनस्कता से, वडी कठिनाई से उसे अपने धर्म में मिलने देता और मिल जाने पर भी वडी घृणा तथा उपेक्षा से उस व्यक्ति का निरादर करता जिसके दुखद परिणामस्वरूप नित्य अनेक नेक हिन्दू दूसरा धर्म स्वीकार करते जा रहे थे। गाधी जी तथा दयानन्द सरस्वती ने परिस्थिति की कुटिलता को समझ लिया। गाधी जी ने हरिजनो मे समता-भाव निर्माण किया, और दयानन्द ने सशक्त आन्दोलन आरम्भ किया कि कोई भी हिन्दू-धर्म में आ सकता है। वर्मा जी ने युगानुरूप सामयिक स्थिति को मार्मिकता से ग्रहण किया और 'प्रत्यागत' में उसे मुख्य रूप से स्थान देकर, (क) सामूहिक सगठन तथा (ख) विद्यार्थी तथा प्रगतिशील व्यक्तियो का परिश्रम आवश्यक स्वीकार कर निष्कृति का समुचित मार्ग प्रदर्शित किया। मगल भी हिन्दू-धर्म में विद्यार्थियो के प्रगतिशील दृष्टिकोण, परिश्रम तथा अन्य प्रगतिशील व्यक्तियो के सहयोग तथा सामाजिक सगठन की प्रतिकारात्मक शक्तियो से पुन हिन्दू बन सका। मात्र शास्त्रोक्त विधि से वह स्थान नही मिल सकता जो मानवता के लिए, जीवन के लिए, अपेक्षित है। तदर्थ युग की माग और प्रगतिशीलता के अनुरूप चिन्तन और दृष्टिकोण में परिवर्तन और परिष्कार परमावश्यक है—कल्याण हेतु। निष्कर्षत प्रस्तुत कृति में कलाकार का आशावादी दृष्टिकोण स्पष्ट है। यही प्रवृत्ति उनकी अन्य कृतियो जैसे 'लगन', 'भुवन विक्रम' आदि में ध्यातव्य है। उक्त विषम सामयिक समस्या का मूलोच्छेद आशावादिता से स्वीकार किया। भारतीय समाज में यह एक ऐसी विषम समस्या थी जिस ओर हिन्दी के अन्यान्य लेखको के अतिरिक्त अन्य प्रान्तीय भाषा लेखको ने भी अवश्यमेव ध्यान दिया। प्रेमचद-साहित्य में भी देख सकते हैं। आज की प्रकाशित 'बूद और समुद्र' (अमृतलाल नागर कृत) में यह सस्कार जहा महिपाल से सम्बद्ध हो उसे समाप्त कर डालता है, वहाँ वर्मा जी ने पूर्ण आशावादिता को ग्रहण किया।

आलोच्य कृति में जाति-श्रेष्ठता-अभिमान का युद्ध, दलबदी आदि का वडा रोचक चित्रण हेतसिंह, पीतराम आदि के द्वन्द्व में देखा जा सकता है। विद्यार्थी समाज में चचलता और प्रगतिशील भावना का प्रवेश भी समुचित रूप में चित्रित किया गया है। सामाजिक वातावरण के सजीव चित्रण की सफलता वर्मा जी में प्राप्य है।

सामाजिक समस्या के साथ ही लेखक ने मनुष्य के मार्मिक पक्ष का उद्घाटन सफलता से किया है। मेरे विचार में प्रेमपरक साहित्य में जिस प्रकार 'प्रेम की भेंट' सर्वश्रेष्ठ है उसी प्रकार मानवीय भावपक्ष के सूक्ष्मांकन की दृष्टि से इसे श्रेष्ठतम उपन्यास स्वीकार किया जायगा। प्रेमचंद, विष्णु प्रभाकर और शरत ने भी मानवीय क्रिया-प्रतिक्रिया, ममता, प्रेम का बड़ा हृदयग्राही चित्रण उपस्थित किया है। जार्ज इलियट में भी इस पक्ष का सजीव चित्र अंकित है। राजा राधिकारमण के 'पुरुष और नारी', 'संस्कार' आदि उपन्यास इस दृष्टि से पठनीय हैं। जैनेन्द्र में जहाँ इसकी सूक्ष्मता है वहां सरसता का अभाव है।[1] इस अपेक्षित चित्रण में कलाकार की मार्मिक अनुभूति, सहज संवेदना, प्रक्रियाशील तथा ग्रहणशील मन स्थिति अपेक्षित है जो गुण वर्मा जी में प्रचुर है; अज्ञेय, कृष्णचन्द्र आदि की तरह टेकनीक ही मात्र नहीं। माँ के सहज प्रेम, नौकर की स्वामिभक्ति तथा बच्चों के प्रति पुत्रवत् प्रेम, पितृ हृदय का उद्गार, स्त्रियों का धार्मिक बन्धनपरक प्रेम, जातीय अभिमान, संघर्ष, आदि का अंकन आलोच्यकृति में बड़ा सफल तथा यथार्थमय माना जायगा। चरित्र की दृष्टि से प्रस्तुत कृति स्तुत्य है।

कथावस्तु में सत्यानुभव ने लेखक की लेखनी में जादू भर दिया है—"इस कहानी में वर्णित मूर्ति के तोड़ डालने की घटना सन् १९२७ के अंत या १९२८ के आरम्भ की है। उसका जो कुछ निर्णय पंचायत से हुआ, वह सच्ची घटना है। प्रायश्चित्त से और मंदिर में देव-दर्शन के समय फसाद से सम्बन्ध रखने वाली बातें भी सच्ची हैं। मलाबार की जो कथा इस कहानी में कही गई है, वह काल्पनिक है।" (परिचय-लेखक)।

देखिए मंगल की माँ फूलरानी का पुत्र-प्रेम कितना सफल है जो तुलसी कृत रामायण की कौशल्या तथा सूरदास की माता की याद अनायास दिलाती है। कौशल्या, यशोदा में भी मातृवत्सलता का अथाह सागर उभरता दीख पड़ता है।[2] जब मंगल मुसलमान होने के कारण बाड़ा में अलग डेरे में रहने के लिए बाध्य किया जाता है तो माँ फूलरानी तड़प उठती है, अचेत हो जाती है और चेतना लौटने पर पहली बात उसके मुख से यही निकलती है—"कहाँ है मेरा लाल ? रानी मेरा कन्हैया कहाँ है ? उसे बुलादो।" और पुन: नरम आवाज में बोलती है—"एक बार उसे छाती से लगा लूंगी तो जी बिल्कुल अच्छा हो जायगा। बहुत दुबला हो गया है। तूने देखा नहीं ? कई दिन से उसे खाने को नहीं मिला। बीमार रहा है। उसे बुलाओ, नहीं तो मैं पागल हो जाऊंगी।" और जब सोमवती यह कहती है—"माजी, मन को कष्ट न दीजिए। दो एक दिन में सब ठीक हो जायगा। तब तक धर्म का लिहाज तो करना ही पड़ेगा।" तो ममता का हृदय फट पड़ता है। वह कड़ककर कहती है—"चुप चेरया।

---

१ डा० रामरतन भटनागर ने भी कुछ इसी प्रकार के विचार अपनी पुस्तक 'जैनेन्द्र साहित्य और समीक्षा', पृष्ठ ४६ में प्रकट किए हैं—" यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उपर्युक्त वर्णनों के अभाव में जैनेन्द्र की शैली रूखी बन गई है और उसमें औपन्यासिक सरसता का अंग बहुत कम हो गया है।"

२. आधुनिक पंजाबी लेखिका अमृता प्रीतम की कृतियों में इस तत्व का बड़ा सजीव प्रकटीकरण है।

तेरा पत्थर का कलेजा न पसीजा।" सचमुच, यह फटकार बडी मर्मस्पर्शी तथा स्वाभाविक है। प्रेम में पागल व्यक्ति से इसी स्वाभाविक उत्तर की अपेक्षा है।

वह इसी पुत्र-प्रेम के कारण नवलबिहारी के यहा जाकर उससे याचना करती है, मगल के पचगव्य पीने को अस्वीकार करने पर उसके बदले स्वय पीने को तत्पर होती है तथा टीकाराम की अनुपस्थिति में घर पर मगल को बुलाकर (शुद्धिकाल में) निसकोच गले से लगाकर अपनी भावना की सहज अभिव्यक्ति कर देती है।

इस प्रकार उसका चरित्र निष्कपट, उदारमना मा का है जो ससार के धार्मिक आदि सम्पूर्ण बन्धनो से मुक्त हो पुत्र को अपनाना चाहती है। 'अहिल्याबाई' में में भी मातृत्व उद्‌गार व्यजित है, परतु सयमित रूप में। अहिल्याबाई के सम्मुख राष्ट्र, समाज की भी चिता है। निश्छल मातृ हृदय के मार्मिक चित्राकन के लिए सूर का यशोदा विलाप तथा हरिऔध के 'प्रिय-प्रवास' में वर्णित यशोदा विलाप देखा जा सकता है। गोर्की का Mother उपन्यास भी इस दृष्टि से दृष्टव्य है।

फूलरानी में माता वर्ग का रूप समाविष्ट है। क्रिया-कलापो द्वारा, विशेष अभिव्यक्तिकरण के कारण चरित्र अधिक सरल हुआ है। परिचयात्मक न होने के कारण निश्चय ही चित्रण मार्मिक हुआ है। इस दृष्टि से मा (Mother) हृदय के चित्रण में सूर, तुलसी, गोर्की और वृन्दावनलाल वर्मा का महत्वपूर्ण स्थान सुरक्षित है।

दूसरा मार्मिक चरित्र *हरीराम* का है जो नौकर है, मूर्ख (अशिक्षित) है, परतु मगल पर पुत्रवत् अगाध प्रेम रखता है। जब उसे ज्ञात होता है कि मगल बाहर जाने के लिए रुपया चाहता है तो स्टेशन पर पहुचकर अपने परिश्रम से अर्जित धन में से बचाया हुआ रुपया निस्सकोच मगल को देना चाहता है। वह वर्षों के कठिन परिश्रम से जो थोडा रुपया बुढापे के लिए बचा पाया, उसे उदारता से मगल को समर्पित कर देता है। यहा वह कितना महान और त्यागवान दीख पडता है, यह प्रत्येक सहृदय व्यक्ति सोच सकता है।

वह जब सुनता है कि मगल धर्म-भ्रष्ट हो गया है तो उसे विश्वास ही नही होता (*यह स्वाभाविक है कि जिसके प्रति अगाध स्नेह तथा प्रेम रहे उसके दुर्गुणों पर विश्वास ही जल्दी नहीं होता है*[1]) पुन जब वह इस विषय को पूर्णतया जान जाता है तो बिना सामाजिक बन्धन की चिन्ता किये, बिना परिवार की चिन्ता किये, मगल के साथ ही अलग डेरे में रहने लगता है। जहा टीकाराम धार्मिक आचार तथा सस्कार के कारण भयभीत हो मगल के साथ नही रह पाते, वहा हरी मगल के साथ खुलेआम रहकर अद्भुत स्नेह का प्रतीक बन जाता है और प्रेम-परीक्षण में टीकाराम से निसदेह आगे बढ जाता है। जब मगल हरीराम से कहता है—"हरी मैं अब तुम लोगो के काम का नही हू। मुसलमान हो गया हू। यहा आना नही चाहता था। मरने के उपाय किये, परतु निष्फल हुए। यदि तुम लोगो में से मुझे कोई छुडावेगा तो मैं अब जीऊगा नही।" उस पर हरीराम व्यथित हो कहता है—" मुसलमान हो गये, तो

---

१ प्रेम और स्नेह विश्वास को उत्पन्न करता है और यह गुणों के कारण ही उत्पन्न होता है। इसीलिए इस स्थिति का मनोवैज्ञानिक कारण है।

क्या हुआ ? तुम तो मेरे वही दवुआ हो । खबरदार, अब ऐसी बात मत कहना ।"

मगल कहता है—"मुझे अब सदा के लिये बिदाई दे दीजिये । अब किस बात के लिये जऊगा ?"

"हा ! विदा दे दीजिये ।" हरीराम ने कडे स्वर में कहा—"देखू तेरी हिम्मत, कहा जाता है ? जब तक मैं जीता हू, खबरदार जो कहीं भागने का विचार किया ।" और जब उसके जाति वाले उसे भी (हरीराम को) जाति से बहिष्कृत कर देते हैं तो मस्ती में झूमता हुआ, चिन्ताहीन बोलता है—"मा मेरा उन ससुरो ने क्या बिगाड लिया ? मुझे कौन लडके-लडकी व्याहना है । मैंने तो अपनी जात के कुछ पचो से अभी-अभी कहा है कि तुमने मुझे बिरादरी से अलग नहीं किया, बल्कि मैंने ही तुम लोगों को जात खारिज कर दिया ।"

इसीलिए उनकी प्रशसा करती हुई फूलरानी बोलती है—" हरीराम जैसा नौकर भाग्य से ही मिलता है । यदि हरी को सुयोग मिल जाता, तो इसी बार भैया को न जाने देता ।"

हरीराम का चरित्र बडा स्वाभाविक तथा प्रेमपूर्ण है । मगल के प्रति प्रेम का जितना बडा सागर उसके अन्दर है उसका कारण शायद उसका मगल के बाल्यकाल से साथ रहना है । क्योंकि ऐसे बहुत उदाहरण हैं कि जिस बच्चे के साथ मनुष्य रहता है उसके प्रति अगाध स्नेह सदा बना रहता है ।[1]

परन्तु अशिक्षित होने के कारण उसमें मूर्खता भी है । वह अपनी सम्पत्ति बिना सोचे समझे सिपाहियो को देने लगता है ताकि वह मगल को छोड दें, यद्यपि मगल छोड देने के लिए ही वादा भेजा गया था । अपनी इसी निष्कपट मूर्खता के कारण सभा में कह बैठता है कि मगल टीकाराम के घर में ही जाकर मा फूलरानी से मिल रहा है, जिससे टीकाराम आदि को भी प्रायश्चित्त करना पडता है । परन्तु इसमें स्वार्थपरता, या हानि करने की भावना नहीं वरन् निश्छलता ही व्यक्त होती है ।

सोमवती—मगल की स्त्री भी बडी निष्कपट, परन्तु धर्मपरायण नारी है । जब मगल भागता है तो इस समय वह एक पत्र भेजती है, जिससे उसके हृदय के मनोभावो की अभिव्यक्ति स्पष्टतया होती है—"प्राणनाथ ।"

मैं नहीं जानती थी कि ऐसी आसानी के साथ रूठ जाओगे । मैंने कुछ नहीं कहा था तो भी आप बुरा मान गए । मुझे ढीठ आपने ही बनाया है । पर आगे के लिए प्रण करती हू कि कभी भी दुखाने वाली बात न कहूगी । जाते समय एक बार मुडकर भी न देखा । ऐसा आपने पहले कभी न किया था । मैं यदि स्वतत्र होती, तो बाहर निकल-कर, आपका हाथ पकड लेती और फिर मेरी और आपकी यह हालत न होती है । मेरे कारण ही आपको यह सब व्यथा हुई है । मुझे भी जो कुछ व्यथा है, यदि पख होते, तो दुख कहानी कहकर लौट आती । बिना दर्शनों के नरक यातना भुगत रही हू । क्या आप मुझे क्षमा नहीं करोगे ? मैं आपके मन्दिर की पुजारिन हू । आपके कृपा-कटाक्ष की भिखारिणी । पुजापे में दो आंसू चरणों पर भेंट है । यदि हृदय में कुछ दया हो तो

१. निकटता से प्रेम और स्नेह का अटूट होना मनोवैज्ञानिक तत्व है ।

हरीराम के साथ तुरत लौट आइए। बहुत लाज तोड़कर हरीराम के हाथ यह चिट्ठी भेजी है।" इससे उसके सामाजिक बन्धन, लोक लाज, पर भी प्रकाश पड़ जाता है।

बाबूराम मगल की आने की सूचना फूलरानी को देता है और सोमवती भी सुनती है तो वह (सोमवती) कुछ बोलती नही, परतु उसका मौन प्रेम व्यक्त हो जाता है।

"कहा है मेरा लाल! कहा है मेरा छौना!" मा ने दोनो हाथ फैलाकर कहा और दो-चार कदम आगे बढी। सोमवती जरा-सा घूघट डालकर फिर रोटी बनाने लगी। चूल्हे में रोटी न थी, परतु सोमवती ने अगारो पर हाथ डाल दिया। उगलिया जरा जल गई, लेकिन कुछ मालूम न हुआ।" यहा साकेत की उर्मिला की भी बरबस याद हो आती है।

परतु, वह धर्मपरायण स्त्री है। धर्म का जीवन में अत्यधिक महत्व मानती है। जब मगल उसे 'स्त्री' कहकर अगीकार करना चाहता है, तो उत्तर देती है "आपकी स्त्री नही, आपकी धर्मपत्नी हू। ब्राह्मण की कन्या और ब्राह्मण की स्त्री।" धर्म के दृढ बधन के कारण ही वह मगल से स्वतन्त्रतापूर्वक नही मिलती, और मा आदि को भी धर्म पर दृढ बनी रहने की प्रेरणा देती है। फिर भी उसका मगल के प्रति अगाध प्रेम है।

वह साध्वी और आदर्श हिन्दू नारी है। उस पर यह आक्षेप कर सकते हैं कि जब उसका पति धर्म भ्रष्ट हो गया है तो उस समय वह मगल से मिलना नही चाहती। इससे उसके प्रेम की सचाई पर शक प्रकट किया जा सकता है। परन्तु उत्तर स्पष्ट है। सोमवती को विश्वास है कि मगल शीघ्र ही प्रायश्चित्त कर धर्म में मिल जायगा। अतएव धर्म-निर्वाह भी उचित मान ऐसा करती है।[1] यदि मगल का धर्म में न मिलना निश्चित होता तो सम्भव था वह लोक-लाज तथा धर्म की चिन्ता परित्याग कर पतिव्रत पर आच नही आने देती। फिर भी हम देखते हैं कि मगल के प्रति उसका प्रेम सदा वर्तमान रहता है। मदिर की घटना में भी यह स्पष्ट हो जाता है। जब मदिर के पुजारी नवलबिहारी मगल के हाथ से पचपात्र (चरणामृत का पात्र) छीन लेना चाहते हैं, उसी समय सोमवती शीघ्रता से हाथ में पात्र ले लेती है और चरणामृत बाटने की विधि सम्पन्न करती है। उसका चित्र कम पृष्ठों में भी बडा सजीव, कारुण तथा सफल है। समाज में ऐसी धर्मभीरू स्त्रिया देखने को मिलती ही हैं।

---

१ मनुष्य पर कई बातें अटूट प्रभाव डालती हैं जैसे ससार, आवेष्ठन, समाज, अध्ययन-मनन आदि। 'रामरहीम' की बेला भी धार्मिक सस्कार के कारण धर्म को प्रमुख स्थान देती है। सोमवती पर अपने धर्मगत सस्कार तथा वातावरण का ही गहरा प्रभाव है। 'पुरुष और नारी' (राजा राधिकारमण कृत) उपन्यास में सुधा अजीत को प्यार कर भी सदा मौन रहती है। उक्त पुस्तक की भूमिका में राजा साहब ने स्पष्ट लिखा है—" जो आघात अमिट है, उसे नारी की प्रकृति सर नवाकर आचल के तले सहेज लेती है, पुरुष उस प्रलय को पी नहीं पाता, गले से उतरा नहीं कि छाती में आग लग गई। सम्भव है, होश रहते वह उस शोले की लौ को जबान तक उठने नहीं दे, पर नारी तो जान रहते उसे आखों के आइने तक भी झाकने नहीं देती।"

टीकाराम—मगलदास के निष्कपट, सज्जन पिता तथा भोले ब्राह्मण हैं जो अपने इकलौते पुत्र को अत्यधिक प्यार करते हैं। "वृद्ध पुरुष दादा के रहने वाले धर्मभीरु, शात स्वभाव, टीकाराम शर्मा थे। देश की माग पर प्राण न्योछावर कर डालने की बात वह (उनका लडका) अपने मुख से अनेक बार कह चुका था। इसलिए टीकाराम को अपने लडके पर प्यार के अलावा अभिमान भी था। उस हल्के शरीर के सुन्दर मुख युवक पर भी टीकाराम शायद ही कभी नाराज हुए हो। किसी पर भी टीकाराम शायद ही कभी नाराज हुए थे। परतु उनकी ढली हुई आँख जब तिरछी गर्दन के साथ नीची हो जाती है, तब लोगो को मालूम होने लगता है कि बिना किसी तूफान के यह जो कुछ हठ करेंगे, उसका निवारण ससार में सिवा उनके लडके मगलदास के और कोई न कर सकेगा।"

"टीकाराम ने अपने जमाने में फलित ज्योतिष की बारीकियो से इतना रुपया कमाया था कि उन्हें मगलदास के भविष्य की अधिक चिंता न रही थी। ज्योतिष या और किसी शास्त्र की ओर लडके की बहुत रुचि न देखकर और इसकी चपलता में किसी भावी विद्वान की छाया परखकर उसे अग्रेजी पढाई।"....

"टीकाराम वैष्णव थे, इसलिए वैसे भी जप और पाठ में बहुत समय बिताते थे किंतु कुछ दिनो में रामायण के सुन्दर काण्ड का पाठ विशेष रूप से करने लगे थे। टीकाराम के इन शब्दो से यही बोध होता है—(अपनी स्त्री को उपदेश देते हैं)—"देखो धैर्य न डिगने पावे। लडके के मोह में धर्म न खो देना। तुम्हारा बच्चा है, तुम्हें अवश्य मिलेगा। परतु उसे धर्म की सीमा का उल्लघन करके प्राप्त करने की बात जी में न आने देना। उतावली न करो। अभी लल्ला को घर में न आने देना, और न उसके पास जाना।'

"टीकाराम और सब कुछ सह सकते थे परतु दुलारे लडके को भी धर्म और धर्म रूढियो के मार्ग से विचलित होते देखकर सहन नहा कर सकते थे।" वे इसी अपराध में सकीर्तन करते समय मगल के नवलविहारी पर हसने से रुष्ट हो, भला-बुरा कहते हैं, जिससे दुलार से भरे मगल को ठेस लगती है और वह भाग जाता है।

धार्मिकता का ही प्रमाण है कि मगल को धर्मभ्रष्ट होकर लौटने पर शास्त्रोक्त विधि सम्पन्न किये बिना उसे अपने घर मे आश्रय नही देते, शुद्धि का पूर्ण विधान करते हैं, नवलविहारी को धर्म का ज्ञाता और गुरु मान आज्ञा पालन करने चलते हैं। धर्म के प्रति वे कितने भीरु और अप्रगतिशील हैं इसका ही उदाहरण है कि मगल के पंचगव्य न खाने पर वे स्वय उसे खाकर कार्य सपन्न करना चाहते हैं। अपमान-गरल पीकर, नवल के यहाँ कुल्हड मे पानी पीते हैं।

हा, एक सस्कृत के विद्वान, ज्योतिष के ज्ञाता के मुख से यह पूछना कि तुर्की और खिलाफत आदि क्या है, खटकने वाली बात है। एक लिखे-पढे व्यक्ति से ऐसा उचित नही लगता है। इससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि वे पूर्णतया निरक्षर तथा नादान हैं जिन्हें भूगोल और ससार का कुछ भी ज्ञान नही है।

लेकिन उसके पास पितृ-हृदय भी है तभी तो पचगव्य आदि पान करने को तत्पर हो जाते हैं। नवलविहारी की आज्ञा पर नाचते हैं। जब मगल सर्वप्रथम दादा लौट-

कर आता है, उस समय टीकाराम के इस कथन में "अब ऐसा मत करना, घर भर को इस बीच में बड़ा कष्ट रहा।··· जो हुआ सो भूल जाओ। तुम्हारे यहाँ से चले जाने का कारण मेरा कडुआ व्यवहार था। अब कोई तुम से कुछ न कहेगा। चलो भीतर। तुम्हारी माँ देखने के लिए बुला रही है।—" उनकी हृदयगत भावना व्यजित हो जाती है। पुत्र का मुसलमान होना जानकर रो पड़ना भी इसी की सूचना है।

उनके चरित्र-चित्रण में अभिनयात्मक वार्तालाप और परिचयात्मक ढग का सुदरतापूर्वक उपयोग किया गया है।

मनोवेत्ताओ द्वारा मन के दो रूपो (क) Topographical aspect, और (ख) Dynamic aspect को स्वीकार किया गया है। आकारात्मक (Topographical) पहलू के अतर्गत मन के तीन विभाग हैं (i) चेतन, (ii) अवचेतन (Sub-conscious) (iii) और अचेतन मन (Unconscious mind)। फ्रायड (Freud) के मतानुसार मन के गत्यात्मक स्वरूप की तीन श्रेणियां हैं, (1) Id. (ii) Ego (बोधात्मक), (iii) Super ego (आदर्शात्मा)। फूल रानी जहाँ अबोधात्मा की स्थिति में आजाती है, पुत्र-प्रेम के सम्मुख सम्पूर्ण तर्क, भय, प्रतिबन्धो को व्यर्थ प्रतीत करती है उसके विपरीत टीकाराम का चरित्र बोधात्मा (Ego) की स्थिति है, जिसके सम्मुख उचित-अनुचित के परिणाम का भय रहता है। वह चैतन्य पात्र है।

दूसरे पात्र *नवलबिहारी* हैं जो खलनायक के रूप मे आते हैं। 'एक रामायणवादिनी सभा ··· के सभापति, दफ्तर के एक नवलबिहारी शर्मा थे। चढनी अवस्था के एक हट्टे-कट्टे व्यक्ति थे। आँखो में प्रभुता और चेहरे पर मुस्कुराहट खेला करती थी। उन्होने अनेक शास्त्रो को तो न मथा था, परतु अग्रेजी गए जमाने के एट्रेंस तक पढ़ी थी और अपने धर्म का जितना रूप उन्होंने देखा और सुना, उसमें उनका कट्टर विश्वास था। दफ्तर में या बाहर जो कोई उनसे पण्डित जी पालागन कहता, उसे वह इतने कृपालु भाव के साथ आशीर्वाद देते मानो जागीरें लगा रहे हैं। उन्होने अपने मन में करीब-करीब सभी बातो के पैमाने बना रखे थे। उन पैमानो पर जो ठीक न उतरता, उसकी ओर नही तो, उनके जी में खैर न थी।"

"बादा में कई दर्जन रामायण-सभाए थी। उन सबो पर प० नवलबिहारी की कारगुजारी और धर्मरूढता की छाप थी।"

"कठ उनका सामूहिक गायन-वादन के भी लायक न था, परन्तु इससे नवलबिहारी कभी हतोत्साह नही हुए। सब से ऊचा मेरा कठ बोले इस धुन में जब वह रामायण कहते थे, तब उनको यह नही मालूम पडता था कि साथ के गाने वाले सब-के-सब उनके स्वर के पैमाने से बेसुरे हो रहे हैं। प्रति मगल और शनिवार के रामायण-पूजन के बाद फूलो की सभापतित्व-सूचक एक बडी-सी माला उनके गले में डाली जाया करती थी। बडे त्योहारो पर खास तौर से बडी और रग-बिरगी पुष्प-माला उनके गले में डाली जाती थी, उससे उनके नेत्रो की प्रभुता की श्री और बढ जाती थी। उस समय वह आदि से अत तक सतर्कता के साथ देखा करते थे कि कोई रामायण-पाठ में कसर तो नही करता।"

इन वाक्याशो द्वारा नवलबिहारी का चरित्र स्पष्ट हो जाता है। मगल को

धर्म-भ्रष्ट होने पर इतना अडगा लगाना, शास्त्रोक्त विधि का पालन करना, आदि उनके इसी कट्टरपन का परिणाम है तथा मगल के हमने का प्रतिकार भाव है। सचमुच वे ऐसे व्यक्ति हैं जो समाज की प्रगति में उलझन ही उत्पन्न करते हैं। फ्रासिस वैकन के शब्दो में Idote of Caue (व्यक्तिगत विकृति) उनमें प्रधान है, ऐसे चरित्र में सामाजिक परिवेष्ठन, व्यक्तिगत स्वभाव सगठन व सस्कार के उन्नति स्थल होते हैं। ऐसी ही पात्र कूप-मडूकता की सृष्टि करते हैं। ऐसे व्यक्ति भी हमारे समाज में देखे जाते हैं जो रूढिग्रस्त धारणा के फलस्वरूप समाज को अगति की ओर उन्मुख करना चाहते हैं। नवलविहारी का स्पष्ट विचार—"जैसे नकटे, लूले, और लगडे के अग चले जाने पर फिर वापस नहीं आते, ठीक वैसे ही छोडी हुई जाति फिर कैसे मिल सकती है।" उनका विश्वास था—"यह तो कलयुग का प्रभाव ही है। उत्तरोत्तर नाश की ओर ससार बढा चला जा रहा है। कर्म की गति कलियुग के अत में प्रलय होने पर जब फिर सृष्टि की रचना होगी, तब सब में फिर वर्णाश्रम का आविर्भाव होगा। पुन वही सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग का चक्र चलेगा। इसीलिए तो मेरी तो ध्रुव धारणा यह है कि चाहे अत में एक ही हिंदू क्यो न बने, परतु हो वह नितात पवित्र और शुद्ध।"

ऐसे व्यक्ति पराजय की स्थिति में इतने भयानक, काइया और हिंसक हो उठते हैं कि यदि सामूहिक प्रतिरोध न किया जाए तो वे समाज-शरीर को सर्प के डस से विरक्त और मरणासन्न कर दें। जब फूलरानी भी उनके पैरो पर गिरकर मगल को अभिशाप मुक्त करने को कहती है तो भी वे नहीं पसीजते। जब सम्पूर्ण समाज उनका विरोधी बनकर उनके आचरण पर व्यगबाण तथा तिरस्कार करना आरम्भ करता है तो वे नृशस बन सिपाहियो की सहायता ले समाज को कुचलने का निष्फल प्रयत्न करते हैं, दूसरो पर मुकदमा चलाते हैं। उनकी अनुदारता का ही चिह्न है कि जब मगल और नाथूराम उनके गाने के स्वर पर हस पडता है तो धार्मिक आड ले उन पर अपराध लगाते हैं, उनका प्रतिशोध करना चाहते हैं और इसी आचरण में सदा तत्पर दीख पडते हैं।

उनके काइयापन का ही उदाहरण है कि सामाजिक सहानुभूति मगल की ओर देख, ईश्वर की मूर्ति को उलटा खडा कर और अन्य भ्रामक तथ्यो का प्रचार कर मगल पर दोषारोपण करना चाहते हैं, सामाजिक सहानुभूति अपनी ओर आकृष्ट करना चाहते हैं। परन्तु उनका चरित्र सदा के लिए परास्त हो जाता है। वे अपनी अमानुषिक दुर्वृत्तियो के परिणाम पराजय की शृखला में जकडे रहते हैं, भर्त्सना सुनते हैं। 'अहिल्या बाई' का मल्हारराव भी कुछ इसी प्रकार का दुश्चरित्र और पराजित पात्र है।

फिर भी यह सत्य है कि उनका चरित्र जीवत और स्वाभाविक लगता है।

मगलदास—आलोच्य कृति का मुख्य पात्र है जिसके जीवन की आधारशिला पर उपन्यास का महल अवस्थित है।

मगलदास के लिए हम वर्मा जी के ही शब्दो मे 'युवा', 'चचलवृत्ति' 'साहस-प्रवृत्ति' लाड-दुलार से बिगडा हुआ बालक आदि विशेषणो से सबोधित कर सकते हैं जिनकी विशिष्टता पर प्रस्तुत उपन्यास की घटनाए आदि अग्रसर होती हैं।

एकलौता पुत्र अत्यधिक प्यार प्राप्त करने के कारण बिगड जाता है, यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। वह इतना उच्छश्रृखल हो उठता है कि नवलविहारी को बेसुरा गाते देख 'भैंस की तरह रेंकता' कह कर हस पडता है। और पिता के सम्मुख भी स्पष्ट कहता है—"मैंने यह तो नही कहा था कि नवलविहारी गधे की तरह रेंकता है।" यह सब नटखटपन के ही उदाहरण हैं। पचगव्य स्वीकार न करना, और नवलविहारी के मदिर में ही भगवान दर्शन करने की प्रतिज्ञा करना, उसकी बाल-सुलभ हठता है।

युवावस्था होने के कारण स्वाभाविक रूप में उसके अदर स्वतत्रता की लहर है। अग्रेजो के प्रति क्रोध-आक्रोश है। जब टीकाराम पूछते हैं—"ब्राह्मण का लडका होकर तू खिलाफत-विलाफत के झगडे में क्यो पडता है?" वह उत्साहित मनस्थिति में उत्तर देता है—"देशहित के बाधको का उससे सवरण होगा, केवल इसीलिए, वैसे तो मै इस शब्द का ठीक-ठीक अर्थ भी नही जानता।" और इसी सिलसिले में वह खिलाफत आदोलन में अपने यहाँ कमेटी के सयुक्त मत्री पद पर कार्य भी करता है।

मानापमान का उसे पूरी तरह ज्ञान है, जब सोमवती उसे यह सुनाती है कि उसे ऐसे बैठे रहना उचित नही तो प्रतिक्रियावादी और चचल व्यक्ति की तरह घर छोड भाग खडा होता है।[1]

वह उदार पुरुष है। जब उसे मा का स्मरण होता है, तो उसकी आत्मा विलाप कर उठती है और रहमतुल्ला जिसकी गलती से वह मस्जिद में जाकर मुसलमान बना लिया जाता है, उसके घरपर जब पुलिस अधिकारी घर की तलाशी लेना चाहते हैं तो वह उसकी रक्षा के लिए दृढ हो अपनी महानता और मनुष्यता का परिचय देता है।

मगलदास युवा-समाज का पूर्णतया प्रतिनिधित्व करता है अतएव उसे वैयक्तिक कोटि के पात्र में परिगणित नही कर सकते। इसका चरित्र गतिशील तथा अपेक्षित परिवर्तन स्वीकार करता चलता है। बाँदा में पुन वापस आने पर उसके स्वभाव में कुछ मात्रा में अन्तर आ ही जाता है। वह अपने को हेय तथा पीडित समझने लगता है जो एक धार्मिक ससार में पले व्यक्ति से आशा की जाती है और इसी सिलसिले में वह कुछ शान्त भी हो जाता है।

'कुण्डली चक्र' (सन् १९२८)

यह एक आदर्शवादी सामाजिक उपन्यास है जिसमें मानव-जीवन के ज्वलत सामाजिक पहलू तथा पाश्चात्य सिद्धात *Survival of the fittest (Darwin's theory)* "निर्बल सबल का भोज्य होगा" का गहरा विरोध और उसके अतर्गत विनाशक रूप का सुन्दर चित्रण है। कल्पना, सत्य और सुन्दर का समन्वय प्रस्तुत कृति में भी प्राप्य है—'अजित कुमार और पूनो के सबध की घटनाए जो इस उपन्यास में लिखी गयी हैं, सच्ची हैं, परतु थोडे मे हेर-फेर के साथ। •ललित कुमार सदृश चरित्र

---

१. नारी के वाक्य से अधिक क्षुब्ध हो उठना मानवीय सत्य है। कहा जाता है तुलसी और कालिदास भी नारी के विरोध से प्रतिकूल दिशा में बह गए।

समाज में मिल सकते हैं परन्तु, वह कल्पित व्यक्ति है।"[1]

ललित सेन जैसे अध्ययनशील, परन्तु अव्यवहारिक मनुष्य का बिना उचित चिंतन किये एक सुन्दर युवक भुजबल से अपनी प्रिय बहन रतन का परिणय-संस्कार सम्पन्न करना, पुन: भुजबल की अपनी चारित्रिक भ्रष्टता के कारण शिवलाल जमींदार की जमींदारी हड़पने तथा ललित के धन को ऐंठने की उनकी घर्नीभूत लालसा, अजित का, रतन के मास्टर का मौन आदर्श प्रेम, निर्वाह, ललित सेन द्वारा तिरस्कृत किये जाने के बावजूद भी भुजबल का जमींदार, वासनाधीन शिवलाल को पत्नी के वर्तमान रहने पर भी शादी का प्रलोभन देकर उसके खेत और धन लूटने का चक्र, भुजबल की निर्दोष साली का भुजबल जैसे उचक्के से निस्त्राण का सफल प्रयत्न आदि बड़ी ही रोचक तथा सामाजिक घटनाएं हैं, जिसके चित्रण में वर्मा जी को सफलता मिली। दुलारे लाल ने तो यहाँ तक कह दिया है—"बाबू वृन्दावनलाल हिंदी के बहुत ही श्रेष्ठ उपन्यास लेखक हैं। हमारी राय में 'कुंडली चक्र' उनका सर्वश्रेष्ठ सामाजिक उपन्यास है।" परन्तु मैं उनके इस कथन से पूर्ण सहमत नहीं हूं क्योंकि 'प्रत्यागत', 'प्रेम की भेंट', 'लगन', 'अमर बेल', इस उपन्यास से अधिक सफल हैं। परन्तु इस कथन में अपनी रुचि का भेद है। और इस दृष्टि से दुलारे लाल जी दोषी नहीं ठहराये जा सकते।

कथावस्तु संक्षेप में इस प्रकार है। ललित सेन धनी परन्तु अव्यवसायी होने के कारण स्वयं विवाह नहीं करता और अपनी एक मात्र बहन को अत्यधिक स्नेह करता है तथा अजित नामक एक युवक को, अपनी बहन रतन को पढ़ाने तथा संगीत-शिक्षण के लिए नियुक्त करता है। अजित रतन के प्रति सहज रूप में आकृष्ट होता है और अपने हृदय-मंदिर में उसकी मूर्ति को अधिष्ठित कर लेता है। परन्तु ललित यह ज्ञात कर (अजित रतन को प्रेम करता है) उसे निकाल देता है। भुजबल नामक अत्यंत प्रपंची और लालसासक्त व्यक्ति अपने मालिक शिवलाल जमींदार के निमित्त ऋण मांगने ललित सेन के पास आता है परन्तु ललित सेन अस्वीकार कर देता है। भुजबल अपनी साली के लिए टीपन ललित सेन से मांगता है, परन्तु ललित सेन के आग्रह पर मात्र ललित के धन की लोलुपता के आवेश में वह (भुजबल) रतन से ब्याह सम्पन्न करता है।

भुजबल के मालिक शिवलाल की जमींदारी कर (tax) न देने के फलस्वरूप नीलाम होने को होती है। भुजबल ललित सेन को अपनी चालाकी से चंगुल में फांस कर दस हजार में कुल जमींदारी को खरीद लेता है और ललित अपनी बहन से अगाध स्नेह रखने के कारण बहन के नाम ही उसे खरीदता है। शिवलाल को भी अपनी साली पूर्णिमा से, एक पत्नी (wife) के वर्तमान रहने पर भी, ब्याह कराने का लोभ देकर कुछ भाग पूर्णिमा के नाम लिखा लेता है और स्वयं पूर्णिमा से शादी करने का चक्र रचता है। पूनो भुजबल के चरित्र आदि से अवगत होकर, इस अत्याचार से त्राण के निमित्त अजित कुमार को, जिससे भुजबल के कारण ही परिचित हो

---

१. कुण्डली चक्र, परिचय—लेखक।

चुकी है, अपनी रक्षा के लिए निमंत्रित करती है। अजित मात्र उसके उद्धार के लिए उसके ग्राम में पहुंचकर उसे अपना लेता है। ललित सेन को शिवलाल द्वारा यह ज्ञात कर कि भुजबल पुनर्लग्न कर रहा है, भुजबल के पास पहुंचकर उसे लज्जित करता है।

प्रस्तुत कृति में भूत-प्रेत की भावना से ग्रामीण कितने भयभीत रहते हैं इसका बड़ा सुस्पष्ट तथा सफल चित्रण है। वे शंकाग्रस्त हो, तर्क शक्ति का बिना उपयोग किये, उसके अस्तित्व में विश्वास कर मस्त रहते हैं। बुद्धा आदि को यह विश्वास इतना भयभीत बना रखता है कि वे इसके विरोध में अपनी किंचित शक्ति का प्रयोग करना अनर्थकारी समझते हैं। 'टूटे कांटे' में भी इस तत्त्व का सफल समावेश है। अमृतलाल नागर के 'बूंद और समुद्र' उपन्यास में भी यह तत्व उचित रूप में देखने को मिलता है। अन्ततोगत्वा असत्य पर सत्य की विजय होती है। अव्यवहारिक ललित सेन जो पाश्चात्य दर्शन से प्रभावित हो यह स्वीकार करता है "फोड़े-फुंसी यदि शरीर में अधिक दिनों घर कर जाय, तो सारा शरीर सड़ जाय।" परंतु, परिस्थिति के संघर्ष-पूर्ण अनुभव में इस भ्रामक सिद्धांत का परित्याग कर स्पष्ट बोलता है—"निर्बल प्रबल हो सकते हैं और होंगे। और एक दिन यह सारी ऐंठ खाक में मिल जायगी।"

इस प्रकार 'कुंडली चक्र' में मानवीय लालसा-जनित-हिंसा, वासनामूलक प्रवंचना, ग्रामीण दैन्य-दारिद्र, मात्र अध्ययन की अव्यवहारिक परिणति, नारी-जीवन के नैराश्य, तथा उपचार से निष्कृति का मार्ग आदि विषयों का बड़ा ही मार्मिक चित्रांकित है। स्मरण रहे, सामयिक नारी-समस्या, तथैव उसके अवांछित परिणय-संस्कार का दुष्परिणाम और अपने त्राण के लिये नारियों की तत्परता एवं कर्त्तव्यनिष्ठा आवश्यक निरूपित कर लेखक ने वर्तमान युग को संदेश दिया है। आज के एकांगी शिक्षण की निस्सारता और असफलता का बड़ा ही स्वाभाविक रूप ललित सेन के माध्यम से दृष्टिगत होता है।

कथानक का विकास और प्रगति स्वाभाविक ढंग से उपस्थित किया गया है। कथानक में घटनाओं का उसी प्रकार महत्व प्रतिष्ठित है जिस प्रकार किसी जीवन में उद्बुद्ध होकर महत्व की अधिकारिणी सिद्ध होती है।

आलोच्य कृति का प्रकाशन काल (१९३२) वह काल है जिस युग तक खड़ी बोली को काव्य की भाषा की स्वीकृति में अनेक विरोध उपस्थित किये जाते थे। तत्कालीन मानसिक स्थिति का विरोध देखें—

"हिंदी में आपने किस विषय का अनुशीलन अधिक किया है?"

"काव्य का अधिक किया है। जिसको खड़ी बोली कहते हैं, उसकी कविता मुझ को पसंद नहीं है। क्या करूं, रुचि के ऊपर वश नहीं चलता। उसमें ब्रजभाषा की ललक या चटक नाम मात्र को नहीं है।"

"मुझे भी खड़ी बोली की कविता से बहुत प्रेम नहीं है। शायद उसका कारण यह है कि मैंने सिवा कुछ पत्र-पत्रिकाओं के उस बोली के ग्रन्थ नहीं पढ़े।"

"अजी साहब, उसको किसी से सुनिये तो ऐसा मालूम पड़ता है मानो कंकड़ बरस रहा हो।"

"ब्रजभाषा की कविता में आपको कौन कवि सबसे अधिक हृदयग्राही जान

पडते है ?"

"ग कि तो ब्रजभाषा के मेरे लिये सभी अगाध्य है । सभी को थोडा-बहुत खूब पढ़ा है। परन्तु विषय नायिका भेद ब्रजभाषा में खूब कहा गया है। गजब कर दिया गया है ।"

अजित जरा सोचने लगा।

भुजबल ने कहा—"बिहारी और रत्नाकर का लालित्य मुझे बहुत चुभता है।"

"मुझे तुलसी और सूर बहुत मनमोहक जान पडते है।"

जमींदारों के, मात्र अपने विलास की प्रतृप्ति और स्वार्थ की सिद्धि हेतु, किए गए नृशंस व्यवहार, साधारण दरिद्र किसानो को सतप्त करने की प्रवृत्ति, अपनी गिरती हुई स्थिति पर समुचित ध्यान न देकर विलासिता के नद में तैरते रहना, और समग्र विशृंखलताओ-उच्छृंखलताओ की परिसमाप्ति शिवलाल के क्रिया-कलापो और परिणिति में देख सकते हैं। वह अकर्त्तव्यशील, अविवेकजनित विलासिता का प्रतीक है।

भाषा की दृष्टि से हम स्पष्टरूपेण कह सकते है कि इस कृति की भाषा भी सहज और सर्वप्रचलित है। इनकी ऐतिहासिक कृतियो के सदृश ही सामाजिक उपन्यासो में भी भाषा प्रयुक्त है और यत्र तत्र आचलिक भाषा के उदाहरण भी मिलते हैं। ग्रामीण युवतिया बातें करती हैं :

लडका ने पूनो से पूछा—"जे के आय ?"

पूनो ने धीरे से कहा—"धावनी के रासधारी आए हैं। अथएं रास हुई हैं।"

ग्रामीण अशिक्षित वर्ग की बोली देखें

भुजबल ने दूसरी ओर देखते हुए कहा—"तुम लोग ऐसे थोडे ही मानोगे। जब सिर पर जूते बरसेंगे, तब होश ठिकाने आवेगा।"

वुद्धा ने कहा—"काए पनैयाँ मार लियो। हमखों तुमाओ राज छोंडकें अत कऊँ क्षेरक नो जानैं।"

भुजबल—'हा, हमारी जमीदारी की ही छाती पर होला भूनते रहना। अगर दो दिन के भीतर लगान न दिया, तो खाल उडा दूगा।"

पैलू ने कह—"जियत रान दो भैया मात्र। जियत रैवा, तो आपुन को न्याई दै दैंवी। खेती मे तो आसो की साल कछू बक रे ई नइयां। वीं लगावा। काढ़ मूमकैं अब लो पेट भरो जब कछू नई रआ, तब मालकन नो भगे गए।"

आलोच्य कृति में व्याकरण की गडबडी पर्याप्त मात्रा में है। हा, यह विचारणीय है कि ग्रामीण जीवन की जो स्थिति, विशृंखलना और किसानो तथा जमींदारो के मध्य बडी स्वार्थ और अहम् की गहरी रेखा है वह वर्मा जी की दूसरी कृति 'अमर बेल' में विराट रूप से, अधिक सुस्पष्ट रूप में, उभरकर पाठको के सम्मुख आई है। मेरी दृढ धारणा है कि बहुत से तत्व जो प्रस्तुत कृति में बीज रूप में दृष्टिगत होते हैं उनका पूर्णतया प्रस्फुटन तथा वक्ष रूप में परिणति आगे चलकर अन्य कृतियो में है। जैसे मान प्रेम 'विराटा की पद्मिनी' में व्यक्त हुआ है। निश्चय ही निरन्तर क्रमिक विस्तार और व्यापकत्व उनके साहित्य में पाते हैं।

वार्तालाप का प्रयोग पात्रान्वित मनोवृत्तियो को प्रतिबिम्बित करने वाले

जिनमें अनावश्यक बडी-बडी बातें नही उठाई गई है जैसा कि प्राय: आज के उपन्यासो में देखा जाता है। जहाँ एक ओर आज के, नवीनता के फेर में पडे उपन्यासकार, भावपक्षीय महत्व से अधिक परिश्रम टेकनीक पर कर रहे है, वहाँ वे उपन्यासकार स्वय अपने रचे जाल में उलझते जा रहे है। 'तीन वर्ष'[1] में इसी प्रकार अनावश्यक अनेक तर्क-वितर्क को उठाया गया है और अनिश्चित निष्कर्ष पर छोड दिया गया है। 'शेखर एक जीवनी',[2] 'जहाज का पछी'[3] में यह दोष पर्याप्त है। जार्ज इलियट के दार्शनिक एव सैद्धान्तिक तत्वो से पूर्ण उपन्यासो में भी यही प्रवृत्ति है और जिन पर दोशारोपण किया जाता है, क्योंकि वे पिछले उपन्यास शुष्क और दार्शनिकता के बोझ से अरुचिकर प्रतीत होते है। प्रेमचन्द ने तो स्पष्ट लिखा है—"उपन्यास वही उत्तम होता है, जो स्वाभाविक और रुचिकर हो। विद्वता के लिए यहा बहुत कम स्थान होता है। चरित्रो की मीमासा अवश्य उपन्यासो में होनी चाहिए, किन्तु इतनी जटिल और सूक्ष्म नही कि प्रत्येक वाक्य और विचार की छान-बीन की जाए।"[4] वृन्दावनलाल वर्मा में एक दिशा है जिसका सहज विकास, परिष्कार महत्वान्वित है, जो हिन्दी का प्रत्येक आलोचक स्वीकार करेगा। उनके कथानक में अनिश्चित और अनावश्यक वितर्क को स्थान नही, और इस दृष्टि से वर्मा जी प्रशसा के पात्र है। आगे चलकर 'अचल मेरा कोई' में कुछ तर्क-वितर्क उठते है। परन्तु वे कथानक मे व्याघात उत्पन्न नही करते और न उनका अनपेक्षित विस्तार ही है। इलाचन्द्र जोशी, डा० देवराज, अज्ञेय, यशपाल में पाश्चात्य साहित्यानुराग तथा प्रभाव के मूलभूत कारण टेकनीक का वैविध्य द्रष्टव्य है, उसे वर्मा जी विशेष महत्वपूर्ण नही मानते। वर्मा जी इसीलिए लिखते हैं—"कथानक का चयन अपनी भावना की प्रेरणा से होता है। चरित्र बहुधा पहले आ जाते है। कभी कथानक के साथ-साथ। हिन्दी में प्रेमचन्द के कुछ उपन्यास पसद है। अन्य लेखको के सम्बन्ध में कुछ नही कह सकता······।"[5] वर्मा जी भावपक्ष को कदापि विस्मरण नही कर पाते अत: इस दृष्टि से इनकी कृतियो में भावपक्ष का पलडा कलापक्ष से अधिक झुका हुआ दीख पडता है। प्रसगवश यह भी कह दू कि टेकनीक की नवीनता का आग्रह या प्रलोभन वर्मा जी में न होकर भी उनमें चित्रण और अकन की अपूर्व दक्षता है। वे जो चित्र खीचते है वह बडी सशक्तता, तन्मयता और मार्मिकता से, और यह उनकी साधना की सबसे बडी सिद्धि है। चार्ल्स लैम्ब की 'Dream Children' रचना में भी यही सफलता है। उसमें जो भाषा की सहजता और चित्र की मार्मिकता है वह किसी भी सहिष्णु पाठक को मर्मस्पर्श किए बिना नही रहती। परन्तु, वर्मा जी की कला जीवन के लिए है जो अनुपेक्षनीय है, विचारणीय है।[6]

---

१ भगवती चरण वर्मा कृत। २ अज्ञेय रचित। ३ इलाचन्द्र जोशी कृत। ४. सुखदास, पृ० ८ देखें। ५ वर्मा जी का पत्र मेरे नाम, दिनाक २०–१०–५७ (झासी से)।

६ *The Listener* (१९३५) में Sir Desmond Maccarthy ने *Elia After a Hundred Years* शीर्षक निबध में स्पष्ट लिखा है—"··Again, as far as style is concerned, though his graces are not those most in favour at the

वर्मा जी की अन्य कृतियों के सदृश 'कुण्डली चक्र' में आकर्षक प्राकृतिक दृश्य चित्रित है जो पहाड़ों के समीपवर्ती स्थान के हैं। कथानक की भूमि भी उसी प्राकृतिक मध्य का है।

एक मुग्धकारी स्थल देखें—

"पश्चिम क्षितिज के ऊपर हलकी लाल-पीली रेखा थी। अन्धकार मंडल बांधकर प्रवेश कर चुका था। भूमि की समता और विषमता बिलकुल विलीन न हुई थी, परन्तु पेड़ों के बड़े-बड़े समूह और टौरियों को छोड़कर धरातल एक फैली हुई दुर्वास्थली-सदृश भान होता था। नक्षत्र चमक रहे थे, अपने क्षीण प्रकाश से तमोराशि का छेद-भेद करने में विफल प्रयत्न हो रहे थे। तालाब की लम्बी चांद के सिरे तिमिर मंडल में बिलकुल लुप्त नहीं हो पाये थे, परन्तु उनकी सीमाएं अंधेरे की कोर में दब गयी थीं। पेड़ों से थोड़ी दूर तक कुछ-कुछ दिखलाई पड़ता था, परन्तु और आगे की वस्तुएं पर तो निशा बरस-सी रही थी। उस एकान्त में वह स्थान शान्त और विश्राममय जान पड़ता था। पीपल के पत्तों की रह-रहकर होने वाली खरखराहट सुनसान अंधेरे को कभी-कभी आन्दोलित कर देती थी। दूरी पर स्यारों के शब्द उस सन्नाटे को और भी गम्भीर बना रहा था। एक ओर चकरई की टौरिया, दूसरी ओर सिगरावन की पहाड़ी का वक्राकार सिलसिला और जलराशि तथा झाड़ी की अस्पष्ट सीमाओं ने उस स्थान को एक बड़े आंगन का रूप दे रखा था। उस निश्चेष्ट, निःशब्दप्राय, आलोकरहित स्थान में अजित को केवल अपने पैरों की आहट सुनाई पड़ रही थी। गांव में जो कुछ थोड़ी-सी चहल-पहल थी, वह इतनी प्रबल न थी कि यहाँ पर स्पष्ट सुनाई पड़ती।"[1]

आलोच्य कृति के प्रमुख आधारित पात्रों में भुजबल, ललित सेन, अजित, शिवलाल, पैलू, बुद्धा, लाल सिंह (मामा), रतन, पूर्णिमा (पुनो) आदि हैं, और सभी अपनी भिन्नता द्वारा वैयक्तिक अस्तित्व की सुरक्षा करते हैं।

रतन—नारी-पात्रों में भारतीय आदर्श नारी की प्रतीक है, जो अपने अभिभावकों के इच्छित पुरुष को सौभाग्य स्वरूप, पति बनाना स्वीकार करती है, परंतु अपने अंतर की समग्र कामनाओं और लालसाओं की अग्नि में दग्ध विष को, निर्मूक बनी, आत्मसात कर लेती है। उसे अप्रत्यक्षत अजित से प्रेम है, परंतु अपने इच्छा-पुष्प को, अपने भाई ललित सेन के मनोनुकूल कुचलकर, वह भुजबल का स्वीकार कर लेती है, यद्यपि इससे उसका संपूर्ण जीवन हलाहलमय हो जाता है; प्रेम-विहीन हो जाता है, परंतु उसके लिए "पति ही पत्नी की गति है" और जब ललित भुजबल के दूषित

---

moment, the triumphs of his (Charles Lamb) style are clear to all who understand the art of writing It is very bookish style, he has a very mannered manner. Lamb always writes as one to whom words are delight in themselves, and though no one cared more genuinely for the things he wrote about, joy lay for him in the manner of describing them. He is distinctly an art for art's sake writer.

१. कुण्डली चक्र।

आचरण से क्षुब्ध हो उस पर आघात करना चाहता है तो उस स्थल पर उसकी दृढ़ता एक महत्व उद्घाषित करती है—

ललित ने कहा—"कैसा दाह हो रहा है। तबीयत चाहती है कि गोली मार दूँ।" रतन काँप गई।

कोमल कातर स्वर में बोली—"किसको ?"

"उसी को, उस राक्षस को, जिसने मेरी माँ की बेटी की यह दुर्गति की, जिसने मेरे माँ-बाप की महिमा को पैर के तले रौंदा"—ललित ने कधे हुए गले से कहा।

" यदि किसी की जान पर आ बनी तो आप मुझको मरा हुआ पावेंगे। इसमें किसी तरह का सदेह न करना।"—यही रतन का, भारतीय आदर्श प्रतिष्ठापिका का स्वर है और इसी पर ललित कहता है—"रतन, तू देवी है। हम लोग मनुष्य हैं।" प्रस्तुत स्थल पर राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की सुधा ('पुरुष और नारी' उपन्यास) की स्मृति हो आती है जो अजित के प्रति निष्ठा और आस्था रखकर भी अपने पति पन्नालाल के दिये सुहाग को सर्वदा तेजपूर्ण रखती है, भले ही इसके लिए उसे निरंतर कष्ट सहते रहना पड़ता है। और 'संस्कार' (राजा राधिकारमण कृत) की नायिका इसी सुहाग पर लग गये काले दाग के कारण अपना जीवन समाप्त कर डालती है।

रतन सुंदर और शिक्षित है, उसे संगीत का भी शौक है। और उसके संगीत और अक्षर य ज्ञान के लिए ही अजित नियुक्त किया जाता है। तथैव घनिष्ठ संपर्क के कारण दोनों का परस्पर प्रेमाभिभूत होना, अनिवार्य मानवीयता है, नैसर्गिक दशा है, भले ही यह दुर्गुण हो या गुण। निश्चय ही वह त्यागमयी नारी है। वह भुजबल का प्यार न प्राप्त कर भीतर-ही-भीतर घुलती रहती है, परंतु शिकायत नहीं करती। इसका कारण भारतीय संस्कार है। खाडेकर के मराठी उपन्यास 'क्रौंचवध' की नायिका सुलोचना विवाहित होकर भी पूर्व प्रेमी को कष्ट में देख त्राण के लिए सन्निध्य हो जाती है, अपने पति से संबंध विच्छेद-सा कर लेती है, परंतु रतन अजित के दुर्व्यवहार से सर्वथा आक्रांत रहकर भी मौन बनी रहती है, अपने विवाहित पति का शुभ उसके लिए सब कुछ बना रहता है। प्रो० खांडेकर के 'दौलत' में निर्मला भी पतिव्रता आदर्श से डिग जाती है, धनंजय को छोड़कर अविनाश की ओर आकृष्ट होती है। परंतु रतन बिलकुल दूसरे ही विचार की प्रतिमा है। ऐसी स्थिति में, अपने प्रकृतिगत वैशिष्ट्य के कारण—जहाँ सामान्य वर्गगत नारियाँ, पति के प्रेमाभाव में दुःख या मानसिक पीड़ा व्यक्त करती हैं,—वह उसके विपरीत चरित्र निर्वाह करती है। फिर भी इतना स्पष्ट है कि उसके चरित्र का विस्तार से चित्रण एवं अंकन लेखक ने नहीं किया है।

उसे संगीत का ज्ञान है और साथ ही मधुर कंठ का वरदान भी, जिसे दूर से ही सुनकर रसिक शिवलाल प्रशंसा कर बैठता है। उसमें मनोवैज्ञानिक तथ्यानुसार उसके अतृप्त प्रेम की, आतरिक संघर्षों और पीड़ाओं की अभिव्यक्ति अप्रत्यक्षतः संगीत के माध्यम से होनी चाहिए थी, परंतु ऐसा लेखक ने नहीं दिखाया है, जो खटकनेवाली बात है।

पूनो (पूर्णिमा) कालिदास की शकुंतला-सी ग्रामीण, स्वच्छ बाला है। "हिरणी के बच्चे-सरीखी बड़ी-बड़ी आँखें, प्रभातकालीन गुलाब जैसा मुख और भोली अल्हड़

चववन।" और अजित को ऐसा आकर्षण प्रतीत हुआ—"••जैसे प्रभात वल्लिका मो'र हिमकणो की रोमवलि और सीताफलो पर प्रकृति की छिटकी हुई सफेद बुकनी की रेखाएं उनके आतरिक अक्षुण्ण स्वास्थ्य का लक्षण है, वैसे ही पूना का ज्योतिर्मय मुख था।"

पूनो और रतन नारी जीवन के दो पहलू हैं, दो रूप हैं। एक जहा शात हो हलाहल पान कर लेती हैं, वहा दूसरी विद्रोह करती है। भुजबल, जब एक स्त्री की मृत्यु के पश्चात् रतन से ब्याह कर, पुन रतन के जीवन-काल में ही अपनी लालसा, वासना तथा स्वार्थ की पूर्ति के लिए पूनो को भी अपनी पत्नी बनाना चाहता है, तो पूनो विरोध कर, अजित को निमत्रित कर, उसे (अजित को) ही पति स्वीकार करना चाहती है। परतु उसके चरित्र में अभारतीयता नहीं है।

पूर्णिमा में ग्रामीण बाला का सहज सौंदर्य अभिव्यक्त है। वह मात्र अक्षरों का ज्ञान रहने पर, अपने उस ज्ञान का उपयोग, अजित के पास कठिन काल में पत्र लिख-कर करती है। वह एक सामान्य नारी है जिसमें मानवीय गुण-दोष हैं। वह अजित को जाते देख 'रासवारा' भी कह देती है, माँ के साथ गोबर भी पाथती है, नारीजनित विश्वासानुकूल तुलसी के नीचे दीप भी जलाती है। निश्चय ही, उसका चरित्र अधिक स्वाभाविक और सुस्पष्ट व्यक्त हुआ, और इसी के प्रसग में (विवाह को लेकर) मार्मिकता भी आ गई।

उसमें निश्छल, नारियोचित विश्वास का आधार है, विपदावस्था, आसन्न स्थिति में देवी के मदिर में जाकर प्रार्थना भी करती है, जिससे उसे ज्ञान का प्रकाश दीख पड़े, उचित पथ दृष्टिगत हो सके और क्रियाशील जीवन के परिणामस्वरूप उसकी इच्छा फलवती भी होती है, भुजबल के प्रबल कुचक्र से, पजे से निवृत्त हो जाती है। उसे सस्कारवश भगवान के प्रति आस्था है। इसीलिए तो वह माँ से ऐसा कहती है—"माँ तुम इस तरह रोया मत करो। सबके पिता परम पिता भगवान् है। उन्हीं का नाम सुमरना चाहिए।" स्वय अपने जीवन में इस अस्त्र का उपयोग भी करती है।

अजित ऐसा सुकोमल पात्र है जिसमें वर्मा जी के प्रेम का आदर्श व्यजित हुआ है। वह जब एक बार रतन को हृदय में बसा लेता है तो निरतर दैहिक, कायिक सबध कल्पना शून्य हो, अपने मन-मदिर में देवी के रूप में प्रतिष्ठित किए रहता है—"(वह) अधिष्ठात्री देवी है, और मैं पुजारी। पुजारी का देवी से व्यापक न होने की प्रार्थना करना अज्ञान है। देवी किसी मदिर में स्थापित हो, परतु पुजारी को उसका ध्यान करने भर का अधिकार है। मूर्ति के दर्शन कभी हों या न हों, इससे क्या? मैं मूर्ति के कभी दर्शन करूंगा भी नहीं। चित्र ही यथेष्ठ है। यह भी न हो तो क्या? मेरे हृदय-मदिर में जो चित्र है वह अक्षय है।"[1] परतु उसका प्रेम उसे निष्क्रिय नहीं करता। वह प्रेम की ज्वाला में जलने

---

१. प्रस्तुत स्थल पर भक्तिरसामृत सिंधु की ये पंक्तियाँ स्मरण हो आती हैं—
"सम्यड्मसृणितस्वान्तो ममत्वा तिशयांकित।
भाव स एव सान्द्रात्मा बुधै प्रेमा निगद्यते॥

क्रमशः

पर भी परमुखापेक्षी नही होता, सामाजिक कर्तव्य का सर्वथा निर्वाह करता चलता है। वुद्धा जब भुजवल द्वारा बुरी तरह मार खाता है तो वह (अजित) उसका विरोध प्रदर्शन करता है और वुआ को कधे पर उठाकर, गाव ले जाकर, सेवासुश्रूषा करता है। इस प्रकार सामाजिक कर्तव्य उसका शृगार बना रहता है। वह नारी की पुकार पर (पूनो के निमत्रण पर) विकट एव सक्रान्तिकालीन स्थिति में भी दृढ़तापूर्वक उद्धार करता है।

अजित का भुजवल के साथ, पूनो के यहा जाते समय, जगल के समीप गायो को देख, यह आशका में कि कहा गायो पर हिंसक जानवरों का आक्रमण न हो, उस स्थान से गायो को हाककर गाँव की ओर कर देना, शिवलाल को रतन के यहा घुसा देख बिना मानापमान का बिना ध्यान किये अदर जाकर शिवलाल को उसकी बुरी चेप्टा के लिए डाटकर निकालना, आदि उसकी चारित्रिक उदारता और सहिष्णुता है। अजित इम सिद्धात से अनुप्राणित है—"प्रकृति के सदेश में वध नहीं है, सगीत है; मारना नहो, मर जाना है।[1] वध पर सगीत की विजय होगी। सूर्य की किरणें आकाश से यही सवाद ला रही हैं।"

वह अपनी उदारता से सोचता है—"मैं भुजवल से कभी नहीं लडूगा। वह मेरे साथ चाहे जैसा व्यवहार करे, मैं उसको दुखी न करूगा। भुजवल के दुखी होने पर रतन सुखी न रह सकेगी। निश्चय ही यह भावुकता और निष्कपट पवित्र प्रेम की पराकाप्ठा का द्योतक है।

परन्तु वह अपने विचार पर दृढ है। ललित के साथ रह कर भी, भुजवल की मित्रता होने पर भी उनके सिद्धात या विचार एव आचार का विरोधी ही रहता है, उसी ढाचे में ढलता नहीं। प्रस्तुत कृति में अजित का चरित्र महान और आदर्श का पोषक है।

पादटीका क्रमश

भारतेन्दु जी ने तो उल्लास से कहा है—

"जाको लहि कछु लहन की चाह न हिय में होय।
जयति जगत-पावन-करन 'प्रेम' बरन यह दोय॥

१ (i) यजुर्वेदकार ने भी कुछ ऐसा ही अनुभव किया था—

मधुवाता ऋतायते, मधु क्षरन्ति सिन्धव
माध्वीर्न सन्तु ओषधी
मधुजलमुनोप सो मधुमपार्थिव रज
मधु पौ स्तु न पिता
मधु मान्नो वनस्पतिर्मधुमान्नस्तु सूर्य
माध्वीर्गावो भवन्तु न।

(ii) कीट्स तो सगीत का परम आग्रही था। वह स्पष्ट कहता है—"जब तेज धूप से चिड़ियाँ बेहोश हो जाते है और पत्तों की छाह मे हाफती हुई छिपी रहती है, उस समय चरागाह में झाड़ी से लयभरी आवाज गूज उठती है। धरती की कविता कभी खामोश नहीं होती।"

ललितसेन को वर्मा जी ने दार्शनिक, चिंतक तथा अध्ययनशील एवं अव्यवहारिक पुरुष बतलाया है। परन्तु कई जगह कुछ बातें खटकती हैं।

लेखक ने जहां उसे दार्शनिक चिंतक स्वीकार किया है, वहां उसके विपरीत, वह अचिंतक और अधैर्यवान् दीख पड़ा है। क्योंकि जब उसकी प्रिय बहन की शादी का विषय आता है तो अजित पर बिना ध्यान दिए, भुजबल को, मात्र सुंदर देख, बिना सोचे-समझे, स्वयं से शादी का प्रस्ताव कर बैठता है, जबकि भुजबल को ऋण मांगने के समय अच्छी दृष्टि से नहीं देखता है। माना, कुछ आलोचक उसके इस व्यवहार को अव्यावहारिक सिद्ध करना चाहेंगे, परंतु जब उसे दार्शनिक माना गया है तो कुछ समय उसे चिन्तन-मनन करना, सोचना-समझना चाहिए था, भले ही उसका सोचना गलत होता। वह तो बिना सोचे, जब भुजबल उससे कुंडली मांगता है तो वह भी उससे (अजित से) उसका टीपन मांग लेता है जो चिंतनहीनता का परिचायक है।

जहां लेखक ने ललित को अव्यवहारिक कहा है, वहां वह व्यावहारिक दीखता है। बहन की शादी की उसे स्वाभाविक तथा व्यावहारिक चिन्ता है, धन छावनी बनाने या जमींदारी क्रय करने में अधिक लाभ है इस पर पूर्णतया सोचता है और इस दिशा में उसका सोचना बहुत उचित एवं सही होता है। भुजबल के आग्रह पर, अनिच्छापूर्वक शिवलाल को दिया हुआ ऋण निश्चय ही लाभदायक सिद्ध नहीं होता। वह तो सर्वदा अपनी बहन का हित तथा सुख की चिन्ता कर, भुजबल के दूसरे व्याह के अवसर पर उपस्थित हो उसे इस निकृष्ट काम से रोकता है। पीछे चलकर अजित के प्रति भी इनकी जिस भावना का निर्माण होता है उससे वह कदापि अव्यावहारिक सिद्ध नहीं होता।

लेखक ने उसे गतिशील तथा परिवर्तनशील कहा है। पहले पाश्चात्य दर्शन से प्रभावित होता है, **Survival of the fittest** को स्वीकार करता है, परंतु अपने संघर्षपूर्ण जीवन से उसे अनेक अनुभव प्राप्त होते हैं कि एक दिन निर्बल सबल होंगे और वह यह भी समझ लेता है कि विदेशों का वह सिद्धांत हिंसक, अनैतिक तथा अनुदार है। स्मरण रहे, जिस युग में आलोच्य कृति की सृष्टि हुई थी, वह युग महात्मा गांधी के मृदुल और अहिंसात्मक भावनाओं के व्यापक प्रभाव का युग था जिससे उस युग के कलाकार हरिऔध, सुदर्शन, प्रेमचंद, मैथिलीशरण गुप्त, पंत, वृंदावनलाल वर्मा आदि प्रभावित थे। हमारा संपूर्ण भारतीय साहित्य (हिंदी, बंगला, गुजराती, मराठी आदि सभी) इसी भावना से प्रेरणास्रोत ग्रहण कर रहा था। खांडेकर का 'क्रौंच-वध' उपन्यास का साम्यवादी नायक भी स्वीकार करता है कि गांधीवाद, प्रेम और अहिंसा अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

यद्यपि ललित के चित्रण में अभिनयात्मक, परिचयात्मक, आदि सभी ढंगों का उपयोग है, फिर भी मेरे विचार से कुछ विरोधी बातें उठ खड़ी हुई हैं।

भुजबल इस रचना का नायक है, जो 'कुंडली' का चक्र रचकर सम्पूर्ण कथा-वस्तु को परिचालित करता, अपनी स्वार्थपरता का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

प्रथम-प्रथम ही, जब एक व्यक्ति का रुपया गिर जाता है तो उस व्यक्ति के चले जाने के पश्चात चोर की तरह उस रुपये को उठाकर तथा अपना बताकर पाकेट

में रख लेता है और यहां से इसी अवसर से, तुच्छता, नीचता आदि सभी इसके चारित्रिक दुर्गुण, अवगुण व्यजित हो जाते हैं। वह कितना लोभी और अधम है, इसका स्पष्ट परिचय मिल जाता है।—"जहां रुपया गिरा था, भुजबल उस स्थान पर जाकर ठिठक गया। चारो ओर ताक कर उसने वह रुपया उठाया।" दूसरे के धन को स्वार्थवश हड़पने वाले एक लालची का यह बड़ा सजीव चित्रण है। एक चोर कि तरह सशंकित होकर, मार्ग का रुपया उठाता है इसकी बड़ी स्वाभाविक मनःस्थिति है। उसी के लोभ का चिन्ह है कि वह शिवलाल को जमींदारी कुछ ललित के नाम, कुछ अपने नाम, कुछ पूनो के नाम लिखाकर पुनः पूनो से व्याह कर उसके धन का भी मालिक बन जाना चाहता है। शिवलाल का प्राप्त दस हजार के ऋण (ललितसेन से) में से स्वयं चार हजार हड़प जाता है। इस प्रकार वह अंत तक पैसा और लोभ की वितृष्णा के आवर्त में सर्वदा भ्रमणशील बना रहता है।

वह चापलूस और काइयां भी है और अजित से मित्रता इस लिए करना चाहता है कि अजीत की ललितसेन पर धाक होगी और इसके माध्यम से वह शिवलाल को ऋण दिलाकर, हिस्सेदार बन काफी मौज करेगा और प्रथम भेंट में अजित की प्रवृत्ति समझ, उसी के मनोनुकूल प्रसंग की चर्चा कर, मनोरंजन करना चाहता है जिससे अजित उसके हाथ आ जाए। उसके काइयांपन का ही उदाहरण है कि ललित और शिवलाल को पूनो से ब्याह का लोभ देता है, लालसिंह को शिवलाल के सिपाहियों के साथ आने का भय दिखाकर पूनो को अपनाने का कुचक्र रचता है। वह इतना दुर्बल, दूषित मनोवृत्ति का है कि कभी भी सत्य नहीं प्रकट करता, अपनी स्त्री रतन से भी नहीं।

वह प्रेम का नहीं, धन का एकमात्र लोलुप है, धन की कामना में सक्त गतिवान बना रहता है। एक पल भी चैन नहीं लेता।

वह धोखेबाज और प्रपंची है। तभी तो शिवलाल से, जिनका वह मुख्तयार है, ललित सेन से जिसका वह बहनोई तथा रतन से जिसका वह पति है, सत्य छिपाकर, असत्य कह कर, लालसा का जाल फैलाकर, शिकार खेलता रहता है।

निश्चय ही, सम्पूर्ण उपन्यास में भुजबल ही मुख्य पात्र है जिसका चित्रण सफल और स्वाभाविक हुआ है।

परन्तु अंत में इस भ्रष्ट चरित्र का सारा प्रपंच असफल हो जाता है, अपमानित होता है, कर्म पर पश्चाताप होता है।

शिवलाल—"मधुर कंठ वाली किस तरह की स्त्री है, कभी देखने को मिल जाए, तो आंखें ठंडी करूं"—शिवलाल का चरित्र इन पंक्तियों से व्यक्त हो जाता है कि वह कितना विलासी और निम्न भावना का पुरुष है। निश्चय ही यह वर्गगत पात्र है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में भी वर्गगत जमींदारों का यथेष्ठ उदाहरण है। शिवलाल की रूपरेखा जो वर्मा जी ने कल्पना की है, उसकी विस्तृत अभिव्यक्ति तथा उभार 'अमरबेल' में मार्मिकता तथा गहराई से है।

अंग्रेजों ने अपने अस्तित्व तथा सत्ता की रक्षा के निमित्त भारत में एक वर्ग को लोभ से वशीभूत कर अपना भक्त बनाया। जमींदार वर्ग ने धनलोलुपता के

से आधीन हो, अंग्रेजो के प्रसरण तथा स्थायित्व में यथासम्भव योगदान दिया। प्रारम्भ में प्राय सभी जमींदारो ने भूमि पर कडा परिश्रम किया, किसानो से भी परिश्रम कराया, परन्तु शनै शनै किसानो को भूमि सौंपकर तथा व्यवस्था अपने विश्वासियो पर तथा वसूली का भार अपने कारिन्दो पर सौंप कर वे विलासिता की प्रतिमूर्ति बन गए, जन-जीवन पर अमरबेल बनकर छा गए, जहा उन्हें केवल धन चाहिए था—खान-पान, शाक-गोत, शिकार, आयोजन-प्रयोजन के लिए। और इस चेष्टा में यथाअवसर रैयतो पर, आसामियो पर बेगारी और एक शोषण का क्रम तेज रखा और ऐसी स्थिति में सात्विकता के विपरीत हिंसात्मक वृत्तियो का प्राधान्य मानवीय नियम है। और इसीलिए सब को प्रेमचंद और वृन्दावनलाल वर्मा ने बडी मार्मिकता से देखा और समझा। शिवलाल, किंचित इन तत्वो, अवगुणो की प्रतिमूर्ति है जो संगीत, शौक, विलासिता के कारण अपनी जमींदारी खो बैठता है और बेचने के क्रम में ही ललितसेन के यहा जाता है और वहा उसके (ललितसेन के) अभिमानपूर्ण व्यवहार से अपने अहम् पर ठेस लगने के कारण, क्षुब्ध हो उठता है।

विलासिता का ही परिणाम है कि सामर्थ्य न होने पर भी, जहा जाता है दो-चार किसानो को साथ लिये जाता है केवल अपने अभिमान और गर्व के लिये और व्यर्थ कार्यों में ललित से प्राप्त ऋण स्वरूप रुपयो को अपव्यय कर बैठता है, फिटन खरीद लेता है—और अवस्था गिरती जाती है परन्तु ध्यान नही देता। उसकी विलासप्रियता का ही उदाहरण है कि भुजबल इसका मुख्तार बनकर, एक स्त्री के वर्तमान रहते, दूसरी से शादी का प्रलोभन देकर उसकी जमींदारी हडप लेता है और इसका दूसरा उदाहरण है कि ललित के घर में चुपचाप बैठा रह जाता है।

परिस्थिति ने, विलास ने, उसे अकर्मण्य बना दिया है, परन्तु दौर्बल्य का प्रतीक होकर भी, हृदय से सहिष्णु है। इसीलिए तो बुद्धा और पैलू को डांटकर पुन उन्हें हुक्का पिलाता है। इसमें उनके गर्व का भी अंश है। भुजबल जब गरीबो पर बुरी तरह क्रोधित होता है तो शिवलाल उदारतापूर्वक व्यवहार करता है।

इस पात्र का एक आवश्यक उपयोग अन्त में ललित को भुजबल के पुर्नलग्न की सूचना प्राप्त कराने में किया गया है। यहा उसकी प्रतिक्रिया और प्रतिहिंसा भी साथ है। अपनी कमजोरी के कारण ही, ऋण के परिणामस्वरूप अन्त में वह जेल भी जाता है। इस प्रकार इसका नियोजन और निर्वाह उचित और सफल है। इसके विश्लेपण में भी लेखक ने अनेक तत्वो का उपयोग किया है।

'सोना'

एक सामाजिक उपन्यास है जिसमें मुख्यत लोक कथा आधार-शिला है और एक साधारण किसान युवती सोना तथा उसकी बहन रूपा के चरित्र के माध्यम से लेखक ने यह सिद्ध करना चाहा है—"फूलो की सेज और श्रम का मेल कभी नही हो सकता और न होगा। और कभी हुआ तो काच के गुरियो के सिवाय और कुछ गले में नही रहने का।" (पृ० २४७) परन्तु इस सत्य की अभिव्यक्ति के लिए कथानक का जो प्रभाव और सफलता अपेक्षित है, वह इस कृति में नहीं है। वर्मा जी

ने इसे लोक कथा पर आधारित कह, सफाई पेश की है[१], परतु जब यह कृति उपन्यास है, साहित्याग है तो हम साहित्यिक मूल्याकन, अग-उपागो की परीक्षा करेंगे ही, समुचित सफलता-असफलता का निर्धारण करेंगे ही।

सक्षेप में कथावस्तु इस प्रकार है :—

सोना एक ग्रामीण बाला है जो पितृहीन, मातृहीन होने के परिणामत अपनी छोटी बहन रूपा के साथ दूबई में मामा के यहाँ रहती है जो खेती आदि से जीविकोपार्जन करते हैं। सोना और रूपा, दोनो बहनें देखने में अतीव सुदरी हैं। सोना से चम्पत नामक साधारण किसान युवक प्रेम करता है। मामा रूपा की शादी डुगरिया गाव के साधारण, परतु मजाकिया, पुरुष अनूपसिह से कर देते हैं और सोना को देवगढ के राजा धुरधर सिंह से जो विलासी, कामुक, लगडा, दात निकला, कई स्त्रियो का व्याहता (परतु सभी पत्नियाँ मर गई हैं) और सतानहीन है। सोना को सोने का, जेवरो का, बडा मोह है, जिसके कारण वह चम्पत के निश्छल प्रेम की महत्ता को न समझ निसकोच देवगढ की रानी बन जाती है। देवगढ से अनेक अलकारो को प्राप्त करने पर भी उसका मन परितृप्त नही होता है और वह अधिकाधिक जेवरो की आकाक्षा करती है, परतु धुरधर सिंह निस्तार का कोई मार्ग न देखकर येन केन प्रकारेण जेवरो के जुटाने में प्रयत्नशील रहता है। सोना के रूप (सौंदर्य) मत्र तथा नारी-प्रेम के कारण वह उसे प्रसन्न करने के लिए अनेक तमाशो जैसे मेढक, चूहो आदि की लडाई की योजना करता है परतु सोना की माग निरतर बढती ही रहती है। सोना उन्हें मणियो का हार खरीद देने का आग्रह करती है। राजा द्रव्याभाव में यदाकदा, इस प्रयत्न में रहता है। कर (tax) से भी राजा द्रव्य एकत्र करने की भावना से दूधई में मेला लगवाते हैं। सोना और राजा ऐश्वर्य तथा धन की देवी लक्ष्मी की प्रसन्नता हेतु मगोडे चीलो को खिलाते हैं। इसी क्रम में जब वह (सोना) हार उतारकर स्नान करने जाती है तो चील मगोडे समझ हार झपटकर ले जाती है। राजा को यह सूचना मिलती है। उसने ढिढोरा पिटवा दिया कि जो वह हार लावेगा उसे पुरस्कार दिया जायगा। राजा की घोषणा चम्पत सुनता है। वह हार प्राप्त कर इसी बहाने सोना से मिलने का शुभावसर ढूढता है। वह खोज में चीलो का पीछा करता डुगरिया पहुँचता है।

रूपा का पति अनूप मजाकिया होने के कारण, अनेक हरकतें करता है जिससे गाँव वाले क्षुब्ध रहते हैं, परतु राजा के सबधी होने के कारण कुछ नही कहते हैं। शनै शनै राजा द्वारा अनूप का उपेक्षा-भाव जानकर ग्रामीण उसे पच द्वारा दडित करते हैं और दो घरो का कूडा अनूप के दरवाजे पर रख दिया जाता है जिसे उसे साफ करने की आज्ञा दी जाती है। रूपा अपने पति की आज्ञा पर, अपने खडहर मकान को नित्य रात में खोदती है—अपने पूर्वजों की भूमि में छिपाए हुए धन प्राप्ति की कामना से। प्रातःकाल जब रूपा कूडा हटाने जाती है तो वह हार देखती है और छिपाकर रख लेती है। चम्पत चीलो का पीछा करता हुआ अनूप के घर के निकट आता है और वहा से

१ लेखक का परिचय पढ़ें। लेखक ने स्वय इस सबध में प्रकाश डाला है।

चील को कूड़े पर से मरा हुआ सर्प उठाकर ले जाते देख उसे यह विश्वास हो जाता है कि इसी कूड़े पर से जब चील साप उठाकर ले गई है तो हार भी यहा छोड गई होगी। परतु अनूप हार के सबध में पूर्णतया अस्वीकार करता है। चम्पत चुपचाप चला जाता है और रात में रूपा के घर पर जाकर सत्य का पता लगाना चाहता है। रूपा और अनूप हार को पचाना महा कठिन समझ लौटाकर अपना एहसान जताना चाहते हैं, और पुरस्कार प्राप्त करना चाहते हैं। छिपा हुआ चम्पत सब रहस्य सुन लेता है और रूपा जब थाल में दीपक में हार छिपाकर रानी को लौटाने जाती है तो उसी बीच मार्ग में चम्पत दीपक लेकर भाग जाता है। रूपा सभी बातो की सूचना राजा को दे देती है। चम्पत पकडा जाता है, परतु यह विश्वास कर कि चम्पत हार को राजा के पास पहुँचाना चाहता था, निर्दोष सिद्ध करा सोना उसे मुक्त करा देती है। चम्पत को विश्वास जम जाता है कि, सोना उसे हृदय से प्यार करती है। वह उन्मत्त प्रेमी हो जाता है। रूपा राजा के प्रसन्न होने पर यह आज्ञा लेती है कि दिवाली पर उसके अतिरिक्त कोई दीप न जलावे क्योकि उसे विश्वास है कि धन की देवी लक्ष्मी दीपो की जगमगाहट में भूलकर दूसरे के घर चली जाती है, इससे उसे धन नही प्राप्त होता, परतु केवल उसी के यहां चिराग जलने से, लक्ष्मी उसके घर प्रवेश करेगी। और होता भी ऐसा ही है। दीपावली की रात में, आगन खोदने से, उसे घडे में बद सोना-जवाहरात प्राप्त होते हैं। वह धनी हो जाती है। महल खडा हो जाता है। अनेक दास-दासिया हाथ जोडे खडी हो जाती है। वह फूलो की सेज पर सोती है। अनूप को धन का अभिमान हास्य छीन लेता है। वह दिन भर धन की व्यवस्था में लगा रहता है। धीरे-धीरे धन प्राप्ति के अन्य साधनो के अभाव में उसका धन समाप्त होने लगता है। और जब हीरों को बेचने वह बाजार जाता है तो जौहरी उसे काच कहकर ठगाते हैं। रुपयो के अभाव में उसे जेवरो का विक्रय करना पडता है। फिर वह नौकरादि की सख्या घटाता है। जब रूपा को स्वप्न होता है—"पुराने खण्डहर के काल का वही आगन है। आगन के बीच में एक गड्ढा खुदा पडा है। रूपा और अनूप गड्ढे के किनारे खडे, गड्ढे के भीतरी भाग का कोना-कोना देख रहे हैं। उनमें धन-धन कुछ नहीं है, कोयला तक नही। रूपा की दृष्टि दिये पर जा टिकी है। दिया बोलता है—"साप, समय और जीवन का चिह्न है। अनन्त का रूप है। वह दिखलाई नहीं पड़ता, पर है हर जगह। गरीब काम करते हैं और उनको भर पेट खाना नही मिलता। तुम लोग कोई काम नही करते; धन, सम्पत्ति का नाश करते चले जाते हो। तुम लोग नहीं जानते ससार में रहा कैसे जाता है। शान-शौकत का रहन-सहन जीवन नहीं है। कुरूप और दुखी ससार में अत्यत धनाढ्य नर-नारी सिवाय कुरूप और दुख के कुछ नही खरीद सकते। मेहनत, सफाई और कला की उपासना में ही जीवन का सच्चा बड़प्पन मिलता है, उस तरह के जीवन में नहीं जिसमें तुम सिर के बल दौडे जा रहे हो। तुम अगर किसी मंदिर के बनाने के काम पर तसले में गारा-चूना ढोने की मजदूरी करो तो तुम को जीवन की कदर मालूम हो, और तभी यह जान पड़े कि मजदूरी का तसला ज्यादा आराम देता है या फूलो की सेज। करके देखो, कितना सुख मिलता है। एक ही पखवारे करके देख लो। यदि नही करते हो तो सत्यानाश हो जावेगा, समय और

जीवन का सांप डंसेगा और तुम्हारा चोपट कर देगा। सावधान।"[१]

रूपा न-डाकर, लक्ष्मी जी का आदेश समझकर, अपने ऐश्वर्यपूर्ण जीवन के बंधन से मुक्ति की प्रबल भावना से, मंदिर में काम करने की खोज करती है, बिना कुछ अपने पति को कहे, चुपचाप रात में निकलकर देवगढ जाती है। वहाँ धुरन्धर सिंह मंदिर निर्माण करा रहा था, वहीं तसला ढोने की मजूरी करती है। चम्पत अपनी पार्टी के साथ, जो उसका नाचना, गाना, अभिनय मुख्य पेशा है, देवगढ में आता है और रूपा को देख लेता है। वह रूपा को अपने पंजे में फसाना चाहता है। रूपा ने, अपने को छिपाने के लिए, नन्ही बाई नाम रख लिया था। परन्तु उसका सौन्दर्य उसके लिए अभिशाप बन जाता है। राजा की भी कामासक्त दृष्टि उस पर पडती है। वह रूपा को, अपनी वासना की तृप्ति के लिए, धोखे से बगीचे में बुलाता है। रूपा निस्सहाय हो जाती है, परन्तु सोना को पता लग जाता है और वह आकर रूपा को बचा लेती है। राजा को डाटती-फटकारती है। तभी अनूप भी देवगढ में पहुच जाता है। राजा चम्पत को डाटकर भगा देता है। अनूप सोना के गले के हार को देखकर कहता है कि यह कांच का है क्योंकि वह बिना परिश्रम के धनार्जन चाहती है। रूपा पुनः अपने अनूप के पास चली जाती है।

निश्चय ही, कथानक असफल, असश्लिष्ट और अस्वाभाविक है। सर्वप्रथम, पुस्तक का नामकरण ही दोषपूर्ण है। सोना के नाम पर 'सोना' रखा है, जो सर्वथा अनुपयुक्त है। क्योंकि सोना के चरित्र से सजीव और सफल एवं विस्तृत चरित्र रूपा का है और सोना का चारित्रिक वैशिष्ट्य भी प्रदर्शित करना कलाकार का मुख्य लक्ष्य नहीं जैसा झांसी की रानी लक्ष्मी बाई, अहिल्या बाई आदि में है। यहाँ तो धन और श्रम की समस्या है।

दूसरा दोष कथानक में यह है कि सोना को रूपा से बड़ी होने पर भी, रूपा का परिणय-संस्कार (marriage) पहले सम्पन्न कराया गया है। पुनः प्रश्न उठता है यदि छोटी रूपा की ही शादी प्रथम कराई गई तो गरीब अनूप से ही क्यों कराई गई, धुरन्धर सिंह से क्यों न कराई गई। धुरन्धर सिंह तो मात्र सुन्दरी स्त्री को पत्नी बनाना चाहता था। रूपा का धुरन्धर से परिणय-संस्कार सम्पन्न कर, फिर सोना के लिए चिन्ता की जाती क्योंकि रूपा की ही शादी प्रथम कराई जाती है।

चील का हार लेकर उडना, फिर रूपा को ज्ञात होना, राजा का सूचित होना, फिर ढिंढोरा पिटना इतने कार्य होते कुछ घंटे अवश्य बीत गए होंगे और तब तक चील उडकर न जाने कहां चली गई होगी। ढिंढोरा सुन चम्पत का चील के पीछे दौडना और तुरत पता लगा लेना बडी अस्वाभाविक घटना है। लगता है, चील चम्पत की प्रतीक्षा में हार लेकर घंटा बैठी थी कि जब चम्पत आवे तो मैं उडूं। और वह उडती भी बहुत धीरे-धीरे की जिसमे चम्पत बहुत पीछे न छूट सके। मात्र लोक कथाओं के आधार पर ऐसी अस्वाभाविक घटनाओं को साहित्य में उपयोग करने की छूट नहीं है। पता नहीं वर्मा जी जैसे अनुभवी प्रौढ़ उपन्यासकार ने ऐसा क्योंकर किया।

---

१ सोना, पृ० १७६ (तृतीय संस्करण)।

दीपक का स्वप्न में बोलना और गड़े हुए धन का मिलना स्वाभाविक माना जा सकता है।

कथानक की परिसमाप्ति भी अनाकर्षक, वेगहीन तथा असंगत है। सोना को रूपा के बचाने के पश्चात् कथानक बहुत मंथर एवं शिथिल हो गया है। उपन्यास के मध्य में अनूप के चित्रण काल में, उसके व्यवहार आदि वर्णन समय, भी मंथरता आ गई है।

जेवर-प्रेम को लेकर प्रेमचन्द ने भी 'गबन' उपन्यास की सृष्टि की, और उसमें उन्हें काफी सफलता भी मिली है। जहाँ तक 'सोना' में आभूषण, धन-प्रेम की समस्या है, वह बहुत सुन्दर बन पड़ी है। परन्तु आभूषण का ही आधार ले जो ज्वलन्त और सर्वांगपूर्ण परिस्थिति 'गबन' में यथार्थता आई है, वह सोना में नहीं है। निश्चय ही इस दृष्टि से 'गबन' अधिक सफल और सशक्त कृति है। भाषा की सरलता तो अवश्य है, परन्तु प्रस्तुत कृति में एक बड़ा दोष यह है कि अनावश्यक रूप से बुन्देली और अपभ्रंश शब्दों का प्रयोग किया गया है।[1] जहाँ तक पात्र चित भाषा के निर्वाह प्रयत्न की दिशा में ऐसे शब्द आते हैं वहाँ दूसरी बात है[2] परन्तु वर्णनात्मक रूप में लेखक अपनी ओर से उन शब्दों का उपयोग करे तो यह उचित नहीं मालूम पड़ता, जैसे परिषद्, चकोट, रतुल आदि।

एक पात्र बोलता है— "यह तुम्हें क्या औरी।" यहाँ पर एक अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति होती है। क्षेत्रीय मुहावरों, लोकोक्तियों आदि का भी प्रयोग आलोच्य कृति में पर्याप्त है, जैसे "कुत्ते के गले में गेहूँ की पूड़ी।" कई स्थलों पर वाक्य दोष भी दृष्टिगत होते हैं।

इसमें भी प्राकृतिक चित्रण आए हैं परन्तु अन्य कृतियों की तरह उत्कृष्ट, मनोरम नहीं हैं। उदाहरण स्वरूप पृष्ठ ५ में देख सकते हैं

उद्देश्य के सम्बन्ध में मैं पूर्व ही संकेत कर चुका हूँ कि लेखक ने धन प्राप्ति के निमित्त श्रम की महत्ता प्रतिपादित की है। स्मरण रहे, यह भी युग श्रम की महत्ता का युग है। महात्मा गांधी ने स्वावलम्बन के लिए घरेलू उद्योग धन्धे तथा चर्खा का प्रतीक रूप में खड़ा किया। वर्तमान सरकार भी उक्त दिशा में सचेष्ट है। किसी भी राष्ट्र की उन्नति में यह अनिवार्य पहलू है।

वर्मा जी ने श्रम की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट कहा है—"लक्ष्मी जी अपने भक्तों से मजदूरी चाहती हैं, शान-शौकत उनको सहन नहीं। तभी तो इतने बड़े-बड़े राजा और साहूकार जल्दी मिट जाते हैं, क्योंकि मजदूरी से जी चुराने लगते हैं।···मेहनत, सफाई और कला की उपासना से ही जीवन का सच्चा बड़प्पन मिलता है।···मजदूरी करो तो तुम को जीवन की कदर मालूम हो। मजदूरी का तमला

१ पृ० १४५ और १९८ आदि देखें।

२ इन दिनों आंचलिक उपन्यासों में यथार्थ वातावरण आदि की दृष्टि से आंचलिक बोलियों का प्रयोग किया जा रहा है। शिवपूजन सहाय कृत 'देहाती दुनिया' को उद्गम रूप में कुछ अंश तक स्वीकार किया जा सकता है। इस दिशा में नागार्जुन, यज्ञदत्त शर्मा, रेणु, उदयशंकर भट्ट, देवेन्द्र सत्यार्थी, अमृतलाल नागर आदि ने कार्य किया है।

अधिक आराम देता है। '[1] और रूपा, जिसे पहले अपच आदि की शिकायत है, परिश्रम करने पर आनन्द अनुभव करने लगती है, फूल की सेज की निरर्थकता उसे ज्ञात हो जाती है। उसका धन-क्षय भी इसी सत्य को प्रमाणित करता है। उसके बिना श्रम के हीरे काच हो जाते हैं, सोने के मणि नकली हो ठहरते हैं। परन्तु, उस दिशा में इस समस्या का भी लेखक मार्मिकता प्रदान न कर सका है जो मार्मिकता 'प्रत्यागत', 'लगन' आदि में देखते हैं।

व्याकरण की दृष्टि से भी इस कृति का अधिक महत्त्व नही है। ग्रामीणो की दशाओं आदि के चित्रण में लेखक का मन नही रमा है।

चरित्र-चित्रण

आलोच्य कृति में सोना, रूपा, धुरधर सिंह, अनूप और चपत ये पाँच पात्र प्रमुख हैं।

सोना को लेखक ने नायिका के रूप में रखना चाहा है, परतु उसकी बहन रूपा का चरित्र ही इतना प्रबल और सशक्त है कि सोना का चरित्र दब गया है। चारित्रिक आदर्श तो रूपा को छोड, कुछ अश में, किसी में नही। सभी सामान्य दोषपूर्ण मनुष्य हैं। इसलिए **'सोना' नामकरण भी ठीक नहीं लगता।**[2]

सोना का चरित्र अभिनयात्मक, परिचयात्मक, नाट्यपूर्ण है। लेखक के ही शब्दो में सोना की आकृति का परिचय देखें, जो दीन किसान-बाला है, खेती करना, फसल काटना कार्य है—"बहुत लम्बे, काले बाल, भवरारे वालो के जुट·· केशो की एक छोटी-सी लट गोरे माथे पर हिलुड रही थी। बडी-बडी आखो की लम्बी-लम्बी बरौनिया के सिरो पर गेहूँ की रज के कण जा बैठे थे।"[2]

देखिए, सोना ग्रामीण बाला होने के कारण, सस्कारजनित मन स्थिति के कारण, वातावरण के कारण, आभूषण के प्रति उत्कट लालसासक्त है। जब चम्पत (उसका प्रेमी) उससे विवाह का प्रस्ताव रखता है तो सोना स्पष्ट पूछती है—"गहना गुरिया, कपडे-लत्ते कितने दे सकोगे? ·· गले के लिए एक गहना सोने का और गले, हाथ और पैरो के लिए चादी के ठोस गहने। कपडे रगीन, जरा बारीक। कम से कम एक रेशम का।" (पृष्ठ १०, तृ० सस्करण)।

उसे निश्चय ही कुछ अशो में चम्पत के प्रति प्रेम था, परतु आभूषण के मोह के सम्मुख किंचित-मात्र भी किसी का ध्यान न कर धुरधर सिंह की वह धर्म पत्नी बन जाती है।

धुरधर सिंह जब आभूषणो को शरीर के लिए कष्टप्रद बताता है तो सोना विरोध करती हुई स्पष्ट उत्तर देती है—"गहनो से कही देह दुखती है? स्त्रियां इतने भारी-भारी पैंजने और कासे के कडे पैरो में डाल लेती हैं और मोदमग्न घूमती-फिरती हैं, फिर हीरे, मोती और सोने की तो बात ही निराली है।" (पृष्ठ ८०, तृ० स०)।

---

१ सोना, पृ० १-१।

२. वही, पृ० ५, तृतीय सस्करण।

सोना के चरित्र में कोई आदर्श नही है। वह अपने पति से सर्वदा जेवरो की मांग करती रहती है जैसे उसके जीवन का अंतिम लक्ष्य वही हो। वह इस के लिए ससार को भूल जाती है। मामा, रूपा किसी को स्मरण नही करती; और यदि कभी याद करती है तो मात्र उन्हें अपने आभूषणों को दिखलाने के लिए। रूपा को दिखलाकर, अपना अभिमान प्रतिष्ठित करना चाहती है।

निश्चय ही इसका चरित्र लाखी, मृगनयनी, रतन, अहिल्याबाई आदि की तरह आदर्शमय और तेजपूर्ण न होकर साधारण परतु प्रभावहीन, रुढिग्रस्त है। 'गबन' की नायिका जालपा से उसका चरित्र दृढ और महत्वपूर्ण नही हो पाया है। रूपा इससे अधिक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व रखती है।

रूपा भी सोना सदृश ही सुन्दरी और सलोनी है और गुण-दोष युक्त है। वह भी सोना को उतनी ही नीच दृष्टि से देखती है जितना सोना रूपा को। फिर भी उसमे कुछ गुण भी हैं, कुछ आदर्शपूर्ण विचार भी हैं। वह अपने निष्क्रिय पति से तग रह कर भी सदा सोचती है—"यदि मैं सच्ची हूँ, मुझ में सत्त है तो मेरे पति को कोई दुख न होने पावे।" निश्चय ही उसका पतिव्रत धर्म बडा मर्यादित है तभी तो साधारण घर में ब्याही जाकर भी, कभी शिकायत पेश नही करती, वरन कर्त्तव्यपरायण होने के लिए आग्रह ही करती रहती है। और उस समय उसका पति-प्रेम और आकर्षक हो जाता है जब कूडा द्वार से हटाना पडता है। वह स्पष्ट कहती है—"मैं ही फेंकूगी उस कूडे को। तुमने फेंका तो गाव भर की स्त्रिया मुझको थूकेंगी कि हाथ पैर वाली घर-वाली के होते हुए कुवर साहब कूडा ढोने लगे हैं।" (पृष्ठ १०३, तृ० सं०) और वह कूडा फेंकने चल देती। इससे उसकी मर्यादिक भावना, सामाजिकता आदि पर भी प्रकाश पडता है।

जब धुरधर सिंह उसके रूप पर आसक्त हो उसे जाल में फासकर, जेवरो का लोभ देकर, उसके सतीत्व को खरीदना चाहता है तो वह सती-साध्वी नारी की तरह ईश्वर को स्मरण करती है, मुक्ति के लिए प्रार्थना करती है, और बच भी जाती है।

इससे स्पष्ट है कि उसे इज्जत से बढकर जेवर नही है। वह ईश्वर में विश्वास रखने वाली स्त्री है, तभी तो स्वप्न में सुनी हुई बातो को सत्य मान अपने पति की भलाई के निमित्त मदिर में तसला ढोने का कार्य करती है।

उसे विलास उतना प्रिय नही, इसीलिए फूलो की सेज पसद नही करती, जेवरो के बिक जाने पर भी, सोना की तरह हाहाकार नही करती, और हीरे को काच सिद्ध होने पर भी जीवन-यापन की बातें सोचती है। आभूषणो और धन के रहने पर भी सर्वदा क्रियाशील रहना पसद करती है और पति को भी कार्यपरायण बनाना चाहती है।

सोना से इस दृष्टि से भी वह बहुत महान है, और यदि व्यक्तित्व की दृष्टि से नाम रखा जाता तो 'रूपा' उपन्यास का नाम होना चाहिए था।

परतु रूपा गर्विली और स्वाभिमानिनी है। वह गरीब पुरुष की धर्मपत्नी होकर भी सोना तथा बहनोई (जीजा) धुरधर के घर बिना निमत्रण के नही जाती

और न कभी सहायता की याचना ही करती है।

साथ ही, जहाँ उसमें यह दुर्गुण है कि सोना के भाग्य से उसके कुरूप पति पर ईर्ष्यावश हँसती है, वहाँ उसमें यह भी कमजोरी है कि सोना के हार प्राप्त करने पर, उसे छिपा लेना चाहता है, जो इसकी दैन्यजनित आवेष्ठन का भी परिणाम स्वीकार किया जायगा। मनोवैज्ञानिक सत्य है कि गरीबी अवस्था में मनुष्य का नैतिक पतन भी कभी-कभी हो जाता है, चोरी, चाण्डाली भी ग्रहण कर लेता है। स्वाभाविक गुण दोष से युक्त रूपा का चरित्र इस दृष्टि से सशक्त, जीवित तथा मनोवैज्ञानिक है।

धुरंधर सिंह देवगढ़ के नृपति हैं—'देवगढ़ का छोटा-सा राज्य बुन्देलखण्ड के एक बड़े राज्य की छत्रछाया पाये हुए था और बड़ा राज्य अंग्रेजों के प्रारम्भिक शासन की। इसलिए राजा विलास मग्न रहता था। उतरती अवस्था थी, एक टांग से लंगड़ा था। रंग सांवला, दांत बड़े-बड़े आगे निकले हुए, ठोड़ी भीतर को चपी हुई। कई ब्याह किये थे, परंतु रानियां सब मर चुकी थीं। संतान कोई थी नहीं, संतान के लिए फिर ब्याह करना चाहता था • ।"

बहुत से भांड-भगतिये, नचैये, गवैये उसके दरबार में थे। एक विनोद से मन उचटा कि दूसरे पर अटका दिया। एक स्त्री पर मन रमाया, उचटाया फिर दूसरी पर। अपने भीतर की चिंता और कमी को यह इन्हीं आमोदों-प्रमोदों में भुलाए रहता था।

• राजा पढ़ा-लिखा बहुत थोड़ा था। दीवान और कारिन्दे पढ़े लिखे थे। काम चलाते रहते थे। न राजा को और न दरबारियों को पढ़ने-पढ़ाने से कोई सरोकार था।

जैन मंदिरों का शांत-वैभव, शैव मंदिरों का कल्याण और विष्णु मंदिरों का वरदान देवगढ़ निवासियों के जीवन में कहीं नहीं दिखलाई पड़ता था। • • •

धुरंधर ने मुर्गे, तीतर-बटेर, मेढ़े-बकरे लड़ाये, पतंगें लड़ाईं, गोलियां खेला, गिल्ली-डंडा न छोड़ और कबड्डी के खेल में लंगड़ा हो गया।" (पृष्ठ २८, टू० म०) इसी प्रकार वह नित्य नये आयोजनों में लगा सुख मनाता रहता था।

वह अधिक वय का तथा कुरूप होने के फलस्वरूप सोना की आज्ञा पर नाचा करता था, गहना जुटाया करता था। अधिक उम्र में शादी करने वालों की यही दशा देखी जाती है। उसका मन कामुक होने के कारण, सोना से न भरा और रूपा को अपनी वासना का शिकार करने के लिए प्रपंच रचता है। वह रूपा को बहुत पूर्व अपने महल में रखने को उत्कंठित था।

यह अपनी स्त्री को भी धोखा दे सकता था, जैसा ऐसे चरित्र वालों से स्वाभाविक ही है। वह सोना को कांच का जेवर मणि का कहकर देता है। वह धन का लोभी भी है। धन प्राप्ति की वासना से उल्लू और चीलों को पूजता है। इससे उसकी मूर्खता भी सिद्ध होती है।

इसका चरित्र सफल अवश्य है, परंतु अनैतिक और दुराचारपूर्ण जिसके जीवन में कोई महत्त्वपूर्ण योजना नहीं है। यह सामान्य कोटि का दुर्गुण-सम्पन्न व्यक्ति है, परंतु इसका चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक हुआ है।

अनूप रूपा का पति है जो गरीब परन्तु धन का महा लोलुप है। वह अपने मकान

की खुदाई सर्वदा करता है मात्र पूर्वजों द्वारा गाड़े धन की प्राप्ति की अभिलाषा से। यह जीवन-पर्यन्त धन-लिप्सा में ही आसक्त रह जाता है।

यह निश्चय ही उच्च व्यक्तित्व का नहीं है। हंसी-मजाक करने में शिष्टता की भी सीमा को पार कर जाता है। वह अपने गाँव वालों को अपने यहाँ भोज का झूठा निमन्त्रण देकर अपने नैतिक ह्रास का परिचय देता है। मुखिया का टूटी खाट पर बैठा-कर गिरा देता है। इसके अशिष्ट परिहास से सारा गाँव तंग और क्षुब्ध रहता है और मुकदमा पंचायत में जाता है। वह परिहास में लोगों का नुकसान भी कर डालता है, जैसे गधे द्वारा बर्तन फुड़वाना।

परन्तु, एक दृष्टि से वह चतुर व्यक्ति भी है। राजा धुरंधर के सबंध में ग्राम पर अपना रोब जमाये रखना चाहता है जिसमें भी आगे चलकर वह असफल होता है क्योंकि ग्रामीणों को विदित हो जाता है कि राजा की उससे नहीं पटती। वह अपनी हीनता को छिपाने के लिए कर्तव्य नहीं करता अतएव उसका धन समाप्त होता जाता है, हीन कोंच में परिवर्तित हो जाता है। उसके इसी परिज्ञान का परिणाम है कि वह अपने यहाँ शास्त्रीय संगीतज्ञ को रखता है और बिना समझे, आनन्द ग्रहण किये, 'वाह-' 'वाह' कह उठता है।

यह भी सामान्य, दुर्गुणयुक्त पुरुष है जो अपनी कमजोरियों में आबद्ध रह जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पुरुष पात्र कोई भी सबल व्यक्तित्व नहीं है, कोई भी उच्च लक्ष्य का सन्धानकर्ता नहीं है। सहतो योजनाहीन व्यक्तित्व-मात्र हैं। वर्मा जी का आदर्शोन्मुख यथार्थ प्रस्तुत कृति में फलीभूत नहीं हुआ है।

'अचल मेरा कोई'

'अचल मेरा कोई' उनकी सर्वथा भिन्न दृष्टिबोधक कृति है जिसमें "१९४५ के दिसम्बर से लेकर १९४८ तक की विशेष घटनाओं पर कल्पना को घुमाने से उप-न्यास की मुख्य-मुख्य घटनाओं का स्मरण हो जावेगा। यदि घटनाएं याद नहीं आ रही हों तो सिनेमा घरों, नाटकों और घरों में उन घटनाओं को ढूंढ लें। नगरों और गाँवों में अपनी और अपने से बाहर के मानव की प्रकृति में, ऊपरी टटोल का प्रश्रय कुछ अधिक सहायता न देगा, परन्तु जरा भीतर झाँकने से प्रतीति हो जायगी कि कथानक का आधार तथ्य पर है। थोड़ा और भीतर झाँका जायगा तो जो कुछ दिखलाई पड़ेगा वह दैनिकों या साप्ताहिकों के समाचार-स्तम्भों में नहीं मिलता, इसलिए यदि १९४५ से १९४८ तक के या किसी भी काल के पन्नों में या उनकी स्मृति से कुछ प्राप्त न हो सके तो न तो आश्चर्य होना चाहिए और न परिताप ही। जो कुछ बाहर या भीतर होता रहता है उसी को समाज के सामने लाने का प्रयत्न 'अचल मेरा कोई'...में है।" (परिचय—वृन्दावनलाल वर्मा)।

प्रेम के आन्तरिक और बाह्य ऊहापोहों से आच्छन्न संघर्ष या उसमें बड़ा स्वाभाविक अभिव्यक्तिकरण है। हृदय, मस्तिष्क, परिवार, संस्कार, समाज, कर्तव्य, सब का आकर्षण-विकर्षण, विरोध-अवरोध, सतत दृष्टिगत होता है जिसके फल-

स्वरूप गतिशीलता, आकर्षण तथा प्रवेग कथावस्तु में निरन्तर द्रष्टव्य है।

सुधाकर और अचल राजनैतिक अभियुक्तो की मुक्ति से कथानक का आरम्भ होता है। उस स्थल पर निशा और कुन्ती आदि राष्ट्रीय-स्वतन्त्र चेतना से आन्दोलित छात्राए भी जेल के द्वार पर अभिनन्दन एव स्वागतार्थ फूल आदि लिये अन्य लोगो के साथ एकत्र होती हे और उक्त अवसर पर निशा सर्वप्रथम सुधाकर के गले में और कुन्ती अचल को माला पहनाती है। और दोनो युवको का स्वाभाविक आकर्षण उन दोनो के प्रति होता है, यो वे पहले से ही कॉलेज-जीवन में परस्पर परिचित थे। ऐसे अवसरो पर कभी-कभी मानवीय भावनाओ का स्रोत तेजा से प्रवाहमान हो उठता है। पुन. निशा के पिता जियाराम अपनी पुत्री के लिए वर ढढने के क्रम में भोज का आयोजन करते हें, जिसमें कुती आमन्त्रित होकर उपस्थित हाती है, निशा के समान ही नृत्य और सगीत का प्रोग्राम (कार्यक्रम) देता है और निशा से अधिक मफलता प्राप्त करती है। सुधाकर और अचल दोनो स्वाभाविक रूप से उन युवतियो की ओर आकृष्ट होते हे। जियाराम उनकी गतिविधि का निरीक्षण कर उनसे, अप्रत्यक्ष ढग ग्रहण कर, निशा के लिए उपयुक्त पात्र खोजने का आग्रह करते हें। परन्तु, अचल तो एम० ए० पास करने के पश्चात् (वह एम० ए० का छात्र है) निश्चित हो जाने पर ही, बन्धन स्वीकार करने का बहाना कर, निकल जाता है। सुधाकर भी अस्वीकार कर देता है, जिसके फलस्वरूप निशा का परिणय-सस्कार एक दूसरे पुरुष से कर दिया जाता है।

अचल सगीत और नृत्य का अद्भुत ज्ञाता है अत कुन्ती विशेष प्रवीणता प्राप्त करने की लालसा से, शिक्षा ग्रहण करने के निमित्त, अचल के यहाँ नित्य आती है। शनै-शनै परस्पर मूक, सयमपूर्ण प्रेम का सूत्र स्थापित हो जाता है। परन्त, अचल के द्वारा प्रेम का जरा भी व्यक्त आग्रह न देख, गलती से, कुन्ती अपने माता पिता की आज्ञा स्वीकार कर सुधाकर से वैवाहिक सम्बन्ध स्वीकार कर लेती है। सुधाकर का अतिशय प्रेम कुन्ती के लिए दुर्वह हो उठता है। वह मात्र अप्सरा बनना न चाहकर मानवीय रहना पसन्द करती है[1] अत अचल के पास शिक्षा और सगीत-गान के निमित्त पहुचने लगती है। बाद में अचल का अपने प्रति वास्तविक, गहरा प्रेम ज्ञातकर दुखी होती है परन्तु निर्वाह के अतिरिक्त उसके सम्मुख कोई दूसरा मार्ग नहा दीख पडता। अचल और कुन्ती का प्रेम निरन्तर प्रगाढ होता जाता है। जिसके परिणामत वह सुधाकर के साथ रास-रग से विरक्त हो अचल के पास अधिक रहना चाहती है।

सुधाकर स्त्री-स्वतन्त्रता का पक्षपाती हे कर भी अपनी पत्नी से यह उचित न अनुभव कर, सतप्त हो उठता है और इसी क्रम में कुन्ती से अनुपस्थिति का कारण पूछने पर उसके झूठे उत्तर से अत्यन्त विक्षुब्ध हो, कुछ भला-बुरा भी कह बैठता है। निशा के विधवा होने पर कुन्ती उसकी अचल से शादी करा देती है, परन्तु अचल से अपना प्रेम-सम्बन्ध तोड नहीं पाती। सुधाकर की शका को समझ, तथा अपने झूठे बहाने के पकडे जाने से दुखी हो, एव सुधाकर के कुछ अपमानजनक व्यवहार से पीडित

१ विष्णु प्रभाकर ने भी 'दो किनारे' एकाकी में नारी के इसी स्वभाव को उपस्थित किया है।

हो, कुन्ती आत्म-हत्या कर लेती है और एक पत्र पर 'अचल मेरा कोई'·· ·' लिखकर छोड जाती है। इस प्रकार कथा का अन्त हो जाता है।

कथावस्तु दुखान्त है, जिसमें प्रेम की असफलता और सामाजिक बन्धन की सीमा का अंकन स्पष्ट है। आरम्भ से ही कथावस्तु रोचक, गतिशील है और कथा किस दिशा में मुडेगी यह पता नहीं चलता। प्रारम्भ में कुन्ती का अचल के यहाँ नृत्य-संगीत सीखते समय ऐसा ज्ञात होता है कि कुन्ती और अचल में परिणय-संस्कार होगा, परन्तु ऐसा न होकर सुधाकर पति बनता है। निशा का भी ब्याह सुधाकर से न होकर दूसरे से होना कम जिज्ञासापूर्ण नहीं लगता। पुन. विवाहिता कुन्ती का अचल के प्रति आकर्षण और उससे मिलने जाने पर अपने पति सुधाकर से अन्यत्र जाने का झूठा बहाना आदि कुछ ऐसी वक्रताएं हैं जिनसे रोचकता का अविच्छिन्न प्रवाह निरन्तर बना रहता है।

कथावस्तु के सम्बन्ध में यह अवश्य कहा जायगा कि इसमें ग्रामीण थोवन, पंचम, गिरधारी की कहानी क्षेपक तथा व्यर्थ लगती है उनका मुख्य कथावस्तु से कोई सम्बन्ध नहीं है। केवल उनके प्रसग द्वारा एकाध स्थल पर कुन्ती के गौरवपूर्ण नारीत्व का परिचय मिलता है, जैसे थानेदार के सम्मुख बंधे हुए ग्रामीण स्त्रियों और पुरुषों को खोल देना और उनके सम्मुख निर्भीक हो, उनके बीच खडी हो जाना। इसी माध्यम से अचल के व्यक्तित्व पर भी कुछ प्रकाश पडता है। परन्तु, इतनी बडी लम्बी अप्रासंगिक कथावस्तु का रहना, पंचम, गिरधारी आदि का जमींदार थोवन से लडना-झगडना, सर्वथा निरर्थक है और उक्त युद्ध का अन्त भी लेखक दिखाना शायद भूल-सा गया है। अत यह प्रसग दोष ही उत्पन्न करता है। 'गोदान' में भी ग्रामीण कथा-वस्तु के अतिरिक्त नगर का कथानक संतुलित रूप में सूत्रबद्ध नहीं हो पाया है।

कथानक में नारी-स्वतन्त्रता की समस्या का समावेश है परन्तु उसका कोई निदान नहीं है, न वह समस्या कथानक की धुरी ही बन पाती है। कथानक को राज-नैतिक रंग देने का प्रयास है जिससे न वह राजनैतिक बन पाया है, न वह पूर्ण सामा-जिक-समस्या प्रधान। यदि यह मोह वर्मा का नहीं छू पाता तो निश्चय ही यह एक प्रेमपरक सुन्दर कृति बन पाती। राज-नीति से सम्बन्धित अचल का मात्र जेल से छूटना छोडकर अन्य कोई महत्वपूर्ण राजनैतिक कार्य कभी नहीं दीखता वरन् जब पंचम आदि इस सिलसिले में आते हैं तो उनसे वह उचित प्रेरणा भी नहीं ग्रहण कर पाता। वे अचल के व्यवहार और आचरण से कुछ खिन्न ही होते हैं। सम्पूर्ण उपन्यास में वह (अचल) एक बार ही पंचम आदि के सहायतार्थ ग्राम में उपस्थित होता है परन्तु वहाँ भी अचल का नहीं कुन्ती की भूमिका (role) प्रधान होती है। कुन्ती ही दृढतापूर्वक आगे बढकर स्त्रियों का बन्धन खोलती है।

आधुनिक उपन्यास-साहित्य में आज हम अप्रासंगिक विषयों का समावेश पर्याप्त देखते हैं। उदाहरणार्थ भगवतीचरण वर्मा के 'तीन वर्ष' और अज्ञेय के उपन्यासों को देख सकते हैं। आलोच्य कृति में बीच-बीच में अनेक अन्य विषयों पर वाद-विवाद एवं भाषण-सम्भाषण है। जैसे निशा और कुन्ती, कुन्ती और अचल के वार्तालाप में देख सकते हैं। परन्तु यह अवश्य ही स्वीकार किया जायगा कि इसमें वर्मा जी की भाषा

अत्यधिक प्राजल है। "नृत्य वास्तव में एक दृश्य-काव्य है। जैसे सरस कविता के ललित, कोमल पद मन-तारो को झकार दे देते है वैसे ही नृत्य का दृश्य-काव्य जो देहलता की लहरो में होकर प्रकट होता है मन को झकार ही नही, टकारें देता है।" (पृष्ठ ८७)।

परतु जब ग्रामीण पात्र जैसे गिरधारी, पचम आदि सदा शुद्ध हिन्दी बोलते है तो कभी-कभी एकाध शब्द गलत क्यो बुलवाया गया, यह पता नही चलता—"भाई वे महात्मा हैं। उनकी बात जाने दो। लगाओ चार सपाटे और फिर मन-ही-मन गाधी बाबा से माफी माग लो। इतने बडे भगवान् जब छिमा कर देते हैं तो गाधी बाबा भी भूल-चूक माफ कर देंगे।" दूसरा उदाहरण देखें—"पचम ने कहा, 'हम लोग साब सचमुच कुछ नही जानते। आप लोगो में बैठकर कुछ सीखेंगे। "

मुहावरो के प्रयोग के साथ प्रादेशिक मुहावरे इनके साहित्य में यत्र-तत्र देखे जा सकते हैं—"यानी सूत न कपास कोरी से लट्ठम-लट्ठा" (पृष्ठ १२१) पुन पृष्ठ २१६ में इसी प्रकार के वाक्य देखे जा सकते हैं।

आलोच्य कृति की कथावस्तु मुख्यत नगर के वातावरण में घूमती है, फिर भी कोलाहलजन्य-पूर्ण कथानक में भी वर्मा जी का प्रकृति-प्रेम प्रकट हो गया है। यद्यपि इसमें प्रकृति-वर्णन के बहुत कम ही स्थल हैं, परतु जो है वे सुन्दर है।

"आधी रात के बाद चाँदनी डूब गयी। उजेला सिमट कर धीरे-धीरे अधकार में लीन हो गया। गर्मियो के दिन थे, हवा मद-मद चल रही थी, उसमे ठडक थी। नीम के फूलो की सुगधित हवा में कण-कण में बैठी हुई अधकार को चुनौती-सी देती थी।"इसमें (१) प्राकृतिक चित्रण का सौंदर्य और (२) प्राकृतिक सत्यो का स्वाभाविक समीकरण, दोनो हैं।

वार्तालाप का उपयोग आतरिक भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिए भी वर्मा जी की कृतियो में पाते हैं। एक स्थल देखें—बुआ और अचल का वार्तालाप कितना स्वाभाविक और सुन्दर हैं—

'क्या नही मानने की बुआ जी ?'

'ब्याह करना होगा ?'

'क्यो ? कौन सा काम अटक गया है ?'

'सभी काम अटके पडे रहते हैं। मैं कहाँ तक सभालू ? अपने परलोक को भी बनाऊ या तुम्हारी पहरेदारी और मुनीमी करते-करते ही चल बसू ?'

'अरे अभी बहुत दिन जिओगी। ऐसी क्या जल्दी पडी है ?'

'हाँ जिऊगी। तुम्हारी बेगार करते-करते मर जाऊ।। यही चाहते हो न ? इस इतने बडे घर में अकेले भडभडा जाती हू। सूना-सूना लगता है। बहू आ जायगी तो दिप जायगा।'

'कौन कहता है कि दिन भर भजन-पूजन न करो ? जो थोडा-सा समय बचे इसमें नौकरो को काम बतला दिया करो और रात को मौज में सो जाया करो।'

---

१. पृ० १२७।

'हां सो जाया करो, जैसे तुम बेफिकरे हो।'

'मैं तो बेफिकर नहीं हूं। अपने काम में मस्त रहता हूं।'

'इस बीच मर गई तो पछताओगे।'

'तुम नहीं मरोगी और न मैं पछताऊंगा।'

'क्यों रे क्या इसी जिद के लिए मैंने इतना बड़ा किया ?'

'तो हुकुम हो बुआ जो, क्या करूं, कहां अर्जी-पुर्जी दूं ?' यहां घरेलू जीवन का सच्चा रूप स्पष्ट है।

यह निश्चित रूप से स्वीकार किया जायगा कि प्रस्तुत कृति में कथोपकथन (१) कथानक को आगे बढाने वाला, (२) पात्रानुकूल, (३) गतिशीलता आदि गुणों से युक्त है, उदाहरण के लिए पृष्ठ २०७-२०८ देख सकते हैं।

अचल बुद्धिवादी व्यक्ति अतः उसका कथोपकथन पांडित्यपूर्ण है—"नृत्य वास्तव में एक दृश्य-काव्य है। जैसे सरस कविता के ललित कोमल पद मन के तारों को झंकार दे देते हैं वैसे ही नृत्य का दृश्य-काव्य जो देहलता की लहरों में होकर प्रकट होता है मन को झंकार ही नहीं, टंकारें देता है। कत्थक नृत्य से भी बढकर शांति-निकेतन के नृत्य का प्रकाश है। उस नृत्य की स्वाभाविकता, उसका प्रघात गौरव, मंजुल सौष्ठव, उसकी सहज मृदुल सरलता, घनीभूत भावुकता, रस से ओतप्रोत भाव-पूर्णता और मंगलपूर्ण सुन्दरता उसकी निजी है। शब्द, संगीत, संकेत और ताल मानो एक इकाई में दिये जाते हैं, इन सबका एक मात्र और अंतिम फल विपुल मनोहरता, रहस्यमयी आध्यात्मिकता और जीवन का एक विशाल वरदान हो जाना है।" (पृष्ठ ८७)।

क्लब में उपस्थित व्यक्तियों के, सभ्य कहलाने वाले व्यक्तियों को, छिद्रान्वेषी समाज के रहस्यों और उनकी अप्रत्यक्षतः चोट करने की कटु प्रवृत्ति को पृष्ठ १८७ पर देखें।

प्रस्तुत कृति में सामाजिक प्रेमपरक समस्या का आद्योपान्त तत्व है जो सभी पात्रों को सजग, गतिशील किये रहता है, फिर भी इस उपन्यास से कुछ प्रसंग तिरोहित कर दिये जाते (जैसे पचम वाला प्रसंग) तो यह अधिक संगत और मनोवैज्ञानिक हो पाता। रूढि (बुआ) और नवीन का झगडा, ग्रामीण और जमींदार-वर्ग (योवन) का संघर्ष, नारी में प्रेम का दौर्बल्य, पुरुष का अपनी पत्नी को दूसरे से प्रेम करते देख दुखी होना और उसके अंदर हिंसात्मक वृत्ति का जागना, कुशलतापूर्वक रखा गया है। लेखक यदि कुत्तों और अचल को विशेष महत्वान्वित करने का प्रयत्न न करता तो और स्वाभाविकता निखरती।

उद्देश्य और हल का संकेत कुछ भी इस कृति में नहीं मिलता, यद्यपि इसमें वर्मा जी ने अपने नायक अचल से कला के संबंध में यह विचार प्रकट कराया है—"..कला उन कारीगरों को कहते हैं जो मन को उन कल्पनाओं और विचारों की सेवा करके आकृष्ट करती हैं जो उस कला के बाहर की हैं और साथ ही सौंदर्य की भावना को उन संबंधों के द्वारा जाग्रत करती हैं जो कला में स्वयं निहित हैं। कला अपने ही गुणों की सेवा आदर्शों को भेंट करती है और इस क्रिया द्वारा उन आदर्शों

को हृदय में ला विठलाती है, और साथ ही अपने रस के सधानो द्वारा सौंदर्य को सुमन चढ़ती है। पर हाँ, हैं दो पहलू इस एक बात के। वे मनुष्य की अलग-अलग समय की वृत्ति पर निर्भर हैं। पर कला के लिए कला तो निरर्थक हैं। बिना किसी प्रेरणा के कला का विकास हो ही नही सकता।" (पृष्ठ १३८)।

साथ ही इसमें न नारी स्वतन्त्रता की समस्या, या विधवा-विवाह या राजनैतिक उद्देश्य ही स्वीकार किया जायगा। बस प्रेम की कहानी है, जो स्वाभाविक है। अत इस दृष्टि से भी वर्मा जी की कृतियो का इसमें भिन्न वर्ग है।

चरित्र-चित्रण

कुती, निशा, सुधाकर, अचल, जियाराम, पचम, थोवन, गिरधारी येही आठ प्रमुख चरित्र के रूप में व्यवहृत हुए हैं, जिसमें अन्तिम तीन प्रासगिक दोष के कारण उपन्यास में विस्तार से आ गए हैं।

कुन्ती—आलोच्य कृति की नायिका है, जिसे लेखक ने असाधारण रूप देने का निष्फल प्रयत्न किया है। सभी पात्र कुती को असाधारण मानते हैं। निशा तो स्पष्ट कहती है—'कुती! तुम साधारण नही हो। तुम असाधारण हो। तुम्हारा जीवन भी असाधारण रहेगा।"

वह सुन्दर है, मादकता से पूर्ण है, और बी० ए० में पढने के अतिरिक्त नृत्य और सगीत भी अच्छा जानती है, जिससे अचल और सुधाकर दोनो ही उसके प्रति आकृष्ट होते हैं। परन्तु, वह पूर्णतया साधारण, दोषग्रस्त स्त्री है। ऊपर से वह दिखावटी आचरण करने वाली है। उसके अन्दर सामाजिक क्रांति की क्षमता नही[1] अतएव नारी-स्वतन्त्रता चिल्लाना उसके मुख से नही शोभता, वह तो मात्र अनर्गल प्रलाप सा प्रतीत होता है। कई स्थलो पर तो मात्र अपनी कमजोरियो को छिपाने के लिये वह नारी-स्वतन्त्रता की पुकार करती है। उदाहरणार्थ पृष्ठ ११५ देखें।

यदि वह असाधारण होती, पवित्र नारी होती, शुद्धाचरण वाली होती, तो (१) अचल से चुपके-चुपके नही मिलती, (२) अगर मिलती तो सुधाकर जैसे स्वतन्त्रता देने वाले पति से झूठ नही बोल जाती और (३) अपने चरित्र पर कलक लगते देख आत्महत्या नही करती, (४) माँ की इच्छा के अनुकूल अपनी इच्छा का हनन कर सुधाकर से सम्बन्ध (परिणय-सस्कार) स्थापित नही करती, (५) और करती भी तो दुर्बल स्त्री की तरह पुन अचल के प्रति इतनी सहलता से आकृष्ट होकर अनैतिकता को प्रश्रय नही देती। ये सभी असाधारण नही, अपितु, तुच्छ नारी के प्रमाण हैं जिसे (कुन्ती को) अनावश्यक रूप में लेखक ने महत्व देना चाहा है। इससे अधिक सफल और आदर्शपूर्ण चरित्र निशा का है। 'सोना' में भी यही दोष उत्पन्न हो गया है, सोना को महत्व प्रदान करने के तीव्र प्रयास में भी रूपा अधिक सबल और महत्व-

---

१ मॉदम वावरी (Madame Bovary) लेखक G Flaubert से कुछ आलोचक इसकी तुलना करते हैं जो उचित नहीं है क्योंकि वह भिन्नभावपरक रचना है। Gustave Flaubert के दृष्टिकोण में भी पर्याप्त अन्तर है।

पूर्ण बन जाती है। रूपा मुख्य और सोना गौण।

जिस प्रकार साधारण स्त्री पुरुष की परीक्षा कर अपनाना चाहती है; वासना, रूप और गुण को परख करना चाहती है उसी प्रकार कुन्ती है। वह सोचती है—"अचल क्या दिमाग-ही-दिमाग है अथवा उसमें शरीर का भी कोई अंश है? उसमें शरीर भी होगा, सब स्त्री-पुरुषों का होता है, परन्तु दिमाग के बराबर या दिमाग से कम? सुधाकर में शासन अधिक है परन्तु वह सरल भी है। दिमाग भी है। पर शरीर का अंश भी है। जीवन क्या केवल बुद्धि-भोज है? क्या अचल अपने जीवन को केवल दिमाग की खूराक पर चलाने की ओर बढ़ा रहा है? होते-होते इस प्रकार के जीवन का अन्तिम रूप कितना रूखा, कितना फीका और खाली न बन जायगा?" (पृष्ठ ८६) और बस इसी विचार पर सुधाकर से शादी कर लेती है।

कुन्ती का चरित्र उलझा हुआ है। वह नारी-स्वतन्त्रता उचित मान जहाँ चाहती है जाती है, परन्तु शादी में माता-पिता का चुनाव अधिक उपयुक्त मानती है। उदाहरण स्वरूप पृष्ठ १२८ देखें जिसमें इनके मत स्पष्ट हैं और माता-पिता के अनुसार सुधाकर को वरण करती है, परन्तु इस कार्य में वह स्वयं गलत सिद्ध होती है। उसका मन अचल के प्रति आकृष्ट रहता है, जिससे पारिवारिक जीवन सुखमय नहीं हो पाता और अन्त में उसे प्राणों का न्योछावर भी करना पड़ता है।

इस प्रकार वर्मा जी जो सर्वदा आदर्श भारतीय नारी का चित्र खींचने में सफल रहे, इसमें यह नहीं कर सके, क्योंकि कुन्ती विवाहिता होकर भी अचल से चेतन-अचेतन रूप में प्यार करती रहती है।

वह इतनी निर्मल और सुशील स्वभाव की भी नहीं है तभी तो अपने आचरण से बुआ को प्रसन्न नहीं कर पाती वरन् मुँह लगाकर बात को बढ़ाती है। उदाहरण में पृष्ठ १६४ देखें।

इस प्रकार वह पारिवारिक जीवन को स्वर्ग में परिणत नहीं कर पाती, जहाँ सुधाकर, कुन्ती और बुआ तीन ही व्यक्ति हैं। इसी कलह से सुधाकर भी दुखी रहता है क्योंकि वह परस्पर स्नेह एवं प्रेम-सूत्र चाहने वाला व्यक्ति है।

खांडेकर के 'क्रौंचवध' उपन्यास की नायिका अधिक प्राणवान है क्योंकि विवाहिता होने पर दृढ़तापूर्वक प्रेमी को स्वीकार करती है और महत्त्वपूर्ण दृष्टि से, जिस से नायक का जीवन नष्ट होने से, एवं राष्ट्रीय आंदोलन टूटने से बच पाता है। कुन्ती में ऐसी कोई सत्यवर्जनात्मक दृष्टि नहीं, न कोई असाधारणता का परिचय। 'देवदास' की नायिका का पति के प्रति पतिव्रता दृढ़ता है, जब देवदास मौत के दुःखपूर्ण आवरण में आवृत्त हो, उसके ग्राम में एक वृक्ष के नीचे आकर, प्राणान्त करता है। वह परिस्थिति भी कड़ी और मार्मिक तथा स्वाभाविक है।

इतने दोषों के होते हुए भी इसके चरित्र-चित्रण में मनोवैज्ञानिकता, क्रिया-प्रतिक्रियाओं के सफल अंकन की घटना वर्तमान है। जब अचल नृत्य पर विद्वत्तापूर्ण विचार प्रकट करता है (पृष्ठ ८७ देखें) तो उस स्थल पर कुन्ती के मनोभावों और मनोदशाओं का चित्रण बड़ा आकर्षक और नैसर्गिक है। कुन्ती का नारीत्व मात्र वाक्-चातुर्य से प्रसन्न नहीं होता, आत्मीयता ग्रहण नहीं करता, वरन् वह चाहता है कि 'अचल'

स्त्री की तरह एक दो शब्द कह दे, फूटा-सा ही कह दे।" अर्थात प्यार के कुछ वाक्य सुन परितृप्ति स्वाभाविक मानवोचित गुण है।

कुती के मन का चोर उस समय भी जाग्रत हो उठना है जब वह नृत्य के बाद सुधाकर से पूछती है कि नृत्य कैसा रहा ? उदाहरणार्थ पृष्ठ २०७-२०८ देखें।

कुती मे वीरत्व और धैर्य-गुण भी केवल ग्रामीणो का छुडाने के समय दीखते हैं और उस समय 'अचल' स्पष्ट कहता है—"आज जो रूप मैने तुम्हारा देखा वह है नारी का वास्तविक सौंदर्य। जो अक्षय है, अमिट है।" (पृष्ठ २२२)

सुधाकर—एक 'लखपती घराने'[1] का युवक है जो देशभक्ति की स्वाभाविक प्रेरणा न होने पर भी काग्रेस-आदोलन में अभियुक्त होता है और जेल से मुक्त होने के पश्चात अपना कारोबार सम्भालता है।

वह उदार विचार का है। वह स्वय स्त्रियो की स्वतन्त्रता का पक्षपाती है—मैं स्त्रियो की स्वाधीनता का कट्टर पक्षपाती हू," परतु "रगमच पर अपनी पत्नी या होने वाली पत्नी के नृत्य, हाव-भाव, घू घरू की छमाछम इत्यादि का पक्षपाती नही हू।"और सचमुच वह अपनी पत्नी कुती को कभी उसकी इच्छा के प्रतिकूल कुछ नही कहता, उसे पूरी स्वतन्त्रता दिये रहता है। वह तो अपनी बुआ के सम्मुख स्पष्ट कहता है—"मै तो स्त्रियो की स्वतन्त्रता का और पुरुषो के समान पद देने का मानने वाला हू।" और कुती की इच्छा पर, बुआ की इच्छा के प्रतिकूल, उसे पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करता है।

'अचल' जब उससे निशा की शादी धन के लोभ में स्वीकार कराना चाहता है तो सुधाकर स्पष्ट कहता है–"(मै) जयमाल (विवाह) गुण और रूप के गले में डालूगा न कि द्रव्य के गले में।" और फिर मै स्वय भी तो उपार्जन का काफी प्रयत्न करूगा।" और पुन वह स्वाभाविक रूप में कहता है। "नृत्य और गायन मुझे पसद है, यदि मेरी पत्नी सगीत के इन दानो अगो को जानती हो और मुझको रिझाने और सुखी बनाने के लिए उनका उपयोग करे तब तो मुझको कुती का स्वयवर करने में सकोच न होगा।" अत उसका जीवन साधारण परन्तु सहज मानवीय है। इसी गुण पर रीझ कर कुती से ब्याह करता है, उसे अपने प्यार मे सराबोर कर देता है, दिन भर उससे प्रेमालाप करता है, सजाता है, खुश रखने का प्रयास करता है, परन्तु वह मनुष्य है, अत कुती के 'अचल' से अत्यधिक मिलने और बहाना बनाने से और लोकाचार में उसके आचरण पर व्यग सुनने से कुछ विचलित अवश्य होता है और इसी क्रम में अतिम समय भी कुती के झूठ बोलने पर स्वय पर सयम रखता है और अनशन करना चाहता है। कुती पर कोई अत्याचार नही करता (यह उसकी महानता ही है)।

'सुधाकर' विचारो और आचरण में एकत्व चाहता है, कुती की तरह विशृखलता नही। देखिये सुधाकर कहता है—'जहाँ पुरुष ने अपनी बेसमझी के कारण ठोकर खाई, वह स्त्री के सिर दोष मढने लगा। क्या नर-चरित्र, नारी-चरित्र से कुछ

---

१ पृ० १२, लेखक के ही शब्दों में।

कम दुर्बोध है ?" (यहाँ भी उनकी उदारता ही प्रकट होती है)। सचमुच वह अपने मन में यथासम्भव विकृति और दुर्विचार को उत्पन्न होने देना नहीं चाहता। कुछ लोग उस स्थल पर सुधाकर का यह वाक्य, 'भगवान को झगड़ा करने के लिए मत बुलाओ, आवरगी छोड़ने के लिए उसकी सहायता माँगो," बुरा मानेंगे और उसे अनुदार सिद्ध करना चाहेंगे, परन्तु उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि सुधाकर भी मनुष्य है, पति है, जो पत्नी के साथ सुखमय ससार बसाना चाहता है। अत क्षण भर के लिए उसकी यह मानवोचित कमजोरी स्वाभाविक है। कुती के 'अचल' के यहाँ जाने पर उसे कुछ क्रोध अवश्य होता है—"मैं खुद ही ढूढू, कहा है (कुती) और क्या कर रही है और आज दो-दो बातें 'अचल' से भी कर लू—उस दार्शनिक न। जो जेल की दीवारों के भीतर नाच सकता है, वह दूसरो की इज्जत भी ले सकता है !! परन्तु अभी तक कुती पतित नही हुई है . .।" (पृष्ठ २५४)। जब कुती निरकुश हो आचरण करती है, सीमोल्लघन करती है, उस समय भी सुधाकर का विचार उच्च रहता है—"अपनी पत्नी का ही शासन न कर पाया तो धिक्कार है। पर करूगा सभ्य उपाय द्वारा।" (पृष्ठ २५७)।

वह राजनीति में न पडकर, यथासभव लोगो की सहायता कर अपनी उदारता का भी परिचय देता है। पचम आदि को जमानत पर छुडाता है, भले ही उसने उसे कारोबार में कुछ घाटा ही होता है, क्योंकि कुछ सरकारी कामो के ठेकेदारो से उसका नाम काट दिया जाता है। वह अपनी पत्नी पर ग्राम जाने और रात वही व्यतीत करने पर भी क्रुद्ध नही होता। यहाँ भी उनकी चारित्रिक दृढता ही प्रकट होती है।

पुन मैं कह दू यद्यपि लेखक ने कुती की तरह ही अचल को सुधाकर से विशेष महत्वान्वित चित्रित करना चाहा है, परन्तु अचल अपने चारित्रिक दौर्बल्य के फलस्वरूप दब गया है। विस्तार से अचल की कमजोरियो पर आगे विचार करेंगे।

अचल यह आलोच्य कृति का प्रधान पात्र है और जो (१) बुद्धिजीवी, (२) कला-पारगत (३) शिक्षित, (४) और सुन्दर युवक है, जिसको केंद्र बन कर ही कथानक की परिधि बनती है। यह साधारण और सुधाकर की तुलना में निम्न ठहरता है, जो मैं ऊपर ही कह चुका हूँ।

अचल को लेखक ने राजनीति तथा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के प्रति जागरूक रूप में चित्रित करना चाहा है, और लेखक के शब्दो में ही उसका विचार देखिए—"अचल के भीतर कोई कह रहा था—जल्दी लौटकर नही आना है, इतना समय निकल जायगा कि एम० ए० पास कर लोगे, इसके बाद फिर जेल जाने में गौरव कुछ ज्यादा बढ जायगा।[1] वह तो नाम और गौरव का भूखा लगता है। स्पष्ट है (१) उसके अंदर अभिमान है (२) और पढना, एम० ए० पास करना, प्रथम लक्ष्य है, राष्ट्र प्रेम द्वितीय।

एक स्थल पर पचम गिरधारी से अचल की भावनाओ की चर्चा करता है—"... अचल बाबू चाहते थे मुफ्त की कमाई को गरीबो से पुजवाने के लिए ही भगवान्

१. पृ० २।

के नाम की आड ले-ली जाती है जिससे हम लोग इनका काम करने के लिए मजबूर न कर सकें।"[1] परतु, वास्तविक जीवन में अच ? भिन्न दीखता है। वह न कभी अपने सिद्धात को मूर्त्त करने के लिए क्रियाशील होता है, न कभी अनारो से घृणा करता पाया जाता है वरन् सुधाकर जैसे लखपती युवक मे मित्रता रखता है, कुती और निशा जैसी अभिजात वर्ग की युवतियो के साथ अधिक समय व्यतीत करता है।

वह तो स्वय मे आत्मशक्ति की इतना कमी अनुभव करता है, नैतिकहीनता अनुभव करता है कि जब गिरधारी और पचम उसे कुती को गीत अभ्यास कराते देखते है तो (१) घबरा उठता है, (२) शका से भर उठता है (३) और देश-कर्तव्य भूल युवती-सपर्क की अदमनीय लालसा के सागर में गोता खाते गिरधारी आदि को शीघ्र हटाने की इच्छा रखता है, तथा (४) उनके साथ आत्मीयतापूर्ण व्यवहार करने से वचित रहता है।

वह इतना निम्न चरित्र का है कि (६) विवाहिता कुती से प्रणय-व्यापार सदा बनाए रखता है और उसे कभी पत्नी-कर्तव्य की शिक्षा देना या उसे अपने पास अधिक रहने से रोकना नही चाहता। अपनी कामना की तृप्ति के लिए वह नारी-स्वतत्रता का समर्थन करता हुआ कहता है—"स्त्रियो को आजाद की सास लेने दो। उनका तो समाज ने कचूमर-सा ही निकाल दिया है। अपने आदोलन में उनका भी शरीक करो।" (पृष्ठ ७४) जहाँ वह नारी-स्वतत्रता की व्याख्या देता है वहाँ वह मात्र व्याख्यानदाता ही है जीवन में (७) नारी-स्वतत्रता के लिए कुछ नही करता, (८) ऐसा प्रतीत होता है वह इस स्वतत्रता के बहाने कुती को अपने पजे में कसना चाहता है (चेतन या अचेतन ढग से), और (९) कुती से उसका सबध नारी-स्वतत्रता के दृष्टिकोण के आधार पर नही वरन् शुद्ध रोमास या प्रेम पर है।

(१०) यह तो स्वीकार करना ही पडेगा कि सगीत और कला के ज्ञान के साथ, उस पक्ष का स्पष्ट दृष्टिकोण (clear conception) उसे है जो एक बुद्धिजीवी से अपेक्षित है। नृत्य-कला के सबध में वह कहता है—"अतर्निहित लालसाओ की नृत्यकला अत्यत प्राचीन भाषा है, जिसके शब्द, हाव-भाव, सकेत और ताल है। फिर इस भाषा का व्याकरण बन गया और उसमें पैर को उतनी आजादी नही रही। इसी लिए जन-नृत्य, शास्त्रवाली नृत्य-कला से अलग हो गया और उसको उद्दीपन या आदिम धार्मिक वृत्ति का रूप मिल गया।" (पृष्ठ ८४) और "काम-वासना के चक्र में मन जो चक्कर खा जाता है, उसी का बाहरी और साकार रूप वे फिरकियाँ है जिनमें शरीर कील पर चक्कर खाते हुए लट्टू की तरह एक आकार मात्र-सा दिखलाई देता रहता है और शरीर की सच्चाइयाँ थोडी देर के लिए भुलावे में पड जाती है। कत्थक नृत्य जो तुमने सीखा है—नृत्य, नाटक और गायन का सम्न्वय है। वह एक मधुर स्वप्न-सा मदिर होता है, वास्तविकता से दूर और तान, ताल तथा काव्य का अद्भुत मीठा शर्बत।" (पृष्ठ ८५)।

(११) वह ऊपर से ज्ञानी का रूप धारण कर भी कामासक्त व्यक्ति है। कुती

---

[1] पृ० १५।

से आकर्षित उनके नृत्य की शीघ्र प्रशंसा कर बैठता है—"बहुत अधिक पसन्द आया और बहुत ही अच्छा लगा उसका हाव-भाव के साथ प्रदर्शन। बहुत सुन्दर, बहुत मनोहर।" (पृष्ठ ९०) जब कि वह उसी के नृत्य को जो बहुत अच्छे ढंग से सफलता-पूर्वक प्रस्तुत किए जाने पर सूक्ष्मता अपेक्षित कर कुछ उपेक्षणीय भाव प्रदर्शित करता है। यहाँ उसकी केवल लालसा प्रबल हो ऐसा कहला देती है।

(१२) कुन्ती की शादी के पश्चात् वह परोपकार सोचता है—"परोपकार! मानव जीवन का सबसे बड़ा और सबसे अधिक सरल उद्देश्य है। इसी का प्रयत्न करूंगा। इसी से अपने जीवन की बेल को सींचूंगा और बढ़ाऊंगा।..जिंदगी को सुख से भर देने का कैसा अजीब और सहज नुस्खा है।" (पृष्ठ १५२), परन्तु यहाँ उसका कुंठन (frustration) ही है, आत्मिक ज्ञान नहीं और सचमुच वह जीवन में कोई महत्वपूर्ण परोपकार भी नहीं करता।

(१३) वह प्रेमी ही है, तभी तो साधारण स्त्री कुन्ती के संबंध में महत्वपूर्ण श्रेय की प्राप्ति समझता है—उदाहरणार्थ पृष्ठ १७४ देखें।

(१४) अचल का विचार भी सुलझा हुआ नहीं है (यद्यपि बुद्धिजीवी है, केवल संगीत, नृत्य-कला को छोड़कर अन्य तथ्यों की दृष्टि से)। तभी तो कुछ सीमा तक प्राचीनता का अनुगमन नारी के लिए श्रेयस्कर समझता है और कुछ सीमा तक नयापन। यही मूल कारण है जो वह समझता है कुन्ती विवाहिता हो जाने पर पुनः उससे विवाहित नहीं हो सकती और दोनों आजीवन सुखमय जीवन व्यतीत नहीं कर सकते।

(१५) वह अपने को विधवा-विवाह का पक्षपाती मानता है और निशा से ब्याह करने को बिना हिचक तैयार हो जाता है। उस स्थल पर ऐसा प्रतीत होता है जैसे उसके पास हृदय नाम की कोई वस्तु नहीं, और कुन्ती की शादी दूसरे से हो जाने पर दुःखी नहीं है और पत्नी-कामना से अभिभूत हो शीघ्र निशा को पत्नी बना लेने को आतुर है। इसमें उसका त्याग नहीं है। इस प्रस्ताव पर अचल को थोड़ी भी पीड़ा तो अनुभव करनी ही चाहिए थी।

(१६) साथ ही वह कुन्ती के हाथ का कठपुतला लगता है। उसकी आज्ञा का पालन करना ही उसका श्रेय है। कुन्ती सूत्रधारिणी है, जिसके संकेत पर वह नाचता है, व्यक्तित्वहीन होकर।

निशा—यह धनी परिवार की शिक्षित परन्तु सबसे शांत, निरीह, दुःखी और मूक बाला है। यद्यपि लेखक ने उसके चरित्र के पूर्ण उभार पर विशेष ध्यान नहीं दिया है फिर भी यह अपनी विशिष्टता और शक्ति के परिणामस्वरूप कुन्ती से अधिक महत्वा-न्वित और उच्च सिद्ध हो गई है। वह अपने माता-पिता और बड़ों के संस्कार का पालन, परिणय-संस्कार के लिए भी आवश्यक समझती है—"मौन मेरा लिखा हो तो अपना वर खुद ढूंढ लो और फिर, जीवन में ठोकरें खाओ। अपने लिए सबसे सुख और सुविधा का मार्ग है कि बड़े-बूढ़ों के चुने हुए वर को इन्कार करने के पहले निन्यानवे बार अपने विचार में तोलो।" (पृष्ठ १२८) और इसी विचार का वह सर्वदा पालन भी करती है। कुन्ती की तरह विवाहिता होकर पर-पुरुष-संसर्ग या प्रेम स्वीकार नहीं करती।

वह मादकता-भरी नही प्रत्युत् सुन्दर और शात प्रकृति को है, तभी तो अचल और सुधाकर कुनी की ओर पहले आकृष्ट होते है। लेखक के शब्दो में ही देखें—"निशा की आखो में कोई वैसी गहराई या मादकता न थी। सरल-भोली चितवन मुस्कान से खिल रहा थी और सकोच से दब रही थी।" और सचमुच वह इसी मन स्थिति की युवती चित्रित है।

पति की मृत्यु के पश्चात् माता-पिता की आज्ञा उचित समझ वह अचल से भी ब्याह स्वीकार कर लेती है।

यह अवश्य कहा जायगा कि लेखक के पक्षपात के कारण उसका चरित्र (ब्याह के पश्चात्) कोई विशेष महत्वपूर्ण चित्रित नही हो सका है। विधवा-विवाह करा कर भी लेखक का ध्यान अचल की ओर विशेष रहा है, न कि निशा की ओर। निश्चय ही, जो पात्र कम शब्दो में ही इतने सुदृढ हो गए है, उसकी उपेक्षा उचित नही है।

'अमर बेल'

जीवन के स्वास्थ्य और हरियाली पर छाकर, उनके रस का शोषण करने वाली अमरबेल, कथानक का मूल है, जिसकी छाया मोहवश, क्षण भर प्रसन्नता प्रदान भले ही कर दे, परतु उससे निस्तार नितांत अपेक्षित है। प्रस्तुत, आलोच्य सामाजिक उपन्यास 'अमर बेल' का कथाकेन्द्र उपर्युक्त मूल बिंदु पर परिधि खीचता है, जिसमें ग्राम जीवन की प्रगति, विकास, व्यवधान, समग्र तत्वो के सयोजन एव समन्वयवादी आधारभूमि पर सहयोग, सहकारिता की दिशा के लहलहाते पुष्प उगे है। वर्मा जी ऐतिहासिक क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर चुके है, उसी प्रकार 'अमर बेल' उनके सामाजिक उपन्यासो में अनुपात से महत्व ग्रहण करेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

सक्षिप्त में कथावस्तु इस प्रकार है

जमीदारी-प्रथा उन्मूलन होते देख जब ग्रामीणो के मध्य मूक श्वास की लहर दौड पडी तो जमीदार और अन्य व्यक्ति, जो अपने वैयक्तिक महत्व को बढाने को इच्छुक थे, भिन्न-भिन्न क्रियाओ द्वारा कार्य-क्षेत्र में तत्पर हो गए।

सुहाना-चाँगुदेन ग्रामो के साथ भी यही सत्य हुआ। वहाँ के जमीदार देशराज एक पढी-लिखी, सुशिक्षित, चतुर युवती अजना के साथ अवैध रूप से, अफीम का क्रय-विक्रय कर, नाहरगढ के राजा बाघराज के द्वारा उसके बिकवाने की साठ-गाँठ करता है। साथ ही ग्राम में अपनी सास्कारिक वृत्ति के अनुरूप किसानो मजदूरो से ब्याज सहित अन्न लेता है, उन पर अत्याचार भी करता है।

जब सहकारी आदोलन ग्राम में आता है, परिस्थिति और काल की दिशा पहचान तथा सरकारी अफसरो पर प्रभाव स्थापित करने के निमित्त देशराज उसमें अपनी थोडी भूमि लगा देता है और अधिक भूमि पर स्वतत्र खेती कराता है।

टहल, जो वर्ग-सघर्ष तथा साम्यवादी धारा का पोषक है, के उग्र विचारो के कारण भी ग्रामीण कई वर्गों और दलो में विभक्त हो परस्पर सघर्ष, रक्तपात, मुकदमेबाजी आदि करते हैं। इसी कारण देशराज आदि जो पूजीवादी धारा के प्रतीक है। उनसे टहल सर्वदा क्षुब्ध रहता है, अप्रसन्न हो व्यगबाण चलाता रहता है, सघर्ष

करने को कटिबद्ध रहता है। देशराज उसे अपना परम शत्रु मान नाहरगढ के बाघराज के सहायक डाकू कालीसिंह द्वारा टहल तथा टहल के सहवर्गी मटाले आदि पर, आक्रमण करा समाप्त करा देने का षड्यंत्र करता है। परंतु, कालीसिंह के आंगन में प्रवेश करने के पूर्व टहल और उसकी मा घाटी वाली जागकर, सब डकुओं को मार भगाते हैं। कालीसिंह यद्यपि बुरी तरह घायल होकर और टहल को घायल कर भाग निकलता है, परंतु उसे (टहल को) पूर्णतया समाप्त करने की प्रतिज्ञा लेता है। टहल क्षत-विक्षत हो मरणासन्न स्थिति में सदर अस्पताल में ले जाया जाता है और वहाँ अपने ग्राम के डाक्टर सनेही और सनेही की स्त्री राजदुलारी की अथक सेवा शुश्रूषा से वह अच्छा हो जाता है और वह उनसे पूर्णतया प्रभावित हो जाता है तथा सनेही को अपना बड़ा भाई और राजदुलारी को भाभी स्वीकार कर अपने सिद्धान्त में परिवर्तन लाता है, उनके व्यवहार, उच्चता तथा परोपकारिता और प्रभाव को समझ उनके मार्ग में सलग्न हो जाता है। स्मरण रहे, सनेही गाँधीवादी भावना का प्रतीक है।

डा० सनेही गाँधीवाद और समन्वयवाद का सिद्धांत ग्रहण कर सभी के बीच प्रेम और एकसूत्रता स्थापित कर, सहकारी कार्यों की उन्नति में अथक चेष्टा करते हैं। विक्रम, वनमाली, देशराज आदि निरंतर विघ्न बने रहते हैं, परंतु सनेही आत्मबल और आस्था की शिखा जलाये दृढ़ बने रहते हैं। परंतु टहल के परिवर्तन से तथा उसके प्राणपन से किये प्रयत्न से उन्हें और अधिक बल प्राप्त होता है।

अजना यत्र-तत्र से अफीम एकत्र कर देशराज के यहाँ लाया करती है और पुनः वे दोनों नाहरगढ जा बाघराज से रुपया ले माल देते हैं। बाघराज कालीसिंह द्वारा उसे बाहर भेजकर रुपया अर्जन करता है। परंतु, शनैः-शनैः रुपये का लोभ बाघराज पर अधिक हो उठता है और वह माल लेकर धोखा देने लगता है। पुनः बाघराज बहुत भयानक षड्यंत्र रचता है। संगीत—समारोह करता है और कलाकारों को पुरस्कार देता है और उसी अवसर पर अजना और देशराज को दो (अफीम की) पेटियों पर २५ हजार देकर विदा करता है। रास्ते में कालीसिंह उन कलाकारों और देशराज पर आक्रमण कर तथा उन्हें घायल कर सभी आभूषणों और रुपयों को छीन लेता है। देशराज कलाकारों के साथ किसी प्रकार अपने गाँव पहुँचता है और बाघराज पर शंका कर पुलिस को सूचना देता है कि इसके (बाघराज के) पास अफीम की पेटियाँ हैं। पुलिस अकस्मात बाघराज के यहाँ पहुँचकर जेवरों और पेटियों को पकड़ लेती है। कालीसिंह किसी प्रकार किला से भाग निकलता है और प्रतिज्ञा करता है कि टहल आदि के साथ देशराज को भी समाप्त कर दम लेगा। देशराज अपमान और निराशा से आक्रान्त हो, धन का मोह त्यागकर, ग्राम में ही खेती पर लग जाता है। इस प्रकार ग्राम में शांति स्थापित हो जाती है और श्रीवृद्धि होती है।

परंतु कालीसिंह क्षुब्ध हो, एक साथ टहल और देशराज के घर पर आक्रमण करता है। डा० सनेहीलाल तथा अन्य ग्रामीणों की तत्परता और कुशलता से प्रसन्न हो सरकार ने सनेही तथा टहल आदि को बंदूक दी थी, उसका उस अवसर पर उचित उपयोग कर वे देशराज की रक्षा करते हैं और कालीसिंह तथा उनके बहुत से सहयोगी इस आक्रमण में मर जाते हैं। कालीसिंह ने देशराज के महल में आग लगा दी थी, उसे

शात कर देशराज को सुरक्षित बचाया जाता है। इस अवसर पर टहल, सनेही तथा लटोरे सिंह (अवकाशप्राप्त सैनिक) द्वारा शिक्षा-प्राप्त ग्राम-युवक जनक और ग्राम रक्षक दल के सैनिक, भी अपूर्व उत्साह और दृढ़ता प्रदर्शित कर ग्राम की रक्षा करते हैं।

विक्रम, वनमाली, सहयोगहीन होकर, अपनी दुष्ट और स्वार्थ-वृत्ति के फल-स्वरूप, चुप ही रहते हैं। जनता भी वास्तविकता से परिचित हो उनसे घृणा करने लगती है।

इस प्रकार प्रत्येक दिशा से चिनगारियाँ उठकर समाप्त हो जाती हैं और वहाँ प्रगति और विकास की भूमि बन जाती है।

कथावस्तु में आवश्यक मोड़ और जिज्ञासा का अक्षय स्रोत है। ग्राम-जीवन की सम्पूर्ण गतिविधियों पर आधारित होकर भी इसकी सबसे बड़ी विशेषता एवं सफलता, सरसता, गहराई तथा औत्सुक्य निर्वाह में है। सहकारी खेती आदि नीरस विषयों में भी लेखक ने जैसे प्राणों का संचार कर दिया है। कथानक में कहीं ग्राम-जीवन की व्यथा, करुणा, कहीं उनकी घृणा, जुगुप्सा, प्रतिहिंसा, चोरी, अत्याचार; कहीं उनकी निश्छलता, उनके उत्सव, पर्व (पृष्ठ १२१ देख सकते हैं), उनके परस्पर संघर्ष; कहीं उनकी सरलता, उदासीनता, कहीं उत्साह और वीरता सभी तत्व स्वाभाविक अनुभूति, संवेदना और सहिष्णुता से चित्रित हैं। कहीं-कहीं कथा इतनी मार्मिक और तीक्ष्ण हो गई है कि आँखें छलछला जाती हैं। कहीं-कहीं घुटन से साँसें रुकने लगती हैं, कहीं विद्रोह की लहर दौड़ती है और इन सभी मनोभूमियों में मनोवैज्ञानिक आधार लेकर वर्मा जी पाठकों को रमाते चलते हैं। निश्चय ही श्रेष्ठ एवं सफल कथानक के सभी अपेक्षित तत्वों का उपयोग आलोच्य कृति में प्राप्य है। अन्त भी सुखात्मक हुआ है—टहल और हरकुँवर की शादी (पुनर्विवाह) हो जाती है और सभी ग्रामवासियों में मिल-कर रहने की भावना जाग्रत होती है।

यथार्थ की दृष्टि से चाहे तो 'रिक्शावाला', गोर्की कृत माँ की तरह हिंदी में 'गोदान' (प्रेमचंद कृत), 'कुली' (मुल्कराज आनन्द कृत), 'परिवार' (यज्ञदत्त शर्मा) और 'अमर बेल' का नाम प्रथम कोटि में गिना जायगा और दृढ़ विश्वास है, इस दृष्टि से 'अमर बेल' की गणना विश्व-साहित्य में की जायगी। परन्तु 'गोदान' में जहाँ ग्राम और नागरिक जीवन के चित्रण में सूत्रता ढीली-सी लगती है (जिस पर हिंदी के बहुत से आलोचकों ने आक्षेप भी किया है, वहाँ 'अमर बेल' की विशिष्टता है कि इसका कथानक पूर्णतया सुहाना-बाँगुदेन में ही वृत्त बनाकर चलता है और वि-च्छिन्नता, शृंखलाहीनता का दोष उत्पन्न नहीं होता। नाहरसिंह की कथा भी आई है तो वह बहुत कम पृष्ठों में और वह ग्रामवासियों के जीवन से पूर्ण सुसम्बद्ध है।

'गोदान' में उस क्षेत्र-शल समस्या रूपी रोग के निदान, यथार्थपूर्ण पीड़ा के निराकरण का कुछ प्रयास नहीं है, परंतु 'अमर बेल' में समस्या के कटु अंकन के साथ ही उनका सफल निदान भी उपस्थित है।

प्रसंगवश मैं यह भी कह दूँ प्रेमचंद के निराकरणवादी उपन्यासों में जहाँ समस्या तीखी होकर भी समाधान यदाकदा अस्वाभाविक, ठोस होने तथा यदाकदा थोपा गया प्रतीत होता है वहाँ वर्मा जी में यह दोष नहीं है। प्रेमचंद जी पर कई आलोचकों ने

प्रचारवादी होने का आरोप किया है। 'अमर बेल' का निराकरण इतनी स्वाभाविक दिशा से अग्रसर होकर लक्ष्य पर पहुचता है कि जोज रा भी नही खटकता और न मात्र आदर्शवाद या प्रचारवाद लगता है।

इन दिनो 'मैला आचल' और 'परतीपरिकथा' (फणीश्वरनाथ रेणु कृत) भी वन्दतम यथार्थवादी कृति मानी जा रही है। परतु इन दोनो रचनाओ में आचलिकता है, चित्रो को रगीन बनाकर प्रस्तुत करने एव पूरे चित्र को बिना उतारे भी आगे बढ़ जाने की प्रवृत्ति है इससे यह नितात भिन्न कृति है। इनमें ग्रामो के कथानक को लेकर भी आचलिकता नही है प्रत्युत वह कथानक सम्पूर्ण ग्रामो का प्रतिनिधित्व करता है।[1]

'अमर बेल' में जहाँ गाधीवादी भावना विजयी है, प्रधान है, वहाँ रेणु की उपर्युक्त कृतियों में नही। 'मैला आचल' में तो कोई समाधान ही नही है—परतु झुकाव साम्यवादी चिन्तन की ओर है।

साथ ही इसमें आवश्यक भाषा का तोड-मरोड नहीं किया गया है।

'धूलो' में कथानक मुख्यत शहर को लेकर चलता है—मजदूर वर्ग आधार है परतु 'अमर बेल' में ग्राम जीवन, ग्राम चिन्तन, आचार-विचार, रहन-सहन, सभ्यता-संस्कृति, आर्थिक, सामाजिक, नैतिक आग्रह समवेत रूप से समग्रता से प्रकट है। विष्णु प्रभाकर कृत 'निशारात' (पूर्व नाम 'ढलती रात') भी यथार्थ की दृष्टि से महत्वपूर्ण है परतु उनकी भूमि और कथाकेन्द्र 'अमर बेल' से नितान्त भिन्न है।

'रिक्शावाला' की टेक्नीक प्रभावहीन तथा कथा वेगहीन तथा अरोचक है। परतु 'अमर बेल' के साथ यह सत्य नही है। गोर्की कृत 'Mother' और 'अमर बेल' मे भी दृष्टिकोण का गहरा अन्तर है। चीनी-साहित्य में लू सुन, लाउ-शाअ, टिंग-लिंग, टिङ्ग-लिङ्ग, आदि सर्वहारा वर्ग के चित्रण के लिए प्रसिद्ध है। वर्मा जी की प्रवृत्ति इनसे भी साम्य नही रखती, यह प्रत्येक पाठक अवश्य ही स्वीकार करेंगे।

आलोच्य कृति में मुख्य रूप से सर्प सदृश कुडली मारकर बैठी हुई समस्या है "अनीति से रुपया कमाने की धुन गाँवो तक में व्यापक रूप में फैली है। नौकरी, खेती, किसानी, सब में। समाज में यह घुन की तरह लगी हुई है। जैसे हरे भरे पेड पर अमर बेल।"[2] अतएव प्रगति, सुख, प्रेम, सतोष सभी वट-वृक्ष सूख कर गिर रहे हैं। (स्मरण रहे, इसी मूल समस्या के आधार पर इसका नामकरण भी हुआ है)। गाव के जमीदार देशराज, राजा साधुराज ग्रामीण साहूकार, वनमाली आदि सभी के सम्मुख समस्या है कैसे अपने स्वार्थ और विलास की तृप्ति हेतु धन एकत्र करें, अनाचार, अत्याचार, हिंसा और घृणा का प्रचार हो रहा है। शोषित वर्ग क्षुब्ध है। घृणा और द्वेष के अकुर उग रहे है। एक ओर जहाँ देशराज जैसे स्वार्थान्ध व्यक्ति मात्र वैयक्तिक सुख पर केन्द्रित हो धनार्जन चाहते है, वहाँ टहल जैसे व्यक्ति समूहवाद, साम्यवाद के विचारो और धारा-प्रणाली का उसका निदान सोचते है, इसीलिए दोनो दो छोर बन जाते हैं।

---

१ चन्द्रगुप्त विद्यालंकार भी लगभग ऐसा ही मत रखते हैं।

१. अमर बेल, परिचय—लेखक।

सनेही जैसे लोग बीच की कडी है जो, व्यक्ति के महत्व को स्वीकार करके भी, सेवा, त्याग, हृदय-परिवर्तन पर विश्वास रखते हैं और जिनसे सहअस्तित्व की स्थापना तथा दुराव की समाप्ति सम्भव है। सनेही समन्वयवादी है, जो प्राचीन और नवीन, व्यक्ति और समाज, अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय कर जीवन-पुष्प को लहराना चाहते है। वे समन्वय के द्वारा स्वस्थ पथ का निर्माण कर, जीवन का सुखकर बनाना चाहते हैं क्योकि "अगर सारे पुराने साधनो को समाप्त कर दिया गया तो देश पर ऐसी विपत्ति का पहाड टूटेगा कि सभाले न सभलेगा।"[1] उनका विश्वास है कि "अच्छी नई बातो को अपने स्वभाव का अग कैसे बनावें, बस इसी को सोचते, करते रहना चाहिए।"[2] उसके सम्मुख स्पष्ट है—"कल-कारखानो से घोर और अधिक घोर उत्पादन को खपाने की प्रतिस्पर्द्धा एक दूसरे से घृणा, डाह, भय और हिंसा—ये ही सब आज अपने सामने हैं। विज्ञान और हिंसा की जोडी बन गई है। सब देशो में परिणाम—नये-नये विनाशकारी हथियारो का सृजन, युद्ध पर युद्ध। विज्ञान और हिंसा की जोडी को तोडे बिना मानव को चैन नही मिलने का। इस जोडी के तोडने की समर्थता रखने वाला साहित्य—उपन्यास, नाटक, गीत, कविता कुछ भी हो वही—हितकर है।"[3] और "अब दूसरे प्रकार की सूखीरी का क्षेत्र सामने है। वह समय और शक्ति से सीमित नही है। डग-डग पर सब्र की सभाल, उखडते हुए दम का साधना, टूटती हुई आशा का जोडना, विरोध को अपने रस में पचाना, अकस्मात निराशा का कडवा घूट पी लेना, सुनसान वीरान की अकेली यात्रा में थके-मादे पैरो का बढाते जाना—यह सब शायद रोज-रोज का अनुभव हो जाए, इन अनुभवो पर भी बने रहना है अपनी धुन के नशे में मस्त, ऐसी मस्ती जो कभी उतरे नही।"[4] इस प्रकार गहरी आस्था के सहारे जीवन का अन्धकाराच्छन्न मार्ग ज्योतिर्मय बन सकता है। सनेही गम्भीर विचार रखते है। इनका विश्वास है युग, परिस्थिति, स्थान सभी पर ध्यान दिये बिना मात्र सैद्धातिक पद्धति का पथ किंचित सफलता नही दे सकता। सारी पुरानी चीजें बेकार, सारहीन नही है और न सभी नवीन ग्राह्य योग्य। उन सभी से प्रकाश चयन करने में ही मानव का कल्याण है। क्योकि "नक्शो के अनुसार मकान बनाये जा सकते है, मशीनें तैयार की जा सकती है, परतु मानव के काम-काज समय-समय पर सहसा आ खडी होने वाली समस्याओ के अनुकूल होकर भी चलते है। कोरे नक्शो में बढाई हुई और बढती हुई उलझनो और पेचीदगियो के मारे सभ्यताए इसलिए गिर जाती है कि उन नक्शो को सार रूप में बदलने और सुधारने वाले ऐसे नर-नारी काफी सख्या में उत्पन्न नही होते, जिनके दिल और दिमाग ऊचे दर्जे के हो।"[5] वे उन समग्र तत्वो पर सोच-समझकर मध्यम मार्ग, सहकारी सिद्धात का प्रतिपादन करते है—"स्वतन्त्रता और समानता का समन्वय सहकारी सिद्धात कर सकता है।"[6] और "समाज की आर्थिक प्रगति का शासन वैज्ञानिक योजनाए करें और दोनो को प्राण-शक्ति अध्यात्म दे तो समाज का निरतर कल्याण होता रहे।"[7]

---

१ अमर बेल, पृ० १३५। २. वही, पृ० २६०। ३ वही, पृ० ३१४। ४ वही, पृ० ३२६। ५ वही, पृ० ४५०। ६ वही, पृ० ४५१। ७ वही, पृ० ४६४, पृ० ४७६ में भी यही भाव व्यक्त है।

अन्ततोगत्या देशराज, टहल, बटोंगे सभी जीवन के निरन्तर अनेक उतार-चढाव के पश्चात् इसी तथ्य पर पहुँचते हैं कि मिलकर, सह-अस्तित्व के लिए प्रयत्न सच्ची प्रगति है। वस्तुत डाक्टर सनेही उन सभी को एक मार्ग पर ला सटा करते हैं।

आज जब पचशील और पचवर्षीय जैसी अनेक योजनाएं हमारे सम्मुख हैं, उन सभी की वस्तुस्थिति का सत्य ग्रहण कर एक सकेत भी मिलता है। मोहनलाल विद्यालकार का मत ठीक ही है—'आधुनिक भारतीय ग्राम-जीवन की समस्याओं की दृष्टि से 'अमर बेल' एक माइलस्टोन है। ऐसी सजीवता और पूर्णता से उक्त जीवन का ग्रहण करने के लिए श्री वृन्दावनलाल वर्मा जी बधाई के पात्र हैं।"

इसके अतिरिक्त शादी मे सावधानी की आवश्यकता, कुमेल ब्याह और उसका प्रभाव (हरबो के माध्यम से, पृष्ठ २०३ आदि इस दृष्टि से देख सकते हैं), अधिकार का अहम्, रूढिवादिता सरकारी अधिकारी और कर्मचारियो का हस्तक्षेप आदि अनेक अन्य छोटी-बडी समस्याएँ हैं जो मूल समस्या से सुसम्बद्ध हैं।

कथोपकथन—(क) वर्मा जी के पात्र यथासम्भव व्यवहारिक, सरल भाषा मे वार्तालाप करते हैं—

"टहल बैठा नही। खडे-खडे ही बोला—'हद हो गई! हद हो गई!!'

'किस बात की? . .'

' आप नीति की तो परवाह करते नही हैं, कानून की अवहेलना करते हैं।'

'किस कानून की?'

'सरकार के उस कानून की जिसके द्वारा पेडो का काटना बन्द कर दिया गया।'

'अच्छा! जो सरकार को दिन रात गालिया देते रहते हैं वे भी आज सरकार की दुहाई देने लगे।'—पृ० ६४।

(ख) उनके निम्न वर्ग के पात्रो की बोल-चाल मे स्थानीय शब्द भी मिलते हैं।

(ग) वार्तालाप द्वारा पात्रो के चरित्र, आचार-व्यवहार पर भी स्वाभाविक रूप से प्रकाश पडता है।

(घ) वे आगे कथानक को बढाते हैं तथा प्रेरणा और बल देते चलते हैं।

(ङ) वार्तालाप सरलता के साथ पूर्ण स्वाभाविक तथा मनोभूमियो के प्रतिरूप लगते हैं।

अतएव सफल वार्तालाप के सभी गुण उनकी अन्यान्य कृतियो के सदृश इसमें भी प्राप्य हैं।

आवश्यकतानुसार सरल भाषा में प्राण फूकने की सफल शक्ति आलोच्य उपन्यास मे दृष्टव्य है। छोटे-छोटे शब्द, छोटे-छोटे वाक्य व्यजन और तीखापन लिए हैं। क्षेत्रीय शब्द, मुहावरे, लोकाचार आदि सर्वत्र प्राप्य हैं। पृ० २०८ देखें जिसमें कोआपरेटिव के लिए ग्रामीण उसके विकृत और अपभ्रंश रूप 'कापरटी' शब्द का प्रयोग करते हैं। स्टोरेंगिह जो सेना से अवकाश प्राप्त कर चुका है उसकी भाषा देखें—

कितनी सजीव और जानदार एव स्वाभाविक है—

" हम घायल हो जाने पर भी सोलह घटे मशीन गन चलाता रहा, जब दुश्मन को बिछा दिया, हम तब बेहोश हुआ। बस।" (पृष्ठ ३४४)

प्रकृति चित्रण मे जिस प्रकार वर्ड्सवर्थ, पत, डा० रामकुमार, अचल, निराला, जानकी वल्लभ शास्त्री आदि को विशेष महत्व प्राप्त है उसी प्रकार गद्य मे स्कॉट, वृन्दावनलाल वर्मा और राहुल साकृत्यायन अद्वितीय महत्व रखते है। गद्य मे इतना सफल प्राकृतिक चित्रण विश्व साहित्य मे दुर्लभ है। वर्मा जी की इस सफलता का कारण उनकी भ्रमणशील प्रवृति तथा प्रकृति-प्रेम है।[1] इसीलिए सत्यता, प्राणपूर्णता का अक्षय स्रोत उनके वर्णन मे है। उदाहरणार्थ पृष्ठ ३१, ८०, १६५, २३२, ३१८ आदि (अमर बेल) देख सकते है।"

"चौथे पहर का आरम्भ। जाड़े की ऋतु जिसमे अभी तीखापन नही आया था। सडक किनारे के काग के पेड सफेद फूलो के लम्बे-लम्बे गुच्छो से लद गये थे। इतने कि पत्तो की हरियाली उनमे होकर झाक-झाक के झाई-सी मार रही थी। महक इतनी कि चम्पा चमेली उसके सामने सहम जाये। सूर्य की नर्म किरणें अपने सोने के डोरो का उन फूलो और पत्तियो पर जाल-सा बुन रही थी। पहाडो की नीची घाटियो के सम-विपम फैलाव मे सुनसान समाया था।" (पृष्ठ १६५-१६६)।

चरित्र चित्रण

"हम चाहे देखे या न देखें नगर और गाव मे उनकी कहानिया नित्य बनती और बिगडती रहती हैं। उपन्यास की घटनाए इन्ही से ली गई हैं सब सच्ची हैं और पात्र भी सच्चे हैं। उनके और तत्सम्बन्धी स्थानो के नाम अवश्य बदल दिये गए हैं।" (परिचय अमर बेल) इन पक्तियो से ही स्पष्ट है वर्मा जी के पात्र यथार्थ और सत्य के धरातल पर अवस्थित है। उनके पात्र हमारे मध्य के हैं। आलोच्य कृति मे सनेही, देशराज, टहल, अजना, बाघराज आदि प्रधान चरित्र हैं।

डा० सनेही—डाक्टर सनेहीलाल 'रोबीला चेहरा, आखो पर दर्प' रखने वाले पुरुप है जिनका विश्वास त्याग और सेवा मे है।

वे स्वभावत समझौतावादी हैं। वे प्राचीन और नवीन, विज्ञान और अध्यात्म, व्यष्टि और समष्टि का समझौता कर जीवन को उर्ध्वगामी बनाना चाहते है।[2] वे अतिशयता को उचित नही स्वीकार करते (पृष्ठ ६२ देखें)।

---

१ मैं पूर्व ही कह चुका हूँ कि प्रकृति प्रेम वर्मा जी में विशेष रूप से द्रष्टव्य है और जिसके मूलभूत कारणों पर भी प्रकाश डाल चुका हूँ।

२ इस दृष्टि से 'अमर बेल' का पृ० १३५ देखें जिसमें प्राचीन और नवीन के बीच समन्वय, पृष्ठ ३१४ जिसमें अध्यात्म और विज्ञान के गठबन्धन पर डा० सनेही आस्था प्रकट करते हैं। आगे वे और स्पष्ट करते हैं। ' अभय होने के लिये घृणा और ईर्षा का त्याग, लोभ में कमी, ईश्वर में विश्वास बहुत जरूरी है, हिम्मत के साथ कठिनाइयों का मुकाबला करना, उनपर खेल-कूद के जरिये हसना और मंजिल की तरफ दृढ़ता से बढ़े चले जाना ही जीवन है' इसी क्रिया के द्वारा भीतर वाली अमरबेल मुरझा जायगी।" पृ० ४४०।

ये त्याग और सेवा की प्रतिमूर्ति है। प्रत्येक व्यक्ति की चाहे वह देशराज हो या टहल, धनी हो या निर्धन, उच्च हो या नीच, सेवा में मुंह नहीं फेरते, गांधीवादी भावना तथा भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल स्तम्भ हैं। उनकी प्रतिज्ञा है "जब जिस समय मेरी सेवा की जरूरत पड़े, तैयार रहूंगा।" (पृष्ठ ६३) सेवा के विचार में सभी उनके लिए समान हैं।

आज का जीवन सहयोग की अपूर्व वाञ्छा रखता है। परस्पर सहयोगशील भावना नितान्त अपेक्षित है और यही डाक्टर सनेहीलाल का मत है। और इसीलिए वे सहकारी कार्यों में तन-मन-धन से तत्पर होते हैं। उनका मत है--"जिमींदारी उन्मूलन का कानून पास हो गया है। अब हम सब किस रहन-सहन को अपनायें जिससे सबको सुख और शांति मिले, इस पर विचार करना चाहिये। अपने गांव में सहकारी कृषि समिति बनने जा रही है। आगे यही एक मात्र साधन ऐसा है जो हम सब को एक दूसरे के निकट ले जावेगा। जिमींदारों और मजदूर की आपसी खींचा-तानी इसी से बन्द होगी।" (पृष्ठ ८९) आज की सरकार और राजनीतिज्ञ भी इसी को महत्व दे आगे बढ़ रहे हैं। सम्पूर्ण विषमताओं का निदान इसी मार्ग से सम्भव स्वीकार किया जा रहा है।

सनेही व्यक्ति की महत्ता स्वीकार करते कहते हैं, "मैं नरक और स्वर्ग—दोनों—के कीड़ों का, यदि इन्हें मेरी जरूरत पड़ जावे तो, समान भाव से इलाज करता हूं। मेरे लिए व्यक्ति पहले और समूह पीछे।" (पृष्ठ १९९) यदि व्यक्ति का सुधार हो जाए तो समाज का स्वरूप ही बदल जाए।

अनुभव को प्रकाश-स्तम्भ मान इससे लाभ उठाने के आकांक्षी है। वे सुधार में विश्वास रखते हुए स्पष्ट कहते हैं, "जिमींदारी एक सुधरने योग्य परम्परा थी, उसका उन्मूलन हो गया, परन्तु व्यक्ति सुधरेंगे और बने रहेंगे।" (पृष्ठ ४३५-४३६) परन्तु सुधार के लिए उनके अपने कुछ विश्वास और स्थापनाएं हैं, "सुधार की मशीन को सुधरी हालत में रखने के लिए जरूरी है कि उस पर जंग न चढ़ने पावे, नहीं तो वह बिगड़ जाएगी। मुस्तैदी के साथ देख-भाल करनी उतनी ही जरूरी है—अपनी आलोचना उसका शोधन और भीतर का संवेग उसका तेल है।" (पृष्ठ ८५६)

उनका जनतांत्रिक पद्धति पर अटूट विश्वास है। उदाहरणार्थ ४४९ से ४५१ पृष्ठ देख सकते हैं। योजना (पंचवर्षीय आदि) भारतीय जीवन की प्रगति की सूचना, उनकी सफलता मनुष्यता की सफलता है। और इसीलिए वे देश की पंचवर्षीय योजना का खुले हृदय से स्वागत कर उसकी प्रगति में पूर्ण योगदान देते हैं।

इस प्रकार निश्चय ही वे गांधीवादी चिन्तन के अनुवर्ती और साधक रूप में हमारे सम्मुख आते हैं। सभी पात्र, चाहे वे जिस सिद्धान्त और विचार को मानते हों, उनकी प्रशंसा ही नहीं करते वरन् उनसे अत्यधिक प्रभावित हो उठते हैं। टहल जैसा व्यक्ति उनके आचरण और व्यवहार की महत्ता से प्रभावित हो अपने सिद्धान्त को रूप रेखा परिवर्तित कर डालता है और देशराज जैसा स्वार्थी व्यक्ति भी उनकी योजना में सहयोग देता रहता है और यदा-कदा रुपये-पैसे भी देता है। डा० सनेही सभी पर स्नेह और विश्वास रख सुधारते चलते हैं। इसीलिए तो उनकी सुशिक्षित

विचारशील स्त्री राजदुलारी स्पष्ट शब्दो मे कहती है "तुम बडे मानव भी हो।" (पृष्ठ २०५)।

उनकी महानता तो उस समय और भी बढती दीख पडती है जब घायल डकैतो पर (स्वय डकैतो द्वारा बुरी तरह घायल होने पर भी) जनता को प्रहार न करने की प्रार्थना कर राजदुलारी से घायलो की मरहम-पट्टी करने को कहते है। हिंसा-क्रोध जैसे वे पी गये हो (पृष्ठ ४६९-४७० देखें)।

इतना होने पर भी सनेही मनुष्य है। वर्मा जी ने बडी चतुराई से, स्वाभाविकतानुसार, अधिक आदर और प्रतिष्ठा के प्राप्त होने के फलस्वरूप उनमे कुछ काल के लिए अहम् और अभिमान की गध व्यजित कर दी परन्तु शीघ्र ही वे अपनी पथ-भ्रष्टता को समझ सुधार कर लेते हैं और प्रकाश की ओर बढ जाते हैं।

देशराज—देशराज हमारे समाज के जमीदार वर्ग का प्रतीक है। उसमे हिंसा, अहम्, शोपणवृत्ति तथा धनलोलुपता अत्यधिक है। इसी प्रयत्न मे वह निम्न से निम्न कार्य करने को तत्पर रहता है परन्तु सामाजिक आदर की भी गहरी भूख है उसे।

देशराज की वाह्याकृति वर्मा जी के शब्दो मे भी देखें—देशराज "चौवीस पच्चीस के लगभग अवस्था, गोरा रग, बडी आखे जिनकी काली पुतलिया रम मे डूबी-सी आकृति की रेखायें सुडौल और आकर्पक, भरी छरहरी देह, छोटी नुकीली मूछ, मूर्तिकार या चित्रकारी के लिए सुन्दर देहधारी पुरुष का नमूना।" परन्तु वहुधा ऐसा होता है कि जिसका शरीर जितना सौन्दर्ययुक्त होता है वह उतना ही हृदय का काला होता है, यही देशराज के साथ भी सत्य है।

वह रुपयो के लोभ मे अजना और वाघराज के साथ मिलकर अवैध रूप से अफीम का व्यापार करता है। सहकारी योजना समिति मे अगर कुछ पैसा देता है तो काली सिह से मिलकर उसे कोषाध्यक्ष के यहा डकैती करा वापस ले लेता है (जैसा धरनी के यहा कराता है), लोभ मे ही काली सिह को पकडवाकर सरकार से घोपित पुरस्कार पाने की भी सोचता है।

पढा-लिखा होने के कारण वह चतुर भी है। तभी अपने पापो पर समाज मे सदा आवरण डाले रहता है, सरकारी अफ्सरो को भी धोखा देता रहता है।

परन्तु अन्त मे वह अपने कार्य मे असफलता प्राप्त होने के फलस्वरूप वाघराज के विश्वासघात से दुखी हो, खेती पर जुट जाता है, लोभ का दमन कर लेता है।

यह तो स्वीकार करना ही पडेगा कि उसका परिवर्तन परिस्थितिजन्य है। परिस्थिति मे घिर कर वह उदासीन भाव से अजना आदि से भी सम्बन्ध तोड लेता है।

इसके चरित्र के माध्यम से लेखक ने पाप और कुमार्ग की असफलता एव पराजय ही चित्रित की है। प्रस्तुत स्थल पर प्रेमचन्दकृत 'नमक का दरोगा' का स्मरण हो आता है जहा पाप और अन्याय-न्याय और सुचिता और पवित्रता के सम्मुख नतमस्तक हो जाता है परन्तु 'अमर वेल' पूर्ण मौलिक कृति है।

टहल—टहल सुशिक्षित, आधुनिक युग की विचार धारा से प्रभावित समूहवाद तथा साम्यवाद को स्वीकार करने वाला उत्साही युवक है। वह राजनीति और

सामाजिक कार्यों के प्रति अधिक सक्रिय है (पृष्ठ ५० देखें जिसमें उसने स्वय अपना विचार प्रकट किया है)।

वह स्पष्ट वक्ता है। सभी के सम्मुख स्पष्ट शब्दों मे कहता है "मैं अराजक नहीं, समूहवादी हूँ, रूढियों का सहार और वर्ग-सघर्ष मे विश्वास करने वाला, पुनरुत्थानवादियों का घोर विरोधी हूँ।" (पृष्ठ ५१) क्योंकि उसका विश्वास है "नया जीवन, नई लहर, प्रगति, नया सवेग, इस प्राचीन की श्रद्धा और पूजा के ढकोसलो की जकड मे ही तो रुध-रुध जा रहे हैं।"(पृष्ठ ६१)

वह श्रम को सब कुछ मानता है, "मेरे लिए जीवन मे जो कुछ भी बहुत सुन्दर है, वह श्रम है। (पृष्ठ ७८)

उसका विश्वास है," समाज पर जो कूडा-कचरा, घास-फूस छा गया है उसको साफ किये बिना समाज के नये अकुर और किसलय नही पनप सकेंगे। एक दूसरे के साथ सच्चा और प्यार से कसा हुआ गठ बधन पुरानी गाठो, फासो और गुत्थियो के काट फेंकने के बिना न हो सकेगा।" (पृष्ठ ३००)

परन्तु डाक्टर सनेही के ससर्ग और प्रभाव मे आकर वह अपने सिद्धान्त और विचार मे परिवर्तन लाता है। विज्ञान के साथ अध्यात्म को भी स्वीकार कर लेता है और जीवन पथ पर लोक कल्याण के लिये कटिबद्ध हो जाता है। शनै शनै उसका परिवर्तन अस्वाभाविक कदापि नही लगता।

अजना—आलोच्य कृति मे बहुत कम नारी चरित्र हैं। अजना को लेखक ने आधुनिक समाज की चरित्र-भ्रष्टा, लोभी युवती के रूप मे उपस्थित किया जाता है जो धनार्जन के मोह मे अफीम एकत्र करने का भयानक कार्य करती रही है। वह अपने इस कार्य को सगीत और शिक्षा की ओट से बडी चतुराई से करती रहती है।

साथ ही वह इतनी भ्रष्ट और दुष्ट है कि बाबराज और देसराज दोनो को अपने प्रेम का सब्ज बाग दिखाती रहती है। मात्र रुपयो के अर्जन के सम्मुख वह और किसी को महत्व नहीं देती।

परन्तु अन्त इसका भी बडा निराशाजनक और करुण हुआ है। उसका सारा धन लूट लिया जाता है (काली सिह द्वारा) और अवैध अफीम एकत्र करने मे पुलिस द्वारा पकड ली जाती है। साथ ही देसराज भी उसका साथ छोड देता है।

अजना भी हमारे समाज के सुशिक्षित वर्ग की जीवित नारी-पात्र है। आज अनेक सुशिक्षित वर्ग इस प्रकार अवैध कार्य मे बुरी तरह लगे हुए हैं। धनार्जन का लोभ उनका नाश कर रहा है।

देसराज उसे प्रेम से सदा 'अमर बेल' कहा करता था और सचमुच उसका चरित्र हरियाली को, शान्ति और सुख को नष्ट करने वाली अमर बेल के सदृश है। वह भी बाह्य दृष्टि से रूपवती और सुन्दरी युवती है, भीतर से नीच और हेय है।

अत मे उसका पाप शनै शनै उसका ही शोषण करने लगता है और वह अस्वस्थ और कमजोर हो जाती है।

इनके अतिरिक्त बाबराज, मटोले, वनमाली, डमरू, जनक और विभिन्न पात्र

हैं। कोई ग्रामीण मनोवृति के सीधे किसान हैं, कोई धूर्त्त, कपटी नेता, कोई गर्म रक्त के युवक, कोई गतिशील है जिसके चरित्र मे परिवर्तन आता है जैसे जनक, कोई अपने पाप पर दृढ वने रहते हैं।

घाटीवाली (टहल की मा), राजदुलारी, हरको आदि अन्य नारी-पात्र हैं जिनका चरित्र चित्रण वहुत कम शब्दो मे ही परन्तु पुष्ट है। इसमे भी विभिन्न रूपो को प्रकट करने वाली पात्राए है।

इस प्रकार आलोच्य कृति मे विभिन्न रूपो के पात्रो के दर्शन होते हैं जिनमे एकरसता नही होती। साथ ही कोई प्रगतिशील, गतिशील, कोई वर्गगत, कोई व्यक्तिगत पात्र हैं।

(१) पात्रो द्वारा (उनके वार्तालाप आदि द्वारा), (२) उनके क्रियाकलापो द्वारा, (यथावसर स्वय अपनी लेखनी द्वारा), लेखक ने चरित्रो के गहन चित्रण मे सफल प्रयास किया है। निश्चय ही औपन्यासिक दृष्टि से 'अमर वेल' एक सफल कृति मानी जायगी।

निश्चय ही आलोचना साहित्य का सर्वाधिक उत्तरदायित्वपूर्ण क्षेत्र है। श्री राय आनद कृष्ण ने श्री वृन्दावन के 'अमर वेल' को 'पच्चीस वर्ष पुरानी शैली मे अवतरित' माना है (कल्पना, दिसम्बर अक १९५६) व्यापक ग्रामीण जीवन एव मार्मिक अनुभूति आदि तथ्यो की दृष्टि से 'अमर वेल' और 'गोदान' महत्वपूर्ण है। फिर भी यह स्वीकृत सत्य है कि 'गोदान' से आगे की तत्युगीन चिताधारा, आवेष्ठन तथा परिवेश 'अमर वेल' के कथानक को स्पर्श करते हैं। रायजी का विकास का समुचित दिग्दर्शन एव मूल्याकन उपस्थित किये बिना, प्रकाश डाले बिना, 'अमर वेल' को पच्चीस वर्ष पुरानी शैली मे अवतरित मानते हुए मतव्य प्रकट करना भ्रामक धारणा का प्रतिफलन एव असत्य का प्रसार दीख पडता है। क्या 'शेखर एक जीवनी' मे प्रयुक्त टेकनीक जिसमे अधिकाश सस्कृतगर्भित या अग्रेजी के प्रचलित शब्दो का तथा मनोविज्ञान-शास्त्र का पूरा उपयोग है, इसे या कृष्णचन्द्र, अब्बास आदि के शीर्षक वैचित्र्य को ही वे (राम जी) चरम विकास समझते हैं ? विपय-वस्तु के अनुरूप 'अमर वेल' की टेकनीक उपयुक्त है, शैली समुचित है, उस पर दोषारोपण व्यर्थ है। उपन्यास और विशेपकर उस उपन्यास मे जिसमे ग्रामीणो को कथा का पात्र चुना गया है वैसे उपन्यास का मूल उद्देश्य रहता है मात्र उनके जीवन, व्यवहार, क्रिया-कलाप, विचार शक्ति आदि पर सत्यरूप मे प्रकाश डालना। अत 'अमर वेल' की टेकनीक और शैली उपयुक्त है, उसे त्रुटिपूर्ण कहना सत्य का गला घोटना है, ऐसा मेरा विश्वास है।

जीवन मे निरतर क्षण-क्षण घटनाये होती रहती है जो सव या अनेक दिशाओ मे जीवन धारा को प्रवहमान करती रहती है। ऐसी दशा मे लक्ष्य सयोजित घटनाओ की सकुलता को देखकर व्यर्थ घवराना नही चाहिए। मुझे तो ऐसा लगता है कि उसका प्रभाव, उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया प्रकृतित मानस भूमि पर होती रहती है जिसके लिए पाठक जान-बूझकर तैयार होकर सोचना नही चाहेगा, स्वत असर होते रहना सफलता का द्योतक होगा—ऐसा मैं मानता हू। साथ ही यह भी पूर्ण सत्य है 'अमर वेल' मे घटनाओ की सकुलता ऐय्यारी उपन्यासो की तरह तो कदापि नही है, जो

सोचने वाले पाठकों को सोचने का किंचित अवसर न दे, साथ ही कलाकार को प्रेमचंद के शब्दों में मानव-जीवन का सम्पूर्ण चित्र कुछ पृष्ठों में कम कर सफलता से उतारना होता है। अत वह महत्वपूर्ण घटनाओं एव प्रत्यावर्तनों का परित्याग भी नहीं कर सकता। साथ ही राय जी ने स्वय पुन विरोधी बातें प्रस्तुत पंक्तियों में कही हैं—"मान्य लेखक—वृन्दावनलाल वर्मा—ने यह भी ध्यान रखा है कि घटनाओं की बहुलता और ब्योरों के मोह से उपन्यास 'अमर बेल' कचहरी की मिसिल न बन जाय। इसके लिये यथावसर उसने अत्यत सुन्दर प्राकृतिक चित्रणों का सहारा लिया है, पृष्ठ २१, २४ आदि प्रकृति की काव्यमय प्रतिक्रिया के लिये उल्लेखनीय हैं।"

'अमर बेल' का सारा चित्र मर्मस्पर्शी है। देशराज की गहरी आशाओं पर पानी फिरना, किसानों का परस्पर व्यर्थ लड़ना-झगड़ना, खून करना और मर मिटना, अजना जैसी चरित्र भ्रष्टा का सब तरह से लुट जाना, क्या मर्मान्तिक और हृदयस्पर्शी चित्र नहीं है? निश्चय ही देशराज, टहल, दमरू, सनेही, अजना आदि सभी के चरित्र बहुत सफल और जीवत हैं जिसके चरित्र करुणा से ओत-प्रोत और द्रावक हैं। राय जी एक स्थल पर यह लिखकर कि 'हलको के चरित्र को छोड़कर सभवत कहीं लेखक ने मर्मस्पर्श करने की चेष्टा नहीं की, फलत कहीं कहीं उपन्यास इतिवृत्त हो गया है, पुन यह लिखना "मानव स्वभाव में कमाल किया है' (लेखक ने) जो दीर्घकालीन अनुभव और निरीक्षण द्वारा ही सभव है उदाहरणार्थ पृ०७ व पृ० १४ आदि में।
'अमर बेल' सामाजिक उपन्यास है जिसकी सभी बातें और पात्र भी सत्य हैं। इस प्रकार कथानक जीवन के निकट अनुभव और अध्ययन पर आश्रित है। वस्तुत जीवन और जनपद का ऐसा यथार्थ चित्रण बहुत कठिन है क्योंकि उसका आधार किताबी ज्ञान नहीं। ऐसा ज्ञान अनुकरणीय है। "स्वय में विरोधी धारणा को उत्पन्न करना है। 'अमर बेल' की कथावस्तु सच्ची है। राय जी ने भी वृन्दावनलाल के इस कथन को सत्य स्वीकार किया है। यदि उस चित्र में पुलिस तथा सिपाही बुराइयों से साथ न हो, इसलिए वर्मा जी को प्रचारवादी कहना सर्वथा अनुचित लगता है। कोई आवश्यक नहीं कि सभी पुलिस अधिकारी भ्रष्ट ही हों। राय जी वर्मा जी को प्रचारवादी बनाना चाहते हैं जिनकी (राय जी की) इच्छा है कि जबर्दस्ती पुलिस एव शासकीय दलों के प्रति घृणा का प्रचार हो।' यहा पर भी उन्होंने प्रचार-साहित्य को गलत रूप में समझ रखा है। और 'अचल मेरा कोई' में वर्मा जी ने आवश्यकतानुसार इस वर्ग (सिपाही वर्ग) पर आक्षेप किया ही है। जहा जो दोषी है वहीं उस पर दोष लगाना चाहिये, अनावश्यक रूप से हर एक स्थान पर नहीं।

जनपदीय वातावरण से उच्चस्तरीय कम प्रभाव नहीं डालते। देशराज के आचरण व्यवहार, उनके (ग्रामीणों) जीवन में मोड़ और व्याघात भी उपस्थित कर सकते हैं तो उनका चित्रण आवश्यक ही है। गजनायक के सविस्तार वर्णन से राय जी को ऐसा भ्रम हुआ है कि केन्द्र उच्चस्तरीय है। वस्तुत केन्द्र बिन्दु उससे हटकर ग्रामजीवन जनपदीय है। प्रथम उक्त आलोचक ने लिखा है "जनपदीय वातावरण से भी यहा वे उच्चस्तरीय वर्ग उपन्यास के केन्द्र हैं।' पुन आगे लिखते हैं—'केवल हलको वाला वृत्त उसमें अपवाद रूप से आ गया है . " वस्तुत यह उपन्यास जनपद जीवन की अनेक

समस्याओ को लेकर चला है । अनेक समस्याए जैसे कोआपरेटिव, ग्राम शिक्षा, प्राचीन-नवीन समन्वय हरिजन आदोलन पृथक्-पृथक् रूप मे उठाई गई हैं, अनेक तर्क- वितर्क के वाद लेखक ने अपने विचार का सफाई से प्रतिपादन किया है । ये सर्वथा राष्ट्रीय और प्रगतिशील हैं । विशेष रूप से हमारे प्रादेशिक प्रशासन के अतर्गत जिस रूप मे ग्राम सुधार आदि कार्य चल रहे हैं उसका उसमे यथार्थ चित्रण है । वर्ग स्वभाव का ताडव नृत्य भी वर्मा जी सफाई से उतार सके हैं । इसी प्रकार किसानो मे शिक्षा के कारण आधुनिक प्रयोगो के प्रति कैसी प्रतिक्रिया है यह भी दिखलाने से छूटा नही है, परतु इनका समाधान हिंसात्मक क्राति से नही, वरन् ग्रामोत्थान वाले इन कार्यक्रमो को स्वीकार करने मे ही है इसे सिद्ध करने मे उपन्यास ने सफलता पाई है—इन निष्कर्षों पर पहुचने के लिए उसने तर्क-वितर्क का नही, घटना क्रम का भी सहारा लिया है । तर्क-वितर्क द्वारा उसने उसके सैद्धातिक पक्ष पर घटनाओ द्वारा उसकी व्यवहारिकता सिद्ध की है । फलत उपन्यास अपने जीवन की नयी से नयी समस्या को छूता है । हिंदी उपन्यासो मे इस प्रवृत्ति की काफी कमी है ।" इस प्रकार राय जी के कथन से ही स्वय सिद्ध होता है कि यह उपन्यास न प्रचारवादी है, न केन्द्र विन्दु राजकीय वर्ग या उच्चस्तरीय है ।

फिर आगे राय जी ने ही स्वीकार किया है कि "मानव स्वभाव मे वृन्दावन जी ने कमाल कर दिखाया है ।" निश्चय ही 'अमर बेल' एक महत्वपूर्ण रचना है और आलोचको को सावधानी से कुछ कहना चाहिए ।

'गढ कुडार' (ऐतिहासिक कृति, १९२८)

'गढ कुडार' के आरम्भ मे कुडार की चौकिया वर्णनात्मक और इतिहास परिचयात्मक ढग से व्यक्त होने के कारण, वह स्थल आकर्षक नही वन पाया है । इस अश के पश्चात कथानक का आरभ और वणन बडा आकर्षक एव जिज्ञासपूर्ण है, जिसका आद्योपान्त निर्वाह किया गया है । यह कथानक पूर्ण रोमासमय है जिसमे युद्ध का कारण प्रेम होता है । निश्चय ही इस कृति की पद्धति स्कॉट की कृतियो की पद्धति (Ivanhoe) से साम्य रखती है, यद्यपि आगे चलकर इनका प्रेम व्यापकत्व ग्रहण करता है और कायिक प्रेम राष्ट्रीय प्रेम मे परिवर्तित हो जाता है । राष्ट्रीय प्रेम प्रधान हो जाता है, शारीरिक प्रेम द्वितीय ।

गढ कुडार के स्वामी हुरमतसिह का पुत्र नागदत सोहनपाल पुत्री हेमवती की रूप-प्रसिद्धि पर मुग्ध हो पत्नी वनाना चाहता है और जब उसे ज्ञात होता है कि सोहनपाल भरतपुर गढी मे है तो वहा अपने मित्र अग्निदत पाडे के साथ जा पहुचता है । सोहनपाल अपने भाई द्वारा अधिकार से वचित किया जाकर भरतपुर गढी मे सहायतार्थ ठहरा था । जिस रात नागदत भरतपुर गढी मे प्रवेश करता है उसी रात मुसलमानो का उस गढी पर आक्रमण होता है और नागदत आदि अपने कौशल और वीरता से मुसलमानो को खदेड देते हैं । उसी काल नागदत को हेमवती का साक्षातकार होता है । हेमवती उसकी आवश्यकतानुसार पानी और गर्म वस्त्र देती है तो उसकी सहानुभूति देख नागदत का मौन प्रेम उत्तरोत्तर तीव्र हो उठता है । अग्निपाडे से

विचार-विमर्श कर उक्त गढ़ी के हरीसिंह चंदेलो के विश्वासपात्र, अर्जुन, को हेमवती के पास चुपचाप अपना प्रेम-पत्र पहुंचाने को देता है परन्तु अर्जुन हरीसिंह को वह पत्र दे देता है और हरीसिंह अपने महाराज हुरमतसिंह के पास उसे भेजवाना आवश्यक समझ कर अर्जुन द्वारा उनके पास पहुचा डालता है। हुरमतसिंह इस विषय मे पत्र देकर कुछ नही करता। सोहनपाल यथावसर हीनावस्था को ज्ञात करा नागदत्त से अधिकार पुनर्प्राप्ति की प्रतिज्ञा लेता है। निश्चित योजनानुसार गढ कुंडार की सहायता के निमित्त भरतपुर से चलकर सोहनपाल, अपने पुत्र सहजेन्द्र अपने मन्त्री धीर तथा उनके पुत्र दिवाकर के साथ सारौल पहुचता है। अग्निदत्त द्वारा प्रबन्धित कुंडार के मकान मे हेमवती, सहजेन्द्र, और दिवाकर निवास लेते हैं, और इस प्रकार नागदत्त, अग्निपांडे तथा दिवाकर और सहजेन्द्र मे मित्रता बढती है। नागदत्त सहजेन्द्र के बहाने उसके यहा हेमवती को देखने के लिए पहुचना आरम्भ करता है। दिवाकर अग्निपांडे की बहन तारा को देखकर पवित्र प्रेम करने लगता है। अग्निदत्त भी नागपाल की बहन के प्रेम मे आबद्ध हो जाता है। इस प्रकार रोमास की धारा चतुर्दिक पूर्ण विस्तार के साथ प्रवाहित हो उठती है। सहजेन्द्र मित्रता स्थापित कर भी नागपाल के साथ खान-पान नही करता, क्योंकि उन दिनों बुन्देले खंगार जाति के साथ इस सम्बन्ध को अपमानजनक दृष्टि से देखते थे। हुरमतसिंह इस अपमान पर, मात्र वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होने की आशा मे, शात रहता है। परन्तु, हुरमतसिंह के विवाह-सम्बन्धी प्रस्ताव पर सोहनपाल बहुत क्रुद्ध होता है और प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है। हेमवती भी नागदत्त के प्रेम का प्रत्युत्तर घृणा मे देती है। नागदत्त प्रतिहिंसा से भर उठता है। अग्निदत्त और नागदत्त की बहन मे परस्पर प्रेम-भाव है और मानवती के राजधर (मंत्री के पुत्र) से परिणय-संस्कार होना देख, वह (अग्निदत्त) भाग चलने को प्रेरित करता है। मण्डप की रात को ही, नागदत्त राजधर के साथ हेमवती के घर डाका डालना चाहता है, परन्तु दिवाकर की तत्परता से, राजधर घायल हो जाता है, और वे इस कार्य मे पूर्णतया निष्फल होते है।

उसी रात अग्निदत्त तारा के वेष मे, मानवती के यहा पहुचकर, भगा ले जाने का प्रयत्न करता, परन्तु मानवती निर्बल मस्तिष्क की युवती होने के कारण हिचकती है और तभी नागदत्त पहुच जाता है और अग्निदत्त पकड़ा जाता है। नागदत्त उसे अपमानित कर निकाल देता है। सहजेन्द्र हेमवती और दिवाकर के साथ वहा रहना असुरक्षित समझ कुंडार छोड, रात्रि मे ही भाग जाता है। सोहनपाल आश्रय के लिए सभी के साथ ठोकरें खाता हुआ, पवार सामन्त, पुण्यपाल, का अतिथि बनता है जिस से वह अपनी पुत्री हेमवती के परिणय-संस्कार का उत्सुक था। अग्निदत्त भी प्रतिहिंसा से भर कर सोहनपाल से आ मिलता है और धन से सहायता करने की प्रतिज्ञा कर उसे सैनिक संगठन करने की सहमति देता है। प्रपच द्वारा हेमवती से नागदत्त की शादी की झूठी स्वीकृति देकर, धीर को हुरमतसिंह के पास भेजा जाता है। धीर की बातो से हुरमतसिंह विश्वास कर लेता है, परन्तु दिवाकर इस प्रपच की भर्त्सना कर अलग हो जाना चाहता क्योंकि वह तारा का प्रेमी था और कुंडार को विनष्ट होने नही देखना चाहता था। धीर आदि उसके इस आचरण से क्षुब्ध हो, उसे पागल कहकर, काल-

कोठरी मे वन्द कर डालते हैं। विवाह की सम्पूर्ण तैयारिया होती हैं। इस अवसर पर खगार अपनी रीति के अनुसार खूब मोद मनाते है, मदिरा पीते हैं। बुन्देलो ने इस अवसर के लिए ही यह जाल-सृजन किया था। वे आक्रमण कर देते हैं। सभी प्रमुख खगार मृत्यु के शिकार हो जाते हैं। मानवती तथा उसके सद्य-प्रसूत पुत्र की रक्षा करता अग्निदत्त भी पुण्यपाल द्वारा मार डाला जाता है। कुडार मे सोहनपाल का साम्राज्य स्थापित हो जाता है। हेमवती की पूर्वयोजना के अनुसार पुण्यपाल के साथ शादी हो जाती है। तारा स्थिति को जानकर, कठिन परिश्रम कर दिवाकर को उस काल-कोठरी से निकाल लेती है और जगल की ओर वे दोनो चले जाते हैं। इस प्रकार कथानक की समाप्ति हो जाती है।

सम्पूर्ण कथावस्तु प्रेम और युद्ध से परिप्लावित है[1] और इसी प्रकार कथानक का स्वाभाविक विकास होता चलता है और कथानक पराकाष्ठा (climax) पर जाकर सफलतापूर्वक समाप्त हो जाता है। जिज्ञासा का वेग इतना प्रवल है कि प्रारम्भ करने के पश्चात पूर्ण किए विना छोडने की इच्छा नही होती। स्मरण रहे, वर्मा जी की प्राय सभी कृतियो मे यह गुण पूर्णता से है जो सफलता का परिचायक है। अग्निदत्त का स्त्री वेष मे प्रवेश, नागदत्त का डाका, मुसलमानो का आक्रमण आदि वर्णन वडा स्वाभाविक है और जिसमे रोचकता का सहज वेग है। यह लम्वी और जटिल कथावस्तु को लेकर चलने वाला उपन्यास है। उसकी कथावस्तु सन् १२८८ (सवत् १३४५) के लगभग की है। लेखक ने स्वय लिखा है[2]—"इस उपन्यास मे मूल घटना भी एक ऐतिहासिक सत्य है, परन्तु खगारो के कारणो मे थोडा-सा मतभेद है। वुन्देलो का यह कहना है कि कुडार का खगार राजा हुरमतसिंह जबरदस्ती और पैशाचिक उपाय से वुन्देला-कुमारी का अपहरण युवराज नागदेव के लिए करना चाहता था, खगार लोग अपने अन्तिम दिवस मे शरावी, शिथिल, क्रूर और राज्य के अयोग्य हो गए थे, इसलिए जान-वूझकर वे विवाह-प्रस्ताव की आग मे शराव पीकर कूदे और खुली लडाई मे इनका अत किया गया। एक कारण यह भी वतलाया जाता है कि खगार राजा दिल्ली के मुसलमान राजाओ के मेली थे इसलिए उनका पूर्ण सहार जरूरी हो गया था।

खगार लोग और वात कहते हैं—जरा दवी जवान से उनका कहना है कि वुन्देलो ने पहले तो लडकी देने का प्रस्ताव किया, फिर कपट करके, शराव पिलाकर और इस तरह अचेत करके खगारो को जन-वच्चो सहित मार मिटाया। वे लोग यह भी कहते है कि वुन्देले मुसलमानो को जुझौति मे ले आए थे। और इस विवाद मे लेखक के चिन्तनशील मस्तिष्क ने अपना अधिक तर्कसगत विचार सस्थापित किया है—"खगारो का पिछला कथन इतिहास के विल्कुल विरुद्ध है और युक्ति से असम्भव जान पडता है, इसलिए तर्क ग्राह्य नही हो सकता।" इस प्रकार एक लम्वी परम्परा

---

[1] महाकवि कालिदास की रचनाओं में भी इसका सुन्दर वर्णन मिलता है। 'कुमार सम्भव' का १८-१७ सर्ग देखें। परन्तु इनमें युद्ध देव और असुर के मध्य होता है।

[2] 'गढ कुण्डार,' परिचय—वृन्दावनलाल वर्मा।

के बीच निश्चित और सम्भावित सत्य स्वीकार कर लेखक ने प्रस्तुत कृति का निर्माण किया है।

इतनी लम्बी, जटिल कथावस्तु के सफल संगठन और उचित निर्वाह की दृष्टि से वर्मा जी स्तुत्य हैं। डा० रामदरश मिश्र ने कुछ प्रसंगों को अनावश्यक ठहराया है जैसे दिवाकर का प्रेम।[1] परन्तु दिवाकर का प्रेम चित्रित कर, उक्त कारणों से युद्ध में विघ्न उपस्थिति की चेष्टा व्यक्त कर लेखक ने मंत्री तथा बुन्देलों के युद्ध की प्रबल भावना और क्रियाशील वेग को समुचित रूप में और आकर्षक कर दिया है। युद्ध-प्रतिरोध-तत्त्व के उदित होने के फलस्वरूप युद्ध का आकर्षण बढ़ जाता है, साथ ही मंत्री धीर की स्वामि-भक्ति का तेजस्वी रूप उपस्थित हो जाता है। हाँ, स्वामी जी का प्रसंग महत्त्वपूर्ण और आवश्यक प्रतीत नहीं होता। उसे उपन्यास से अलग रखा जा सकता था।

घटनाओं को अध्याय में विभक्त कर, घटना के नामानुकूल कथावस्तु का उक्त अध्यायों में समावेश करने की प्रणाली कोई नवीन प्रणाली नहीं है, नई पद्धति नहीं है। जैसे आलोच्य कृति में 'कुडार की चौकियां' में कुडार की चौकियों का परिचय दिया गया है, 'अर्जुन पहरेदार' में अर्जुन को लेकर, उक्त अध्याय में घटना चलती है। परन्तु यह भी स्मरणीय है कि इस स्थिति में भी कथानक किस प्रकार मोड़ लेगा, कौनसी घटनाएं किस प्रकार बढ़ेंगी यह पता नहीं चलता और इस प्रकार जिज्ञासा पूर्ण रूप से अक्षुण्ण रह जाती है, जो उपन्यास का सौन्दर्य है।

(क) वर्मा जी नैसर्गिकता (naturality) के समर्थक हैं अतः वे वार्तालाप में क्षेत्रीय, आंचलिक वातावरणानुकूल आंचलिक भाषा का उपयोग करते हैं। स्वामिभक्त अर्जुन को भाषा देखें, वह बोलता है—'मैं हों अर्जुन, जानत कै नई। कै महाभारत में अर्जुन हते, कै अब मैं हों।"

(ख) वार्तालाप की दृष्टि से यह भी स्पष्ट है कि उनमें सहजता, सरलता तथा वेग है। उदाहरण के लिए देखिए, हुरमतसिंह और मंत्री मंत्रणा करते हैं—

तिरछी आंख करके बोला (हुरमत सिंह)—'चंदेला ऐसा ढीठ हो गया है। नाग को आने दो, तब देखूंगा। सब चिट्ठियां पढ़कर सुनाइये। नाग के चोट तो साधारण थी।"

मंत्री ने अपनी चतुराई दिखलाते हुए उत्तर दिया—"हां महाराज, घाव अच्छा है, इसलिए अब तो यही कहूंगा कि चोट साधारण थी। परन्तु, कुमार ने युद्ध किया बड़ी वीरता के साथ।"

(ग) वार्तालाप से पात्रों के चरित्र पर भी प्रकाश अपेक्षित है। वर्मा जी में यह निर्वाह है। ऊपर के उद्धृत अंशों में ही देखें। मंत्री की चतुराई और चाटुकारिता पर, राजा के सम्मुख उनकी प्रसन्नता के निमित्त की गई झूठी प्रशंसा से, स्पष्ट प्रकाश पड़ जाता है।

(घ) कथोपकथन द्वारा कथानक में प्रगति का स्वाभाविक विकास महत्त्वपूर्ण

---

१ ऐतिहासिक उपन्यास [illegible]—डा० रामदरश मिश्र, पृ० ३२ ।

है। उदाहरणार्थ, आलोच्य कृति का एक स्थल देखें—

दिवाकर—"दाऊजू, मेरा मरना-जीना आप सबके लिये बराबर है, मैं अब यहा नही रहूगा।"

सोहनपाल—'कहा जाओगे ?"

दिवाकर—"जहा इच्छा होगी।"

सोहनपाल—"क्या पागल हो गए हो ?"

धीर—"पागल नही, स्वामि-द्रोही है।"

सोहनपाल—"मैंने तुमको क्षमा कर दिया है। जाओ अपने डेरे पर।

दिवाकर—"मेरा अब यहा कोई डेरा नही।"

धीर—"महाराज इसको छुट्टी देना सम्पूर्ण बुदेलो का सर्वनाश करना है। यह कुडार अवश्य जायेगा। कह चुका है।"

सोहन पाल—"क्यो दिवाकर ?"

दिवा —"अवश्य, यहा से छूटते ही कुडार जाऊगा।"

सोहनपाल—'कुडार मे तेरा कौन है ?"

दिवाकर ने कोई उत्तर नही दिया। सोहनपाल बडी उलझन मे पडा।

इस प्रकार हम स्पष्ट देखते हैं कि उपर्युक्त निर्देशित गुण जो एक सफल वार्तालाप मे अपेक्षित है, वह आलोच्य कृति मे वर्तमान है। अन्य कृतियो मे भी यह पर्याप्त मात्रा मे मिलता है।[1]

भाषा-शैली के सम्बन्ध मे यह निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि भाषा और शैली प्रेमचन्द की परम्परा के निकट दीख पडते हैं। एक ही सरलपन उनकी प्राय सभी कृतियो मे दृष्टिगत है। यह अवश्य स्वीकार किया जाएगा कि जहा प्रेमचद की भाषा मे कही-कही (मुख्य रूप मे नाटक मे) उर्दू शब्दो का बाहुल्य है, वहा वर्मा जी की भाषा मे सरल हिंदी और कुछ क्षेत्रीय शब्द हैं। कुछ आलोचक एक दोषारोपण कर सकते हैं कि उनके सभी पात्र चाहे धनी हो, उच्च हो, गरीब हो, राजा हो, निर्धन ग्रामीण हो, पडित, ज्ञानी, ऋषि हो, एक सदृश ही सरल भाषा का प्रयोग करते हैं। परन्तु इसे दोष मानना व्यर्थ है क्योकि ऐसा कही भी नही खटकता कि उक्त पात्र से उक्त सरल भाषा-प्रयोग अनुचित है। सादगी तो वर्मा जी की विशेषता ही मानी जायगी।[2]

---

१ रामलाल सावल, एम० ए०—"वर्मा जी के पात्रों के कथोपकथन चरित्र चित्रण में अत्यन्त सहायक हुए हैं।

२ 'स्वातन्त्र्येतर हिंदी उपन्यास शीर्षक लेख में (सुप्रभात, दीपावली विशेषांक, १९५७ में) सुधीर कुमार ने भी स्वीकार किया है—'इन रचनाओं में उनकी (वर्मा जी की) सजग, स्वस्थ व संयत दृष्टि का सहज विकास एवं निर्वाह है। चतुरसेन शास्त्री में वृन्दावनलाल वर्मा की सादगी, विनम्रता और संयम नहीं है और यह अभाव ही ऐतिहासिक उपन्यास के रूप में उनके (चतुरसेन शास्त्री के) निम्नतर असन की व्याख्या करता है।"

आलोच्य उपन्यास में भी मुहावरों और कहावतों का पर्याप्त उपयोग है—

राजा ने धीमे पड़कर कहा—"नहीं गोपीचन्द, तुम्हारे सरीखा दक्ष पुरुष ऐसी भूल नहीं कर सकता। मुझे तो इन चोट्टों की बातों पर क्रोध आता है। गांठ नहीं कौड़ी और दाम पूछे हाथी का।"

वातावरण—औपन्यासिक सफलताओं में यह महत्वपूर्ण तत्त्व है। यदि कोई मुगलकालीन युग का चित्र कण्व ऋषि के आश्रम में करता है तो ऐतिहासिक वातावरणगत दोष माना जायगा। जिस युग का चित्र और वातावरण अंकन हो उसी के अनुकूल मनोभावों और सत्यों का समावेश, अभीष्ट सिद्धी हेतु, होगा। वर्मा जी आरंभ से वातावरण-चित्रण में स्तुत्य रहे हैं।[1]

आलोच्य कृति में तत्युगीन जातीय अभिमान, संघर्ष, दिल्ली की शक्तिहीनता स्वरूप प्रस्फुटित, खंडित साम्राज्यवाद की लिप्सा भावना का चतुर्दिक प्रसार आदि का अंकन बड़ा सफल है। केन्द्र की शक्ति-विच्छिन्नता से लाभ उठाकर, छोटे-छोटे राज्य स्वतंत्र-राज्य स्थापना का स्वप्न देखते हैं। छोटी-छोटी बातों पर वे परस्पर, मान और सम्मान के नाम पर कट मरने को तत्पर रहते हैं। 'गढ़ कुंडार' में बुन्देलों और खंगारों के जातीय अभिमान तथा उच्च-नीच समझने की प्रवृत्ति से इतनी हत्याएं हुईं, नाश हुआ। बुन्देलों ने अपने जातीय अभिमान के कारण ही, हुरमतसिंह खंगार के पुत्र नागदत्त से अपनी पुत्री के विवाह प्रस्ताव को अपमानजनक अनुभव किया, और भयानक षड्यंत्र रचा। पवार और पड़िहार का युद्ध के लिए तैयार होकर आना भी इसी मिथ्या अभिमान का कारण था।[2] तत्कालीन संकीर्णता तथा तुच्छ अभिमान पर इन तत्वों से स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार सामाजिक संकीर्णता का आभास खंगारों के मदिरापान आदि काल में मिलता है। एक राजनीतिज्ञ पात्र, धीर प्रधान ने इसी सत्य की व्यंजना अपने कथनों द्वारा की है—" इस देश का आजकल ऐसा अभाग्य है कि अपनी-अपनी प्रभुता की धुन समाई है। आए दिन मुसलमानों के आक्रमण के भय के मारे मंडलेश्वरों को ठिकानेदारों की गर्मी शांत करने का अवकाश या अवसर नहीं मिल पाता, और न उसके मन में उनको शासित रखने की बलवती इच्छा ही उत्पन्न होती है। ये सब ठिकानेदार कुंडार की आधीनता मानते हैं क्योंकि कुंडार सब से अधिक प्रबल है, परन्तु कुंडार उनका पूरा-पूरा शासन इसलिए नहीं कर पाता कि वह उनको नष्ट करके अपने राज्य को निर्बल नहीं बनाना चाहता। ठिकानेदार कुंडार के इस अभिप्राय को यथावत् नहीं समझते, यथेष्ट शासन की कमी के कारण जहां-तहां ये लोग अपना सिर उठाए हुए हैं। हम लोग इनमें से कुछ के पास

१ 'गढ़ कुंडार', 'विराटा की पद्मिनी' आदि के वातावरण की सत्यता और सजीवता के सम्बन्ध में वर्माजी ने स्वयं कहा है—'मैं पुस्तक लिखने के पहले कैमरा लेकर निकल जाता हूँ, [illegible], चार-चार दिन जंगलों में घूमता हूँ। 'गढ़ कुंडार' का अधिकांश मैंने कुंडार के खंडहरों और उनके आस-पास लिखा है। 'विराटा की पद्मिनी' लिखने के लिए कई बार मऊ-रानीपुर से गया हूँ। उसके भी कई परिच्छेद वहां लिखे गए हैं।'—(माधुरी, वर्ष १०, खण्ड १, पृष्ठ ४१८)

२. Old Testament में लिखा है—'Pride goeth before destruction, and a haughty spirit before a fall"

सहायता के लिए गए थे। उनमे से शायद ही कोई ऐसा हो जो अकेला हमारी सहायता करने मे सक्षम हो परन्तु प्रत्येक को अभिमान इतना अधिक है कि जितना आप को भी न होगा। " इस उद्धरण से गढ कुडार की तत्युगीन राजनैतिक स्थिति को समझा जा सकता है।

साथ ही युद्ध आदि का जो वातावरण लेखक ने उपस्थित किया है वह भी बडा सुन्दर है। हिन्दी के वयोवृद्ध आलोचक श्री गुलाबराय ने आलोच्य कृति की, वातावरण की दृष्टि से, मुक्त कठ से प्रशसा की है। उदाहरण के लिए 'गढ कुडार' का आक्रमण आदि अध्याय देख सकते हैं।

उद्देश्य—प्रस्तुत कृति मे अप्रत्यक्ष सकेत अधिक है। मदिरा पान, आपसी द्वेष आदि पर सकेत है जिसके परिणामस्वरूप राज्य नष्ट हुआ। वासना की उद्दाम लहरे कितनी भयानक होती हैं यह अग्निदत्त, नागदत्त आदि के चरित्रो से देखा जा सकता है। 'Ivanhoe' मे भी यह तत्व स्पष्ट है।

स्वामी के माध्यम से स्वदेश प्रेम, स्वतन्त्रता का कुछ आलाप उठाया गया है। परन्तु प्रपचपूर्ण दल सर्वत्र व्याप्त है। यह स्पष्ट है कि 'मृगनयनी', 'झासी की रानी-लक्ष्मीबाई' मे जो राष्ट्रीयता की तीव्र लहर है, वह 'गढ कुडार' मे नही।

'गढ कुडार' मे युद्धपरक दृश्य बहुत सुन्दर और चित्रात्मक बन पडे हैं। मुसलमानो का आक्रमण (भरतपुर पर) तथा अतिम महोत्सव का रक्तपात का बडा सफल और सजीव चित्रण है।

मैं पूर्व ही कह चुका हु कि इसमे रोमाच का व्यापक प्रभाव है। आलोच्य कृति मे तो यह मूलाधार है। वर्माजी की प्राय सभी कृतियो मे रोमाच का अग दृष्टव्य है जिस प्रकार अग्रेजी के ड्यूमा, स्कॉट आदि ऐतिहासिक उपन्यास लेखको की कृतियो मे है।

निश्छल और पवित्र प्रेम, जो वर्मा जी की कृतियो मे आगे चलकर, विकसित हो व्यापकत्व ग्रहण कर लेता है, वह तत्व इनमे मुख्यत दो पात्रो मे (तारा और दिवाकर) मे देखा जाता है, जिनके प्रेम मे वासना का अधिष्ठान और व्याकुल-नाद नही।

प्रकृति-चित्रण की सजीवता हिन्दी के बहुत कम उपन्यासकारो मे उपलब्ध है। इस क्षेत्र मे वर्मा जी स्कॉट की तरह ही प्रसिद्ध है। वर्मा जी ने स्वय प्रकृति के मध्य रहकर आनन्द ग्रहण किया है और सफलता से अपने पास के प्राणवाण दृश्यो को चित्रात्मक रूप से अकित किया है। इनकी सभी कृतियो मे प्राकृतिक चित्रण अवश्य-मेव रहता है, और जो कई कृतियो मे गद्य-काव्य के सौन्दर्य और सरसता के साथ उप-स्थित हुआ है। 'गढ कुडार' का एक उदाहरण देखें—(भयानक जगल का चित्र)—

"साल्य, करधई, खेजा, सेगड, दहना, छैर, काकेट और मकोये के घने जगल मे, जहा-कही शिकारियो को हतोत्साहित करने के लिए लम्बी घास भी खडी हुई थी, इस दल को अपने घोडो के कारण बडा कष्ट हुआ। दिवाकर वहा पहुचा जहा पानी चट्टानो और पत्थरो को तोडता-फोडता हुआ बहता चला जाता था। किनारे के दोनो ओर सघन हरे पेड खडे हुए थे और उनके पीछे विकट

बीहड़ झाड़ी और भयानक भरके तथा सामने पलोथर की ऊँची पहाड़ी थी। नाला मचलता हुआ बहता चला जा रहा था। दोनों ओर सुनसान अनन्त एकांतता का राज्य था। ऐसा लगता था मानो भय की गोद में सौंदर्य खेल रहा है। पानी इतना ठंडा था जैसे हिम हो ।"स्कॉट (Scott) के भयानक प्रकृति दृश्य के लिए 'Antiquery' के स्थलों को देख सकते हैं। डा० रामचरण महेन्द्र ने ठीक लिखा है—"कहीं-कहीं तो ये प्रकृति के सौंदर्य के चित्रण में अपने आपको पूर्ण विस्मृत-सा कर बैठते हैं। (वे) किसी रूढ़िवादी से प्रभावित नहीं हुए हैं। पक्ति-पक्ति में प्राण है, हृदय का स्पन्दन है।"

पात्र—प्रस्तुत ऐतिहासिक कृति में ज्ञातव्य है कि नागपाल, मोहनपाल, हुरमतसिंह, विष्णुदत्त, धीर प्रधान, सहजेन्द्र आदि ऐतिहासिक पात्र हैं और अग्निदत्त, अर्जुन आदि कल्पित। हेमवती भी ऐतिहासिक अस्तित्व रखती है जो संघर्ष और झगड़ों में मूल है। राज्य के भाटों के कथनानुसार हेमवती नहीं प्रत्युत्तर रूपकुमारी वास्तविक नाम था।

नागदत्त—गढ़ कुंडार के राजा हुरमतसिंह का इकलौता पुत्र है। वह युवक होने के फलस्वरूप हेमवती की रूप-प्रशंसा पर आसक्त है और इसी निमित्त भरतपुर जाता है, जहाँ हेमवती अपने परिवार सहित आश्रय के लिए ठहरी थी। हेमवती से साक्षात्कार तथा युद्ध में क्षत होने पर सेवा-सुश्रुषा प्राप्त कर उसका मनपतंग और भी तेजी से हेमवती पर न्यौछावर हो उठता है और उसके पिता को सहायता का वचन देता है और उसकी विषैली बुद्धि, स्वार्थ पूर्ति न होने देख, हेमवती को हरने का कुचक्र रचती है और जिसमें उसे असफलता मिलती है। और इसी रूपासक्ति तथा मोह के कारण इसका अन्त हो जाता है। निश्चय उसके चरित्र में आद्योपांत पटने पर मात्र पिपासा, वासना की अतृप्ति मुख्यत कार्य करती दीखती है। उसका प्रेम आदर्शमय, पवित्र नहीं है जिसमें मनुष्य अपने को न्यौछावर करने की उत्कट भावना से आप्लावित रहता है।

परन्तु वह साहसी तथा वीर पुरुष भी है जो स्वाभाविक रूप में शिकार खेलता है। प्राणों को हथेली पर रखकर, हेमवती के यहाँ डेरा डालता है और तुर्क सैनिकों का प्रतिरोध तथा अन्त में शत्रुओं से सामना करता हुआ मृत्यु लाभ करता है। इस प्रकार वह उच्छृंखल तथा अत्याचारी व्यक्ति के रूप में हमारे सम्मुख आता है और जो तत्कालीन जातीय अभिमानी पुरुषों का प्रतिनिधि एवं परिचायक है। परन्तु उसका चित्रण सफल और स्वाभाविक रूप में हुआ है। उसे वर्गगत पात्र की कोटि में श्रेणीबद्ध कर सकते हैं।

अग्निदत्त भी एक प्रेमी है और Silas Marner की तरह प्रेम के अभाव में बर्बर हो उठता है जो कुंजर के पतन का कारण बनता है। प्रेम में निराश होने पर इस प्रकार आचरण करना एक कमजोर मन स्थिति तथा दुर्बल व्यक्तित्व का प्रदर्शन करता है और अन्त में उसका मानवती की रक्षा करता हुआ होना है, वहाँ उसके चरित्र में कुछ गरिमा आ जाती है।

हेमवती—इस कृति की नायिका है जिसको प्राप्त करने की लालसा में सभी

कुडार विनष्ट हुआ। हेमवती का चरित्र व्यापकता से चित्रित नही हो पाया है। वह मात्र देश की स्वतन्त्रता की भावना से ओत-प्रोत है, और अपने पिता की आज्ञानुसार पुण्यपाल को वरण कर लेती है। निश्चय ही, उसके चरित्र का अभिव्यक्तिकरण अधिक सफल नही हो सका है।

उसके रूप का अदाज नागदत्त आदि के पागलपन तथा रूप प्रसिद्धि द्वारा कर सकते हैं। स्मरण रहे, विराटा की पद्मिनी आम्ववाली आदि का सौंदर्य ही युद्ध का कारण बना था।

उसका रूप युद्ध का कारण वन, अधे-पागलो और मदान्धो को समाप्त करता है। वैरियो को मृत्यु-अगीकार करना पडता है और अनेक कष्टो को झेलकर हेमवती पुण्यपाल की पत्नी वनकर आनन्दमय जीवनयापन करती है।

धीरप्रधान का चरित्र चतुर राजनीतिज्ञ और स्वामिभक्त के रूप मे सफलतापूर्वक प्रकट हुआ है। वह सोहनपाल का मन्त्रित्व सफलतापूर्वक निर्वाह कर उसे कुडार का नृपति बना डालता है। जब वह दक्षता से हुरमतसिह से वातें करता है उसकी चतुराई का वह ज्ञान नही कर पाते और काल के शिकार होते हैं।

धीर मे अद्वितीय स्वामिभक्ति का पावन स्रोत उस स्थल पर भी देखते हैं जब वह अपने पुत्र के राजद्रोह पर उसे भी कैद कर लेता है। उसे समाप्त करना चाहता है। उसकी उक्त भावना का अभिव्यक्तिकरण इस स्थल पर पूर्णतया हो जाता है—"आज मेरा भाग्य धन्य है। स्वामी की सेवा मे इसका प्राण चला जाता तो कुछ परवा न थी।"

उसी स्थल पर उसकी दूरदर्शिता का भी आभास मिलता है जब वह कहता है कि दिवाकर को छोडना कदापि श्रेयस्कर नही है, यह बुन्देलो के विनाश का मूलभूत कारण सिद्ध होगा। सचमुच, यदि दिवाकर छोड दिया जाता तो कथानक की परिसमाप्ति भिन्न ढग से भी होने की सम्भावना थी।

धीर कुछ सहिष्णु और प्रजा-हित ध्यान रखने वाला राजनीतिज्ञ है तभी तो खगारो के धोखा देनेवाले षड्यन्त्र पर कहता है—"कुडार के अन्य नगर-निवासी क्या कहेगे ? कुडार राज्य की प्रजा हमको क्या कहेगी ?" परन्तु, फिर भी स्वामी की सफलता के सकल्प मे षड्यत्र मे कटिवद्ध होता है। हा, यह अवश्य स्वीकार किया जायगा कि वहुत दृढ और विचारवान नही, नही तो स्वामी को वुरा और नृशस कार्य करते समय इनसे अलग हो जाता है। परन्तु यह लाचारी भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि महाभारत के पात्रो मे भी देखते हैं।

तारा मे रूप है, गुण है और है पवित्र प्रेम की निर्मल गगा जिसमे उसका अन्तर सर्वथा डूवा रहता है। लेखक के शब्दो मे ही तारा का परिचय सुनें—"तारा विष्णु दत्त की लडकी थी। अग्निदत्त और तारा जुडवें थे। सूरत-शक्ल विल्कुल एक-दूसरे से मिलती थी। केवल अन्तर यह था कि अग्निदत्त के गोरे रग मे, वाहर घूमने-फिरने के कारण, सांवलेपन की जरा-सी पुट आगई थी। तारा का रग निखरा हुआ था। एक-सी आखें, एक-सी नाक, एक-सी चेहरे की वनावट। स्वर मे भी अधिक अन्तर नही था, हाथो मे जरूर अन्तर था। भाई के हाथ की अगुलियां मोटी थीं

और पंजा चौड़ा था। बहन की अंगुलियां थी पतली और पहुंचा मुंदे हुए कमल-सदृश।

ऊपर से देखने में उन दोनों के नेत्रों में कोई अन्तर नहीं दिखलायी पड़ता था। परन्तु बारीकी से देखने पर यह भान होता था कि अग्निदत्त की आंखों में चंचलता और ढिठाई है। वह सहसा प्रवर्तिनी है, अभीष्ट सिद्ध करने में अनुरक्त है। उपदेश देने में कुशल और लेने में असहिष्णु है, ऊपर से मृदु और कोमल, परन्तु भीतर एक गुप्त ज्वाला छिपाए है, जो कारण के उपस्थित होते हुए ही उसे भस्मीभूत करने को उद्धृत हो सकती है—जो वैसे स्नेहार्द्र परन्तु अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए तेज, बल और प्रचण्डता को प्रदर्शित कर सकता है। तारा की आंखें शान्त, स्थिर, बड़ी-बड़ी पलकों वाली बड़ी निर्मल थीं। उन आंखों के किसी कोने में छल, कपट या अविश्वास की किंचित् छाया भी नहीं मिल सकती थी। शरीर बहुत छरहा और कोमल था। आकृति से ऐसी लगती थी, जैसे देवी हो—दुर्गा नहीं, किन्तु ब्रह्ममुहूर्त की अधिष्ठात्री उषा, ऋषियों के होम का आशीर्वाद, विष्णु के पुजारियों की पूजा।

तारा के पैर में पतली गोट के उज्ज्वल चांदी के पैजने, हाथों में सोने के कड़े पटैले और दो-दो कांच की चूड़ियां। धोती हल्के गुलाबी रंग की पहने हुए थी जिसका वह लम्बा कछोटा मारे हुए थी। सिर खुला था। माथे पर रोली की छोटी-सी बुंदकी लगाए हुए थी, मानो भगवान् भास्कर ने अभिषेक किया हो।"

उपर्युक्त उद्धृत अंशों के द्वारा बुन्देलखण्ड में व्यवहृत अलंकार, लेखक की रोचक शैली, उपमा-शक्ति, एवं सूक्ष्म परख की प्रवृत्ति और उनकी अद्भुत प्रतिभा का स्पष्ट परिचय मिल जाता है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वों पर भी लेखक की दृष्टि स्वाभाविक रूप से जाती है।

तारा को अभिमान छू तक नहीं गया है, जब अग्निदत्त कहता है—"बिन्नू, दादा जी तुमसे उनकी टहल करावेंगे। हेमवती की रसोई बनाओगी?" तो तारा अभिमान रहित उत्तर देती है—"बना दूंगी, तो कौन हाथ जल जाएगा?" फिर मुंह फुलाकर बोली—"देखो दादाजी! भैया मुंह चिढ़ाते हैं।"

तारा के मधुर व्यक्तित्व से प्रभावित हो, हेमवती कुअर ने विदा होते समय कहती है—"यदि किसी के लिए यहां रहने को जी चाहता है, तो तुम्हारे लिए तारा। नहीं तो इसी समय चले जाने की इच्छा होती।"

वर्मा जी ने तारा के प्रेम को संयमित परन्तु उचित विस्तार से उपस्थित किया है क्योंकि उनका आदर्श, भारतीयता का गर्व, उसके चरित्र से व्यक्त होता है।

वह स्वाभाविक रूप से दिवाकर की ओर आकृष्ट होती है, परन्तु उसके संयम का वेग कभी नहीं टूटता। उसके चरित्र की महानता तो उस स्थान पर और भी व्यापक रूप में दीखती है जब वह अपने शरीर को अर्द्धनग्न कर, गढ़कोठरी में प्रवेश कर दिवाकर की रक्षा करती है और उस प्रेमी के ही साथ जलते आग में विलीन हो जाती है।

दिवाकर धीर प्रशान्त या वीर युवा और पवित्र प्रेमी है। वह त्यागी है, जो वर्मा जी का मनोवांछित रूप है। वह हेमवती की रक्षा कर तथा भरपूर और आनंद में अपना समुचित त्याग दिखाकर पाठकों को मुग्ध कर देता है।

उसका त्यागपूर्ण प्रेम तो इतना निष्कलुष है कि वह कभी तारा को भगा लेजाने तथा अन्य मानसिक आदि कष्ट देने की नही सोचता। और यह ज्ञातकर कि तारा से परिणय-सस्कार सम्पन्न होना कठिन है, असम्भव है, क्योकि जातीय अभिमान के कठोर युग मे तारा की जाति उससे श्रेष्ठ स्वीकृत है, वह कभी कपट या वर्वरता पर नहीं उतरता। वह तारा के सर्प-दशन पर, प्राणो का मोह त्यागकर मुख से रक्त चूम लेता है, जिससे विप समाप्त हो जाये।

यहा यह अवश्य कहा जा सकता है कि वह सामाजिक रूढियो मे विद्रोह करने की क्षमता नही रखता या नही चाहता। परन्तु इसके पक्ष मे यही कहा जायगा कि वह मात्र अपने स्वार्थ के लिए कुछ नही करना चाहता—वह प्रेम भर करना चाहता है, मूल्य नही चाहता। वह कायिक सम्बन्ध का इच्छुक नही है। वह निष्काम प्रेमी है। 'विराटा की पद्मिनी' के कुजरसिंह से भी इसका प्रेम अधिक पुनीत है और उस समय जब बुन्देला प्रवचना से राज्य-प्राप्ति की योजना बना, कुडार को समाप्त करना चाहते हैं तो वह विरोध करता है। स्पष्ट शब्दो मे वह विद्रोही वन जाता है और कुडार जाना चाहता है, परन्तु बुन्देला उसे इस अपराध मे काल-कोठरी मे कैदी बनाकर डाल देते हैं।

उसका चरित्र निश्चितरूपेण अग्निदत्त और नागदत्त से भिन्न है। जहा एक मे वासना का हलाहल है, वहा दूसरे मे पीयूष की स्निग्धता है। जहा एक मे अमानुषिकता, हिंसा प्रबल हो उठती है, वहा दूसरे मे निश्छल समर्पण की आकठ प्यास समाहित है, प्रेम की कामहीन भावना की सबल धारा निनादित होती है। एक दृष्टि से उस पर स्वामि-द्रोही का दोपारोपण किया जा सकता है, परन्तु स्मरण रहे वह प्रपचना का विरोधी है जहा उसका सूत्रधार उसका स्वामी हो या कोई और। वह दुष्कर्म मे कभी सम्मिलित नही हो सकता, चाहे इसके लिए उसका प्राण भी चला जाए। साथ ही, इस कार्य से उसके प्रेम के आग्रह का स्वाभाविक निर्देश मिलता है।

आलोच्य कृति की चारित्रिक विशेपता पर निष्कर्षत यह अवश्य कहा जाएगा कि इसके चरित्र गतिपूर्ण, सफल तथा स्वाभाविक हैं। इस दृष्टि से भी उनकी तुलना स्कॉट से कर सकते हैं। चरित्र-निर्माण मे शरतचन्द्र तथा राजा राधिकारमण भी अद्वितीय महत्त्व रखते हैं।

'विराटा की पद्मिनी' (१९३०)

'विराटा की पद्मिनी' भी ऐतिहासिक कृति[1] है जिसमे सौन्दर्य का अभिशाप मूलाधार है। कथानक-सगठन जटिल और विस्तृत है। विचार और समस्या की दृष्टि मे नही, प्रत्युत पात्रो और घटनाओ की दृष्टि से। कल्पना और ऐतिहासिक तत्वो के सयोग पर आधारित प्रस्तुत कथ्य वस्तु सक्षेप मे इस प्रकार है

बुन्देलखण्ड के दलीपनगर के राजा नायकसिंह, जो मानसिक विक्षेप के

---

१ 'गढ कुडार' और 'विराटा की पद्मिनी' को हम वर्मा जी के प्रतिनिधि उपन्यास मान सकते है। इनमें कथानक गठन और विकास जिस सुचारु रूप से हुआ है, वह सुचारुता, प्रेमचन्द, प्रसाद या निराला मे नहीं मिलती। जहा प्रेमचन्द ने प्रभावैक्यता का ध्यान नहीं रखा है, वहा वर्मा जी सुगठित कथा को पिरोने में दक्ष रहे हैं।

फलस्वरूप असामान्य (abnormal) पुरुष थे, मकर संक्रान्ति को, पहूज में स्नान-निमित्त विक्रमपुर पहुंचने पर, उक्त नदी में पर्याप्त जल न देखकर पालर को, जो दलीपनगर के राज्य के अन्तर्गत था, प्रस्थान करते हैं। वहां नरपति दांगी की पुत्री कुमुद दुर्गा की अवतार मानी जाती थी, जिसके दर्शनार्थ विभिन्न स्थानों से, दूर-दूर से लोग आया करते थे। नृपति का दासी-पुत्र कुंजरसिंह, जिसे नायकसिंह बहुत स्नेह-प्यार करते थे, एक वीर सिपाही लोचनसिंह के साथ अवतार के दर्शनार्थ मंदिर जाता है और श्रद्धानुसार बहुमूल्य अंगूठी आदि अर्पण (भेंट) करता है। उसी काल, कुछ मुसलमान सिपाही, उस अवतार को एकमात्र ढकोसला मान, नयन-तृप्ति की वासनात्मक वृत्ति के आधिक्य के कारण उक्त स्थल पर उपस्थित होते हैं, और उनकी अशिष्ट तथा आंतरिक पिपासा की अभिव्यक्ति स्वरूप कुंजरसिंह उन सिपाहियों पर क्रुद्ध होता है। बात बढ़ जाती है। उक्त मुसलमान सिपाहियों के कुछ साथी तथा दलीपनगर के कुछ सैनिक घटनास्थल पर आ पहुंचते हैं। घमासान युद्ध हो जाता है। लाशें गिर पड़ती हैं। सम्पूर्ण नगर में आतंक की लहर उद्वेलित हो उठती है। सैयद के आक्रमण से भयाक्रान्त सभी लोग ग्राम छोड़कर भाग खड़े होते हैं। नायकसिंह को जब सारी परिस्थितियों, घटनाओं की सूचना मिलती है तो वह अपनी विलासप्रियता के आधिक्य-स्वरूप, अपने विश्वस्त नौकर, रामदयाल को भेज, दुर्गा की सुरक्षा के नाम पर, उसे अपने महल में बुलाना चाहता है। कुमार कुंजरसिंह उक्त आतंक-काल में दुर्गा के निकट रक्षक बना तत्पर रहता है। वह रामदयाल को ऐसा करने से वंचित कर देता है। महाराज नायकसिंह इस संवाद से अत्यधिक क्रोधित हो उठते हैं और स्वाभाविक रूप से कुंजर के प्रति उनका स्नेह कम हो जाता है। दुर्गा भी अपने पिता नरपतिसिंह के साथ, उस अरक्षित स्थान को छोड़कर, विराटा के एक मंदिर में आश्रय ग्रहण करती है। उसी समय नायकसिंह को ज्ञात होता है कि "एक दरिद्र ठाकुर की बारात आरही है और दूरी पर, उसके पीछे-पीछे, छिपी-छिपी कालपी से सेना (मुसलमानों की सेना) भी आक्रमण करने के लिए आ रही है।" अतएव सामना करने के निमित्त वह भी तैयारी कर लेता है। उसी समय नृपति के सम्मुख से उक्त बारात गुजरती है, जिसमें देवीसिंह नायक बुन्देला दूल्हा था। नायकसिंह और कालपी की सेना में युद्ध हो जाता है और देवीसिंह, परिणय-संस्कार की पूर्ण विधि सम्पन्न हुए बिना ही, डोली से उतर कर, नायकसिंह की ओर से घमासान युद्ध करता है और घायल होकर, अचेत हो जाता है। कालपी की सेना भाग खड़ी होती है। कुंजरसिंह देवीसिंह को घोड़े पर लेकर दलीपनगर नायकसिंह के पास लौट आता है। देवीसिंह की भावी पत्नी भी नरपति और कुमुद के साथ विराटा में रहने लगती है।

नायकसिंह की विक्षिप्तता अधिक बढ़ जाती है। वह मरणासन्न पड़ जाता है। नायकसिंह के अप्राकृतिक, अराजनैतिक व्यवहार से राज्य में [illegible] परिस्थिति थी। दरबार में भी षड्यन्त्र का कुचक्र चल रहा था। नायकसिंह की दो रानियों में छोटी रानी रूप की था कुंजरसिंह का राजतिलक [illegible] चाहती थी, क्योंकि नायकसिंह पुत्रविहीन थे। नायकसिंह ने सभी [illegible] जनार्दनसिंह

देवीसिंह को नृपति घोषित करा स्वय अमात्य बने रहकर, सम्पूर्ण अधिकार भोगने की लालसा से अभिभूत थे। नायकसिंह मृत्युकाल की रोगग्रस्ता के कारण किसी अधिकारी का नाम व्यक्त नही कर पाते, केवल शय्या पर पडे-पडे, कभी देवीसिह, कभी कुजरसिह का नाम पुकारते हैं। जनार्दन षड्यन्त्र द्वारा, इस अवसर से पर्याप्त लाभ उठाकर, नायकसिह के स्वर्गवासी होते ही, देवीसिह को नृपति एव स्वय को मन्त्री और लोचनसिंह को प्रधान सेनापति घोषित कर डालता है। कुजरसिह के साथ ही रानी क्षुब्ध हो उठती है। नायकसिंह की बीमारी की दु स्थिति मे ही, कालपी का शासक अलीमर्दान अपनी सेना की हार का समाचार सुन, दलीपनगर पत्र भेजता है, जिसमे चार विकट मार्गें थी— "(१) पालर की रूपवती दाँगी-कन्या एक महीने के भीतर दिल्ली के शाहशाह की सेवा मे कालपी द्वारा भेज दी जाए। (२) लोचनसिंह नायक सरदार को जिदा या मरा हुआ भेज दिया जाए। (३) एक लाख रुपया लडाई के नुकसान का हर्जाना पहुँचा दिया जाए। (४) दलीपनगर का कोई जिम्मेदार कर्मचारी या सरदार राज्य की ओर से कालपी आकर क्षमा-याचना करे। यदि एक भी माग पूरी न की गई तो दलीपनगर की बस्ती और सारे राज्य को शाही सेना द्वारा खाक मे मिला देने की सूचना भी उसी चिट्ठी मे भेजी गई थी।" (पृ० ३८) जर्नादन ने राज्य हकीम आगाहैदर को कालपी के अलीमर्दान को मनाने भेजा।

छोटी रानी, देवीसिह को सिहासनारूढ देख, सिहनी की तरह दहाड उठती है और प्रच्छन्नरूप से, रामदयाल द्वारा, अलीमर्दान को राखी भेज, धर्म का भाई बनाकर, दलीपनगर पर आक्रमण के लिए निमत्रित करती है। कुजरसिह भी अपना सम्पूर्ण अधिकार समाप्त देख, कुछ सरदारो को साथ लेकर, सिंधु तटस्थ सिहगढ पर आधिपत्य स्थापित कर विद्रोह खडा करता है। छोटी रानी, अपने पर जनार्दन का नियत्रण देख, उसके कटे सिर को देखने को उतावली हो उठती है। अलीमर्दान पालर सेना के साथ आता है और रामदयाल उसे रानी का सदेश देता है। अलीमर्दान सुअवसर समझ, उसे स्वीकार कर, कुजरसिह की सहायता के लिए सिहगढ अपने सरदार काले खाँ के आधीन सेना भेजता है और स्वय कुछ सेना लेकर दलीपनगर की ओर बढता है। दलीपनगर पूर्व ही सावधान हो चुका था, अतएव उसका लोचनसिह के नायकत्व मे खडी दलीपनगर की सेना से सघर्ष हुआ। अलीमर्दान विरोधी सेना को विशेष क्षति नही पहुँचा सका, अत यह सोचा— "बिना किसी अच्छे किले के हाथ मे किए युद्ध आसानी से और विजय की पूरी आशा के साथ न हो सकेगा।" इसीलिए वह देवीसिह की सेना को अटकाए रखने लिए एक दस्ता जगल मे छोड और उसी सेना के दूसरे दस्ते को लेकर होशियारी के साथ चुपचाप सिहगढ रवाना हो जाता है। छोटी रानी भी देवीसिह के सिहासनाधीश होने से असन्तुष्ट सरदारो को लेकर, कुछ को दलीपनगर मे युद्ध के हेतु छोड, सिहगढ चली जाती है। देवीसिह की सेना सिहगढ पहुचकर परास्त हो जाती है। कुजरसिह को अलीमर्दान का जाना पसन्द नही आता है, क्योकि प्रच्छन्नत, मनोवैज्ञानिक रीति से, वह अलीमर्दान के कुमुद पर कुदृष्टि डालने से क्षुब्ध था और सोचता है कि वह दलीपनगर को भी हडप लेगा। पुन

गोवर्धनसिंह, सेना लेकर, सिंहगढ़ पर विजय प्राप्त कर लेता है। छोटी रानी बंदी कर ली जाती है। अलीमर्दान भी छूट जाता है। छोटी रानी दलीपनगर लाई जाती है और राजा देवीसिंह अपनी उदार तथा सुधार-नीति द्वारा, उन्हें बड़ी रानी के महल में रख कर नियंत्रण रखता है। छोटी रानी अवसर प्राप्त कर, बड़ी रानी से प्रेम-सूत्र स्थापित कर, उन्हें भी व्यभिचार के लिए तैयार कर देवीसिंह के प्रति घृणा उत्पन्न कर, विद्रोह की भावना से भर डालती है।

कुंजरसिंह हारा हुआ, विराटा में कुमुद (दुर्गा) के पास पहुँचकर, नरपति से अपने को कुंजर का आदमी बतलाता है, परन्तु कुमुद पहचान लेती है और स्वयं कुंजर, अपनी स्वच्छ प्रवृत्ति के प्रतिकूल छिपाव नहीं कर पाता है। अलीमर्दान के अवचेतन में कुमुद की स्मृति थी। वह भांडेर में ही पड़ा हुआ था।

रामनगर का राजा पतराखन उससे भयभीत था और वहाँ अलीमर्दान के रुके रहने का कारण जानना चाहता था, परन्तु डर से एक शब्द भी नहीं बोल पाता था। उसी समय, सुअवसर देख, नायकसिंह की दोनों रानियाँ चुपचाप कैद से निकल कर रामनगर पहुँचती हैं और पतराखन के यहाँ डेरा डालती हैं। पतराखन, अप्रत्यक्ष रूप से, उन्हें अपने आश्रय में रखना विपद्ग्रस्त समझता है, परन्तु इस समाचार से अवगत है, कि उन्हें अलीमर्दान की सहायता प्राप्त है, वह कुछ नहीं बोलता। कुंजर विराटा के राजा सबदल का सहयोग प्राप्त कर कुछ करना चाहता है, परन्तु उससे आश्रय के अतिरिक्त कुछ सहयोग नहीं मिलता है। रामदयाल अलीमर्दान की गुप्त मंत्रणा के अनुसार कुमुद को खोजने विराटा पहुँचता है जहाँ गोमती (देवीसिंह की भावी पत्नी) से अपने को देवीसिंह का आदमी कह कर गोमती को, जो देवीसिंह से विधिवत् परिणय-संस्कार न होने पर भी उसे पति मानती थी, और उसकी उन्नति, भलाई एवं प्रगति की इष्ट कामना करती है, अपने पक्ष में मिला लेता है।

कुंजरसिंह सबदलसिंह से सहायता की याचना करता है, परन्तु सबदल अपनी अपूर्ण शक्ति की सच्ची परिस्थिति का ज्ञान रखते हुए देवीसिंह के विरुद्ध उसे वचन नहीं देता है। कुंजर रामदयाल का उस मंदिर में प्रवेश देख, पूर्व धारणा तथा व्यवहार से परिचित होने से, शंका करता है, परन्तु नरपति का रामदयाल के प्रति अटूट विश्वास देख, उसे वहाँ से निकाल नहीं पाता है। उसे विश्वास था—'रामदयाल कुमुद को किसी षड्यंत्र में फँसाने और स्वयं उसे किसी विपद से छुड़ाने की चिन्ता में है।" उसका कुमुद के पास रहने के फलस्वरूप मौन प्रेम (कुमुद के प्रति) बढ़ता जाता है। एक दूसरे के प्रति प्रबल आकर्षण विवृत होता रहता है। रामदयाल भांडेर पहुँचकर, अलीमर्दान से नायकसिंह की रानियों का दलीपनगर से भागकर, विद्रोह करना सूचित करता है और पालर की कुमुद के विराटा के एक मंदिर में वर्तमान होने की सूचना देता और अलीमर्दान इस समाचार से आन्तरिक लालसाजनित प्रसन्नता से आन्दोलित हो, रानियों के साथ मिलकर दलीपनगर पर आक्रमण की योजना बनाता है, और विराटा पर भी दृष्टि लगाए रखता है, कुमुद की प्राप्ति की कामना से। कालेखाँ और रामदयाल विराटा के

सबदलसिंह के पास छद्म वेप मे आकर, अपना परिचय देकर, उक्त पद्मिनी की प्राप्ति की लालसा व्यजित करते हैं। सबदलसिंह इस विषय पर सोचने-विचारने का समय मागता है और अपने सहयोगियो के विचार-विमर्श के पश्चात् कुमुद को अलीमर्दान को अर्पित न करने के निष्कर्ष पर पहुचता है और उसकी सेना के प्रतिरोध के निमित्त दलीपनगर की सैन्य सहायता वाछनीय स्वीकार करता है। कुमुद, कुजर का भला चाहने के परिणामत, कुजर को अधिकार से वचित कर, शासनरूढ होने वाले देवीसिंह से अन्तर से अप्रसन्न थी, इसलिए जब नरपति को देवीसिंह की सेना को, सबदल की ओर से, आमत्रित करने की आज्ञा मिली तो वह सन्तुष्ट न होकर, असन्तुष्ट होती है, परन्तु अप्रत्यक्षत प्रबल विरोध नही कर पाती। देवीसिंह धार्मिक भावना के प्रतिफलन के परिणामस्वरूप, विराटा की अवतरित दुर्गा (कुमुद) की रक्षा हेतु तथा सबदल से सैन्य-सहयोग प्राप्त कर, अलीमर्दान तथा रानियो के विद्रोह-दमन की भावना से आमत्रण स्वीकार कर लेता है। वह तीन ओर से आक्रमण योजना निश्चित करता है—सिंहगढ से लोचनसिंह, दलीपनगर से पालर होते हुए स्वय और बडे गाँव से जनार्दन शर्मा बढे। दलीपनगर की सेना रामनगर पर आक्रमण कर जय प्राप्त कर लेती है और रानियो को कैद कर लेती है, परन्तु छोटी रानी पुन भागकर, अलीमर्दान से जा मिलती है। विराटा के नृपति कुजरसिंह को कोई उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य-भार नही सौंपते क्योकि देवीसिंह के अप्रसन्न होने की सभावना थी और बहुत सीमा तक हानि की आशका थी। परन्तु पीछे, विश्वास उत्पन्न कर, उसे (कुजर को) ही तोप विभाग के सचालन का अधिकार दिया जाता है। वह रामनगर गढी पर निरतर तोपें दागता है क्योकि वह देवीसिंह का भी परम शत्रु था। यह जानकर भी कि रामनगर देवीसिंह के आधिपत्य मे चला आया है, फिर भी वैयक्तिक शत्रुता के कारण तोपें दागता रहता है, सबदलसिंह को सदा धोखा देता रहता है कि रामनगर पर देवीसिंह का अधिकार नही हुआ है। देवीसिंह की सेना क्रुद्ध हो विराटा पर टूट पडती है। अलीमर्दान भी विराटा विजय कर कुमुद को प्राप्त कर लेना चाहता है। इसी चेष्टा मे अलीमर्दान और देवीसिंह की सेना मे भी लोमहर्षक युद्ध होता है। विराटा के सभी दागी वीरगति प्राप्त करते हैं, अलीमर्दान विराटा मदिर मे प्रवेश कर कुमुद को पकडना चाहता है। कुमुद, पुष्प की माला कुजर सिंह के गले मे डाल, नदी मे कूदकर प्राणान्त करती है। देवीसिंह और कुजर के भयानक युद्ध मे, देवीसिंह कुजर का सिरोच्छेद कर डालता है। छोटी रानी भी युद्धस्थल पर स्वर्गवास करती है, सबदलसिंह अपने सभी सैनिको के साथ मारा जाता है। गोमती भी समाप्त हो जाती है। अलीमर्दान अपनी कुचेष्टा मे असफल हो, कुमुद को न प्राप्त करने से सतप्त हो देवीसिंह से सन्धि कर लेता है और इस प्रकार कथावस्तु विषाद और करुणा की भीगी रागिनी गुजरित करती समाप्त हो जाती है।

इतने रक्तपात का मूल कारण सत्ता की लोलुपता तथा मुख्यत विराटा की पद्मिनी का सौन्दर्य होता है। एक स्थल पर इसी सत्य का अनुसधान करता कुजरसिंह स्पष्ट बोलता है,—"कुमुद इस युद्ध का लक्ष्य है।" पद्मिनी का सौन्दर्य वरदान्

नहीं वरन् अभिशाप बनकर प्रकट होता है। अम्बपाली का अद्वितीय सौन्दर्य ही वैशाली गणतंत्र के सर्वनाश का कारण सिद्ध हुआ, जिसका सफल अंकन अम्बपाली सम्बन्धी काव्य और साहित्य में पर्याप्त है। बेनीपुरी कृत अम्बपाली, रामचन्द्र शर्मा की अम्बपाली, डा० रामरतन भटनागर की 'अम्बपाली' में भी यही सत्य मुखरित हुआ है। 'बाइबिल' की गणिका मेगडलीन के सम्बन्ध में भी यही घटना है। यशपाल की 'दिव्या' भी अपने सौंदर्य के तेज के मूलभूत कारण से अनेक विघ्नों के भंवर में घूमती रहती है।

किसी ने कहा है।

When a girl is plain and poor,
And dressed all out of fashion,
Who on earth will marry her ?
Not a living creature

परन्तु उपर्युक्त कथन को कालिदास की शकुन्तला, विराटा की पद्मिनी, 'मृगनयनी' की मृगनयनी, 'सोना' की सोना, बेनीपुरी की अम्बपाली, राम रहिम की 'बेला' सर्वथा भ्रामक सिद्ध कर देती है, जो नैसर्गिकता की उद्घोषणा है।

'विराटा की पद्मिनी' की सम्पूर्ण कथावस्तु रोमासपूर्ण,[1] रोचकता, मनोज्ञता, गतिशीलता से अभिवृद्ध तथा ओज से सौन्दर्यान्वित है और घटनाएं स्वाभाविक क्रिया से सिंचित हो मोड़ लेती चलती हैं, जिससे पाठकों की प्रबल हेतुमूलक शक्ति जिज्ञासा, निर्पेक्ष ढंग से सचालित होती रहती है। Alexander Dumas का 'The Black Tulip, 'Three Musketeers आदि जिज्ञासापूर्ण कृति स्वीकृत हैं, परन्तु 'The Black Tulip' में मानवीय रूप नहीं प्रत्युत् Black Tulip मूल कारण है, तथापि रोमांस अवश्यमेव है।

वर्मा जी रोचकता के भंडार हैं। साहित्य-प्रेमियों को निश्चितरूपेण ज्ञात है कि साहित्य के लिए, उपन्यास के लिए, यह परम अपेक्षित है। यथार्थ चित्रण मात्र ही उपन्यास का सम्पूर्ण ऐश्वर्य और सफलता नहीं। लाउ-साउ-स का 'फूटे स्याङ्ग' (जिसका हिन्दी अनुवाद रिक्शावाला के नाम से है) अत्यन्त यथार्थवादी कृति है, परन्तु अनाकर्षक। वार्तालाप, जिज्ञासा, रोचकता के अभाव में उसे हम सफल कृति नहीं स्वीकार कर सकते। 'जहाज के पंछी' के साथ भी यही तथ्य है। हार्डी यथार्थवत् छवियों में प्रेमचन्द की तरह ही अपूर्व क्षमता रखता है। उसकी कृतियों में कथानक की एकसूत्रता और रोचकता की अविच्छिन्न अन्तर्धारा नितान्त दर्शनीय है। गोर्की की 'Mother' में भी मजदूर वर्ग का यथार्थ चित्र औपन्यासिकता के साथ विद्यमान है। वृन्दावनलाल जी के 'अमर बेल' को भी इस दृष्टि से देख सकते हैं।

---

१ "वर्मा जी ने जिस ढंग के ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं, वे युद्ध, प्रेम तथा वीरता से परिपूर्ण रोमांटिक शैली के हैं। रोमांटिक रचना के अन्दर इन्हें प्रेम करना, सच्चे (?) निश्छल, युद्धभूमि में—युद्ध के लिए किसी बहाने, spirit of adventure, उत्साह, वचन और प्रेमिका के लिए मर-मिटना पड़ता है।—डा० रामचरण महेन्द्र (श्री वृन्दावनलाल वर्मा : उपन्यास और कला, पृष्ठ ५)।

'विराटा की पद्मिनी' की सम्पूर्ण कथावस्तु, सम्पूर्ण क्रियाकलाप मूल केन्द्र-बिन्दु की ओर सफलता से अग्रसर होकर चरम परिणति को प्राप्त करती है जो औपन्यासिक क्षेत्रीय सफलता मे एक सुदृढ तत्व है।

लेखक ने आलोच्य कृति मे उत्तरकालीन मुसलमान शासनकाल मे परिव्याप्त अराजकता, गृहकलह, छोटे-बडे राज्यो का दिल्ली केन्द्र से विमुख हो स्वतन्त्र-सत्ता के प्रतिष्ठान के सक्रिय भाव, आदि ऐतिहासिक वातावरण सफलतापूर्वक चित्रित है। *लगता है वर्मा जी ने 'गढ कुंडार' के कण-कण पर दृष्टि केन्द्रित कर उसकी आत्मा की आवाज को पकड लिया हो।*

सरल भाषा शैली मे व्यक्त, प्रस्तुत कृति मे 'झासी की रानी, लक्ष्मी वाई', 'कचनार, 'मृगनयनी,' आदि की तरह ही स्थानीय बोलियो का प्रयोग निम्नश्रेणी के पात्रो से कराया गया है। ऐसे प्रयोगो मे वर्मा जी स्वाभाविकता के निकट दीख पडते हैं। 'जहाज के पछी' के लेखक की तरह अस्वाभाकिता नही, जिसका पात्र 'श' के स्थान पर 'स' प्रयोग करता है परन्तु और पूरी शुद्धता से उच्चारण और व्यवहार करता है।

'विराटा की पद्मिनी' मे रोमास का आग्रह प्रवल है, इसे हम अस्वीकार नही कर सकते। वर्मा जी की कृतियो मे मौन-प्रेम भी वडा भव्य और सरस है, कुजर और कुमुद के मौन-प्रेम को हल्के रोमास के अन्तर्गत श्रेणीबद्ध नही कर सकते, क्योकि उसमे भव्यता है, सुन्दर निर्वाह है, शारीरिक सौन्दर्य की प्रधानता नही, कायिक महत्व धार्मिक स्वतन्त्रता की सुरक्षा के सम्मुख न्यूनतम मे भी नही है। उपेन्द्र नाथ 'अश्क' की 'वडी-वडी आखें' (उपन्यास) मे भी यह प्रेम मार्मिकता से व्यजित हुआ है।

इसमे हिन्दू-धार्मिक अन्धविश्वास तथा श्रद्धा का भी वडा आकर्पक चित्रण है। कुमुद को, उसके पिता नरपति भी उसे 'मा' कहकर सम्वोधित करते है, ग्रामीण श्रद्धा और भक्ति की दृष्टि से देखते हैं, हिन्दू राजे भी उसे देवी का अवतार समझ उसकी रक्षा के लिए कटिवद्ध रहते है और उसी की रक्षा मे कुजर-सिंह, सवदलसिंह, तथा उसके सैनिक वलिवेदी पर न्योछावर हो जाते हैं। साथ ही मुसलमानो का अवतारवाद मे अविश्वास तथा गिरती अवस्था मे हिन्दू राजो का सहयोग प्राप्त किए रहने की लालसा से उनके मदिर, विश्वास तथा अवतार पर प्रत्यक्ष आक्षेप न करना भी ध्यातत्व है। यही पर मैं यह भी स्पष्ट कर दू कि पद्मिनी के

---

१ रामखेलवन चौधरी और डा० लक्ष्मी नारायण टटन का मत है (मृगनयनी समीक्षा पुस्तक)—"वर्मा जी हर एक वात नपा-तुली भाषा में लिखते है, व्यर्थ की तूल नहीं वढाते। उनकी भाषा में एक प्रकार की रूक्षता है, प्रसाद की तरह सरस नहीं। भाषा व्यवहारिक है, शुद्ध साहित्यिक नहीं। यह पूर्ण सत्य है कि मितव्ययता उनकी भाषा में है और व्याकरण आदि पर विशेष ध्यान नहीं, बुन्देली शब्द भी व्यवहृत है, आचलिक वाक्यावलिया है परन्तु रूक्षता कहना उचित नहीं लगता। उनके शब्द जीवन के निकट और वेगवान है। वाक्य छोटे-छोटे शब्दो पर आरूढ और सहज सरल तथा सरस है। जिस समय ऐतिहासिक परिचय में उनकी लेखनी प्रवृत्त होती है, उस समय कुछ रूक्षता का होना स्वाभाविक है और क्षम्य भी।

प्रति जो श्रद्धा और विश्वास हिन्दुओं में था, उसका स्थूल कारण दृष्टिगोचर नहीं होता, फिर भी अन्धविश्वास से ग्रस्त हिन्दू जनता उसे श्रद्धागत भावनाओं से निवेष्ठित किये रहती है। वर्मा जी की भी कुछ सीमा तक उनके प्रति श्रद्धापूरित भावनाएं दीख पड़ती हैं परन्तु अन्त में पद्मिनी की जल-समाधि पर, मंदिर का निर्माण आदि वास्तविक रूप में कोई महत्वपूर्ण मूलभूत कारण परिलक्षित नहीं होता, न वह इतना दिव्य और ऐसा अनुष्ठान ही करती है जिससे वह इनकी पूजनीय स्वीकृत हो, परन्तु ऐतिहासिक सत्य की सिद्धि के निमित्त लेखक ने भी मंदिर का प्रतिष्ठापन कर दिया है।

लक्ष्य की दृष्टि से यह स्मरणीय है कि कलाकार इतिहास-क्षेत्र में प्रवेश कर भी आधुनिक समस्या का उनसे निदान व्यंजित करता है। ओज के प्रस्फुरण के अतिरिक्त १९३६ के निकट में परिव्याप्त अनैतिकता और पारस्परिक द्वेष की वडवाग्नि में भस्मावृत चित्र को प्रकट कर, लेखक ने एक संगठन सूत्रता का अभियान आवश्यक ठहराया है, जिसमें अलीमर्दान जैसे तत्वों से, एवं आधुनिक शासक अंग्रेजों से निष्कृति, मुक्ति मिल सकती है। वैयक्तिक शौर्य तब फलीभूत नहीं हो पाता, जब वीरता, दृढ़ता के साथ वैयक्तिक स्वार्थ की वेगपूर्ण धारा प्रवहमान रहे।

साथ ही कुंजरसिंह, कुमुद और गोमती का पवित्र प्रेम भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है, जिसमें आत्मा की झंकार है, वाणी का विलाप नहीं, जिसमें पवित्रता की शालीनता है, कामुकता का साम्राज्य नहीं। मौन-प्रेम का शरत-साहित्य में भी अभूतपूर्व उत्कृष्टता से युक्त उदाहरण हैं। पवित्र प्रेम की झांकी मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में भी देखी जा सकती है। गुप्त जी के पात्र भी इस दिशा में दिव्य हैं, परन्तु मानवी भी। 'साकेत' की उर्मिला दारुण वियोग में एक शब्द भी प्रतिवेदन न कर, मानसिक क्षतिग्रस्तता से अचेत हो जाती है, 'यशोधरा' की यशोधरा भी अपनी गरिमा सर्वदा उन्नत किए रहती है। इसी प्रकार के उदाहरण जयशंकर प्रसाद के कुछ नाटकों में कुछ पात्री प्रस्तुत करती हैं।

श्रेष्ठ कलाकार की कृति कुछ नवीन अनुभूतियां, नवीन कल्पना और व्यंजना से वंचित कदापि नहीं होती, जो अस्वाभाविक किंचित् नहीं, प्रत्युत नैसर्गिक और उचित ही है। इसीलिए वर्मा जी ने स्पष्ट लिखा है—" जैसा मैं पहले कह चुका हूँ उपन्यास कथित घटनाएं सत्य मूलक होने पर भी अपने अनेक कालों से उठाकर एक ही समय की लड़ी में गूथ दी गई हैं, इसलिए कोई महाशय उपन्यास के किसी चरित्र को उसके वास्तविक रूप का सम्पूर्ण प्रतिबिम्ब न समझें और यदि कोई बात ऐसे चरित्र की उन्हें खटके, तो बुरा न मानें।"[1] और सत्य है, यही वैयक्तिक साधना एक कलाकार से अन्य कलाकारों के मध्य रेखा-चिह्न लगा देती है। यही तो इतिहासज्ञ और साहित्यकार में भिन्नता प्रकट करने वाला आधारभूत कारण है।

प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से भी वर्मा जी का हिन्दी गद्य लेखकों में शीर्ष स्थान है। प्रकृति का इतना स्वाभाविक, सरल और सुखकारी दर्शन निःसन्देह गिने-गिने उपन्यासों

१. 'विराटा की पद्मिनी'—परिचय, लेखक, पृ० ३।

मे मिलता है। इसका मूल कारण, (१) प्रकृति के वैभवपूर्ण क्षेत्र मे समय व्यतीत होना, (२) अन्तर्दृष्टि की सूक्ष्मता, तथा (३) प्रकृति प्रेम ही व्यजक है। 'विराटा की पद्मिनी' मे भी प्रकृति के कई श्रेष्ठ स्थल हैं, वर्णन हैं—

"वेतवा के पूर्वी किनारे को जल राशि छूती हुई चली जा रही थी। अस्ताचलगामी सूर्य की कोमल सुवर्ण-रश्मिया वेतवा की धारा पर उछलकर-उछलकर हँस-सी रही थीं। उस पार के वन-वृक्षो की चोटियो के सिरो ने दूरवती पर्वत की उपत्यका तक श्यामलता की एक समर स्थली-सी वना दी थी।"

औपन्यासिक तत्वो की विस्तार से विवेचना और समीक्षा के पश्चात् निश्चय ही 'विराटा की पद्मिनी' वर्मा जी की सफल एव श्रेष्ठ कृति मानी जायगी।

चरित्र चित्रण

'विराटा की पद्मिनी' मे कुमुद, देवीसिंह, कुजर, अलीमर्दान, नायकसिह, छोटी रानी, रामदयाल, गोमती, नरपति जनार्दन तथा सवदलसिंह मुख्य हैं, जिनकी चर्चा अपेक्षित है और जिनमे केन्द्र बिन्दु विराटा की पद्मिनी दुर्गा कुमुद है, जिस पर वृत वना कर सम्पूर्ण कथावस्तु घूमती है।

कुजरसिंह '२०-२१ वर्ष का सौन्दर्यमय वलशाली युवा', उपन्यास का नायक है, जिसकी सृष्टि वर्मा जी की सफल कल्पनाशक्ति ने की है। वह दलीपनगर के नायकसिंह नृपति का दासी-पुत्र है, जिसे नायकसिंह, पुत्र के अभाव मे, अत्यधिक स्नेह की दृष्टि से देखते हैं।

उसका स्वभाव सकोची और लज्जाशील है। सकोच की पृष्ठभूमि मे हीन भावना (inferiority complex) भी कार्य करती है, जो उसके दासी के गर्भ से उत्पन्न होने का मूल कारण है, ऐसा मनोवैज्ञानिक स्वीकार करेंगे। वह कुमुद को श्रद्धा की दृष्टि से देखकर भी, अनजाने प्रेम करता है, जिसके कारण वह नायकसिंह द्वारा तिरस्कृत होता है, शासन का आधिपत्य ग्रहण नही कर पाता। परन्तु यह स्मरणीय है कि उसका प्रेम मौन और मर्यादित है। विश्वास और श्रद्धा से समन्वित है। मुख्यत यौन भावना से परिचालित युवको की तरह प्रेम का याचन नही करता, वरन् मौन साधक-सा कुमुद के चरणो मे वना रहता है। देखिए वह किन सयत शब्दो मे कुमुद से वाते करता है—"यदि इन चरणो की कृपा वनी रहे, तो मैं ससार भर की राज्य सामर्थ्य को तुच्छ तृण के समान समझू। मुझे कुछ न मिले, ससार भर मुझे तिरस्कृत, बहिष्कृत करदे, परन्तु यदि चरणो की कृपा वनी रहे, तो मैं समझू कि देवीसिंह मेरा चाकर है, नवाव मेरा गुलाम है, और ससार-भर मेरी प्रजा है। वास्तव मे मेरे जी मे कोई वडी महत्वाकाक्षा शेष नही है। यदि कोई परम अभिलाषा है, तो चरणो की सेवा की है।"

परन्तु कुजरसिंह वर्मा जी के महिमामडित पात्रो जैसे 'कडली चक्र' के अजीत, तथा 'मृगनयनी', 'भुवन विक्रम' आदि के अनेक पात्रो *की तरह प्रेम में अधिक सक्रिय नहीं रह पाता*, सिंहगढ मे पराजित होने के उपरान्त मात्र कुमुद के साथ, सम्पूर्ण महत्वकाक्षाओ को विस्मृत कर, मदिर मे रक्षक वना रहता है, अपनी सत्ता

की पुन प्राप्ति के निमित्त सचेष्ट एव अकथ परिश्रम और उद्यम नही करता। वह तो मात्र यही सोचता है— "नवाब से लडना धर्म है। धर्म की रक्षा करना कर्त्तव्य है। कर्तव्य-पालन करना धर्म है। आपकी (कुमुद की) आज्ञा का पालन करना ही धर्म, कर्तव्य और सर्वस्व।" (पृष्ठ २४२) वह युद्ध भी करता है, तो मात्र कुमुद की रक्षा के लिए। और इसी प्रयास मे विराटा मे उसकी मृत्यु भी हो जाती है। उक्त स्थिति मे अधिकार के प्रति सजगता व्यजित नही होती वरन् प्रेम का आधिक्य तथा कुमुद की रक्षा की भावना प्रबल दीखती है। 'As You Like It'[1] मे आर्लेंडो का जगल मे कविता लिखना और मारे-मारे फिरने मे रोसालिंड के प्रेम का ही हाथ है। वह भी अकर्मण्य-सा होने लगता है।

कुजरसिह को, सामान्य व्यक्ति की तरह, देवीसिह का सत्ताधीश रहना जलन पैदा करता है और इसी के फलस्वरूप, देवीसिह जो के सहायतार्थ आना चाहता था, विराटा का ध्वसक सिद्ध होता है। यहा कुजर का मनोवैज्ञानिक द्वेष प्रकट होता है। कुजरसिह सदृश मौन-प्रेमी का शरत-साहित्य मे पर्याप्त उदाहरण हैं जो प्रेम को गौरव-गिरि के उच्च शिखर पर अवस्थित कर देते हैं। कुजर, जहा विनाशक रूप ग्रहण करता है, वहा शरत के पात्र अपने को भले ही समाप्त करलें, परन्तु दूसरो के प्रति यह भाव नही रखते। 'सूरदास' (राजा राधिकारमण कृत) के नायक सूरदास का मौन, परन्तु प्रबलतम और आकर्षक प्रेम श्लाघनीय है, मर्मस्पर्शी है। 'गोदान' मे भी ऐसे प्रेम के स्वस्थ उदाहरण हैं (मेहता का जगल मे एक गवार लडकी के प्रति)। कुजरसिह मूलत एक प्रेमी का प्रतीक है, परन्तु उसकी सबसे बडी कमजोरी है कि वह प्रेम मे हिंसक भी बन जाता है, जो उपर्युक्त उपन्यासो के पात्र नही हैं। D H Lawrence कृत 'Rex' का कुत्ता प्यार मे हिंसक हो उठता है—"It is a strange thing. Love Nothing but love has made the dog lose his wild freedom to become the servant of man And this very servility or completeness of love makes him a term of deepest contempt—'You dog'' Nothing is more fatal than the disaster of too much love." Rex जहा अत्यधिक प्यार के कारण ऊबा हुआ परन्तु कुजर को प्रत्युत्तर मे पूर्ण प्यार न मिला। वह उपेक्षित और परास्त व्यक्ति रहा और अन्त मे अपनी प्रेमिका की रक्षा, तथा वैयक्तिक दोष तत्वो के सयोग से इस रूप मे प्रकट हुआ।[2]

दागी गोंडे नरपति की पुत्री विराटा की पद्मिनी, कुमुद प्रस्तुत उपन्यास की नायिका है, जिसमे अद्वितीय सौन्दर्य समाहित है, जिसके प्रति हिन्दुओ मे विश्वास है कि वह दुर्गा की अवतार है, और जिसे अवतारवाद मे अविश्वास रखनेवाला मुसलमान अलीमर्दान अकशायनी के रूप मे देखना चाहता है। अन्धविश्वास की परम्परा-भुक्त सम्पूर्ण हिन्दू जनता उनसे उसकी पूजा, अर्चना तथा वरदान द्वारा मनोवाछित फल प्राप्ति की सम्भावना रखती है। कुजरसिह देवी के अवतार सन्निहित धार्मिक

---

१ 'As You Like It (Shakespeare), Act II Scene II.

२ डा० दशरामिश्र का कुजर को 'जीवन के कर्तव्यों से जूझने वाला' मानना भ्रमात्मक है।

दृढ़ता और सौन्दर्याभिभूत प्रेमी के कारण उसकी सतत रक्षा करता है, और कुमुद भी आन्तरिक मन से उसे प्रेम करती है, यद्यपि सामाजिक तथा अवतार के पड़े हुए मोटे आवरण के परिणामस्वरूप, अपने अन्तर की वाणी को, हृदय की पुकार को, व्यक्त नहीं कर पाती, परन्तु मृत्यु की गोद मे जाने के क्षण कुंजरसिंह के गले मे माला डालकर, अपना समर्पण कर, अपने जीवन का, रहस्याभिभूत जीवन का मानस-क्षितिज पर स्पष्ट अंकित प्रेम-रेखा का स्पष्टीकरण कर देती है। उसका अन्त बड़ा मर्मस्पर्शी होता है— "उसने (कुमुद ने) अपने आंचल के छोर से जंगली फूलों की गथी हुई एक माला निकाली, और कुंजर के गले मे डाल दी। बोली " यह मेरा अक्षय भंडार लेकर जाओ। अब मेरे पास कुछ नही है" (पृ० ३८५)। तभी देवीसिंह और अलीमर्दान को प्रवेश करते देख, अपने सतीत्व की रक्षा के लिए वेगवती धार मे सर्वदा के लिए विलीन हो जाती है और 'उड गए फुलवा, रह गई वास।'

कुमुद यदि जनता के सम्मुख दुर्गा का अभिनय कर अपनी सच्ची स्थिति का ज्ञान किसी को नही होने देती परन्तु स्वयं उसे सम्पूर्ण ज्ञान है और आत्मीय गोमती तथा प्रेमी कुंजर के सम्मुख सर्वदा सत्य स्वीकार करती हुई कहती है—"आप ऐसा फिर कभी न करना। मैं कोई अवतार नही हू। साधारण स्त्री हू। हां, दुर्गा माता की सच्चे जी से पूजा किया करती हूँ। आप मुझे अवतार न समझें।" (पृ० २४३) आगे वह अपनी प्रगतिशीलता तथा विकसित चिन्तन-शक्ति का परिचय देती हुई उद्घोष करती है—"हममे, तुममे, सबमे वह दुर्गा अंश वर्तमान है। जब मनुष्य की देह धारण की है, तब उसके गुण-दोष से हम लोग नही बच सकते।"

वह बुद्धिशालिनी है जिसे पूर्णतया ज्ञान है, कि सम्पूर्ण युद्ध, हत्या, रक्तपात का कारण वही है—"मैं तो कभी की मरने के लिए तैयार हूँ। यदि इस युद्ध का कारण ही मिट गया होता तो आज विराटा के इतने शूर-सामन्तो का व्यर्थ बलिदान न होता। मैं न जाने क्यो जीवित रही ? किसके लिए ?" (पृ० ३७६) इन पंक्तियों मे भी कुंजर के प्रति उसका मोह, प्रच्छन्नरूप से अवश्यमेव दिग्दर्शित हो जाता है। भक्तो को वह वरदानस्वरूप भस्म और फूल देती है परन्तु देवीसिंह को सफलता की कामना निमित्त इच्छित वरदान के काल वह केवल फूल देती है, भस्म नहीं जिसमें मानवीय हृदय का दौर्बल्य व्यंजित होता है। वह पूर्ण मानवीय है, सुख-दुख, आशा, घृणा आदि तत्वों मे आन्दोलित होती रहती है। गोमती जब उस एकांत-वासिनी नारी को सहेली रूप मे प्राप्त होती है, तो अपने हृदय की अतृप्त भावनाओं को भी स्पष्ट-अस्पष्ट अभिव्यक्त कर देती है। उनके अन्दर संवेगात्मक क्रियाशीलता है, सहानुभूति, नैराश्य, व्यग्रता सभी दोष-गुण वर्तमान है।

परन्तु, यह खटकनेवाली बात अवश्य है कि वह ऐसा कोई कार्य नही करती जिससे दिव्यता, अलौकिकता प्रकट हो। न उसमे तेज है, न मृगनयनी, लाखी, लक्ष्मी-बाई की तरह वीरता का अक्षय भंडार है, न सिद्धि की योजना है, फिर भी सभी उसे देवी का अवतार मान, प्राण देने के लिए कटिबद्ध रहते हैं। इस दृष्टि से, उस काल की प्रचलित घोरतम रूढ़िग्रस्तता, अवैज्ञानिक धार्मिकता का परिचय मिलता है। मानसिक दृष्टिकोण से वह पूर्णतया सामान्य पात्री है।

दरिद्र ठाकुर देवीसिंह बुन्देला युवक है, जो अपनी वीरता के कारण ही परिणय-संस्कार के अन्तिम मुहूर्त में भी, उसे विस्मरण कर, मुसलमानों की सेना से युद्ध-निमित्त सान्निध्य होता है और यथासम्भव नायकसिंह को सहायता पहुँचाता है। उसकी वीरता और दृढ़ता का ही परिणाम है कि लोचनसिंह के सिंहगढ़ आक्रमण-काल में वेष बदलकर (साधारण सैनिक वेष में) गढ़ की दीवार पर चढ़ जाता है।

वह आदर्श और निर्लोभी पुरुष है जो नायकसिंह के राज्य-सिंहासन-प्राप्ति के लिए षड्यन्त्र का विस्तृत जाल नहीं फैलाता।

वह सुधारवादी और उदार व्यक्ति है, इसीलिए नायकसिंह की छोटी रानी के विद्रोह करने के पश्चात कैद होने पर, कारा में शृंखलित न कर, बड़ी रानी के पास भेज देता है, यद्यपि इसमें उसकी राजनैतिक परिज्ञान और पटुता की कमी दृष्टिगत होती है।

वह चरित्रवान भी है, कभी विलासिता के मद में उन्मत्त-सा, उत्तेजक व्यवहार नहीं अपनाता। राज्य मिलने पर, यथासम्भव अपने सहयोगियों से मृदु व्यवहार कर उन्हें सन्तुष्ट रख, दलीपनगर की रक्षा करता है। उसे ऐश और विलास का अवकाश नहीं। तभी तो नरपति के कहने पर कि उसकी भावी पत्नी गोमती, जिससे पालर में भाँवर पड़ने वाला था, परन्तु युद्ध के कारण सम्पन्न न हो सका, वह उसे अपने महल में बुलाकर अपनी विलासिता तथा दुश्चरित्रता का परिचय नहीं देता वरन् स्पष्ट कहता है कि परीक्षण के पश्चात निर्णय दिया जा सकेगा, यद्यपि महल का आश्रय प्रदान करता है।

वह तत्कालीन सचरित कठोर धार्मिक भावना से प्रचालित होता रहता है और कुमुद (दुर्गा) की रक्षा आवश्यक अनुभव कर, विराटा की सहायता का वचन देता है। उसका चरित्र भी गतिशील और प्राणवान है जिसमें स्वाभाविकता और शौर्य का सौन्दर्य समाहित है।

अलीमर्दान काल्पी का शासक है जिसमें कामुकता और यौन भावना का वेग है, परन्तु वह कुशल राजनीतिज्ञ भी है, इसीलिए कुमुद का जबर्दस्ती अपहरण करना नहीं चाहता क्योंकि वह हिन्दू राजों से शत्रुता श्रेयस्कर नहीं समझता और आवश्यकतानुसार कुमुद की शक्ति के प्रति अविश्वास उत्पन्न कर, उसे प्राप्त कर लेना चाहता है। अन्त में क्षुब्ध हो, मात्र कुमुद के लिए, विराटा पर आक्रमण करता है परन्तु वह अपने इस मनोभाव का प्रचार नहीं करता, व्यक्त नहीं करता। कुमुद की मृत्यु के पश्चात् युद्ध को रोक देना, विजय की आकांक्षा का उद्दाम मन न शान्त करना, कुमुद के प्रति उसके अगाध आकर्षण का परिचायक है।

दलीपनगर की विद्रोहिनी रानी की सहायता में उसकी कुशल राजनीति ही प्रकट होती है और उपयुक्त समय पर अपने नेतृत्व का चातुर्य दिखाकर, विजय भी प्राप्त करता है।

ऐतिहासिक पुरुष नायकसिंह पूर्णतया असामान्य नृपति है जिनका कारण उनका मानसिक रोग है। सैक्स (sex) की रोगग्रस्तता के मूलभूत कारणों से शक्तिशाली है। देखिए, वे कितना पागलपन करते हैं, जिसके कारण राज्य में अराजकता,

अव्यवस्था का प्राधान्य हो जाता है।

लोचनसिंह बोला—"दो हाथ के लम्बे-चौड़े उस कुंड में डुबकी लगाकर कीचड़ उछालना होली के हुल्लड़ से कम थोड़े ही होगा।"

लोचनसिंह की बात पर राजा ने गरम होकर कहा—"तुम सबो को कल कोस-भर नदी खोदकर गहरी करनी पड़ेगी।"

सैयद आगा हैदर राजवैद्य मौका देखकर तुरन्त बोला—"महाराज की तबीयत कुछ दिनो से खराब है। धार्मिक काय थोड़े जल से भी पूरा किया जा सकता है। अगर मुनासिब समझा जाए, तो गहरे ठंडे पानी में देर तक डुबकी न ली जाए।"

लोचनसिंह तुरन्त बोला—"ऐसी हालत में मैं महाराज को पानी में अधिक समय तक रहने ही न दूगा। जितना पानी इस समय पहूज में है, वह बीमारी को सौगुना कर देने के लिए काफी है।"

राजा ने दृढ़तापूर्वक कहा—"यही तो देखना है लोचनसिंह, बीमारी बढ़ जाए तो हकीमजी के हुनर की परख हो जाए, और यह भी मालूम हो जाए कि तुम मुझे पानी में एक हजार डुबकी लगाने से कैसे रोक सकते हो।"[1] यह सब उसके मानसिक असतुलन का ही प्रमाण है। मानसिक रोग का ही उदाहरण है जो कुमुद को, जिसे हिन्दू जनता दुर्गा समझती है, वे अपने महल में ले जाना चाहते हैं, मात्र अपने विलास की भावना से।

राजा की मानसिक विक्षिप्तता और झक्कीपन की पृष्ठभूमि, (क) यौन आधिक्य, (ख) तथा पुत्रहीन होना सर्वाधिक ठोस कारण दीखता है। मनोवैज्ञानिक परिभाषा के अनुसार उसे मानसिक व्याधि (psychoses) है। उपर्युक्त उल्लखित दोनो शक्तिया मानव-जीवन मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं जिन पर मानसिक तनाव और विक्षेप निभर है, जिससे मानसिक व्याधि असाध्य हो उठती है। जार्ज इलियट के 'Silas Marner' मे Silas की मानसिक दशा तथा करुणा मे प्रेम और विश्वास का अभाव, अपनत्व का अभाव मूल है।

नरपति—कुमुद का पिता और लोभी पुरुष है, जो देवी पर उत्तम सामग्री अर्पण करता है, उनके प्रति उसकी विशेष सहानुभूति होती है (दिखावटी रूप मे), उसे अपने साथ रखना स्वीकार भी करता है, जिसका प्रमाण कुंजरसिंह और रामदयाल को निवास देना है। वह कुमुद को देवी ही विश्वास कर, भक्ति-भाव रखता है, तथा यदा-कदा 'मा' शब्द से भी सम्बोधित करता है।

रामदयाल—चतुर, धूर्त परन्तु स्वामिभक्त नौकर है। नायकसिंह की मृत्यु के पश्चात् रानी की गुप्त-मन्त्रणा म सम्मिलित रह, सवाद एकत्र करना आदि कठिनतम कार्यों को वही सम्पन्न करता है।

लोचनसिंह—वीर सिपाही मात्र है। वह भी झक्की स्वभाव का है। परन्तु राजा के सम्मुख सिर भी निस्संकोच न्योछावर कर सकता है। वह राजा का महत्त्व स्वीकार करता है, चाहे जो राजा हो, व्यक्ति विशेष का नहीं।

---

[1] विराटा की पद्मिनी, पृ० ७।

जनार्दन ब्राह्मण है और दलीपनगर में, षडयन्त्र द्वारा अपनी प्रभुता के लोभ से, देवीसिंह को नृपति उद्घोषित कर स्वयं मंत्री बन बैठता है। परन्तु वह दृढ़ संकल्प का व्यक्तित्व नहीं। लेखक ने ही स्पष्ट शब्दों में उसका परिचय देते हुए लिखा है—"जनार्दन का स्वभाव था कि जब तक बला टालते बने, टाली जाए, उसका मुकाबला केवल उस समय किया जाए जब टालने का अन्य कोई उपाय नजर न आए।"

सबदल सिंह विराटा गढ़ी का नृपति है तथा अवतारवाद पर विश्वास रखने-वाला कट्टर धार्मिक है। तभी तो अलीमर्दान की कुमुद की मांग अस्वीकार कर, कम-जोर राज्य का स्वामी होकर भी उससे युद्ध करने की तैयारी करता है और विराटा एवं विराटा की पद्मिनी की रक्षा करता हुआ मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

गोमती भी सामान्य नारी है जिसमें नारीसुलभ भोलापन और दुर्बलता है।

यह पूर्ण सत्य है कि आलोच्य कृति में पात्रों के चित्रण में गतिशीलता, सशक्तता और स्वाभाविकता पूर्णतया है। सभी कोई पात्र अपना सफल व्यक्तित्व निभाते है। सीट में अधूरे नहीं रह गए। वर्माजी स्वयं मनोविज्ञान (नरविज्ञान) के ज्ञाता हैं, और जीवन का विस्तृत अनुभव है। फलस्वरूप पात्र चित्रण में मनोवैज्ञानिक सत्य पूर्णतया मुखरित होता है।

मुसाहिब जू (ऐतिहासिक उपन्यास, १९४२-४४)

'लगन', 'प्रेम की भेंट' आदि की तरह वर्मा जी का यह अत्यन्त लघु उपन्यास है। इन दिनों युगानुरूप, आवश्यकता की महत्ता उद्घोषित कर, बहुत-सी छोटी-छोटी कृतियां साहित्य संसार में आ रही हैं जो अपनी लघुता में घनत्व और विस्तार को समाहित किए रहती हैं। 'लगन', 'प्रेम की भेंट', 'मुसाहिब जू' आदि उसी कोटि की कलाकृतियां स्वीकृति की जायगी।

आलोच्य उपन्यास रोचक, वीरगुण उत्तेजक, संवेदनशील ऐतिहासिक रचना है जिसमें इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय है। कथावस्तु मुख्यतः एक पात्र के जीवन चरित्र पर अवलम्बित है। M M Barnes ने लिखा है—"A novel need not necessarily have much of a plot, it can be a complete life of a person or persons" फिर भी हम इस प्रसंग पर आगे मन्तव्य प्रकट करेंगे।

केल्आ के जागीरदार उदारमना, राष्ट्रीय भावनायुक्त, उदारचेता थे जिनके पास बारह सौ योद्धा थे। वे अपने योद्धाओं से इतना प्रेम रखते थे कि बिना उन्हें खिलाए स्वयं नहीं खाते और फलस्वरूप योद्धाओं ने उन्हें अपने हृदय का सम्राट स्वीकार कर लिया था। इसी स्वाभाविक वृत्ति के कारण अर्थाभाव में उनकी उदार सहधर्मिणी रानी चरखारी वाली अपने सभी आभूषणों को गिरवी रखकर, अपने पति का धर्म तथा टेक निभाती है।

दतिया के राजा के यहां उत्सव होता है परन्तु चरखारी वाली अपनी स्थिति जानकर कि आभूषण एवं अलंकारप्रिय स्त्रियां[1] उसे सादे और आभूषणविहीन देख, उस

---

१ राहुल सांकृत्यायन ने 'गढ़वाली [illegible]' में इस प्रसंग पर [illegible] प्रकाश डाला है।

पर व्यग्य-वाण का सधान करेंगी, वह निमन्त्रित होकर भी उसमे सम्मिलित नही होती है। यह सत्य सैनिको को भी ज्ञात हो जाता है और वे मानसिक पीडा मे भर उठते हैं और कृतज्ञता के कारण डोम रामू, उसका पोता पूरन और कुछ योद्धा विना किसी को ज्ञात किए वहुत-सा जेवर, आभूषण लूट लाने की योजना वनाते हैं और सेठ-साहूकारो को लूट कर वहुत-सा धन, चरखारी वाली को अर्पित करते हैं, यह कहते हुए कि गडा हुआ धन प्राप्त हुआ है।

कुछ चादी के जेवरो को लल्ली, जो उस लूट मे सम्मिलित था, चुपचाप छिपाकर कुजी के यहा जाता है जहा वह पकडा जाता है क्योकि उन चादी के जेवरो मे कुजी की पुत्री सुभद्रा के जेवर भी थे। कुजी और अन्य लूटे गए साहूकार दतिया नरेश के पास दास्तान उपस्थित करते हैं। दतिया नरेश सच्ची परिस्थिति से अवगत हो, दलीप मुसाहिव जू (केरुआ के जागीरदार) से लूट करने वाले सैनिको को समर्पित करने की आज्ञा देते हैं। मुसाहिव जू को अपने निर्दोष, स्वामि भक्त सैनिको पर अटूट विश्वास था कि वे वुरी नियत से कभी चोरी या लूट नही कर सकते, मात्र गलत भावावेश मे ऐसा सम्भव है। मुसाहिव जू अपने प्रियजनो को देने मे अस्वीकार कर देते हैं। नृपति क्रुद्ध हो, अपने दीवान को मुसाहिव जू को कैद करने की आज्ञा देते हैं। मुसाहिव जू स्वय वीर योद्धा थे। मुकावला के निमित्त कटिवद्ध हो अपनी सेना को दृढतापूर्वक तैयार रखते है। दीवान परिस्थिति की भयानकता की कल्पना कर, चालाकी से कार्य करता है। वह मुसाहिब जू के सम्मुख अकेला उपस्थित होकर, अपनापन प्रदर्शित कर, दतिया का नमक खाने के कारण, राजा की सेना से न युद्ध करने का वचन ले लेता है और कहता है कि आप राज्य छोडकर अन्यत्र चले जाए क्योकि दतिया नरेश से युद्ध करने का परिणाम यह होगा कि यह राज्य निर्वल और शक्तिहीन हो जाएगा और यथावसर दूसरे राज्य इसे नष्ट कर डालने का प्रयत्न करेंगे, जो आप नही चाहेगे और मित्रता स्वरूप मुसाहिव जू से उनकी वन्दूक माग लेता है। मुसाहिव जू अपनी निश्छलता के कारण ऐसा ही करते हैं। मुसाहिव जू अपनी सेना, स्त्री, धन सभी के साथ, राज्य छोडकर अन्यत्र प्रस्थान करते हैं। तव साहूकार आदि यह सोचकर कि राजा मुसाहिव जू को वहुत मानते हैं, उन्ही लोगो के कारण निकाले जाने पर, भविष्य मे राजा उन्हे (साहूकारो को) ही सताए, भयाक्रान्त हो रास्ते मे आकर, मुसाहिव जू को मनाते हैं।

राजा किले से मुसाहिव जू को जाते देखते हैं। उनका क्रोध विलीन हो जाता है और उनके प्रति पूर्व प्रेम एव स्नेह उभर आता है। अतएव दीवान को मुसाहिव जू को पुन मनाकर लौटाने के लिए भेजते हैं। परन्तु, मुसाहिव जू आगे वढते जाते हैं। तव राजा ने दूसरी वार रामसिंह नामक व्यक्ति को, जिससे मुसाहिव जू की वहुत पटती थी, लौटाने के लिए भेजा। रामसिंह ने चतुराई से, मुसाहिव जू की राष्ट्रीय भावना जाग्रत करने के निमित्त झूठ वोलते हुए कहा कि अभी इस राज्य पर आक्रमण होने वाला है और यदि आप इस कठिन, विपद्कालीन स्थिति मे छोडकर चले जायेंगे तो दुनिया हसेगी और यही सोचेगी—"आपके सिपाही डाका डालने मे प्रवीण और आप

डरपोकों में सबसे आगे संसार भर कहेगा कि आपने ठीक समय पीठ दिखाई और आप कायर हैं।" मुसाहिबजू जैसे वीर पुरुष को यह बात गड़ जाती है और राज्य के रक्षार्थ रुकना आवश्यक मान ठहर जाते हैं और यह सोचते हैं कि युद्ध के पश्चात् यह राज्य अवश्य त्याग कर देंगे। एक बाग में, जो दतिया के बाहर था, युद्ध के निमित्त ठहर जाते हैं। अन्त में राजा स्वयं मुसाहिबजू के पास पहुंच कर उन्हें मनाकर लौटाते हैं और उपदेश देते हैं कि सैनिकों की व्यवस्था ठीक रखो जो आतंक न फैले। क्योंकि—

"जासु राज्य प्रिय प्रजा दुखारी,
सो नृप अवसि नरक अधिकारी।"

यद्यपि कथानक बहुत लघु है, परन्तु गतिवान, घूमता हुआ और सफल है। यदि इसे उपन्यास से अधिक 'बड़ी कहानी' Epic story कहें तो उचित है।[1] इसमें सभी घटनाएं, सभी क्रिया-कलाप एक वेग से पड़ते हैं, और सूत्र बद्ध रूप में। परन्तु जटिलता नहीं है। व्यर्थ की बातों एवं तथ्यों का बाहुल्य नहीं है, जैसा कि अपने को आज के बहुज्ञाता प्रदर्शित करने वाले उपन्यासकार करते हैं। *इलाचन्द्र जोशी कृत 'जहाज का पन्छी'* इसी दोषयुक्त कृति स्वीकार करना चाहिए। अज्ञेय में भी यह प्रवृत्ति व्याप्त है। इसलिए कथानक की दृष्टि से 'मुसाहिब जू' सफल है।

उक्त पुस्तक का नामकरण भी उचित हुआ है क्योंकि सम्पूर्ण कथानक का मुख्य आधार दलीपसिंह मुसाहिब जू ही हैं। 'सोना' की तरह भ्रामकता नहीं है। साथ ही यह भी स्मरणीय है कि वर्मा जी का यह पहला-पुरुष प्रधान उपन्यास है। 'विराटा की पद्मिनी,' 'मृगनयनी', 'झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई', आदि में जहां नारी ही प्रधान रही हैं, वहां आलोच्य कृति में मुसाहिब जू और उनके विश्वसनीय सैनिक मुख्य रहे हैं। एवं नामकरण की सार्थकता स्पष्ट है।

'मुसाहिब जू' में आदर्श की प्रतिष्ठा है। उनके प्राय सभी पात्र-पात्राएं आदर्श के आराधक-आराधिका हैं। वे कर्त्तव्य को, प्रेम को, राष्ट्रहित को प्रमुख स्वीकार करते हैं। मुसाहिब जू जहां अपने सैनिकों को नीची जाति के होने पर भी गले लगाते हैं, भरपूर प्यार देते हैं, अपनी स्त्री का आभूषण समाप्त कर देते हैं और जिन आश्रितों को राजा के हाथ सौंपना अस्वीकार कर राज्य से निष्कासित होना स्वीकार करते हैं, वहीं पूरन, रामू आदि मालिक की रक्षा के लिए प्राण तक देने को तत्पर रहते हैं। स्वामिनी की गिरी अवस्था ज्ञात कर लूट भी करते हैं, परन्तु निस्वार्थ भाव से (यद्यपि यह कर्म उनके अज्ञान का द्योतक है) उस धन में से एक पैसा नहीं रखते, न किसी स्त्री को सताते हैं। चरखारी वाली पैसे के अभाव में, पति के धर्म की रक्षा निमित्त अपना सम्पूर्ण आभूषण बिना हिचक और चिन्ता के समाप्त कर डालती है। इस प्रकार यथार्थमय वातावरण के साथ ही आदर्श का सुन्दर संयोग है (आदर्शोन्मुख यथार्थ का उदाहरण इसे भी स्वीकार किया जा सकता है। ओज का भी सुन्दर

---

[1] Epic story is 'a story comparable to those in epic poems'— Chamber's Dictionary

समावेश प्राप्त है। उदाहरणार्थ प्रथम अध्याय (मुसाहिव जू) को देख सकते हैं, जिसमे मुसाहिव जू के शिकार खेलने का रोचक चित्रण हैं। प्रसगवश यह कहना उचित न होगा कि लेखक के स्वय के शिकार का मार्मिक अनुभव ऐसे प्रसगो मे सन्निहित है।

उद्देश्य के रूप मे लेखक ने यह सिद्ध करना चाहा है कि जहाँ सत्य प्रेम की प्रतिष्ठा रहती है, निर्मल और पवित्र मनोभावापन्न अर्घ चढाया जाता है, जहाँ अपने सहयोगियो के बीच प्रेम की अविच्छिन्न धारा किल्लोल करती रहती है, आश्रितो की सुरक्षा-भावना सुदृढ रहती ह वहाँ सिद्धि और विजय है। 'मुसाहिव जू' इसी का उदाहरण प्रस्तुत करता है। नृपति को भी मुसाहिव की चारित्रिक सवलता और गुणो के सम्मुख झुकना पडता है। साथ ही सैनिक सयम तथा *'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरक अधिकारी'* पर भी विशेष महत्व है। यद्यपि इस मार्ग मे अनेक कटक हैं, विघ्न हैं, कष्ट एव पीडाए हैं, परन्तु अन्ततोगत्वा वही माग गरिमा मडित स्वीकृत होता है।

टिकैत (मधुकरशाह) मे मुशी अजमेरी ने भी धर्म परायणता, वीरता की सिद्धि का बडा आकर्षक चित्र खीचा है। कालिदास के 'रघुवशम' मे भी दिलीप के चरित्र मे आश्रितो के प्रति रक्षा की भावना और प्रेम अद्भुत है। वर्मा जी के अन्य उपन्यासो मे भी इसी कर्त्तव्य की जीत प्रतिष्ठित है।

वातावरण की दृष्टि से विशेष महत्व आलोच्य कृति को नही दिया जा सकता क्योकि बहुत थोडे से शब्दो मे लेखक ने तत्कालीन राजनैतिक स्थिति की चर्चा कर दी है, परन्तु मूलरूप से मुसाहिव जू की जीवनी पर प्रकाश डाला गया है।

वार्तालाप और कथोपकथन की दृष्टि से कह सकते हैं कि नवीनता, रोचकता, प्रवाहपूर्णता, जिज्ञासा, मनोवैज्ञानिकता का सफल निर्वाह है। उदाहरणार्थ पृष्ठ ११६, ११७ आदि देखे।

भाषा शैली की दृष्टि से इसमे नवीनता नही है। एक सी सरल, सहज, प्रवाहयुक्त भाषा प्रयुक्त है। यत्र-तत्र वुन्देली शब्द और मुहावरे भी मिलते हैं, जैसा उनकी अन्य कृतियो मे भी दृष्टव्य है।

'मुसाहिव जू' मे दलीपसिंह मुसाहिब जू, चरखारी वाली (मुसाहिब जू की पत्नी), पूरन, राजा, रामू आदि प्रमुख व्यक्ति हैं जिनका सफल निर्वाह इस छोटी-सी कृति मे दृष्टिगत है।

दलीपसिंह आलोच्य कृति के नायक हैं। जिनके आधार पर पुस्तक का सार्थक नामकरण भी हुआ है जो पूर्णत ऐतिहासिक पुरुष हैं। 'दलीपसिंह उदार थे, शिथिल थे, हठी थे सहज विश्वासी और सहसा प्रवर्ती।'[1]

उसके साहस का उदाहरण तेंदुए के शिकार तथा राजा के क्रोधित होने पर भी स्वामिभक्त, प्रिय सैनिको को समर्पण से इन्कार करते समय देखते हैं। वे अपने प्राणो की वाजी लगाकर, अपने आश्रितो की रक्षा मे कटिवद्ध रहते हैं। 'टिकैत' मे मधुकर

---

१ मुसाहिव जू, पृ० ८।

शाह अपनी आन पर तिलक लगा, बादशाह की उपेक्षा कर अपनी वीरता का ज्वलन्त प्रमाण देते हैं। वह स्पष्ट कहते हैं—

धर्म मुझे प्राणों से पचासों गुणा प्यारा है,
धर्म ही तो लोक-परलोक का सहारा है,
धर्म दिव्य दीपक है मोक्ष की भी राह का,
धर्म से नहीं है बड़ा हुक्म बादशाही का,
जीते जी कदापि धर्म से न मुंह मोड़ूंगा,
डर से किसी के कभी धर्म को न छोड़ूंगा।

उसी प्रकार मुसाहिब जू भी अपनी दृढ़ता का प्रमाण बड़े आकर्षक ढंग से देते हैं।

सोना में सुगन्ध की तरह उनमें उदारता और सहिष्णुता भी है। "छुआछूत के दम्भ को वह न मानते थे।" इसीलिए उनके सैनिकों तथा अनुयायियों में छुआछूत का भेद-भाव नहीं था। इसी का परिणाम है कि पूरन आदि मेहतरों को भी गले लगाने में वह नहीं हिचकते। पूरन के गले लगाने में एक दूसरा मनोवैज्ञानिक कारण भी हो सकता है, वह यह कि उसने उनके प्राणों की रक्षा तेंदुए से की थी। इसी कृतज्ञता के आवेश में उन्होंने किया हो। लेकिन यही उनके प्यार और उदारता की सीमा नहीं है। "मुसाहिब जू का नियम था कि जब कभी जितने सैनिक उनके घर पर आ जाते, वह उनको भोजन कराते।"

उनकी उदारता का ही सफल प्रमाण है कि जब वह थके-प्यासे घर लौटते तो पहले सबसे अधिक आवश्यक अनुभव कर सर्वप्रथम पूरन को पानी पिलवाते हैं और जब धोखे से उन्हें शर्बत और अन्य लोगों को पानी पिलाया जाता है और इस रहस्य का उन्हें पता लगता है तो क्रुद्ध हो पत्नी से पूछते हैं—"किसी को शर्बत, किसी को पानी! यह क्या?" और वह स्पष्ट कहते हैं—"यह बहुत बुरा हुआ। जो कुछ हो, सबके लिए एक-सा होना चाहिए। मेरा जीवन मेरे सैनिकों से ही सार्थक है। मेरे लिए धिक्कार है, यदि मैं पेट भर खाऊं और मेरे आदमी भूखे या अधपेट रहें।"[1]

उनकी आदर्शवादी व्यवस्था का भी प्रमाण है कि सभी सैनिक और शिकारी-दल उनसे संकोच करते हैं और गलत कार्य में हाथ नहीं डालते। एतदर्थ रामू, पूरन आदि जो लूट करते हैं, उनसे इस कार्य के लिए डरे तथा सशंकित रहते हैं।

मुसाहिब जू बड़े शिष्टाचारी पुरुष हैं तभी तो भूके, जो नीची जाति का होने पर भी वय में उनसे बड़ा है, के सम्मुख हुक्का भी नहीं पीते। इससे बढ़कर महानता का दूसरा क्या उदाहरण दिया जा सकता है।

इस प्रकार सभी दृष्टियों से वह महान् व्यक्तित्व रखते हैं। उनकी चारित्रिक महत्ता के कारण ही उनको सभी बड़े आदर और प्रेम से देखते हैं। उनकी आज्ञा पर प्राणों को न्योछावर करने को प्रस्तुत रहते हैं। तदर्थ हम उन्हें सामान्य कोटि का वर्गगत पात्र नहीं मान सकते। चरित्र में अनेक विशिष्टताएं हैं। उनका चरित्र-चित्रण लेखक ने मनोवैज्ञानिक, स्वाभाविक और सफल ढंग से किया है।

---

१. मुसाहिब जू, पृ० १६।

रामू और पूरन स्वाभाविक भक्त, कृतज्ञ एव साहसी व्यक्ति है जो मुसाहिब जू की आज्ञा पर प्राण देने को तत्पर रहते हैं, शिकार खेलते हैं, स्वामी की अवस्था पर चिन्तित हो प्रच्छन्न रूप से डकैती करते है, मात्र स्वामिनी (चरखारी वाली) के जेवरो के निमित्ति। और जब उस अपराध मे दण्ड मिलने की सम्भावना होती है तो स्पष्ट बोलते हैं—"जायदाद तो हम लोगो की हमारे मालिक हैं, सो उसका कोई डर नही। देश निकाला हम ओढ नही सकते, क्योकि दतिया के बाहर हमारा कोई सहारा नही। इसलिए पहले दण्ड (सूली) के लिए हम सब तैयार हो जावे।"[1]

उपर्युक्त पक्तियो मे ही उन लोगो की भावना का स्पष्ट परिचय प्राप्त हो जाता है।

चरखारी वाली मुसाहिब जू की पति-भक्त पत्नी है जो उनके समाधान मे सतत्, एव सर्वप्रकारेण सहयोग देती रहती है। वह राजा की बेटी थी। वह भी उतनी ही उदार थी। अटक पडने पर अनेक बार उन्होने मुसाहिब जू को अपने बहुमूल्य आभूषण दे दिये थे।[2] और इसी प्रयत्न मे योगदान देती हुई, अन्त मे वह पति के धर्म की रक्षा निमित्त अपने सम्पूर्ण जेवरो को गिरवी रख देती है।

उनकी महानता एक स्थल पर देखिए जब पूरन के अद्भुत कार्य मे (शिकार समय मुसाहिब जू की जान बच गई) प्रसन्न होती है तो स्पष्ट कहती हैं—"ये पहुँचिया उसको लेकर कुजी के यहा भेज दो। पाच सौ रुपये उसी समय ले आवे। रुपये आते ही तुरन्त भण्डार की कमी पूरी करो और भोजन तैयार करो। मुसाहिब जू और उनके सैनिक थके मादे हैं। पूरन को हलुआ और खीर दो। आज सभी को हलुआ और खीर दो। भूलना मत। मैं पूरन को कुछ पारितोषिक भी देना चाहती हूँ।"[3]

इस प्रकार यह पत्नी उसी प्रकार उच्च है जिस प्रकार बुद्ध की यशोधरा, लक्ष्मण की उर्मिला। वह सहिष्णुता-सुहृदयता, उदारता की प्रतिमूर्ति है। निश्चय ही चरखारी का चित्रण भी स्वाभाविक और सफल हुआ है। राजा के यहा आभूषण के अभाव मे स्त्रियो द्वारा छोडे गए व्यग से बचने के लिए वहा न जाना उसकी बुद्धिमत्ता और नारीगत प्रवृत्ति एव उक्त स्थान की प्रचलित भावना पर भी प्रकाश पड जाता है।

'मृगनयनी'

'मृगनयनी' मे १५वी शताब्दी के अन्त के ग्वालियर-राज्य के मानसिंह तोमर की साहसी कथावस्तु है, जिसमे मृगनयनी, लाखी का ओज, वीर नारियो का अद्भुत पराक्रम एव सदाचारपूर्ण व्यक्तित्व व्यापकता मे है। जहाँ नारियाँ सौन्दर्य की कसौटी पर राजरानी बनने की अधिकारिणी होती थी, वहा मृगनयनी सौन्दर्य के साथ ही अनेक गुणो के

---

१ मुसाहिब जू, पृ० ६०।
२ वही, पृ० १०।
३ वही, पृ० ११।

कारण तोमर की पत्नी बनती है और आजन्म नृपति के भोग-लिप्सा के विपरीत कर्तव्य-पथ पर दृढ रहने का आग्रह किये रहती है । राजमहल की अन्य राजरानियो के व्यङ्ग-प्रहार से प्रताडित होकर भी, वह एकसूत्रता स्थापित किये रहती है, द्वेषवश घर को विनष्ट करना उसे स्वीकार नही । लाखी भी आजन्म युद्ध और लक्ष्यवेध मे पाठको को मुग्ध किये रहती है । निश्चय मृगनयनी और लाखी दोनो वीर पुरुष की वीर पत्नी हैं । 'मृगनयनी' की कथावस्तु सश्लिष्ट, विस्तृत, साथ ही रोचकता, जिज्ञासा से परिपूर्ण है । घटनाए इस प्रकार मोड लेती चलती हैं कि अपूर्व सौन्दर्य की अभिवृद्धि स्वभावत होती है, इसलिये यह आलोच्य कृति अनेक सस्थाओ द्वारा पुरस्कृत हो चुकी है ।

'मृगनयनी' ग्वालियर के पश्चिम, दक्षिण, मे लगभग छ कोस दूरी पर राई नामक ग्राम की अद्वितीय एव सौन्दर्यपूर्ण रमणी थी । ग्वालियर के आस-पास शत्रुओ द्वारा निरन्तर आक्रमण होते रहते थे । सिकन्दर ने पाँच बार ग्वालियर को पदाक्रान्त करना चाहा परन्तु वह कुशल शासक, चतुर राजनीतिज्ञ, उमगशील योद्धा मानसिह तोमर द्वारा पराजित होता रहा । मृगनयनी के रूप की चर्चा सुन राजा मानसिंह तोमर आखेट के बहाने राई पहुचते हैं और मृगनयनी के लक्ष्य-वेध से प्रभावित हो, आसक्त हो विवाह सम्बन्ध स्थापित कर उसे ग्वालियर ले जाते हैं ।

निन्नी (मृगनयनी) का भाई अटल लाखी प्रेम से रखता है जो उसी ग्राम की मृगनयनी की सहेली है, जो लक्ष्य-वेध मे मृगनयनी के सदृश ही निपुण है । अटल, गूजर, और लाखी के अहीर होने के फलस्वरूप जाति की समस्या उठ खडी होती है और रूढि-ग्रस्त समाज दोनो के विवाह सम्बन्ध का होने देना नही चाहता । इसी बीच लाखी की माता की मृत्यु हो जाती है और वह मृगनयनी के साथ ही रहने लगती है । मृगनयनी की रूप-प्रशसा से आकर्षित हो माँडू के शासक गयासुद्दीन नटो के एक दल को प्रलोभन देकर निन्नी और लाखी को ले आने की योजना बनाते हैं । (यह योजना मानसिंह और निन्नी के विवाह सम्बध के पूर्व की है) नट राई के निकट पडाव डालकर वस्त्राभूषण आदि के प्रलोभनो द्वारा युवतियो पर जाल-डालने का सतत प्रयत्न करते हैं । नट अपने सहायतार्थ माँडू मे चार सैनिको को बुलाते है जिन्हें निन्नी और लाखी मार भगाती है । भावी आशका से उद्वेलित ग्राम का पुजारी बोधन मानसिह के सम्मुख बचाव की प्रार्थना लेकर उपस्थित होता है ।

गयासुद्दीन अपने कुचक्र की असफलता तथा अपने सैनिको की मृत्यु-सवाद से अवगत हो राई पर आक्रमण की योजना बनाता है, जिसमे उसे पराजय होती है ।

अटल लाखी के साथ समाज की रूढिवादिता तथा जाति के अत्याचार से भयभीत होकर सहर्ष-प्रेरित नटो के साथ मगरोनी भाग जाता है । पिल्ली नामक एक नटिनी अटल पर आसक्त हो जाती है । गयासुद्दीन के नरवर पर आक्रमण से फल-स्वरूप सभी लोग नटो के साथ आश्रय निमित्त किले मे भागते है । गयासुद्दीन के आक्रमण पर मानसिह रक्षा के लिये वहाँ सेना-सहित आ उपस्थित होता है । नट लाखी को ले भागने के लिये प्रयत्न करते है, परन्तु लाखी अपनी बुद्धिमत्ता से कगूरे मे बधी रस्सी काटकर पिल्ली को उसकी कुटिलता की सजा देकर अपनी रक्षा करती है । गयासुद्दीन का प्रयत्न असफल होता है और लाखी तथा अटल से राजा मानसिह तोमर

की भेंट होती है जिससे उसे अत्यन्त प्रसन्नता होती है। लाखी और अटल का शास्त्रोचित प्ररिणय-सस्कार कर दिया जाता है। महभोज के ममय वडी रानी (मानसिंह की आठ रानियाँ मृगनयनी की शादी के पूव थी) द्वेषवश मृगनयनी को विष खिलाना चाहती है परन्तु उसका यह षड्यत्र असफल होता है। अटल और लाखी को राई की गढी दे-दी जाती है। सिकन्दर लोदी क्रुद्ध हो ग्वालियर पर आक्रमण करने के निमित्त सर्वप्रथम राई पर चढाई करता है। उसी आक्रमण मे जब एक रात को कुछ आक्रमणकारी चुपचाप दीवार पर चढकर गढ मे प्रवेश करना चाहते है लाखी उन्हें देख लेती है और उन्हें लक्ष्य वेध द्वारा पीछे हटा देती है परन्तु इसी युद्ध मे उसका प्राणान्त हो जाता है। अटल भी युद्ध करते-करते समाप्त हो जाता है। मानसिंह के आजाने से सिकन्दर प्रत्याक्रमण करता है परन्तु उन दो रत्नो को खोकर मानसिंह वहुत दुखी होता है। सिकन्दर पुन नरवर और ग्वालियर पर आक्रमण करता है, अनेक मूर्तियो को खडित करता है। नरवर पर विजय स्थापित करता है और पूरी तैयारी के साथ ग्वालियर पर आक्रमण के हेतु वह दिल्ली लौट जाता है, जहाँ उसकी मृत्यु हो जाती है।

मानसिंह मृगनयनी द्वारा प्रेरित होकर ललित कला और वीरत्व का आदर सर्वदा करते रहते है। जिससे उनके राज्य मे सुख और शाति वनी रहती है तथा मृगनयनी और तोमर अपने जीवन मे नैतिकतापूर्ण आचरण को अपनाकर आदर्श का प्रतिष्ठापन करते हैं।

स्थानीय रग (local colour) की दृष्टि से भी 'मृगनयनी' का महत्व है। बुन्देली ग्राम मे युवतियो का होली खेलना, उत्सव करना आदि को इस दृष्टि से उपस्थित किया जा सकता है।

आलोच्य कृति मे कथानक इतना भव्य, आकर्षक, रोचक है कि विना आद्योपात पढे जी नही मानता।

निन्नी, लाखी आदि के भयानक आखेट शिकार-वर्णन[1] तथा वघेरा की चारित्रिक विशेषताए, वुन्देलो का सामाजिक व्यवहार, नटो की लोभी तथा प्रपची दुष्ट वृत्ति, वैजू गायक का निश्छल हृदय, गयासुद्दीन की विलासप्रियता और पतन सभी वडे ही स्वाभाविक एव सुन्दर रूप मे अभिव्यक्त है।

'मृगनयनी' मे यद्यपि नायिका मृगनयनी को ही स्वीकार कर उसी के नाम पर उपन्यास का नामकरण हुआ है, परन्तु लाखी का चरित्रिक गठन इतना सशक्त है कि जिससे यदाकदा वह मृगनयनी से प्रवल दीख पडने लगती है।

'झासी की रानी-लक्ष्मीवाई', 'गढकुडार', 'माधव जी सिन्धिया' आदि की तरह इसमे भी वहुत पात्र हैं, जिनका उचित ध्यान, लेखक को सदा वना रहा है।

---

१ वर्मा जी स्वय आखेट एव शिकार में अदभुत आनन्द अनुभव करते है। उन्होंने 'दबेपाव' पुस्तक की सृष्टि अपने अनुभवों के आधार पर की है जिसमें सभी शिकार की कहानिया है। 'मृगनयनी' पृ० ५१,५२,५३ आदि को देख सकते हैं जिसमें आखेट का रोमाचकारी तथा मनोमुग्धकारी वर्णन है।

ये सभी एक लक्ष्य की ओर प्रवृत्त करने मे सहायक सिद्ध हुए है।[1]

राजनैतिक वातावरण, तथा कथोपकथन भी आलोच्य कृति की उत्कृष्टता मे सहायक सिद्ध है। मृगनयनी द्वारा नारी-गौरव की सुरक्षा, पारिवारिक संघर्ष की परिसमाप्ति का स्वाभाविक चातुर्य, नारी-जीवन का मूल कर्त्तव्य आदि विषय बडे ही प्रभावपूर्ण ढंग से चित्रित है। महादेवी वर्मा ने इसी सत्य की समुचित-प्रतिष्ठा करते हुए साफ शब्दो मे लिखा है—"वास्तव मे स्त्री भी अब केवल रमणी-भार्या नही वरन् घर के हर समाज के विशेष अंग तथा महत्वपूर्ण नागरिक है, अत उनका कर्त्तव्य भी अनेकाकार हो गया है।"

आलोच्य कृति के माध्यम से वर्मा जी ने (i) लौकिक आदर्श राज्य की स्थापना। (ii) धार्मिक सहिष्णुता द्वारा एकता (iii) राष्ट्रीय कर्त्तव्य को धर्म से अधिक महत्वजनीन स्वीकृति, (iv) अन्तर्जातीय विवाह की आवश्यकता, (v) श्रम की महत्ता, (vi) ललित कलाओ का समुचित विकास और प्रसार, (vii) रूढिवादिता एव जातपात की सकीर्णता का विरोध (अटल और लाखी के माध्यम से), (viii) नारी शक्ति को प्रेरणा रूप मे ग्रहण की वाछा, (ix) फैशन की अनावश्यकता, (x) कला और श्रम एव कर्त्तव्य के समन्वय की भावना, (xi) सच्चे और शुद्ध-प्रेम की स्थापना और महत्ता, (xii) धर्म-वितडा और वाक्युद्ध के विपरीत, जीवन को समृद्ध बनाने के लिए संघर्ष की आवश्यकता, (xiii) जीवन मे सयमशीलता की अनुभूति का महत्व आदि तत्वो पर विशेष ध्यान केन्द्रित रखा है और तोमर का चारित्रिक गठन और मृगनयनी की वैयक्तिक विशिष्टताए प्रधान रूप मे इसी दिशा मे प्रयत्न-वान है। चरित्र की महत्ता लेखक के सम्मुख सर्वदा है, जो नामकरण मे भी समझा जा सकता है।

बघर्रा का उपन्यास की कथावस्तु से महत्वपूर्ण सम्बन्ध प्रत्यक्षत नही मालूम पडता और इस आधार पर कुछ आलोचको ने वर्मा जी पर दोषारोपण भी किया है। परन्तु, ध्यान से देखने पर बघर्रा कथावस्तु की प्रगति और शृखला मे अप्रत्यक्ष रूप से महत्व रखता दीख पडेगा। राजनैतिक क्षेत्र मे किस प्रकार एक भय उनके कारण अन्य राज्यो मे पड रहा था, इसका भी प्रकाश उसके निर्वाह से होता है। इन आधारो पर बघरी को पूर्णतया अनावश्यक सिद्ध नही किया जा सकता, ऐसी मेरी धारणा है। यह कार्य कोई आवश्यक नही कि उनकी उपयोगिता ग्वालियर आने से ही सिद्ध होती। एक सूत्र निश्चित रूप से बना हुआ है, उसे कोई भी अस्वीकार नही कर सकता।

आलोच्य कृति मे मानसिंह द्वारा प्रजावत्सलता का प्रभावपूर्ण निष्कर्ष उपस्थित

---

१ (i) गयासुद्दीन और नसीर (गयास के पुत्र) की भिन्न-भिन्न कामुकता (ii) लाखी और अटल की प्रेम गाथा, (iii) गुजरात के शासक बघर्रा के जीवन की क्षमता और रक्तपान की प्रवृत्ति, (iv) नटों का निश्चय और उनका प्रयत्न, (v) राजनीति और कला का पक्ष (vi) बैजू का भक्त-जीवन (vii) बोधन और विजय का व्यवहार और धन सम्बन्धी यद्यपि असम्बद्ध घटनाएं और प्रसंग हैं, परन्तु वे मूल के साथ गुम्फित हैं, वे पात्रों और चरित्रों के प्रकाश में सहायक हुए हैं। साथ ही इन सबका एक नियत दर्शन करने के लिए उपन्यास में अपरिहार्य रूप से स्थान पा सकते हैं।

है जो वेश-परिवर्तन कर जनता की स्थिति के निरीक्षण मे व्यजित है और जिस आधारभूत प्रकरणो से हर्षोद्वेलित एक किसान मजूर बोलता है—"सुना था कि महाराज ब्राह्मणो, पडितो और सेठो के ही हैं। आज जाना कि मजूरो और किसानो के भी हैं।" राजा उनकी स्थिति मे सुधार करना, उनके लिए औषधालय, घर बनाने की व्यवस्था करना परम कर्त्तव्य स्वीकार करते हैं।

आज का युग क्रान्तिकालीन विचारो का युग है, जनतत्र-भावना का युग है। इसकी पृष्ठभूमि मे आधुनिक भारत स्वातन्त्र्य-सग्राम तथा विचार-प्रवृत्त को अपेक्षित महत्व दिया जायेगा। राजा जनता का सेवक माना जाता है, और इसी भावना की अभिव्यक्ति मानसिंह के चरित्र द्वारा प्रस्तुत की है। राजा राधिकारमण कृत 'दरिद्र नारायण' मे भी यही भावना है।

२०वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे कलाकारो और सगीतज्ञो की बडी दयनीय अवस्था थी। उनकी साधना के उचित मूल्याकन विपरीत उन्हे भूखो रहना पडता था। वर्मा जीने इसी अनासक्तता और अनर्थ का विरोध कर उनकी प्रतिष्ठा और सम्मान नृप तोमर द्वारा बैजू गायक के माध्यम से किया है। मानसिंह गायक को साधना का पूर्ण सुयोग देते जिसके द्वारा वे नवीन रागो के निर्माण मे सफल होकर गौरव बढाते। बैजू द्वारा गूजरी, रोडी आदि निर्माण इसी सत्य के प्रमाण हैं। इसी चित्रण मे वर्मा जी के सगीत कला ज्ञान का भी परिचय मिल जाता है।[1]

राष्ट्रीय-कर्त्तव्य तथा देश-प्रेम की उद्देश्यमूलक प्रवृत्ति के साथ ही कुछ विचारणीय प्रश्न हैं। जिस आदर्श भूमि पर वर्मा जी ने सामन्तीय राज्य की कल्पना की है वैसे सामन्तीय राज्य का कभी भी स्थापित होना महावीर अधिकारी के मतानुसार, असम्भव है।

"वर्मा जी ने तात्कालीन जन-जीवन के अन्तर मे प्रवेश करने का प्रयत्न नही किया। उनका ध्यान अत तक मानसिंह तोमर और मृगनयनी पर केन्द्रित रहा है। इसीलिए राजमहलो और महारानियो की पोपाको मे ही उनकी पलकें उलझी रही हैं। लाखी और अटल के विवाह के बाद के जीवन मे जन-जीवन की केवल आंगिक झलक है। वह तत्कालीन समाज की किसी भी परम्परा को पेश नही करते। युद्ध और लूटमार से उत्पन्न जनता की विपन्न स्थिति का भी वह सहानुभूति के साथ जिक्र नही करते। पडितो और मुल्लाओ के अत्याचारो के विरोध म जो विद्रोही जनवादी परम्परायें कबीर रैदास और दादू ने स्थापित की थी उनका भी वह कही जिक्र नही करते। जबकि उससे पुराने लिंगायत सम्प्रदाय को वह भूले नही हैं। जातिगत वैमनस्य और कर्म काण्ड के भयानक रूप का चित्रण भी कही नही है। हाँ, केवल आचार्य विजय और बोधन पद्दित मे तू-तू मैं-मैं जरूर होती है।" परन्तु उपर्युक्त कथन भ्रमक है। कलाकार थोडा स्वप्न भी देखता है। इसलिए सम्भवत उसका स्वप्नशील मन वहा भी कुछ रग बिखेर दे। इस दृष्टि से सभी कलाकृतियो पर आक्षेप किया जा सकता है, जो अनुचित है। साथ ही मुख्य कथावस्तु उच्चस्तरीय लोगो की है तो जन-जीवन का

---

१ वर्मा जो स्वय सगीतज्ञ हैं। वह सितार बजाने में बहुत ही प्रवीण हैं।

ही विशद वर्णन कैसे सम्भव है। फिर भी ग्रामीण मनोदशा, जाति-बन्धन, पर्व होली तथा पूजा आदि (Functions) निश्चितरूपेण स्वाभाविक ढग मे हुआ है और जो काफी सफल और यथार्थ है।

गयासुद्दीन द्वारा भेजे गए नटो का लाखी को अपनी ओर आकृष्ट करना और रस्सो पर चढकर कसरत आदि का वर्णन त्रिभुवन सिह को अधिक उपादेय नही मालूम पडा। परन्तु, ज्ञात होना चाहिए, उन्ही चारित्रिक सगठन और विरोचित कार्य करते उनका हृदय इतना ठोस तथा दृढ हो गया कि भयानक युद्ध मे भी कभी मुह नही मोडती, सतत् सघर्ष करती रहती है। वह तो विकास की सीढी मात्र है और जिसने उसकी उपयोगिता सिद्ध है। जरूरी नही कि लेखक बाद मे रस्से पर चढाकर कुछ कौशल प्रदर्शन करावे ही—यह कोई तर्क नही है।

भाषा-शैली की दृष्टि से यह ज्ञातव्य है कि ऐतिहासिक लेखको मे वर्मा जी और राहुल की भाषा अधिक सरल है। वर्मा जी मे भाषा की एकरूपता सर्वत्र है। उदाहरणार्थ हम उनकी किसी भी कृति का कोई भी स्थल देख सकते है। अलकारिक भाषा-प्रयोक्ता वर्मा जी नही। कभी-कभी अलकार के प्रधान होने से अर्थगाम्भीर्य तो दूर, भाव भी पल्लवित नही हो पाता। वर्मा जी मे जो अलकार दृष्टिगत होते है, लगता है जैसे वे स्वभाविक रूप मे आगए हैं, चेष्टापूर्वक नही जिससे कथोपकथन आदि प्रवाह-पूर्णता के साथ चमत्कार से युक्त हो गए हैं। नीचे कुछ अलकारो को प्रस्तुत करेंगे जिनमे नवीनता तथा सार्थकता पर्याप्त मात्रा मे हैं, बबरी बोला "जैसे किसी नाले ने प्रवाह के जोर से बाव को फाड डाला हो। एक लम्बी डकार ली, जैसे बरसात मे कोई कच्चा मकान गिरा हो।" इनमे शब्द-ध्वनि विशेष ध्यान देने योग्य है जिससे वर्मा जी की पटुता स्पष्ट होती है।

'मृगनयनी' मे यथावसर मुसलमान पात्रो के मुख से सरल एव प्रचलित उर्दू के शब्दो का प्रयोग भी कराया गया है, जैसे खुमार, अमल, वहिश्त, जलजले, ताज़ी, जगन आदि।

यत्रतत्र बुन्देली शब्दो का भी प्रयोग है जैसे पतोखी, एरच, गुदनोटा, छवा, हुमकना, आर्से, झरूटा, भटूने, लोरना, झीम, गाह, भ्यात, साहना, उसार, कोलना, नकेलना, हुरकनी, कोचना, रानना, छेवला, जड्ड, रिल गया, विरविराना, खगोरिया भावना, समोना, छपका, उमभूना आदि।

प्रो० हरस्वरूप माथुर ने कथोपकथन के सम्बन्ध मे ठीक ही कहा है—"इन उपन्यास मे समन्वित-पद्धति पर लिखे गए अनेक कथोपकथन है। इनमे कला का जैसा सयमित और निखरा रूप दीख पडता है, वैसा बहुत कम उपन्यासकारो की कृतियो मे दृष्टिगत होता है।" स्वाभाविकता, रोचकता यथार्थता सभी गुण है।

प्राय ऐतिहासिक उपन्यासो मे रोमास अनिवार्यत दृष्टिगत होता है। वर्मा जी के अन्य ऐतिहासिक उपन्यासो मे भी यह तत्त्व प्रधान है, जैसे विराटा की पद्मिनी', 'गढ कुडार' आदि। 'मृगनयनी' मे लाखी और अटल, निन्नी और तोमर का रोमास कथानक है। 'अहिल्याबाई' मे मल्हार राव तथा आनदी और सिन्दूरी के स्थानक मे 'झासी की रानी लक्ष्मी बाई' मे अन्य सरदारो के बीच उस तत्व को देखा जा सकता है। राहुल,

यशपाल, रागेयराघव, हजारीप्रसाद द्विवेदी, भगवतीचरण वर्मा, राखालदास, के० एम० मुशी सभी की तियो मे रोमास का महत्व अक्षुण्ण है। परन्तु यह उक्ति कि 'प्रेम जीवन के कर्तव्यो से विमुख करता है' वर्मा जी पर पूरी तरह चरितार्थ नही, क्योंकि उनकी कृतियो मे रोमास और कर्तव्यनिष्ठा का सतुलन है, देश-प्रेम की आस्था तथा तेजस्वी नारीत्व मुख्य है।

सम्पूर्ण उपन्यास मे वीर रस प्रधान है, कुछ स्थलो पर शृङ्गार रस भी है। मानसिंह और मृगनयनी तथा लाखी और अटल के प्रेम-सम्बन्ध मे शृङ्गार है, परन्तु आद्योपान्त कर्तव्य और देश निमित्त युद्ध-व्यापार इतना प्रबल और महत्वपूर्ण है कि जिससे वीर रस प्रधान हो उठा है। मृगनयनी, लाखी के शिकार और आखेट मे भी यह प्रधान रूप से उपस्थित हुआ है।

प्रकृति-चित्रण वर्मा जी के साहित्य मे चार चाँद से लगाते है। उनकी प्रत्येक कृतिय के साथ यह सत्य है। वह जो चित्र खीचते है वह अपने सम्मुख फैले हुए स्वाभाविक रूप मे दीखने लगते हैं। निश्चय ही प्रकृति-चित्रण मे उनकी अद्भुत प्रतिभा दीखती है। उदाहरणार्थ देखें—

"नदी के किनारे, गाव के पास, पहाडियो जगल के बीच-बीच मे कुछ खेतो मे गेहू और चने के पौधे लहलहा उठें। खेत पकने को आ रहे थे, मस्ती के साथ झूमने लगे थे।

साक नदी मे पानी था, प्रवाह था। अधपके धान को स्पन्दन देता हुआ पवन नदी के प्रवाह को भी पुछकार-पुछकार लेता था।" (पृ० २)

"दो पहर रात गए आस पास के खेतो की हा-हा-हू-हू कम हो गई और दूर के खेतो की बहुत क्षीण। चाँदनी छिटक आई कि दूर का भी स्पष्ट दिखलाई पडने लगा। खेत से थोडी ही दूर नदी बह रही थी। उसके एक सिरे-का पानी बहता हुआ दिखलाई पड रहा था। चन्द्रमा की रिपटती हुई झिल-मिल जान पडती थी, मानो चाँदी की चादरो के आवरो पर आवरे चिलचिला रहे हो। छोटी-छोटी सी आडी-सीधी लहरें उठ-उठ कर इन आवरो को पहन-पहन लेती थी। सम्पूर्ण लहरो का समूह चाँदी की उन चादरो को ओढ लेने की होड सी लगा रहा था। पवन के आने-जाने वाले झकझोरे इन आवरो को और भी चचल कर रहे थे। लहरो की कल-कल झोको पर नाचती-खेलती हुई बेल खेत के पौधो की झूम पर उतर-उतर पड रही थी। चन्द्रिका खेत के हरे पौधो की अधपकी बालो को अपनी कोमल उगलियो से खिला सा रही थी। हरी पत्तियो पर जमे हुए ओस-कण चमक-चमक कर बिखर जाते थे।" (पृ० १४,१५)

आलोच्य कृति मे हास्य का भी सुन्दर, सयोग है। भूकम्प के समय नसीरुद्दीन, बघरी, आदि का वर्णन और ग्रामीण जीवन मे उन्मुक्त होली का उत्सव इसी के उदाहरण हैं। बघरी के भोजन आदि के वर्णन मे भी यही तत्व है।

"एक केले के दो कोर करने के बाद बघरी ने प्रधान जासूस की ओर मुह फेर कर 'ऊध' की। जैसे बादल गरज गया हो। जासूस ने कापते हुए सिर उठाया। आखें नीची किए हुए बोला, 'मालवा के सुल्तान गयासुद्दीन खिलजी—' आधा मुह खाली था। उसी दिशा से दबी हुई कडक निकली—'सुल्तान नही है वह नामाकूल।

गुलाम खानदान का खिलजी है।'

अच्छा है मरेगा। और आगे ?" बघरी बोला, जैसे जमीन के नीचे से दरार में होकर भूकम्प बोला।

ह! ह!! ह!!! ह!!!! ह!!!!! बघरी हंसा। हंसी के साथ ही केले के अवचबाये टुकड़े फिंक कर दूर जा पड़े। जासूस बगलें झांकने लगा। काटो तो खून नहीं। (पृ० ९०)। एक दूसरा दृश्य भूकम्प का देखें—

" बघरी बेचित सो रहा था। पलंग की हिलडुल ने करवट दे दी। आंख खुल पड़ी। बघरी ने पास रखे हुए पीढे वाले थाल के चावलों पर हाथ बढ़ाया। पीढा खिसका। बघरी ने हाथ बढ़ाया। वह और भी खिसका। बघरी ने कुछकुछ कर एक को बहुत लम्बा किया और दूसरे से आंखें मीडीं। परंतु चावल हाथ न लगा। धम्म से नीचे जा गिरा। उसके ऊपर पीढा। उस बगल भी यही हुआ। अन्तर इतना रहा कि उस ओर का थाल और पीढा नीचे न गिरकर वक्ष से उसकी चौड़ी पीठ पर आ पड़ा। बघरी धड़ाम से नीचे। पलंग उसके ऊपर। नीचे गिरे हुए चावलों का तकिया बना, कुछ चावलों ने लम्बी मूछों पर सफेद खिजाब का काम किया। पलंग के ऊपर गिरे हुए चावलों में से कुछ ने मुंह पर और कुछ ने छाती पर सवारी जमाई।

बघरी चिल्लाया, "ओफ! जिन्नों ने मार डाला!! कमबख्तों ने लोट-पोट दिया!!! बचाओ, बचाओ!!!!" (पृ० ४३७)

वैसे काल में नसीर और बैजू का चिल्लाना आदि भी हास्य उत्पन्न किये बिना नहीं रहता। परंतु उनके हास्य में अशिष्टता और अश्लीलता नहीं है। मर्यादा का निर्वाह सर्वत्र है।

इनमें सामयिक समस्याएं भी स्थान पा गई हैं। जिसकी ओर मैं ऊपर ही संकेत कर चुका हूं। अंतर्जातीय ब्याह और जात-पात तथा श्रम और कला की महत्ता इसी पृष्ठभूमि में उपस्थित हैं।

कला सम्बन्धी धारणा

वर्माजी ने कला के कल्याणकारी रूप को ग्रहण किया है और जो सौंदर्यान्वित करने के साथ ही प्रेरणा दे, बल दे, जीवन को शक्ति दे। मृगनयनी के द्वारा वर्माजी ने स्पष्ट कहलाया है—"वीणा को बजाते-बजाते, काम पड़ने पर, यदि तुरन्त तलवार न उठ पाई, कोमल सेज पर सोते-सोते, संकट आने पर, यदि तुरन्त ही उछलकर कमर न कसी, ध्रुपद को गाते गाते शत्रु के सामने आ खड़े होने पर यदि तुरन्त गरजकर चुनौती न दे पाई, जिन कानों में मीठे स्वरों की रसधार बह-बह कर जा रही थी, उन्हीं कानों में यदि रणवाद्यों और कड़खों की धुन न समा पाई तो ऐसी वीणा, सेज और ध्रुपद की तानों का काम ही क्या ?"[1] यथार्थ कर्मशीलता अनिवार्य है, निष्क्रियता नहीं ?

लौकिक मानसिंह कहता है—" मैं चाहता हूं कि सब दिन भर को

---

1 'मृगनयनी', पृष्ठ ३४७।

(आ) उसमे शौर्य और शारीरिक दृढता है। वह पशुओ का शिकार जगल और पहाडो पर निसकोच करती है, सूअर को पीठ पर उठा लेती है, आवश्यकता पडने पर शत्रुओ से घिर जाने पर उन्हे अपने तीरो और बर्छों से समाप्त कर सकुशल लौट आती है। वह तो मानसिंह के सम्मुख स्पष्ट शब्दो मे कहती है—" पहले की सतियो ने आग और चिता को जितना प्यार किया उसके बराबर तीर और तलवार के साथ भी करना चाहिए था।"[1] वह अपनी योग्यता से अपने और नाहर का वीरत्वपूर्ण शिकार कर मानसिंह के मन पर प्रभाव कर उनकी पत्नी बनती है (पृष्ठ १९८ से १९९ देखें)। इसके अतिरिक्त भी उनके शौर्य के प्रदर्शन के अनेक दृश्य हैं। (पृष्ट १७-१८, १५२-१५४)। जब गयासुद्दीन के सैनिक उसे जगल से पकडकर ले जाने का प्रयत्न करते हैं आदि। इस दृष्टि से बडे सशक्त और महत्वपूर्ण हैं। इसीलिए अटल भी उसकी प्रशसा करता है (पृष्ठ १८)

(इ) मृगनयनी नारियो मे ओज, चरित्र और दृढता उत्पन्न करने की भावना रखती है। इसीलिए वह सोचती है—" रानियाँ तो पर्दे मे मुह छिपाए बैठी रहती हैं। सुनती तो यही आई हू, परन्तु क्या उनके हाथ-पैर इतने निकम्मे होते अपने ऊपर आँख और हाथ डालने वाले पुरुप को घूसे से धरनी न सुधा दे।[2] वह पर्दा प्रथा को भी अनावश्यक समझती है।

(ई) मृगनयनी मे सयमशीलता है। पिल्ली के आचरण से उसे स्वाभाविक खेद होता है जो नटिनी है, अगो को बेशर्मी से नचाती फिरती है। वस्त्र भी उसी ढग के पहनती है (देखें पृष्ठ १९७) वह दुखी है। सोचती है क्या स्त्रियाँ इतनी निर्लज्ज भी हो सकती हैं।" और जब मानसिंह से मिलन होने पर वह (मानसिंह) शादी की याचना करते हैं उस समय भी इसका सयशील चरित्र सलज्ज नारीत्व स्पष्ट हो जाता है इसीलिए मानसिंह स्पष्ट स्वीकार करता है—"तुम (निन्नी) सयम मे प्रेम को अचल बनाती हो और मैं अपने विकार से उसको चचल कर देता हू। सयम के आधार वाला प्रेम ही आगे भी टिके रहने की समर्थता रखता है।" (पृष्ठ ३८७)

उसके सयम का ही परिणाम है कि जब कभी सुमन मोहिनी और अन्य उस पर व्यग करती हैं, विप खिलाने का भी प्रयत्न करती है तो वह शान्त होकर सहती रहती है।

(उ) इसे अपने जन्मस्थान राई और नदी से अटूट प्रेम है। इसीलिए जब लाखी इससे मजाक करती हैं तो खुलकर करती हैं— "राई नदी और इस खुले जगल को छोडकर मैं ग्वालियर के किले मे कैद होने को जाऊँगी, बावली हुई है क्या ?" वह राई को आजन्म न भूल सकी, और उसके आग्रह से ही राई नदी से नाला खीच कर ग्वालियर तक लाया गया। उसका विश्वास है— 'मैं अपनी राई को अपने उन दिनो को जब स्वतत्र थी, अपनी उस साँझ को कभी नही भूल सकती।'

---

१ मृगनयनी, पृ० ३४६।
२ वही, पृ० १७।

(ऐ) वह त्यागमयी भारतीय नारी है जो बलिदान में जीवन की सिद्धि स्वीकार करती है। वह अपने अहम् और अभिमान का त्याग कर, विष का घूंट पीकर भी अन्य रानियों का अपमान सहकर भी त्याग भावना नहीं छोड़ती और सर्वदा निस्पृह बने रहने का संकल्प किये रहती है। उसके त्याग की परम सीमा तो उस समय और स्पष्ट हो जाती है जब वह अपने दोनों पुत्रों को राजगद्दी न दिलाकर विद्वेषिनी सुमन मोहनी के पुत्र को अधिकारी घोषित करने के लिए मानसिंह से निश्छल भाव से कहती है—"राजसिंह और बालसिंह गद्दी या जागीर के अधिकारी नहीं होंगे। वे अपने बड़े भाई (विक्रम सुमन मोहनी के पुत्र) की आज्ञा का पालन करते हुए केवल अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करेंगे।" (पृष्ठ ४८९) अगर वह चाहती तो राजगद्दी अपने पुत्रों को दिला सकती थी क्योंकि मानसिंह उसे ही अधिक मानता था।

(ओ) वह लज्जाशील तथा फैशन के प्रति आकर्षित न होने वाली सात्विक नारी है। वह नारीगत लज्जा के महत्व को मानती है। इसीलिए नटों और नटिनी के प्रभाव में नहीं आती और उनके व्यवहार और वेशभूषा पर आक्षेप करती है। (पृष्ठ १२७ देखें)

(औ) उसके हृदय में अहम् के विपरीत प्रेम है इसीलिए लाखी व्यंग सहकर भी अपने भाई की दी गई चाँदी की हँसुली धारण किये रहती है। लाखी को आजन्म प्यार करती रहती है। अन्य व्यक्तियों तथा राई के प्रति सहानुभूति की भावना रखती है। (पृष्ठ २२१ देखें)

(अं) वह विलास नहीं चाहती—सच्ची निष्ठा और प्रेम चाहने वाली नारी है। इसीलिए जब मानसिंह मुग्ध हो उसे अपने महल ले चलने का प्रस्ताव उसके समक्ष रखते हैं तो वह पत्नी होकर जाने को तैयार होती है। वासना की पूर्ति होकर नहीं। (उदाहरणार्थ पृष्ठ १९६ देखें)।

(क) वह अपने समय का दुरुपयोग नहीं करती। जब वैवाहिक सम्बन्ध होने के पश्चात् वह ग्वालियर आती है तो अपने समय को संगीत, वीणा, चित्रकारी आदि में व्यतीत करती है। वह समय के महत्व को जानती है। उसका मानसिक स्तर निश्चय ही ऊंचा है।

(ख) उसमें संगीत और कला के प्रति पूरी जागरूकता और प्रेम है। शनैः शनैः उसमें दक्षता प्राप्त भी कर लेती है। जब वह संकल्प करती है—"वह बहुत चतुर, परन्तु मैंने उससे बढ़कर और कम-से-कम गायक बैजू के बराबर नहीं सीख लिया है। मेरे मन मन को चैन नहीं। मैं संगीत को अधिक समय देना चाहती हूं।" (पृष्ठ २४६) और "मैं पढूंगी, चित्रकारी सीखूंगी और गाना-बजाना सो इतना अपनाऊंगी कि जब आप कभी सुनें तो ध्यान मग्न हो जायें।" वह उसे पूरा करके ही छोड़ती है। आगे चलकर वह संगीत कला में अपनी नई सूझ भी देती है। (पृष्ठ ३६७ देखें)।

(ग) श्रम करने की उसमें स्वाभाविक प्रवृत्ति है। एक उदाहरण देखिए, "होली की दिनभर की थकावट ने अटल को निश्चेष्ट कर दिया। खेत की रखवाली के लिए जाना था। अपने अलसाये हुए मन को वह बहिन से नहीं छिपा पा रहा था।"

निन्नी ने कहा, 'मैं जाती हू खेत के मचान पर, तुम घर पर सो जाओ।'

'वाह ! वाह !! तुम भी तो थक गई होगी ?'

'मैं तो नही थकी । खेत को रखा लूगी । चिन्ता मत करो।'

"जगली भैंसे, सावर, चीतल, सुअर आयेंगे और खेती को मिटाकर जायेंगे। एक झपकी आई और मैदान साफ।"

"कोई दुविधा नही । कमान, तरकस भरे तीर और तलवार लिए जाती हू।" (पृष्ठ १३-१४) और वह डट जाती है। अपनी जीविका के लिए भाई के साथ दृढतापूर्वक खेत मे कार्य करती है और आवश्यकतानुसार शिकार भी कर लाती है। उसी के परिश्रमी चरित्र का उदाहरण है कि अपनी पीठ पर मरे हुए भारी मूअर को उठाकर घर ले आती है। (पृष्ठ ६०)।

श्रम-सम्बन्धी वह अपना विचार प्रकट करती हुई (जब रानी हो गई है तब) लाखी से कहती है—"मुझको तो विजय जी की बात अच्छी लगती है। वह कहते हैं सबको अपना-अपना आवश्यक काम अपनी हाथ से ही करना चाहिए। वह स्वय ऐसा ही करते हैं। उनका कहना है कि इस देश को भिख-मगो और निकम्मो ने डुबोया है।" (पृष्ठ ३१६)

(उ) उसमे चारित्रिक वल है। वह शुद्ध चरित्र की स्त्री है कभी भी चारित्रिक भ्रष्टता उसमे पाठक नही देख सकते।

(ऊ) वह किसी की दया और भीख पर जीवन-निर्वाह अनुचित समझती है। कभी नट उसे मुफ्त चावल, गुड और वस्त्राभूषण आदि देते हैं तो वह अस्वीकार करती है और सीताफल खाती है तो शिकार कर उन्हे बदला चुका देती है। वह नटो को स्पष्ट कह देती—"हम कुछ शिकार मार कर ले आवे और तुमको दें तब हम भी तुम से कुछ ले सकती है। यो ही सेतमेत किसी से कुछ लेना हमारे कुल की रीति नही है।" (पृष्ठ ११६) पुन लाखी से कहती हैं—"नटो से कपडे या गहने उधार लेकर नही पहनना चाहिए। भाग्य मे होगे तो अपने पसीने की कमाई के पहनेंगे।" (पृष्ठ १७६)

(ए) वह किसी प्रलोभन मे फसने वाली निम्न स्तर की नारी नही है।

(घ) वह कल्याणकारी भावना से युक्त प्रेरणशील नारी है। अपने पति नृपति से इसीलिए कहती है—"मैं चाहती हू आपका शरीर उत्साह, यश और सूरमापन में दिन दूना दृढ और चमत्कार से भरा हुआ बना रहे'। जिस राजा मे ये गुण न हो, उसका राज आजकल दो महीने भी नही टिक सकता। नियम-सयम के साथ रहिये और मुझको रहने दीजिए।" (पृष्ठ २३८-२४९) सकल्प और भावना जीवन-तखडी के दो पलडे हैं, जिनको अधिक भार से लाद दीजिए वही नीचे चला जाएगा। सकल्प कर्त्तव्य है और भावना कला। दोनो के समान समन्वय की आवश्यकता है।" (पृष्ठ ४८७) इसीलिए वह अपने चित्र आदि द्वारा भी राजा को कर्त्तव्य की ओर सजग किए रहती है। (देखें पृष्ठ ४२४) और जब ग्वालियर वाह्य शत्रुओ के आक्रमण से स्थिर होता है तो "प्रजा के सुख की, देश की स्वाधीनता की" (पृष्ठ ४८७) आवश्यकता पर मानसिंह को जोर देती है।

(ङ) शादी के पश्चात् वह बहुत ही सहनशील नारी हो जाती है। वह सोचती है "· मैं तो न कहूंगी आपने को चोर। वह कहेंगी तो सह लूंगी।" (पृष्ठ ३४३) और वह निरन्तर यही रूप प्रकट करती है। तभी वह सुमन मोहनी के षड्यन्त्र को भी मानसिंह से नही कहती।

(च) वह नारी को संयम, शौर्य और कर्त्तव्य से सन्तुलित देखना पसन्द करती है और स्वयं अपना जीवन उसी ढाचे मे ढालती है।

(छ) उसमे राष्ट्र-चिन्तन, देश और जनहित की प्रवृत्तियां है और इसी भावना से मृगनयनी बोलती है—"मैने महाभारत मे पढा है कि देश की रक्षा शस्त्र द्वारा हो जाने पर ही शास्त्र का चिन्तन हो सकता है। मेरा यही प्रयोजन है और कुछ नही। · कला कर्त्तव्य को सजग किए रहे, भावना विवेक को सम्बल दिए रहे, मनोबल और धारणा एक दूसरे को पकड़े रहे। मुझको कुछ और नही कहना है।" (पृष्ठ ४२२) और जब महाराज कला मे लीन हो कर्त्तव्य को भूलने लगते है तो मृगनयनी उन्हें सजग कर देती है, देश रक्षा मे प्रवृत्त करा देती है।

इस प्रकार मृगनयनी का चरित्र आदर्शवादी और महान् है। वह शुद्ध भारतीय नारी की प्रतीक है। परन्तु आरम्भ मे उसमे कुढन (पृष्ठ २७) आदि भी चित्रित है जो यथार्थ मनोभूमि के ज्वलन्त रूप है। शनै शनै वह अपने जीवन को कंचन सदृश चमकाती जाती है।

अन्त मे यह अवश्य स्वीकार किया जायगा—"कथानक मे वर्णित घटनाएं तेजी से अपने मूल उद्देश्य की ओर चलती है। मृगनयनी के चरित्र का प्रत्येक गुण गुलाब की पखुरी की तरह खुलता जाता है।"[1]

मानसिंह "बडी काली आखें, भारी भौंह, सीधी लम्बी नाक, चेहरा भरा हुआ लम्बा, ठोडी दृढ, होठ सहज मुस्कान वाले (व्यक्ति हैं)। सारा शरीर जैसा अनवरत व्यायाम से तपाया और कसा गया हो। क़द लम्बा और छाती चौडी। घनी नोकदार मूछें। मानसिंह के स्वर की खनक ऐसी थी मानो तलवार झनझना गई हो।" (पृष्ठ ४२) इस आकृति के अनुसार ही उनका सबल चरित्र भी है। मानसिंह ऐतिहासिक पुरुष हैं, जिनकी चारित्रिक विशेषताओं का साक्षी बहुत दूर तक इतिहास भी है।

उनका प्रबल व्यक्तित्व है। उदाहरणार्थ पृष्ठ ४१९ को देख सकते हैं जब नशे मे मस्त सैनिक भी मानसिंह को देखकर शान्त हो जाते हैं।

ये कर्त्तव्य पर विशेष ध्यान रखते है—"ये बैठे-ठाले के वाक्-युद्ध व्यर्थ हैं। कर्म मुख्य है। जो इससे बचना चाहते हैं वे ही दाएं-बाए की पगडण्डियां ढूंढते हैं। · मैं न शास्त्री हू न पंडित। कुछ काम करिए और आगे की तैयारी में चिपट लगिए।" (पृष्ठ ४६) और आगे (क) अपने सिद्धांत से, (ख) तथा विजय से प्रभावित हो, और (ग) मृगनयनी से प्रेरित हो सर्वदा कर्त्तव्य-पथ पर दृढ बने रहते हैं। जब कभी विचलित होने लगते हैं, उस समय मृगनयनी उन्हें जगा देती है। वे स्वयं भी श्रम करने की प्रतिदिन प्रतिज्ञा लेते हैं (पृष्ठ १०९ देखें)।

---

१. वृन्दावनलाल वर्मा की उपन्यास कला, पृ० ५७, लेखक प्रो० रामचन्द्र महेन्द्र।

वे जातिवाद की सकीर्णता को स्वीकार नही करते और बोधन पुजारी के रूढिवाद पर आक्षेप करते हैं, जो लाखी और अटल के परिणय-सस्कार मे व्याघात डालता है। उदाहरणार्थ पृष्ठ २६०-२६१ देखें। आगे तो वे स्पष्ट कहते हैं—"जनक, महावीर, गौतम बुद्ध कौन थे ? शास्त्री सोचो, इस प्रकार का कट्टर वर्णाश्रम हिन्दुओ की कितनी रक्षा कर सकता है ? रक्षा के लिए ढाल और तलवार दोनो अनिवार्य रूप मे आवश्यक हैं। जाति-पाति ढाल का काम तो कर सकी है, और कर रही है, परन्तु तलवार का काम न तो हाल के युग मे उसने कर पाया है, और कभी न कर पाएगी।"

वह, जब मुसलमान-धर्म भारत पर, हिन्दू राज्यो पर अनवरत आक्रमण कर रहे थे, तब भी उनके प्रति सहिष्णु थे। वह मानवतावादी दृष्टिकोण रखते थे—"मेरा झगडा सुल्तानो और सुल्तानी-शासन से है न कि मुसलमानो से। काम करो, राजभक्त रहो, और हिन्दुओ के समान ही बर्ताव पाते हुए इज्जत के साथ जीवन को बिताओ।[1] और वे मुसलमानो को भी शरण देते हैं।

ललित कलाओ के प्रति उनका प्रेम है। वह सकल्प करते हैं। "मैं सगीत को पत्थरो मे मूर्त करने की बात सोचा करूगा।" (पृष्ठ ११०), और वह कठिन समय के भी कलाकारो का सम्मान करते हैं, सहायता करते हैं।[2] सगीत सुनते हैं। सगीत गोष्ठियो का आयोजन करते हैं और यह मनोभाव रखते हैं—" राज्य है काहे के लिए ? प्रजा-पालन, कला की रक्षा और बढोत्तरी के ही लिए न ? प्रजा और कला, दोनो के लिए हमे अपने प्राण दे देने के लिए तैयार रहना चाहिए। इन दोनो की रक्षा का ही तो दूसरा नाम धर्म का पालन है।" (पृष्ठ १७१)

जनता का ध्यान उन्हे सदा रहताहै इसीलिए छिपे वेश मे रात मे उनकी स्थिति की जानकारी के लिए घूमते हैं। क्योकि उनका विश्वास है कि राज्य के किसानो की खेती-पाती अपनी खेती-पाती के ही समान तो है।" (पृष्ठ ३४०), और जनता के सम्मुख कहते हैं—"धिक्कार है मुझको जो मैं तो भरे पेट सो जाऊ और तुम भूखो रोओ मरो। मैं महलो मे रहू और तुम इस झोपडी मे भूखे ठण्डो मरो। हमारे भाग्य के आधार तुम्ही सब जन हो। तुम्हारा भाग्य बुरा रहा तो हमारा तो पहले ही खोटा हो चुका।" (पृष्ठ ३७५) और उनके लिए अच्छे मकान औषधालय तथा भूखे न मरें—इसका प्रबध कराते हैं। इसीलिए तो जनता गद्गद् हो कहती है—"सुना था कि महाराज ब्राह्मणो पडितो और सेठो के हैं, आज जाना कि किसानो और मजदूरो के भी हैं।"

निश्चय ही मानसिंह कर्तव्यपरायण (दोपहर के समय को छोडकर दिन मे राजा मानसिंह किसी-न-किसी काम मे व्यस्त रहते थे। पृष्ठ १६९ देखें), कल्याण-कारी भावनायुक्त (पृष्ठ ३३८), कला, सौदर्य और कर्म को समन्वय में रखने वाले वीर पुरुष हैं जो निरतर शत्रुओ को परास्त कर देश और जन की रक्षा करते हैं। उनमे शिल्पकला और भवन-निर्माण के प्रति आकर्षण है। सभी प्रकार से, एक आदर्श राजा के सभी गुण उनमे है तभी तो अग्रेजो ने (इतिहासकारो ने) उनके युग को 'तोमर शासन का स्वर्ण-युग' कहा है।

---

१ पृष्ठ ४८२।

२ उदाहरणस्वरूप पृष्ठ १६१।

लाखी—लाखी मृगनयनी के साथ रह उससे प्रभावित हो तीर आदि सीखती है और दक्षता प्राप्त कर लेती है। उसका रूप भी प्रशंसित और मुसलमान शासकों को उद्वेलित करने वाला है।

अनुकरण की उसमें स्वाभाविक प्रवृत्ति है। जहाँ वह मृगनयनी को देख शिकार आदि करती है, उसी प्रकार नटों को देख रस्से पर चढ़ने आदि का अभ्यास करने लगती है (पृष्ठ ११७ देखें)।

परंतु वह स्वाभिमानिनी और कर्म में उपार्जन कर जीवित रहने पर विश्वास करती है—"नंगे पैर चलने में जो मौज रहती है, वह दूसरे के आसरे नहीं मिल सकती।" (पृष्ठ ४८) और मृगनयनी से एक बार स्पष्ट होने पर कहती है—"छोड़ दो मुझको यहीं और अपना सुअर उठा ले जाओ। तुमको गूजर होने का बड़ा अभिमान है तो हमको भी अहीर होने का कम मान नहीं है।" (पृष्ठ ५५)

फिर भी वह स्नेहशील, सहृदय नारी है। मृगनयनी आदि के प्रति उसका प्रेम दर्शनीय है।

साथ ही वह चतुर भी है। नटों को नष्ट करना उसका यह रूप व्यक्त करता है।

उसमें शौर्य अपूर्व है। वह निन्नी से इस क्षेत्र में किसी भी प्रकार कम नहीं है और साथ ही अंत उसका दुश्मनों को बेंधते हुए होता है। आद्योपान्त वह वीर नारी बनी रही है।

उसके हृदय में प्रेम का अटूट स्रोत है। तभी अहीर होने पर भी अटल से प्रेम होने के कारण यत्र-तत्र भटकती रहती है, उससे प्रेम-निर्वाह करती रहती है और अंत में विधिवत् उससे ब्याह भी हो जाता है। और मरने तक पति के प्रति प्रेम होने के कारण अटल से कहती है कि अपनी जाति में शादी कर लेना। वह प्रलोभन में पड़ने वाली नारी नहीं, तभी पिल्ली के बहकाने में नहीं आती और गयास के महल में जाना स्वीकार नहीं करती। परंतु स्मरण रहे, वह मनुष्य है इसलिए कुछ दोष भी उसमें स्वाभाविक रूप में है।

अटल—निन्नी का भाई, अटल निश्छल,[1] सरल परंतु, वीर पुरुष है। वह शुद्ध विचारवान है।[2] वह जाँत पाँत नहीं मानता और लाखी के प्रेम का निर्वाह करता, विविध संकटों को सिर पर लिए घूमता रहता है। उस समय प्रेम और भी करुण रूप में चित्रित हुआ है जब लाखी की मृत्यु हो गई है और वह प्राणों का मोह-त्याग कर वैरियों पर टूट पड़ता है और युद्ध भूमि में ही समाप्त हो जाता है। उसका प्रेम निश्चय ही बड़ा पवित्र है।

इनके अतिरिक्त, बोधन, नसीर, बघर्रा, गयास, विजय जंगम, बैजू, सुमन

---

१. उदाहरणार्थ पृष्ठ २००-२०१ आदि देख सकते हैं।

२. उदाहरणार्थ पृष्ठ ६३ आदि को देखें। उसके शुद्ध प्रेम, शुद्ध विचार का ही प्रभाव है कि वह लाखी के प्रति कभी हीन व्यवहार नहीं करता। उसके चरित्र पर धब्बा नहीं लगता। उसके प्रेम में वासना (Sex) की विलासिता का प्राधान्य नहीं है।

मोहनी, आदि अनेक चरित्र हैं। चरित्र-चित्रण मे स्वाभाविकता, मार्मिकता, मनोवैज्ञानिकता (पृ० २०३, २०८ आदि देखें) सभी का यथेष्ठ निर्वाह है, जिसके लिए वर्मा जी प्रशसा के पात्र हैं।

'कचनार' (१९४६–४७)

'कचनार'—कचनार की कथावस्तु ऐतिहासिक तथ्यो के साथ ही कल्पना के सयोग से फूल और सुगध का आवास है। चरित्र-प्रधान उपन्यासो मे 'कचनार' का महत्व सुरक्षित है। एक साधारण नारी कचनार ने अपने सतत, सघर्षशील, नैराश्यपूर्ण व्यथाजनित वातावरण मे जो दृढता और कमल-पत्र सदृश स्वच्छ और वैयक्तिता की विराटता का अभिनय किया है, दुर्व्यसनग्रस्त गुसाइयो के मध्य एकमात्र नारी गुसाईं बनकर, अपनी सयमशीलता और उच्चता का प्रतिष्ठान किया है, वह नारी-जाति को अपनी अभूत शक्ति की पहचान का प्रेरणामूलक दृष्टिबोध कराती है, और आवेष्ठन की माग का निराकरण भी। सक्षिप्त मे हम कथानक पर दृष्टिपात करें—

धामोनी राज्य के नृपति दलीपसिंह अपनी अस्वस्थता के कारण अपने विवाह मे न उपस्थित होने के कारण तलवार को प्रतीक बना भेजता है। अन्य अपेक्षित विधियाँ उसके छोटे भाई युवा अनुज मानसिंह के साथ सम्पन्न होती हैं। मानसिंह अपनी अवस्था तथा राजकीय सस्कारजनित भावना एव तज्जनित यौन-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप दलीप सिंह की पत्नी कलावती तथा उसकी अन्य सहेलियो पर जो, तत्कालीन नियमानुसार नृपति की ही भोग्या स्वीकार की जाती है, आकृष्ट होता है, परन्तु अपने बडे भाई के सम्मुख अपनी भावना को प्रकट करने का साहस अनुभव नही करता। दलीपसिंह सग्रहणी रोग के कारण अधिक क्रोधी बना रहता है। उसके राज्य के अन्तर्गत डरू लगान समय पर नही देता और सोनेशाह काकाजू के बिगडने तथा क्रुद्ध होने पर, डरू का छोटा भाई जो स्वभाव से उग्र था, जूझ पडता है और बात इतनी बढ जाती है कि डरू आकर सोनेशाह की हत्या कर राज्यकोपानल से भयभीत हो जगल मे भाग जाता है और बैजनाथ (डरू का छोटा भाई) की निर्मम हत्या दलीपसिंह करा डालता है। इसी समय सागर की सेना का आक्रमण धमोनी मे होता है जिससे दलीपसिंह वीरता-पूर्वक युद्ध कर भगा देता है और विजयोन्मत्त लौटते समय उसका घोडा ठोकर खाकर गिर पडता है, जिससे दलीप सिंह को गहरी चोट लगती है और उसके फलस्वरूप उसे जीवन की समस्त घटनाए विस्मरण हो जाती हैं। मानसिंह कलावती के प्रति प्रबल आकर्षण के कारण जडी के नाम पर दलीप को विष पान करा देता है और मृत्यु होते ही शमशान ले जाता है, परन्तु चिता पर सुलाते ही भाग्य-चक्र से भयानक प्रभजन आरम्भ होता है। शव के साथ आए व्यक्ति कुछ काल के लिए अलग छिप जाते हैं। तभी गुसाइयो का दल इसी मार्ग से आता है और चिता पर कुछ हिलता-डुलता देख, शव मे प्राण की सम्भावना से उसे उठाकर अपनी छावनी मे ले जाता है औषधियो द्वारा उचित उपचार करता है। दलीपसिंह स्वस्थ हो जाता है, परन्तु पूर्व की विस्मृति महत्वपूर्ण घटना होती है और चोट लगे स्थान पर उसे पीडा होती रहती हैं। वह बच्चो की तरह व्यवहार करने लगता है। भाषा और अक्षरो का पुनर्ज्ञान भी उसे

कराया जाता है, परन्तु स्मरण शक्ति के अभाव में शीघ्र भूल जाता है। गुसाईं अचलपुरी दलीप को पहचान कर, पुनः उसे धामोनीधीश कराने की लालसा से अभिभूत हो, गुसाइयों के धामोनी में निवासनार्थ स्थाई स्थान की व्यवस्था करता है।

मानसिंह कलावती से, गजगोटों के नियम के प्रतिकूल, पुनर्लग्न कर लेता है और कचनार तथा मन्ना दल की स्त्री को भी अपनी वासना का शिकार बनाना चाहता है। दल की स्त्री मन्ना चतुराई से अपनी रक्षा करती रहती है और कचनार (कलावती की सहेली) भागकर गुसाइयों के आश्रय में चली जाती है, जहां वह नम्रमित और कुशाग्रबुद्धि सम्पन्न नारी का परिचय देती है और वहां वह कचनपुरी गुसाईं नाम से पुकारी जाती है। मानसिंह अचलपुरी से कचनार को लौटाने का निष्फल प्रयत्न करता है।

कचनार उक्त आश्रम में अनेक आध्यात्मिक आदि ज्ञान प्राप्त करती है, युद्ध-कला सीखती है, और दलीपसिंह की आकृति वाले सुमन्तपुरी को देखकर, आश्चर्यान्वित हो, स्वाभाविकरूप से उस पर दया पूर्ण व्यवहार करती है। सुमन्तपुरी भी पूर्व-संस्कार तथा मनोवैज्ञानिक भावमयता के अनुरूप कचनार के प्रति आकृष्ट होता है।

शनैः-शनैः दलीपसिंह की, योगाभ्यास द्वारा स्मरण-शक्ति तेज होती है, और यथावसर प्राप्त कर गुसाइयों का आक्रमण धामोनी पर होता है जहां मानसिंह पराजय की शृंखला में बंध जाता है। युद्ध काल में ही दलीप को पुनः चोट लगती है, और पूर्व स्मृतियां, जीवनगत भूतकालीन घटनाएं जाग्रत हो जाती हैं। वह कचनार, मानसिंह आदि सभी को पहचान लेता है और गुसाइयों के प्रति आदर और सम्मान की भावना से आप्लावित रहता है।

अचलपुरी दलीप को धामोनी राज्यसिंहासन पर आरूढ़ करा, अपने वस्ती मन्टोलेपुरी को अपनी गद्दी (गुसाइयों की गद्दी) सौंप कर, कचनार का दलीप से संयोग करा देता है। दलीप के स्वभाव में गुसाइयों के संसर्ग से[1] तथा अन्य आकस्मिक तथ्यों के कारण अपूर्व परिवर्तन हो जाता है और अपनी पूर्व क्रूरता तथा हिंसात्मक भावना पर पश्चाताप करता है, मानसिंह को उदारतापूर्वक क्षमा करता है और कलावती के साथ पांच ग्राम और एक गढ़ी भी उसे देकर धामोनी से विदा करता है। इस प्रकार कथा की परिसमाप्ति होती है। इस प्रकार 'सु' एवं सत् पक्ष विजयी और 'कु' एवं असत् पक्ष पराजित होता है। कलावती भी क्षणिक आवेग में बहकर, पुनर्लग्न के अपराध में दण्डित होती है। दलीपसिंह उसे पत्नी स्वीकार नहीं करते। सम्पूर्ण कथा में जिज्ञासा तथा कचनार का चरित्र अपूर्व महत्वपूर्ण है, और जिस आधार पर नामकरण भी हुआ है। नारी चरित्र की गरिमा तथा साधना की उपासना ध्यानस्थ है। लेखक ने व्यक्त करना चाहा है कि मानसिक बनावट (mental make up) के अनुरूप ही मनुष्य उच्चतम शिखर पर पहुंचने या गर्त में गिरने का अधिकारी होता है। नारी यदि

---

१. संस्कृत के एक श्लोक में संसर्ग के सम्बन्ध में तथ्य और सत्य दिया गया है—
काचः काञ्चनसंसर्गाद्धत्ते मारकतीं द्युतिम् ।
तथा सत्सन्निधानेन मूर्खो याति प्रवीणताम् ॥

सुरक्षा चाहती है, अपने व्यक्तित्व का सफल निर्माण चाहती है तो उसे अपने पर दृढता और सयमित व्यवहार की आराधना करनी होगी जैसे कचनार ने की और उसी के अनुरूप उसका व्यक्तित्व उज्ज्वलतम और दिव्य हो सकता है, वासनाजनित पुरुष के शिकार से निस्तार सम्भव हो सकता है। अचलपुरी के मुख मे लेखक ने स्पष्ट कहलाया है—" तुम्हारी सरीखी (कचनार सरीखी) स्त्रिया हमारे समाज मे हो जाए तो घर-घर मे उजाला छा जाए।' (पृ० ४१८, तृ० स०)

एक बार गाधीजी के सम्मुख कुछ युवतियो ने प्रश्न किया था कि हम लोगो को पुरुष समाज क्यो छेडता है ? गाधीजी द्वारा दिये गये (आप वैसा बनती क्यो हैं ?) उत्तर मे उसी सत्य का प्राधान्य था। निश्चय ही चारित्रिक दृढता सभी विग्रहो और दुष्प्रवृत्तियो का अत है।

प्रस्तुत ृति मे ऐतिहासिक कथावस्तु के माध्यम से आधुनिक नारी समाज की एक समस्या का निदान ढूढा गया है। निश्चय ही 'कचनार' मे इसी मत्र की प्रेरणा है—

'मुझको अंधेरे से उजाले मे ले चलो।
मुझको असत् से सत्य की ओर ले चलो।
मुझको मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो।'

वर्मा जी ने नारी समस्या का पूर्णतया सामयिक माग के अनुरूप अवलोकन कर समाधान की चेष्टा की है। एक आलोचक 'कचनार' पर समीक्षा प्रस्तुत करते कहता है, " लेखक (वर्मा जी) का उद्देश्य ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर एक सत्य घटना के आधार पर चोट लगाने के पश्चात्, तथा चोट पर चोट लगने के बाद दलीप सिंह की मानसिक स्थिति का विश्लेषण करना तो है ही, साथ-साथ कचनार और दलीप के प्रेम आदर्श को भी व्यजित करना उसका लक्ष्य ज्ञात होता है।"[1] पूर्ण नही है।

आलोच्य रोमासपूर्ण कथावस्तु मे मनोवैज्ञानिक समस्या का बडा आकर्षक और गभीर दृश्य उपस्थित किया है। स्मृति, विस्मृति, पूर्व-सस्कार, मौन भावना, सौन्दर्य के प्रति आकर्षण, मानवीय जीवत चित्रावलिया हैं, जिसे हम नित्य प्रति दिन के जीवन मे घटित होते देखते हैं, अनुभव करते हैं। मनोविज्ञान की इतनी जटिल समस्या को ग्रहण कर भी जिज्ञासा, रोचकता, गतिशीलता और वेग अक्षुण्ण है, जो प्रशसा का विषय है। अज्ञेय कृत 'शेखर एक जीवनी' आदि मे मनोविश्लेपण मे, शास्त्रीयता और घनतत्व, रोचकता और वेग मे व्याघात बन गया है, और कई स्थल तो मात्र मनोविज्ञान शास्त्र ही मालूम पडने लगते हैं, साहित्यिक कृति नही। 'पर्दे की रानी' मे इलाचद्र जोशी ने मनोवैज्ञानिक विषय खड को ग्रहण कर सुन्दर निर्वाह किया, केवल अत मे मनोविज्ञान शास्त्र की चर्चा इतनी प्रबल हो जाती है कि बात कुछ खटकने लगती है और बहुत अशो मे सौंदर्य विनष्ट हो जाता है। जैनेन्द्र जी ने भी इस दिशा मे अकथ परिश्रम किया है परतु उनमे भी शैथिल्य दीख पडने लगता है।

मेरा स्पष्ट मत है, साहित्यकार मनोविज्ञान को त्याग नही सकता, परतु इसका अन्यथा बोझ भी जबरदस्ती उसपर लादा नही जा सकता और आवश्यकता से अधिक

१ ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा (पृ० ४५)—डा० रामदरश मिश्र

बोझ प्राणनाशक है। हमारी दृष्टि मे इसके अपूर्व सतुलन का उपयोग शरत, प्रेमचद्र, और वृन्दावन लाल वर्मा आदि साहित्यकारो मे समुचित रूप मे सुलभ है, जिससे साहित्य सौंदर्य अभिवृद्ध ही होता है। स्मरण रहे, उत्कृष्ट प्रेम का सहज निर्वाह 'कचनार' मे प्राप्य है।

वार्तालाप सरल, स्वाभाविक, कथावस्तु को अग्रसर करने वाले हैं। उसमे पात्रो के अन्तर्बाह्य ऊहापोहों, मानसिक व्यथा आदि पर भी प्रकाश डाला गया है। कहीं-कहीं लबे-लबे वार्तालापो के कारण वेग मे व्याघात भी उपस्थित हो गया है यद्यपि वे भी मानवीय-जीवन के वास्तविक पहलू हैं। उदाहरणार्थ पृ० १६७ से १७५ तक को ले सकते हैं, जिसमे कलावती और मानसिंह का कथोपकथन है। वार्तालाप द्वारा तृतीय पुरुष पर भी प्रकाश डालने की चेष्टा दीखती है। इसका उदाहरण पृ० १५४ मे देखा जा सकता है।

हम तो साहित्य को पूर्ण सत्य या पूर्ण कल्पना स्वीकार नही करते वरन् दोनो का सफल, समानित सयोग मानते हैं। जो जितने सतुलन से प्रकट होती, वह कला उतनी उत्कृष्ट सिद्ध होती है।

यह कथावस्तु उस युग की है, जब टीपू अग्रेजो से युद्ध कर अपनी स्वतत्र सत्ता रखना चाहता था और भोसले आदि मराठे भी अपनी सत्ता अक्षुण्ण रखने के निमित्त सान्निध्य थे। 'कचनार' मे तत्कालीन राजाओ, राज्यलिप्साओ, भोगवादी वृत्तियो का सुन्दर चित्रण है। तत्युगीन वैषम्यता का एक अश देखें—

कलावती—"क्योकि मैं कहती हू। लोग कुआरी लडकियो को दहेज मे देते हैं व्याहता और इनमे परस्पर खटपट और मारकाट को या सुख-चैन के लिए? या तो ये हमे छोडकर कही भाग जाए या आनद के साथ रनवास मे जीवन बिताए। (पृ० १७४, तृ० स०)

अराजकता का वर्णन लेखक के शब्दो मे ही सुनें

"किस प्रकार विन्ध्या खड के ऊचे-नीचे पहाड सारे प्रदेश के मैदानो मे बिखरे हुए फैले पडे हैं। उसी प्रकार गृहविहीन राजा और राजकुमार अपने-अपने गिरोह बनाकर गढीबन्द सरकार बन गए। हर एक के पास छापा मारने वाले और लूटमार करने वाले सिपाही और हथियार काफी सख्या मे। मन के विश्वासों और भ्रमों का पोषण करने के लिए भाट, चारण, लम्बे गुर्सांनाने, कवि और मदिरो के पुजारी मिल गए।

गाव के प्रत्येक युवक को हथियार चलाना सीखना पडता था और वह अपने गाव के राजा साहब या रावसाहब का सिपाही समझा जाता था। कवायद और अनुशासन से बहुत कम सम्बन्ध। राजा या रावसाहब किसी बडे महाराज या नवाब की आधीनता मे अपने अधिकार बर्तते थे। परन्तु एक ही महाराज या नवाब की मान-हती सदा बने रहने का अटल नियम नही था। ... आज जिसके मित्र कल उसी के शत्रु।

जनता को अपनी जान बचाने के लिए इन गढीबन्दो और किलेबन्दो की शरण लेनी पडती थी। जिससे भूखण्ड उजाड हो गए, गाव के अधिकाश जनता

इन गढियो और किलो के आस-पास की भूमि जोतने लगी, वही साहूकार भी आ बसे।"[1]

समाज त्रस्त और दुखी था। उसकी "आर्थिक अवस्था हिलती हुई पानी-भरी थाली मे पडे हुए तिनको जैसी थी। इस पर भी जनता की सार्वभौम मितव्ययता के कारण सोना-चादी और कपडा अनेक लोगो के पास था।"[2]

जब अराजकता हो, देश की आर्थिक स्थिति पतनोन्मुख हो तो देश की राजनैतिक दृढता और अवस्था की हीनता, स्पष्टतया प्रतीत होगी। देश के निर्माण मे राजनैतिक तत्व परम महत्वपूर्ण है। वहा राजनैतिक अवस्था इसी के समकक्ष थी। अत्यन्त चचल और अस्थायी।"[3] लेखक ने स्वय विस्तार मे इसकी चर्चा पृष्ठ ३७-३८ आदि मे की है।

भारत का इतिहास साक्षी है कि राज कामना मे भारत के राज्यो मे सर्वदा अपनापन को विस्मृत कर रक्तपात किया गया। मुगल शासनकाल, नेपाल के राणा-काल मे अनवरत ऐसा सामान्य रूप से देखते हैं। मानसिंह भी राजलोलुपता और यौन-भावना से वडे भाई दलीप की मृत्यु का षड्यन्त्र सृजन करता है। कौशिक की रचना 'सघर्ष' (उपन्यास) मे भी राज्य-प्राप्ति-निमित्त प्रवल सघर्ष चित्रित है परन्तु जहा 'सघर्ष' मे दोनो पक्ष लालसा से परस्पर सघर्ष करते हैं वहा 'कचनार' मे वह लिप्सा मानसिंह के षड्यन्त्र रूप मे है।

'कचनार' मे भी पात्रोचित भाषा प्रयुक्त है। साधारण कोटि के पात्र गुसाईं आचलिक भाषा मे वार्तालाप करते हैं। पुन गुसाइयो के गुरु महाराज की भाषा देखिए अन्तर मिलेगा।

सरल भाषा का प्रवाह तथा यथायोग मुहावरो, लोकोक्तियो के प्रयोग स्वाभाविकता के व्यजक हैं।

प्रकृति चित्रण के लिए २५९, २९६ आदि पृष्टो को देख सकते हैं जो वर्मा जी की प्रकृति चित्रण की सफल प्रतिभा के उदाहरण हैं। एक दृश्य देखें—"गुसाइयो की छावनी पेडो की सघन छाया मे थी। पास से एक छोटा-सा नाला निकला था। पतली धार बह रही थी। किनारो पर हीस मकोये, खेजो और करौंदी के सघन और गहरे हरे झाड थे। नाले के ठीक बीचो-बीच यहा-वहा हरसिंगार के पेड लगे हुए थे। फूलो से लदे हुए। सवेरा हो चुका था। पवन मद-मद बह रहा था। नाले की धार भी मद थी। हरसिंगार की फूलो से लदी डालिया हवा के हलके झोको से नाले की पतली धार पर झूम-झूम जाती थी। सफेद पखरी और लाल डण्डी वाले छोटे-छोटे से फूल उस पतली धार पर एक-एक दो-दो करके चू रहे थे। उस धार पर खेलते कूदते वे निरन्तर चले जा रहे थे। नाले की तली उनकी मस्त सुगन्धि से भरी हुई थी। बुल-

---

१ कचनार (तृतीय सस्करण), पृ० २५-२६।

२ वही, पृ० ३७।

३ वही, पृ० ३७, मध्ययुग का लगभग सम्पूर्ण काल इन्हीं अस्त-व्यस्तता, तथा सकट में उलझा रहा। कोई दृढ सगठन शक्ति—एकात्मक भाव न उत्पन्न नहीं हुई उच्छृखलता और विध्वस सर्वत्र व्याप्त था। सम्पूर्ण इतिहास इसी से भरा हुआ है।

धुले कौमुदी महोत्सव-सा मना रही हैं।" शिकार आदि का 'कचनार' में भी बड़ा रोचक वर्णन है।

सचमुच राजर्षि टण्डन जी के शब्दों में हम कह सकते हैं—"वृन्दावनलाल जी वर्मा द्वारा प्रणीत उपन्यास विलक्षण है।"

चरित्र-चित्रण

'कचनार' में मानसिंह, दलीपसिंह, अचलपुरी, मन्टोलेपुरी, डरू आदि मुख्य पात्र तथा कचनार, कलावती ललिता मुख्य पात्री हैं।

कचनार मुख्य पात्री है, जो केन्द्र बिन्दु है, जिसके आधार पर कथावस्तु अग्रसर होती चलती है।

दलीपसिंह को तत्कालीन प्रथानुसार अपनी शादी में कलावती पत्नी के साथ कचनार और ललिता भी प्राप्त होती हैं। कचनार अन्तःकरण से दलीप से प्रेम कर भी अपनी चारित्रिक-रक्षा अनिवार्य समझती है। दलीप के विषपान के पश्चात भी वह मानसिंह की हिंसक वासना का शिकार न होकर आवश्यकतानुरूप गुसाइयों के आश्रम में सयमित चरित्र का निर्वाह करती है। उसमें दृढ़ता है, ओज है, वीरत्व का अंकुर है। वह एक स्थल पर स्पष्ट बोलती है। "मेरे माता-पिता सिपाही थे और कुलीन।' मुझको वस्त्रालंकार कुछ नहीं चाहिए। मैं गोंड कन्या हूं। वृक्षों की छाल से अपना शरीर ढक सकती हूं।' (पृष्ठ २६) और वह दलीप व मानसिंह की वासना का शिकार नहीं होती। दलीपसिंह को भी शरीर-समर्पण के पूर्व विधिवत परिणय संस्कार आवश्यक ठहराती है और वह शास्त्र विद्या में भी पिछड़ी नहीं दीखती तभी तो गुसाइयों में जहाँ नारियों के लिए कोई स्थान न था, उसे आश्रय देना पड़ा। यहाँ भी उसकी चारित्रिक और वैयक्तिक दिव्यता और तेज की ही स्वीकृति है।

वह अपूर्व सुन्दरी भी है तभी उसके सौंदर्य का अनुभव कर संयमी पुरुष अचलपुरी भी सावधान हो जाते हैं और ईश्वर से अपनी दृढ़ता का वरदान मांगते हैं—"उसके (कचनार के) चले जाने पर महन्त को अवगत हुआ मानो यकायक कोई प्रकाशमान तारा क्षितिज के पर्दे में चला गया।"

महन्त ने मन में प्रार्थना की—"हे भगवान, हे भगवती, भवानी मुझको शक्ति दो। मैं ऐसे रहूं जैसे कमल पत्र पर पानी की बून्द रहती है, उस पर छरछराते हुए भी अलग।" (पृष्ठ २५२ तृ० स०)

उसके सौंदर्य का असाधारणपन अनुभव करता हुआ, बैरागियों के मध्य-निवास करने वाला सुमन्तपुरी (दलीपसिंह) स्पष्ट कहता है—"साधारण स्त्री! क्या आपने उसको (कचनार को) सचमुच देखा है? यदि देखा है तो साधारण क्यों कहा? यदि बुरा न माने तो मैं आपसे पूछूं आपने कभी दर्पण में अपना मुख देखा है?"

पुनः उसकी प्रशंसा करता हुआ कहता है—"वह गाती बहुत अच्छा है। जब इकतारे पर गाती थी तब इकतारा उसके कंठ-स्वर को नहीं सजाता था, बल्कि उसका स्वर इकतारे की सजावट बन जाता था, परन्तु वह गम्भीर अधिक थी। वह क्रुद्ध होना नहीं जानती।"

स्वामी मटोलेपुरी भी उसके अप्रतिम सौंदर्य पर आकृष्ट हुए बिना नहीं रहता।

स्मरण रहे, आम्रपाली, कुमुद(विराटाकी पद्मिनी) का सौंदर्य जहा उसके लिए अभिशाप सिद्ध होता है, वहाँ कचनार के लिए भी कष्टप्रद होता है, परन्तु राष्ट्र, समाज, देश, जाति पर विपत्तियो का बादल बन आच्छादित नही होता। वह आजन्म अडिग रहकर भी अपने सत्य की रक्षा मे सफल सिद्ध होती है।

वह आदर्शवादी तथा धार्मिक नारी है जिसके पीछे आत्मा की शुद्धता है, पाखड नही, जो उनकी सहेलियाँ आदि भी निश्चित रूप से जानती है। दलीप की मृत्यु के पश्चात वह अधिक समय धार्मिक विषयो मे व्यतीत करती है और जिसका निखार गुसाइयो के आश्रय मे पूर्णतया होता है।

कचनार के चरित्र मे वर्मा जी का सम्पूर्ण स्वप्न समाविष्ट है। आज के युग मे जहा पुरुष अपनी क्रूर-वासना के हिंसात्मक भावना से चलित हो, नारियो के सतीत्व पर भेडियो की तरह टूट पडा है उसे किस प्रकार अपने आत्मबल के विकास द्वारा सिद्धि ग्रहण करनी चाहिए, इसका सफल चित्रण है। कलाकार कलासृष्टि के माध्यम से 'कान्त सम्मत उपदेश उपस्थित करता है, अनुभूत सत्यो को जन-जीवन के सम्मुख प्रकट करता है, अपने जीवन दर्शन से युग के निर्माण का स्वप्न देखता है। तुलसी मे 'रामायण' जयशकर 'प्रसाद' ने 'कामायनी' 'ध्रुव स्वामिनी,' पत ने 'स्वर्ण-धूलि,' 'गुञ्जन,' डा० रामकुमार वर्मा ने 'एकलव्य,' विष्णु प्रभाकर ने 'तट के बन्धन,' प्रेमचन्द ने 'प्रेमाश्रम,' 'सेवा-सदन' आदि का निर्मा ा अपने जीवन-दर्शन की आधारशिला पर ही किया है जिनमे अमूर्त स्वप्न को मूर्त करने का प्रयत्न है। यही वह महत्वपूर्ण शक्तिमत्ता है जिस आधारभूत कारण से वह (कलाकार) युग के लिए, समाज के लिए स्तुत्य स्वीकृत होता है। कलाकार अपनी कला-सृष्टि को कान्त रूप प्रदान कर सरसता से अभिसिंचित कर, ऐसी दवा समाज को देता है जिसे जनता आनन्द से, सुरुचि से ग्रहण कर स्वस्थ बने। यही दर्शन शास्त्र और कला-कृति मे महत्वपूर्ण विभिन्नता है। साहित्य के माध्यम से विचार और दर्शन का हृदयगम किया जाना कठिन नही।"[1]

निश्चय ही कचनार अपने चरित्र और स्वभाव मे तेजमय परन्तु साधारण कोटि से उच्च-कोटि की नारी है, जो बहुत चिन्तन—मनन के उपरान्त कदम उठाती है। कलावती आदि की तरह वह रूप-मोह तथा मौन को ही जीवन का ध्येय नही मानती।

कलावती सामान्य नारी है जिसमे चारित्रिक दृढता कदापि नही। वह दलीप की धर्मपत्नी होकर भी मानसिंह की ओर आकृष्ट होती है और दलीपसिंह की मृत्यु के पश्चात, अल्पकाल मे मानसिंह से पुनर्लग्न कर लेती है। दलीप के जीवनकाल मे ही मानसिंह के एकान्त-मिलन पर, शका उत्पन्न होना, सामान्य तथा अन्तर के शकित मन का परिचायक है। वह कचनार की तरह पुरुष के मध्य रह, कमल-पत्र बनने की क्षमता नही रखती।

ललिता की साधारण नारी है, कलावती से भी निम्न श्रेणी की है जो तुरन्त

---

१. दिव्या एक अध्ययन, पृष्ट १, लेखक सियाराम शरणप्रसाद एम० ए०।

दिल की बात प्रकट कर देती है और मात्र 'नृपति' की सेवा अपना मूल कर्त्तव्य

मानसिंह को खल..ा क के रूप मे स्वीकार कर सकते है जो युवा है, रूप क शिकारी है। तभी तो भाभी से भी प्रेमचर्चा करता है, और उससे शादी कर लेता है उसे स्वय अपने चरित्र पर भी शका है (क्योकि वह गिरा हुआ व्यक्ति है) और तभ कलावती से अकेले मिलने पर, अनेक वितर्क उसकी मानस-सरिता मे हिल्लोल कर हैं। उसके चरित्र पर उसका प्रियमित्र भी शका प्रकट करता हुआ अपनी स्त्री सन्न से कहता है—"मैं ठहर नही सकता इसलिए कुछ साफ-साफ बतलाना। मानन (मानसिंह) की नजर तुम्हारे ऊपर है या नही ?-' (पृ० १७७ नृ० म०) वह कामान हो भाई तक को विष दे डालता है। अततोगत्वा हम इसी निष्कर्ष पर पहुचते हैं वि वह दोषग्रस्त मानवीय-पुतला का प्रतीक है जिसमे दुर्गुण ही दुर्गुण है। उसका चरि गतिशील रहा है, जिसका सुधार भी अत मे हो जाता है।

गुसाइयों[1] का महत अचलपुरी शूर, धार्मिक तथा ज्ञानी एव चतुर व्यक्ति है अवसर आने पर युद्ध करता है और विजयी होता है।

वह धार्मिक और ज्ञान का परिचय सर्वदा अपने प्रवचन के अवसर पर देता है उदाहरणार्थ देखें, वह दर्शन, आत्मा आदि गभीर विषयो पर भी विवेचन करता हु बोलता है—

"शास्त्र तो कामधेनु है। परतु शास्त्रो के उन स्थलो को पूर्व और अपर सबध मे समझने की कोशिश करनी चाहिए।"

"मनु महराज ने इन व्यसनो को दोष नही माना है, इनको मनुष्यो की प्रवृ बतलाया है, परतु यह आदेश अवश्य किया है कि मद्य-मासादि सबधी वासनाओ व निवृत्ति हो तो महाफल है।"[2]

वह परिस्थितियो को पूर्व ही समझने की भी अपूर्व क्षमता रखता है, दलीप व सेवा सुश्रूषा से जीवित रख, धामोनी को गुसाइयो का आश्रम-स्थल रूप मे देखना तय युद्ध सहयोग आदि की उचित जानकारी रखना इसी सत्य के द्योतक हैं। इसीलि कचनार, दलीप और सभी गुसाई उसकी बात का उल्लघन नही प्रत्युत् आदर औ सम्मान की दृष्टि से देखते।

वह बड़ा उदारपूर्ण विचार से अनुप्राणित और प्रगतिशील दीख पड़ता है।

दलीपसिंह का चरित्र इसमे सबसे अधिक जटिल और गुत्थियो से उलझा हुअ है। जिसके चित्रण मे लेखक ने अपने अपूर्व अनुभवो, प्राणि शास्त्र (Anthropology का ज्ञान तथा सुहृद डाक्टरो का सफल सहारा लिया गया है।[4]

---

१ "गुसाइयों को अपने अखाड़े में पसरत कुश्ती और तलवार चलाना सीखने के सिवाय के संस्कार तो पत्ता तक न पाता था, नाम मात्र के वैराग्य और भजन-पूजन की ओर ये बढ़े, सिप ... सिखाते थे।" पृ० २७०।

२ कचनार पृ० २६५,

३. "मैं इस अपिता को बिलकुल तुच्छ समझता हूँ। किसी स्त्री की इच्छा के विरुद्ध के उसके साथ विवाह-सम्बन्ध नहीं कर सकता।" पृ० २१८।

४ परिचय—देखिए इस दृष्टि से ध्यातव्य है।

स्वरूप परिवर्तन स्वाभाविक थे। मनोवैज्ञानिक भी इन्हे स्वीकार करते हैं।

इस प्रकार उसका चरित्र निरन्तर गतिशील और उन्नतिशील रहा है। वह परिश्रम और योगाभ्यास द्वारा मस्तिष्क के विकास के साथ आत्मशुद्धिकरण करता है, विकृतियो पर विजय प्राप्त करता है। निश्चय ही इसका चरित्र मार्मिक और सजीव है। उसके (दलीपसिंह) समस्त वाह्य आङ्गिक क्रियाकलाप तथा व्यवहार एक साधारण बच्चो सदृश हो जाते हैं। परन्तु शनैः-शनैः वह ज्ञान, बुद्धि स्मरण-शक्ति ग्रहण कर स्वस्थ मनुष्य बन जाता है।

'टूटे काटे'

ऐतिहासिक उपन्यास 'टूटे काटे' मे एक साधारण ग्रामीण जाट मोहनलाल तथा उसकी पारिवारिक स्थिति के चित्रण के साथ-साथ प्रसिद्ध वेश्या नर्तकी नूरबाई का जीवन, उत्थान-पतन की टेढी-मेढी पगडडियो से होकर एक महानता के उच्च शृग पर अधिष्ठित होता दिखाया गया है। मोहन फतहपुर का साधारण किसान था जिसके पास एक भैस, दो बैल, एक दूर का भाई तोता, एक झगडालू स्त्री रोनी तथा "घर मटैया बहुत साधारण-सी ही थी, परन्तु खेत अच्छे थे और गाव से दूर न थे। निकट ही ढोरो के चराने के लिए चरोखट थी, किन्तु कानूनगो और जमीदार के वज्र सिर पर लटक रहे थे। मोहनलाल, कानूनगो और जमीदार के बैल और अनाज का अधिक भाग छीन लेने तथा स्त्री के रूक्ष तथा कडे व्यवहार से क्षुब्ध होने पर, खाने तथा कमाने की लालसा से ससार मे अकेला निकल पडता है। फिर उसे दिल्ली के सम्राट मुहम्मदशाह (१७१९–१७४८) के मीरबख्शी सादतखा की छावनी मे सिपाही की नौकरी मिल जाती है। बाजीराव की सेना के परास्त होने के समय मोहनलाल एक मराठी सैनिक सुवराती को रहम कर छोड देता है। फिर उसे बाजीराव के विजय के उपलक्ष मे आयोजित जशन मे सम्मिलित होने का सुअवसर प्राप्त होता है जहा उसे नर्तकी नूरबाई का नृत्यमय सगीत सुनने का अवसर मिलता है। पुन. मराठो के युद्ध मे वह मराठो द्वारा पकड लिया जाता है जहाँ सुवराती की सहायता से उसे मराठो की सेना मे काम मिल जाता है। तोता और रोनी को मुसलमानो द्वारा मोहन की मृत्यु की सूचना मिलती है। वे हिन्दू धर्मानुसार क्रिया-कर्म भी कर देते है। और कानूनगो आदि के व्यवहार से क्षुब्ध हो अपना घर तथा जमीन एक किसान के पास धरोहर रखकर कमाने की लालसा मे भरतपुर के एक जाट के यहा आश्रय ग्रहण करते हैं परन्तु धन के प्रबल लोभ से सचालित रोनी के कहने पर तोता लूट-मार भी करने लगता है।

छुट्टी मे मोहन अनेक स्वप्नो को सजाना जब फतहपुर रात्रि को पहुचता है तो अपने घर पर रोनी और तोता को नही देखता और उसमे बैठ आग तापने वाले उसे भूत समझ हल्ला मचाते हैं, लोग लाठी-बन्दूक लेकर दौडते हैं, और मोहनलाल किसी प्रकार पोखर मे डूबता-तैरता दिल्ली पहुचकर मुगल बादशाह का सैनिक बन जाता है। नूरबाई सादतखा से आग्रह कर बादशाह के सम्मुख मुजरा कराने का प्रबन्ध करती है और रगीला तथा विलासी बादशाह उसे अपने हरम (रनिवास) मे रख लेते हैं। सादतखा नूर को चाहता था अतः क्षुब्ध हो, हैदराबाद के निजाम के साथ नादिरशाह

को निमन्त्रण देता है और नादिरशाह उपयुक्त अवसर देख, लाहौर फतह करता दिल्ली पहुचता है। मुगल शहशाह कुछ नही कर पाते और नूर के मोहक सगीत से उसे (नादिरशाह को) मोह लेना चाहते हैं, जिससे वह मात्र नूर को लेकर सन्तोष करे। परन्तु नादिर नूर के साथ धन भी अनिवार्य रूप मे चाहता है। नूर नादिर के साथ ईरान जाना नही चाहती थी अत भयभीत हो गुप्त रूप से निकल भागना चाहती है जिससे सैनिक मोहनलाल की सहायता से उसी के (मोहन के) साथ निकल भागती है। मोहनलाल के साथ वह मार्ग की कठिन यातनाओ और पीडाओ को झलती है और वे परस्पर महानुभूति और सवेदनात्मक प्रेम से आकृष्ट होते हैं। मोहनलाल नाना बाधाओ से नूर की रक्षा करता हुआ दिल्ली से दूर एक ग्राम के चिन्तामन जाट के यहा विश्राम लेता है जो दोनो को अपने लोगो की तरह रखता है। एक दिन चिन्तामन और उसके सहयोगी एक मराठा घायल सैनिक को, सरदार समझ उससे रुपया ऐंठने के लोभ मे, पकड लाते हैं। मोहन उस घायल सैनिक को, जो शुबराती था, पहचान कर खूब सेवा सुश्रूषा करता है। मोहन नूरबाई से उसके पास सुरक्षित जवाहरतो से थोडा लेकर, रुपया बनाने आगरा जाता है, जिन रुपयो द्वारा वह शुबराती को मुक्त करा सके। चिन्तामन को शका होती है कि कही वह मेरे विरुद्ध षडयन्त्र करने गया है, या अन्य सैनिको को बुलाकर मुझे पकडवाने की चाल चल रहा है। अतएव उसके पीछे अपने कुछ आदमियो को छोडता है। वे लोग मोहन का पीछा करते एक जौहरी के यहाँ उसे देख लेते हैं। लौटते समय भी वे उसका पीछा करते है। उसी समय उन लोगो पर तोता का दल आक्रमण करता है। तोता दूर से अपने से कुछ कदम आगे मोहन को देख भून-भून चिल्लाता भागता है, और उसके साथी भी घबराकर भागते है। चिन्तामन के भेदिये भी मोहन का पीछा छोड भाग जाते हैं। मोहन सुरक्षित पहुच, रुपया देकर, शुबराती के साथ मथुरा चल पडता है। चिन्तामन चौधरी को शका होती है कि नूरबाई के पास छिपा धन है। और वे जान जाते हैं कि नूर बसनी मे रुपया छिपाये हैं परन्तु घर पर आश्रय मे आए अतिथि को लूटना अधर्म समझकर, मार्ग मे लूटना धर्मसगत समझते हैं और मथुरा पहुचने के पूर्व मोहन आदि को घेर लेते हैं। और उसे घायल भी कर देते हैं, परन्तु नूर वीरतापूर्वक धन के मोह को त्याग कर बसनी उन्हे सौंप कर, मोहन आदि के प्राणो को बचाते हैं। वे मथुरा, फिर वृन्दावन पहुचते हैं। नूर की कन्हैया (ईश्वर) के प्रति गहरी भक्ति जाग्रत होती है। वह सर्वदा उनकी बासुरी की झकार और मुस्कान चतुर्दिक व्याप्त अनुभव करती है। वहा वे दोनो सुखमय जीवन व्यतीत करने लगते हैं तभी तोता और रोनी मोहन की भूतात्मा की शान्ति के लिए वृन्दावन आते हैं और अकस्मात मोहन को देखते हैं। वे सभी परस्पर एक दूसरे की परिस्थिति से अवगत होते है। नूर रोनी पर प्यार बरसाती है और दोनो बहन की तरह रहने लगती हैं। तोता फतहपुर चला जाता है। इसी बीच ब्रजराज बदनसिंह के आदमी रोनी और नूर को लालच देकर बदनसिंह के महल मे ले जाना चाहते हैं जिन्हें रोनी और नूर खूब फटकार सुनाती हैं। मोहन को इसमे भी चिन्तामन का हाथ मालूम पडता है इसलिए वहाँ की जनता को इकट्ठाकर, वृन्दावन की सुरक्षा के लिए दल बनाकर, चिन्तामन को घेर लेता है, और बसनी

लौटा जाता है। नूर उन धन को यमुना में फेंककर कृष्ण की भक्ति में, मीरा की तरह विह्वल हो उठती है। और मोहन तथा नूर परस्पर आदर्शवादी प्रेमी के सदृश बने रहते हैं। दोनों भाभी भैंस आदि लाकर खेती आदि आरम्भ करती हैं और यथासम्भव अपने स्वभाव में परिवर्तन लाने का उपक्रम करती है और तीन व्यक्तियों का सुखी परिवार बना लेती है। इस प्रकार कथावस्तु आदर्शभावनात्मक प्रेम, मैत्री का पवित्र कर्तव्य दिखा कर, उच्च गरिमा की प्रतिष्ठा कर समाप्त हो जाती है।

नूर जैसी लालसाजनित ज्वार में दग्ध नारी सत प्रेम की बूंद प्राप्त कर श्रद्धेय नारी बन जाती है। दोनों भी अपनी क्रोधात्मक एवं हिंसापूरित वृद्धि के लिए प्रायश्चित कर सुधरने का प्रयत्न करती हैं। झगड़ालू नारी के कारण किस प्रकार पारिवारिक शांति की विनष्टि सम्भाव्य है इसका भी आलोच्य कृति में सफल अंकन है। ठीक ही कहा गया है—"There is no peace, saith the lord, unto the wicked" (Old testament)।

चिन्तामन जैसे लुटेरों को भी अपने कार्य का उचित दंड अन्ततोगत्वा अवश्य मिल जाता है। इस कथानक में भी आदर्शवाद का प्रतिष्ठान है, परन्तु आरम्भ और अन्त आकर्षक होकर भी कहीं-कहीं गतिशीलता तथा रोचकता में शिथिलता दीख पड़ने लगती है। परन्तु ३९० पृष्ठों के इस उपन्यास में एक दो स्थल पर ही उक्त दोष है जिससे आलोच्य कृति की सफलता पर तुषारापात नहीं होता। अन्त का निर्वाह तो बड़ा ही आकर्षक और प्रशंसनीय है। सभी घटनाएं समवेत रूप में एक लक्ष्य संयोजन में अग्रसर होती हैं।

घटना प्रधान 'टूटे कांटे' में मुगल सम्राट मुहम्मद शाह की विलासप्रियता, शासन में अनुशासनहीनता, भारतवर्ष में फैली तत्कालीन अराजकता, लूट-मार, मराठों, जाटों, निजाम का परस्पर द्वेष आदि सभी राजनैतिक पक्षों का बड़ा स्पष्ट और सत्य चित्रण है जिनमें वर्मा जी के ऐतिहासिक ज्ञान की प्रशंसा किये नहीं रह सकते। साधारण ग्रामीण तथा नागरिक की अवस्था दयनीय, चिन्ताग्रस्त थी। जान और माल की सुरक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं था। रहन-सहन, वेशभूषा पर भी उचित प्रकाश है।

आलोच्य कृति का कथोपकथन भी सरल है जिसमें साधारण जनता के साथ ही शासक वर्गों की मानसिक विश्लेषणात्मक स्थिति का पूर्ण भान हो जाता है। यदि कथोपकथन मानसिक भावनाओं के साथ ही रोचक, संक्षिप्त और सार्थक तथा पात्रानुकूल न हो तो वह दोषपूर्ण माना जायगा।[1] 'टूटे कांटे' पर इस दृष्टि से दोषारोपण नहीं किया जा सकता।

वर्मा जी की अन्य आदर्श नियोजित कला कृतियों की तरह 'टूटे कांटे' भी है जिसमें जीवन के विविध भावभूमि, मानवीय गुणों के विकास, उसकी प्रतिष्ठा का अधिष्ठान है, जिसके मिस से मोहन जाट ने अपनी जघन्य मानवोचित प्रवृत्तियों को परिपोषित कर, प्रेम के गौरव ध्वज को उन्नत रख हमारे सम्मुख उपस्थित किया

१. गुलाबराय, पृ०८० "जो कथोपकथन कथानक को अग्रसर नहीं करता या चरित्र पर प्रकाश नहीं डालता वह चाहे कितना सुन्दर हो, उपयुक्त न होगा।" —काव्य के रूप, पृष्ठ—१८२।

है। वेश्या नूर वास्तविक 'नूर' मे परिवर्तित हो सकी है। प्रस्तुत स्थल पर चन्द्रकात केणी की कहानी देवता की याद आती है जिसमे जिवा मिजोर को दुर्मिग के पजे से रक्षा करने के कारण देवता मानने लगती है, परन्तु उसका शारीरिक सम्बन्ध नहीं होता, क्योकि देवता के सम्मुख ऐसा सम्बन्ध हेय होता है।

'टूटे-काटे' मे शैली की एकरूपता और सरलता है, परन्तु आकर्षक है। मुगलो के वार्तालाप आदि अवसर पर उर्दू शब्दो का भी प्रयोग है, परन्तु ऐसे क्लिष्ट और दुरूह फारसी आदि के शब्द नही, जिससे पाठको को पठन क्रिया मे व्याघात नही होता। जैसा प्रेमचन्द के 'कर्बला' नाटक तथा राजा राधिकारमण आदि के कुछ उपन्यासो मे होता है। सामाजिक स्थिति, त्रास की दशा, अनैतिकता, अराजकता का प्राधान्य, जन-धन की असुरक्षा आदि के चित्रण मे ऐतिहासिक सत्यो के साथ कल्पना का भी मणि काचन सम्मिश्रित है। "मुख्यत दो प्रकार के सत्य हुआ करते हैं, एक तो कठोर सत्य होता है, जो आखो देखा सत्य है, और दूसरा सत्य सम्भावित सत्य होता है, जो आखो देखा न भी हो तो उस पर विश्वास किया जा सकता है। इन सम्भावित सत्यो को भी ऐतिहासिक यथार्थ के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है, यदि वे तर्क एव सभावना से परे की घटनाए नही है। ऐतिहासिक उपन्यासो मे हमे ऐसा समाज और उसके व्यक्तियो का चित्रण करना पडता है जो सदा के लिए विलुप्त हो चुका है। किन्तु उसने पद चिन्ह कुछ जरूर छोडे हैं, जो उनके साथ मनमानी करने की इजाजत नही दे सकते।"[1]

विक्टोरियन युग मे कुछ ऐसे उपन्यासो का भी सृजन हुआ जिनमे ऐतिहासिक परिस्थितिया और सामयिक जीवन का व्यापक और चित्रण उपस्थित किया गया। 'दी क्लाइस्टट एण्ड दी हर्थ' नामक उपन्यास (चार्ल्स रीड लिखित) इसी का उदाहरण है। 'टूटे काटे' मे भी सफल सम्मिश्रण है इसे हम अस्वीकार नही कर सकते।

चरित्र-चित्रण

रोनी, मोहन और नूरबाई इसके प्रमुख व्यक्तित्व हैं, जो सम्पूर्ण उपन्यास के मूल हैं।

मोहन एक ऐसा व्यक्ति हैं, जिसमे पौरुष है, कृतज्ञता है, किसी की भलाई करने की उदारता है। जहाँ वह अपनी स्त्री के झगडालू स्वभाव से पीडित हो सेना में चला जाता है, वही वह मनुष्य से क्रूर राक्षस नही बन जाता और इसी का उदाहरण है शुबराती की रक्षा। वह तो मित्रता के निमित्त अपने धन और प्राण की भी चिन्ता नही करता और चिन्तामन से शुबराती का उद्धार कराता है।

इसके अतिरिक्त वह नारी के प्रति भी सुहृद है और उसके प्राण के लिए सब कुछ करता है। नूरबाई की रक्षा इसी का प्रमाण है। लेकिन वह कामुक पुरुष नही है तभी नूरबाई के प्रति कभी अनुचित आचरण नही करता, यद्यपि नूरबाई अद्वितीय सुन्दरी है।

रोनी एक क्रोधी स्वभाव की, आकाक्षावाली स्त्री है। वह धनार्जन निमित्त पति और देवर को अनुचित मार्ग भी भेजने मे सकोच नहीं करती। देवर इसी के

फलस्वरूप डकैत बन जाता है। सब तरह से वह साधारण, स्वाभाविक और निम्न कोटि की नारी है। परन्तु अन्त मे लेखक ने उनका सुधार कर दिया है।

नूरबाई अद्वितीय रूपवती वेश्या है जिनका चरित्र विचित्र तत्वो से बना है। वह वेश्या होकर भी भारत से प्रेम रखती है¹, कामुकता को हेय समझती है और अन्त मे एक कृष्ण भक्तिन बनकर अपना महत्त्व निर्धारित करती है। निश्चय ही उसका चरित्र गतिशील, भावुकतापूर्ण, उदारशील है जिसके प्रति पाठक का मन अवश्य ही आकृष्ट होता है।

स्मरण रहे, वृन्दावनलाल वर्मा जी मे चरित्र-चित्रण के सफल अकन की अपूर्व दक्षता है। 'झासी की रानी लक्ष्मी बाई', 'मृगनयनी', 'माधव जी सिन्धिया' आदि का पाठक निश्चय ही मेरे कथन को स्वीकार करेगा।

'झासी की रानी-लक्ष्मी बाई' भी ऐतिहासिक कला सृष्टियो मे अपूर्व है, जिसमे इतिहास और साहित्य का अद्भुत तथा सफल सयोजन है।

झासी की रानी लक्ष्मी बाई का बाल्यकाल से आद्योपान्त शौर्यजीवन तथा उससे सम्बद्ध घटनाए आलोच्य उपन्यास मे आधार हैं, जिसमे लक्ष्मी बाई छोटी अवस्था में ही अधिक वय वाले, प्रौढ, झासी के नृप गगाधर राव की स्त्री बनती है, पुन पुत्रवती होती है। दुर्भाग्यवश वह सन्तान काल कवलित होती है अतएव गगाधरराव की मृत्यु के समय दामोदर को गोद लेकर राज्य की रक्षा करती है। परन्तु राजनीतिज्ञ अग्रेज उस गोद को अवैध स्वीकार कर, उस राज्य को अपने आधीन कर लेते हैं और समयानुसार तत्युगीन वैषम्यता, शक्तिहीनता, परस्पर द्वेष, असगठन से पर्याप्त लाभ उठा शनै -शनै. प्रत्येक भारतीय विशृंखलित राज्य को वे अपने आधीन करते जाते हैं।

उस युग मे भी कुछ ऐसे व्यक्ति थे जिनके अन्दर देश-प्रेम की पवित्रता थी वे अग्रेजो के षड्यत्र को भलीभाँति समझते थे। तांत्यटोपे और लक्ष्मीबाई के अदम्य उत्साह एव साहसपूर्ण कर्त्तव्य मे सभी प्रान्तो और राज्यो मे १८५७ मे गदर-क्रान्ति होती है—परतत्रता की, दासता की कडियो को तोडने का प्रयत्न होता है।

झासी पर लक्ष्मीबाई चतुराई मे आधिपत्य स्थापित किये रहती है। अग्रेज निरन्तर युद्ध और आक्रमण से उसे पराजित नही कर पाते। परन्तु दूल्हाजू सरदार को अग्रेज अपनी ओर मिला लेते है, जो युद्धकाल मे ओर्छा फाटक खोल देता है, और अग्रेज भीतर प्रवेश कर जाते हैं। लक्ष्मीबाई दृढता और धैर्य से युद्ध करती रहती है, परन्तु उनके प्रमुख सरदार गोलदाज, तोपची, सैनिक बुरी तरह मारे जाते हैं, तो वह कुछ सवारो को लेकर अग्रेजो के व्यूह को चीरती निकल भागती है और पेशवा रावसाहब की सेना के साथ जा मिलती है। रानी तथा तात्याटोपे किसी तरह पेशवा तथा नवाब आदि की सम्मिलित सेना को लेकर ग्वालियर जीत कर, पुन सैनिकों की

---

१. प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' की कार्नेलिया, विष्णु प्रभाकर के नाटक 'समाधि' की शादवाली भी भारत के प्रति अगाध प्रेम रखती है। परन्तु उनका प्रेम काल्पनिक नहीं है। राजा राधिकारमण के 'पूरब और पश्चिम' उपन्यास में मेरी भारतीय संस्कृति के प्रति गहरी आस्था रखती है, और वह इसी में खो भी जाती है। इसी प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं। रसखान तो मुसल्मान होकर कृष्ण के उपासक थे।

अनुशासनहीनता पेशवा की विलासिता आदि प्रमुख कारणो से उसे (ग्वालियर) खो बैठते हैं और ग्वालियर युद्ध मे ही रानी पुन अंग्रेजो के छक्के छुडाती दामोदर (गोद लिया पुत्र) को लिए भाग निकलती है परन्तु घायल हो जाती है। रानी के देश-प्रेमी सरदार रघुनाथसिंह, गुलाममुहम्मद, देशमुख आदि रानी का पीछा करने वाले सैनिको को मार भगाते हैं और रानी के शव का दाह-सस्कार कर एक चबूतरा बना देते हैं जिसे अंग्रेज पता नही लगा पाते। और इस प्रकार रानी तथा तत्युगीन देश-प्रेमियो द्वारा किया गया सग्राम भारत के स्वतत्रता प्रेमियो के लिए प्रेरणा का स्रोत बन जाता है। रानी की चारित्रिक दृढता, तथा वीरता देख झासी के युद्ध के जनरल रोज ने कहा था—"She was the best and the bravest of them all"

आलोच्य कृति पढते समय अनायास बंकिमचन्द्र के 'आनदमठ' का स्मरण हो आता है। आनन्दमठ' का अन्त भी 'झासी की रानी-लक्ष्मी बाई' की तरह अत्यन्त करुण और दुखद है, जिससे आखे भर जाती हैं, हृदय फूल उठता है। प्रभावपूर्णता दोनो मे ही बेजोड है। परन्तु 'आनन्द मठ' का आन्दोलन देश-व्यापी न होकर सीमित था। यहा इसका अधिक विराट रूप व्यापक है। उसमे अधिक राष्ट्रीय चेतना का प्रकर्ष है। "अहिल्याबाई" से भी अधिक विस्तार एव करुणा उस कृति मे फूट पडी है। शेक्सपीयर का (Julius Caesar) भी वहा बडा मार्मिक और करुण हो उठा। जब सीजर अपने परम विश्वासपात्र ब्रूटस द्वारा हत्या किया जाता है और वह कहता है—"Et tu Brute!" (Thou too Brutus)[1]

उस समय सभी पाठक तिलमिला उठते हैं। कुछ उसी प्रकार की परिस्थिति तब उत्पन्न होती है जब विश्वासी सरदार दूल्हाजू के पाप से रानी का आश्रय और धैर्य टूटता है, वह विनाश के समीप पहुच जाती है। सम्पूर्ण उपन्यास मे वीर और करुण रस प्रधान है।

ऐतिहासिक उपन्यास मे वातावरण और देशकालीन सामयिक राजनैतिक, आर्थिक सामाजिक पक्षो का सतुलन एव सूक्ष्मातिसूक्ष्म ज्ञान आवश्यक होता है, और इनका ज्ञान, कौशल और चातुर्य वर्मा जी मे अपूर्व है। 'गढ कुडार, और 'विराटा की पद्मिनी' से अधिक दक्षता (इन तत्व की दृष्टि से) आलोच्य कृति मे दृष्टव्य है। स्पष्ट शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि इसमे तत्युगी कराहती भारत की सच्ची आत्मा का नितान्त सत्य चित्र है।

कथानक के सबध मे ध्यानत्व है कि मोती, खुदाबख्श, सुन्दर, रघुनाथसिंह, जूही, तात्या, नारायण शास्त्री, छोटी, पूरन और झलकारी आदि के कथानक भी मूल के साथ सुदृढता और सफलता से सम्बद्ध हैं।

जनेऊ लेकर तत्युगीन समाज मे उठे सघर्ष, हल्दी, और कूकू त्यौहार की मर्यादा और लोक भावना[2] स्त्री के मनोभाव (पृष्ठ ९७, ३४६ आदि), यज्ञ आदि मे व्यर्थ का वितण्डावाद (ब्राह्मणो का पृष्ठ ३२२), नारी स्वातत्र्य की प्ररणा आदि सामा-

१ Julius Caesar Act III Scene I

२ झासी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ० ९७।

जिक वातावरणों पर ही सुस्पष्ट प्रकाश पड़ जाता है। मुसलमान-हिन्दू प्रेम, नवाबों, रजवाड़ों की विलासिता, परस्पर राज्यों का द्वेष, अंग्रेजों का अत्याचार और नीतिपूर्वक राज्य-विस्तार आदि चित्र तत्कालीन राजनैतिक वातावरण व्यक्त करने में समर्थ हैं। और इसी माध्यम से स्त्री-स्वातंत्र्य के प्रति विश्वास तथा विनोद आदि पर लेखक ने आक्षेप प्रगट किया है। जहाँ किशोरीलाल गोस्वामी, भगवतीचरण वर्मा आदि में इस कौशल का अभाव है, वहाँ राहुल, रांगेय राघव और वृन्दावनलाल वर्मा में यह गुण है। वर्मा जी की सफलता का एक और बड़ा रहस्य यथार्थ भूमियों का स्वाभाविक अभिव्यक्तिकरण है।

आलोच्य कृति में स्वाभाविक, सरल तथा सार्थक कथोपकथन है। परन्तु कई स्थलों पर स्वाभाविकता के लिए वर्मा जी ने झांसी में प्रयुक्त बोली का उपयोग किया है। उदाहरणार्थ, वह स्थल देखें जहाँ झलकारी कारिन साधारण परिवार की होने के फलस्वरूप किन शब्दों में बातें करती है—

"झलकारी बोली, 'महाराज मोरे घर में पुरिया-पूरबे और कपड़ा बुनिबे को काम होत आयो है। पै उनने अब दओ है। मलखब कुस्ती और जाने का का करन लगे।'"[1]

साधारण जनता आदि के लिए लेखक ने क्षेत्रीय बोली का ही उपयोग कई स्थलों पर किया है। देखें, साधारण जनता के वार्तालाप किस प्रकार होते हैं

कपड़े की दूकान में कुछ कपड़ा मोल लेकर एक देहाती ने दुकानदार से पूछा 'काये जू अब झांसी में का होने ?'

'जो होन आओ है सो हुए'—उत्तर मिला।

बात चीत का सिलसिला चला।

"महाराज के स्वर्गवास के पैले कुंअर गोदी लएते तो सबरो सनार जानता या गोद के मनवाने के लाने उनने अपने सामने अर्जी लाटसाब लों पोंचा दईती। अबैं अतर जई आओ।

'गोद मनवावे के लाने अर्जी ! जो कैसो अंदेर गम। हम अपने गावन में रोजई गोद लेत देत, पै ईकैं लावें अर्जी पुर्जी तो कोऊ नईं देत।' 'अगरेजन ने नये-नये कानून निकारे है'" आदि। लेखक ने पाठकों और उर्दू-भाषियों के मुख से उनकी स्वाभाविक भाषा का रूप प्रकट किया है "गुलमुहम्मद ने कहा—'सरकार हमारा सारा कौम मुल्क वास्ते कट मरेगा।'" (पृ० ४१९), इसी प्रकार पृ० ४२८ आदि भी देखे जाते हैं। प्रेमचंद ने भी कई स्थलों पर ग्रामीणों के वार्तालाप चित्रण में यही प्रवृत्ति

---

१ वही, पृ० १४६-१५०।

२ डा० रामविलास शर्मा ने लिखा है—"श्री वृन्दावनलाल वर्मा का उपन्यास "झांसी की रानी—लक्ष्मीबाई" हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में एक मील का पत्थर है। इसके पूर्व ऐसे ऐतिहासिक हैं जिन्हें पढ़कर उपन्यास पढ़ने से ऐतिहासिक उपन्यासकारों का नाम सार्थक न हो सकेगा। वास्तव में यह है कि वर्मा जी ने लक्ष्मीबाई के चरित्र का अंकन भी इसी उपन्यास की प्रधान वस्तु बना डाला है। उनकी रचना में सामाजिक निपुणता, ऐतिहासिक स्थान, कहीं-कहीं विचार उलझा, वा मधुर भेदों, बुंदेलखण्ड की भाषा प्रकृति आदि के वर्णन और चित्र मिल जाते हैं।" 'झांसी की रानी का परिचय' शीर्षक लेख—'पारिजात' त्रैमासिक पत्र, जनवरी १९४८।

रखते थे। विष्णु प्रभाकर के उपन्यास 'निशिकांत', 'तट के बंधन', अमृतलाल नागर कृत 'बूंद और समुद्र' आदि मे भी यही सत्य है। फणीश्वरनाथ 'रेणु' के दो नव प्रकाशित उपन्यास 'मैला आंचल' 'परती परिकथा' मे तो आंचलिकता प्राण है। आंचलिक बोली ही सर्वत्र मुख्य है। कई आलोचक इसके पक्ष मे मत रखते हैं। परंतु मेरी धारणा भिन्न है। भले ही स्वाभाविकता के लिए लेखक ऐसा करना चाहते हैं परंतु इसे भाषागत दोष ही माना जायगा। 'साहित्य' की भाषा भी 'साहित्यिक' होनी चाहिए। हा, वह जनसाधारण के निकट रखी जा सकती है, परंतु जनसाधारण की आंचलिक बोली नही। साथ ही, वैसे प्रयोग मे संभव है, दूसरे क्षेत्र के पाठकों को बड़ी असुविधा हो, जिससे भी एक खतरा उत्पन्न होगा। जन-बोली मे लिखने पर भाषा तथा व्याकरण को भी भुला देना आवश्यक होगा—जो उचित नही। कभी-कभी तो प्रांतीय, देशीय बोली की विभिन्नता के फलस्वरूप अर्थ समझना भी कठिन होगा। इस दृष्टि से सभी के लिए साहित्य रूप बनाए रखने के निमित्त परमावश्यक हैं शुद्ध रूप ग्रहण किया जाए—अर्थात् शुद्ध हिंदी का ध्यान रखा जाए। आज का पाठक इतना समझदार अवश्य होता है कि बोली के प्रयोग की आवश्यकतानहीं समझता। हा, हम इतना ही अंतर रख सकते हैं कि विद्वानो और नृपो की (आवश्यकतानुरूप) भाषा अधिक सुसंस्कृत और गंभीर तथा प्रांजल हो और साधारण प्राणियो के लिए सरलतम। जयशंकर प्रसाद जी के साहित्य मे भी दोष ही है जो उनके साधारण-से-साधारण पात्र भी संस्कृतनिष्ट और दार्शनिक भाषा बोलते हैं।[1] अंग्रेजी-साहित्य में आधुनिक लेखक जेम्स ज्वायस ने तो जो रूप भाषा का रूप विगाड़ा है, वह दोष ही है। परंतु जनभाषा के अवांछित प्रयोग महत्वपूर्ण माने जाए तो वे भी (ज्वायस भी) दोषी नही ठहराये जायेंगे।

रोचक कथावस्तु, कथोपकथन, शैली, सभी दृष्टियो से "झांसी की रानी-लक्ष्मी बाई" की प्रशंसा की जायगी। आरंभ और मध्य भाग मे कुछ परिचयात्मक वर्णनात्मकता है। (पृ० ४५८-६०, ४९७ आदि) परन्तु अनेक गुणो के सम्मुख वह दोष छोटा ही है। साथ ही ऐतिहासिक कृतियो मे यह कुछ दूर तक क्षम्य भी है। क० मा० मुंशी की ऐतिहासिक कृतियो मे इस दिशा मे भी काफी सजगता है। 'जय सोमनाथ' आदि देखें, इसमे सजगता से आकर्षण और वेग और अधिक बढ गया है। इस दृष्टि से 'अहिल्याबाई' मे परिचयात्मक विवरण कुछ अधिक है जो दोष ही माना जायगा।

उद्देश्य के संबंध मे लेखक द्वारा व्यक्त दो बातों का पता चलता है, (१) अपने पूर्वजो द्वारा सुनी गई रानी (लक्ष्मी बाई) के वीर-कार्य जिसके प्रति लेखक को संस्कारगत श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी, जिसकी व्यंजना की आवश्यकता थी, तथा (२) पारसीन मे लिखित कि रानी अंग्रेजो की ओर से लडी, अंत मे अंग्रेजो से दुखी होकर उनसे लडी तथा रानी का "शौर्य विवशता की परिस्थिति मे उत्पन्न हुआ था" से लेखक की श्रद्धा भावना पर ठेस लगी और वह इस भ्रामक धारणा को खंडित करने के लिए ऐतिहासिक वस्तुस्थितियों का अध्ययन सूक्ष्मता से करने लगा और अंत मे सामग्रियों,

---

१ नाटकों के साथ 'इरावती' उपन्यास को भी इस दृष्टि से देख सकते हैं।

किम्वदंतियों से उसे (लेखक को) जो सत्य ज्ञात हुआ उसे पाठक के सम्मुख रखने की चेष्टा। आगे वर्मा जी ने और भी स्पष्ट शब्दों में कहा है—"मैंने निश्चय किया कि उपन्यास लिखूंगा। ऐसा जो इतिहास के रग-रेशे से सम्मत हो और उनके संदर्भ में हो। इतिहास के कंकाल में मांस और रक्त का संचार करने के लिए मुझको उपन्यास ही अच्छा साधन प्रतीत हुआ।" (परिचय, पृ० ४ झांसी की रानी लक्ष्मीबाई)

(३) उपर्युक्त तथ्यों की जानकारी के साथ ही मेरी कुछ और भी धारणा है कि वर्मा जी की इस श्रद्धा और निष्ठा भावना तथा सत्य के अन्वेषण के साथ ही उनमें युग को नैराश्यजनित वातावरण से मुक्त दिलाकर वीरत्व का तेज उदित करने की वाञ्छा है। युग को सीख देना कलाकार की प्रेरणा है। इस दृष्टि से इसकी समुचित व्याख्या आधारभूत कारणों पर प्रकाश 'युग चेतना और पृष्ठभूमि' में डाला जा चुका है। रानी की हार चित्रित कर ऐतिहासिक रक्षा के साथ लेखक में अत्याचार के प्रति घृणा की भावना, संगठन की एकता की सजगता तथा स्वतंत्रभावना, राष्ट्रीय कर्त्तव्य-प्रेम मुखर है। निश्चय ही ये सभी समवेत प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष अनुपेक्षणीय चेतना ही हैं। (४) रानी के मुख से भी लेखक गीता के भावों के सदृश जनता और पाठक से कहता रहा है—"स्वराज्य की स्थापना में कितने खप गए। यह आवश्यक नहीं है कि स्वराज्य की स्थापना हम अपने जीवन-काल में ही देख लें। सीढ़ी के डंडे पर पैर रखते ही हम छत पर नहीं पहुंच जाते। एक ही त्याग, एक ही मरण, एक ही जन्म से स्वराज्य नहीं मिलता है। स्मरण रखो—हमको केवल कर्म करने का अधिकार है, फल का नहीं।[1] दृढ़ उद्देश्य और निरंतर कर्म—हमारा केवल ध्येय यह है। जीवन कर्त्तव्य-पालन का नाम है—कर्त्तव्य पालन करते हुए मरना जीवन का ही दूसरा नाम है।" (पृष्ठ ३९५)। अतएव निराशा का प्रश्न ही नहीं है। इसके अतिरिक्त (५) भारतीय क्रांति की असफलता, उतावलापन और दूलहा जू के विश्वासघात, तत्युगीन विलासिता पर प्रकाश है, (६) साथ ही जातीयता की संकीर्णता मिटाने की आवश्यकता (जनेऊ कांड द्वारा), तथा (७) अन्तर्जातीय व्याह आवश्यक स्वीकार किया गया है। अतः मर्म को समझने वाले प्रत्येक आलोचक तथा पाठक मेरी इस सम्मति से पूर्ण सहमत होंगे कि कर्त्तव्य की प्रेरणा, संघर्ष में दृढ़ रहने की भावना आलोच्य कृति में लक्ष्य है जिस प्रकार वर्मा जी की अन्य कृतियों में प्रेरणा तथा कर्त्तव्य का अपूर्व आग्रह पाते हैं। प्रस्तुत दृष्टि चेतना की कसौटी भी वर्मा जी को आदर्शवादी कलाकार की श्रेणी में समादृत करेगी। झांसी की रानी की मृत्यु से दुख तो होता है परंतु प्रेरणा मिलती है। प्रसाद जी ने भाग्य को महत्व देकर भी अंतिम कर्त्तव्य का संदेश दिया। 'प्रेमचंद' साहित्य में भी कर्त्तव्य का महत्व है—इसे हम अस्वीकार नहीं कर सकते

---

१. गीता में श्री कृष्ण भगवान ने भी कहा है—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥ २ अध्याय, श्लोक ३८।
कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥ २ अध्याय, श्लोक ४७।

और रानी कई स्थलों पर तथा मृत्यु के समय भी 'गीता' की पंक्ति बोलती है।

अन्त मे यह भी स्पष्ट कहना आवश्यक है कि आलोच्य कृति द्वारा लेखक ने नारी स्वातन्त्र्य की आवश्यकता भी प्रकट की है। रानी की सफलता मे नारियो का भी विशिष्ट स्थान है—सुन्दर, मुन्दर, काशी, जूही, मोती सभी इसी पक्ष के उदाहरण हैं। रानी तो नारियो के भी कर्तव्य और रूप के साथ शौर्य चाहती थी, और जो आज भी आवश्यक है। परिशिष्ट पृष्ठ ५०६ मे वर्मा जी ने स्वय लिखा है—"रानी ने जो स्त्री-सेना बनाई थी वह भारत का एक अचम्भा है। इस सेना मे महाराष्ट्र-स्त्रिया बहुत कम थी। बुन्देलखण्डी स्त्रिया बहुत ज्यादा और विविध जातियो की। यदि लक्ष्मीबाई स्वराज्य स्थापना के प्रयत्न मे सफल हो जाती तो भारत की नारी उस गिरी हालत मे कदापि न होती जिसमे उसका एक अश आज है।"

मैं कई स्थलो पर व्यक्त कर चुका हू कि प्राकृतिक चित्रण की अद्भुत कला वर्माजी मे है। आलोच्य कृति मे भी यही सत्य है। वर्माजी कथाभूमियो को स्वय निरीक्षण कर लिखते हैं जिससे प्राण आ जाता है। प्रकृति चित्रण की दृष्टि से पृष्ठ २८४, १५, ९५ आदि देख सकते हैं जिसमे स्वाभाविकता और प्राणो का स्पन्दन है। कही सरस तो कही भयानक रूप (पृष्ठ २४६) भी नियोजित है।

यत्रतत्र अलकारो के रूप मे भी प्रकृति का उपयोग है। जैसे—"रानी हस पडी, जैसे सध्या के पीले बादलो मे दामिनी दमक गई।" इसीलिए श्याम' जोशी एम० ए० ने ऐसे वर्णनो को गद्य-काव्य या चित्र-काव्य भी कहा है। 'ऐसे चित्रो के दो ही उपयोग हैं—एक तो इनमे वातावरण निर्माण मे सहायता मिलती है और दूसरे वे रचना को हृदयग्राही और मधुर बना देते हैं। वर्माजी ने इतिहास की काली रेखाओ के बीच वातावरण के सुनहरी चमकीले रग भर कर कवित्व द्वारा उसमे प्राण प्रतिष्ठा भी कर दी है, जिससे उपन्यास सजीव हो उठा है।"

चरित्र-चित्रण

लक्ष्मीबाई[1] का निर्माण विधाता ने अद्वितीय रूप के साथ बुद्धि, कौशल तथा वीरत्व के सफल सयोग से किया जिसमे शौर्य और सौंदर्य का सफल सन्तुलन भी है। जिसके एक-एक शब्द से अगार और तेज झरते हैं, आकृति और रूप शोभा फूलो को लज्जित करती और बुद्धि और ज्ञान के सधान से जीवन के प्रकाश की दीप्ति फूटती है। उदारता और सहानुभूति की महानता जीवन को प्रकाश-पुज-मार्ग का दिशा-निर्देश करती है।" "She was the best and the bravest of them all" (जनरल रोज के शब्दो मे) उसके बाल्यकाल की आकृति मे सस्कार और वातावरण आवश्यक तत्व हैं। बचपन तेज, ओज और उमग से ओत-प्रोत है, शादी के पश्चात उसमे गाम्भीर्य तथा परिस्थितिवश सर्वग्राही चेतनानुभव प्रबल है—वह सयम से परिस्थिति के चक्र को सहती है और वातावरण तैयार करती है, क्षेत्र निर्माण करती

---

१ कुछ आलोचकों ने जैसे शिवनारायण लाल आदि ने इस उपन्यास में रानी को सर्वाधिक्य महत्वपूर्ण देख, इसे 'जीवन चरित्र' मान लिया है। परन्तु जीवन चरित्र मानना उचित नहीं है क्योंकि इसमें औपन्यासिकता है। जीवन चरित्र और उपन्यास में पर्याप्त अन्तर है। यह हमें स्मरण रखना चाहिए।

है। जैसे कोई किसान खेत को जोत कर तैयार करता है, और बाद में बीज पड़ते ही वह लहलहा उठता है। और तीसरी स्थिति वह है जब आवश्यकतानुसार बीज डाल पौधों को देखने का प्रयत्न करती है, सभी सवर्गों में क्रांति करती है—घनी कालिमा में बिजली बन चमक उठती है और समाप्त हो जाती है। इस प्रकार उसके चरित्र को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं जिनका लेखक ने सफलतापूर्वक निर्वाह किया है। वर्माजी ने रानी का क्रमिक विकास, विस्तार, प्रेरणा, प्रक्रिया, प्रवृत्ति, परिणति आदि सभी भिन्न दिशाओं और वृत्तों का इतना कलात्मक अंकन किया है कि हम प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते।

(क) बाल्यकाल से परिणय संस्कार के पूर्व तक (१३, १४ लगभग उम्र)।

(ख) शादी से गंगाधर राव (पति) की मृत्यु तक (लगभग १८ वर्ष उम्र) जो कर्म-भूमि तैयार करने की स्थिति है।[1]

(ग) वैधव्य आरम्भ से समाप्ति तक—जब वह कार्य का निर्धारण तथा सिद्धि प्राप्ति की चेष्टा करती है और संघर्ष करती मर मिटती है।

(क) सर्वप्रथम तेरह से कम की मनू (बचपन का नाम) को हम गंगा के किनारे अश्वारोहण करते पाते हैं। साथ ही उसके साथ नाना साहब, रावसाहब, जो क्रमशः १६ और १४ के लगभग हैं, और उसी दृश्य से उसका तेज, उसकी कष्ट-सहिष्णुता प्रकट होती है। उसका प्रभाव पाठकों के अन्तर्मन पर बैठ जाता है।

तीनों साथ अश्वारोहण करते हैं और नाना घोड़े से गिर कर घायल होता है तो चिल्ला उठता है—"मनू, मैं मरा।" मनू शीघ्रता से घोड़े से कूदकर परीक्षण करती है, सहायता करती है—"घबराओ मत, चोट गहरी नहीं है।" और अपने घोड़े पर छोटी बच्ची मनू नाना को बैठाकर, उसे धाम पर ले आती है। (पृष्ठ १५-१७) उसे आश्चर्य होता है—"इतनी जरा-सी चोट पर ऐसी घबराहट और रोना और पीटना।" और जब मोरोपन्त (पिता) कहते हैं—'नहीं मनू! पर वह तो बालक है।" तो वह दृढ़ता से कहती है—"बालक है! मुझसे बड़ा है। मल्लयुद्ध और कुश्ती करता है। बाला गुरु उसको शाबाशी देते हैं। अभिमन्यु क्या इससे बड़ा था?"

मनू का बाल्यजीवन मोरोपन्त और पेशवा बाजीराव के स्नेह और प्यार की छाया में पला है। बाला गुरु के तेज से सिंचित हुआ है। जब उदासीन मोरोपन्त से सुनती है—"अब वह समय नहीं रहा।" तो उत्तर देती है—"क्योंकि नहीं रहा काका! वही आकाश है वही पृथ्वी है। वही सूर्य-चन्द्रमा और नक्षत्र। सब वही हैं।" और "जब मैं सवाल करती हूँ तो आप इस प्रकार मेरा मुँह बन्द करने लगते हैं। मैं ऐसे तो नहीं मानती। मुझको समझाइये, अब क्या हो गया है।" (पृष्ठ १८) और इस पर निराश भरे स्वर में मोरोपन्त ने यह सुनाया—"अब इस देश का भाग्य लौट गया है। अंग्रेजों के भाग्य का सूर्योदय हुआ है। इन लोगों के प्रताप के सामने सब के सब हम निस्तेज हो गये हैं।" तो आर्द्रवाणी में, मनू के तेज को

[1] [illegible] (पृष्ठ [illegible]) —" [illegible] [illegible] ।"

प्रकट करती कहती है—"एक का भाग्य दूसरे ने नही पढा है। यह सब मन-गढन्त है, डरपोकों का ढकोसला। मैं डरपोक कभी नही हो सकती।" आप कहा करते हैं—"मनू तू ताराबाई बनना, जीजाबाई और सीता होना। यह सब भुलावा क्यो? अथवा क्या वे सब डरपोक थी!" (पृष्ठ १९) और जब महाराज बाजीराव के कथन को सुनती है—"बेटी क्या आज उन सब बातो के स्मरण से जीवन को चलाने का समय रहा है?" (पृष्ठ २१) तो उसके हृदय पर गहरा आघात होता है, वह कह उठती है—"क्या हम लोगो को अब सोकर, खाकर ही जीवन बिताना सिखलाइयेगा दादा?"

नाना जब उसे जलाकर उसे बिना हाथी पर बैठाए घूमने चल देता है तो जैसे उसका सारा गर्व, तेज दहाडकर सोचता है—"मेरे भाग्य मे एक नही दस हाथी लिखे हैं।" (पृष्ठ २३) प्रतीत होता है, वह अपने भविष्य को स्वय निर्माण करने की शक्ति रखती है।

लक्ष्मीबाई के बाल्यकाल की छवि आकते हुए हम उस स्थल को देखें जब नाना कहता है कि शादी के उपरान्त मनू को नवकर चलना होगा मनू, का बहुत स्वाभाविक ढग से नवकर कमरे मे चक्कर काटना, कहना कि ऐसे हमे चलना पडेगा। (पृष्ठ ३७) इस दृश्य की स्वाभाविकता तथा बाल्योचित भोलापन देख हृदय उत्फुल्ल हो उठता है। यहा वर्मा जी की सूक्ष्म पकड की प्रशसा ही की जायगी।

मनू मे तेजोनुकूल ही भावनाए हैं, प्रेरणाए हैं, विश्वास है और इसीलिए जब उसके रूप के कारण लोग उसे 'छबीली' कहते हैं तो उसकी आखें लाल हो जाती हैं, क्रोध से भर उठती है, प्रतिवाद करती कहती है—"मुझको इस नाम से घृणा है।" (पृष्ठ २४) एक वीर-बाला छबीली नामकरण स्वीकार भी कैसे कर सकती थी।

जब बाजीराव रोना रोते हैं तो मनू निर्भीकता से कहती है—"ग्वालियर, इन्दौर, बडोदा, नागपुर, सतारा इत्यादि के होते हुए भी थोडे से अग्रेजो ने आप सब को दाब लिया।" उसे दृढ विश्वास है कि अग्रेज हराये जा सकते हैं (पृष्ठ ३८ देखें)। और जब वे सभी उससे निरुत्तर हो कहते हैं कि वह बडी वाचाल है तो वह वीरत्व प्रकट करती कहती है—"आप ही कहा करते हैं ताराबाई ऐसी थी, जीजाबाई ऐसी थी, अहिल्याबाई ऐसी, मीरा ऐसी। मैं कहती हू क्या ये सब मुह पर मुहर लगाए रहती थी?" (पृष्ठ २६)। इन बातो से ही मनू के प्रेरणा-स्रोतो का भी प्रकटीकरण हो जाता है, इसके आराध्य, आदर्श ये हैं, जिन्होंने जीवन को, जगत को एक आदर्श दिया, सन्देश दिया।

इसीलिए उसकी शादी के सम्बन्ध मे तात्या दीक्षित से बाजीराव कहते हैं—"कन्या (मनू) बहुत सुन्दर हैं। बडी कुशाग्र बुद्धि और होनहार। उसके लिए अच्छा वर ढूढना चाहिए।" और जरा विस्तार से मोरोपन्त प्रस्तुत करते हैं—"सब हथियार चलाना बहुत अच्छी तरह जानती है। घोडे की सवारी मे पुरुषो के कान पकडती है। जब चार वर्ष की थी उसकी मा का देहान्त हो गया था। इसीलिए मैंने स्वय उसकी दिन-रात देख भाल की, लालन-पालन किया। मराठी, सस्कृत और हिन्दी पढाई है। शास्त्रो मे उसकी रुचि है।" (पृष्ठ २७) और गुण के साथ उसके रूप को देख—"विशाल नेत्र, भौंरे को लजाने वाले चमकीले बाल, स्वर्ण-सा रग और सम्पूर्ण चेहरे का

अतीव सुन्दर सनाव ।" (पृष्ठ २८), प्रसन्न होकर, गगाधर से, झांसी के हित के निमित्त, सम्बन्ध (शादी) करने का आग्रह करते हैं । मोरोपत का यह सोचना नितान्त सत्य है— "मनू की बुद्धि उसकी अवस्था के बहुत आगे निकल चुकी है ।"

(ख) इनके पश्चात् दूसरा प्रकरण आरम्भ होता है—रानी का व्याह ४० वर्ष के गगाधर राव से होता है । और वहीं से परिस्थिति परिवेश अध्ययन तथा यज्ञ के प्रयत्न मे, शोध मे लग जाती है । वह देश की समग्र दशाओ और अंग्रेजो की कपट-नीति समझती है । अतएव एक घोर दलित नैराश्यग्रस्त वातावरण मे कार्यारम्भ करती है । इसी दिशा का प्रमाण उसकी उदारता और राजनीति चातुर्य ही है कि वह अपनी दासियों से स्पष्ट कहती है—"मेरी दासी कोई न हो सकेगी । मेरी सहेली होकर रहेगी । दासी मेरी कोई भी न होगी ।' (पृष्ठ ६३-६४) क्योंकि वह पूर्णतया अनुभव करती है उसे दासी नही सहेलियो की इस पवित्र अनुष्ठान मे आवश्यकता है, जो उससे कांधा-से-कांधा मिलाकर चल सके, देश कार्य मे उसी के समान योगदान देसके । तभी वह वर्ग की सकीर्ण परिधि को विनष्ट कर सभी जातियो की स्त्रियो से मुक्त रूप से, हृदय खोलकर मिलती है, प्यार और स्नेह करती है—उन्हे विविध शिक्षाए देती है, शस्त्र और शारीरिक समवृद्धि करने योग्य कार्यों का ज्ञान देती है—"पुरुषो को पुरुषार्थ सिखलाने के लिए स्त्रियों को मलखब कुश्ती इत्यादि सीखना ही चाहिये । खूब तेज दौडना भी । नाचने गाने से भी स्त्रियो का स्वास्थ्य सुधरता है, परन्तु अपने को मोहक बना लेना ही तो स्त्री का समग्र कर्तव्य नहीं ।" (पृष्ठ ६५) और अपने सहयोगियो को निर्माण करने के लिए स्पष्ट कहती है—" मेरे साथ जो रहना चाहे—उसको घोडे की सवारी अच्छी तरह आनी चाहिए । तलवार, बन्दूक, बर्छा, छुरी-कटार, तीर-तमचा इत्यादि का चलाना—अच्छी तरह चलाना सीखना पडेगा ।" (पृष्ठ ६६)

रानी मे चरित्र की गरिमा भी है । जब स्त्रियां पुरुष (बाला गुरु) से शिक्षा पाने मे सकोच करती हैं तो कहती है—"बाला-गुरु देवता है, और न भी हो तो तुमको क्या डर ? स्त्रियां दृढता का कवच पहने तो फिर ससार मे ऐसा पुरुष कोई हो ही नही सकता जो उनको लूट लें ।" (पृष्ठ ६७) और विचार-गूढता मे कहती है— "नही, फूलो से नाता बनाए रखो, परन्तु मिट्टी से सम्बन्ध तोड कर नही ।" (पृष्ठ ६८) अर्थात् वह जीवन का सौन्दर्य और यथार्थ तथा शौर्य से शृङ्गार करना चाहती है, जिस धातु की वह स्वय भी है । ये सब उसके जीवन मे नवजीवन-सचार करने वाले ओज हैं, क्रिया-कलाप हैं ।

इसी क्रम मे वह गगाधर के व्यवहारो को समझती है, उनका सनकीपन जानती है परन्तु उनके कटु व्यवहारो को, विष-पान कर सब ढाकर सदृश लोकोपकारी बनती है ।

वह सूक्ष्म पारखी शक्ति भी रखती है, छोटी-छोटी बातो के भी गहराई मे पडने वाले परिणामों को अनुभव कर लेती है । इसीलिए धूमधाम और भीड मे भी आनन्दराय के प्रति गगाधर की उपेक्षा और तिरस्कार भावना देख लेती है और सुन्दर से कहती है—"आज एक बात अच्छी नही हुई । आनन्दराय नाम के उन जागीरदार की

अवहेलना की गई।" (पृष्ठ ७५) मुन्दर को तो महान आश्चर्य होना है— "सरकार (मनू) को कैसे नाम याद रह गया ? और इतने हल्ल-गुल्ले और भीड-भाट की ध्वनियो मे यह घटना कैसे स्मरण रही।" और उसके यह कहने पर—"छोटे-छोटे मे आदमियो का महाराज कहा तक लिहाज करें ? थक भी तो बहुत गए आज।" रानी लक्ष्मी बाई अद्वितीय महत्व की, उदार भावना की, सगठन-शक्ति की बात कहती है—"जिन्हे तुम छोटा आदमी कहती हो, आधार तो हमारे वे ही हैं।" रानी राजा के सनकीपन स्वभाव को, मनमाने अत्याचार को पसद कदापि नही करती जो महत्वशील, सच्ची नारी के लिए अपेक्षित है—तभी राजेन्द्रबाबू को पिटवाने (राजा द्वारा) पर क्लेश अनुभव करती है। वह निरपराध के साथ अत्याचार होते देखना कैसे पसद करती। (पृष्ठ ८२ देखें) ? सचमुच वह रानी का कर्तव्य क्षेत्र ही है जिसमे बीज द्वारा उत्पन्न फल, आगे प्राप्त करने के निमित्त, रोपती है। अतैव, 'झासी जाने के बाद चपल, मुखी मनू मे एक परिवर्तन धीरे-धीरे घर करता जाता है—वे अब उतनी नही बोलती। रानी लक्ष्मीबाई मे गम्भीरता जगह करती जा रही है और क्रुद्ध हो जाने की वृति तो और भी अधिक शीघ्रता के साथ घुलती चली जा रही थी" (पृष्ठ ७७) और लोक मे आदरणीय बन जाती है।

रानी शौर्य की पूजा के साथ आध्यात्मिक वृत्ति रखती है तभी तो बचे हुए समय मे धार्मिक ग्रन्थो का थोडा-सा, परन्तु नियमपूर्ण अध्ययन करती। भगवद्गीता पर उनकी परम श्रद्धा थी। (पृष्ठ ७६) और इसी धार्मिक वृत्ति का अन्त समय तक उसमे निर्वाह है—चाहे परिणाम अनुकूल हो या प्रतिकूल। ऐसा प्रतीत होता है जैसे धर्म के, गीता के शब्दो के मर्म को ग्रहण कर लेती है—उसके द्वारा वह जीवन का शृगार ही करती है, वि नि को प्रश्रय नही लेती। उससे यह निष्काम, कर्म न्यायप्रियता और आस्था की शिक्षा पाती है। निश्चय ही, वह धर्म के सच्चे मर्म को पहचानने वाली नारी है।

परन्तु वह आत्मा के साथ शरीर पर भी ध्यान देती है, "इन सब स्मृतियो का पोषक यह शरीर और इसके भीतर आत्मा है। उनको पुष्ट करो और प्रबल बनाओ।" (पृष्ठ १०२)

रानी इस कार्य-भूमि मे, क्षेत्र मे (क) राजा के विचारो मे परिवर्तन और शक्ति लाने की चेष्टा करती है, (ख) नारियो को सैन्य शिक्षा देती है, (ग) उदारता से जनता के हृदय पर अमिट छाप छोडती है, (घ) दाम्पत्य की कटुता को सयम से समाप्त कर आगे बढती है, (ङ) देश की भूमि से युद्ध कौशल निमित्त सचेष्ट हो परिचय ग्रहण करती है, (च) देश की राजनैतिक, सामाजिक सभी क्षेत्रो की गति-विधियो से अवगत हो जन-हितार्थ प्रयत्नशील होती है। (छ) अध्यात्म के मर्म को पकडती है आदि।

परन्तु लक्ष्मीबाई देश और युग की आवश्यकतानुसार, शौर्य को प्रमुख और नृत्य-सगीत इत्यादि मनोरजनो को गौण मानती है। लेकिन उनका तिरस्कार नही करती, उन्हें हेय नही मानती। पृष्ठ ४६–८१ मे गगाधर राव और लक्ष्मीबाई के बीच वार्तालाप द्वारा यही सत्य प्रकट होता है। रानी तो स्पष्ट कहती हैं, " स्वराज्य

स्थापित है। अब हँसने-खेलने के सिवा नर-नारियों के लिए और काम ही क्या बचा है? देखिये न, किस आराम के साथ झाँसी-राज्य का पचमांश से अधिक अंगरेजों के हाथ में दे-दिया गया। और नाचते-बजाते ही पूरे हिंदुस्तान को रौंदते चले जाते हैं। खेल तो बढ़िया है।" और जब पजनेश की, रंगीन और नख-शिख, शृंगारिक भावनाओं के कलाकार की, चर्चा होती है तो वह पूर्णतया दुखी भाव से कहती है, "भूषण को छत्रपति शिवाजी क्या इसी तरह की कविता के लिए बढ़ावा देते थे?" क्योंकि वह साहित्य को समयानुसार प्रेरणा देने को ही आवश्यक स्वीकार करती है, जो आदमी को मनुष्यता मानवता प्रदान कर सके, स्वतन्त्रता और शक्ति का स्फुरण कर सके, पवित्र प्रेरणा और सन्देश दे सके।

रानी राजा को अंगरेजों से सजग रखने के लिए व्यंग भी करती है, "इन दिनों अब इससे अधिक और हो ही क्या सकता है? राज्य का काम चलाने के लिए दीवान हैं। डाकुओं का दमन करने और प्रजा को ठीक पथ पर चालू रखने के लिए अंग्रेजी सेना है। इस पर भी यदि कोई गलती हो गई तो कम्पनी के एजेन्ट की खुशामद कर ली। बस सब काम ज्यों-का-त्यों मनमाना चलता रहा।" (पृष्ठ ८१)

रानी विपरीत वातावरण में संयम और आशा की किरणों के स्वस्थ जीवन के निर्माण की चेष्टा करती है और बहुत कुछ अंशों में विकट परिस्थिति में अपनत्व के प्रसार की सफल चेष्टा पर कटिबद्ध दीखती है। "राजा प्रदर्शन के बहुत प्रेमी थे। रानी को प्रदर्शन बहुत कम पसंद था।" और राजा अंग्रेजों की सहायता करने और चाहते, परन्तु रानी यह नहीं चाहती थी।" इस विपरीत परिस्थिति में अपने को संयमपूर्वक रखकर निर्माण में यत्नशील होना कोई साधारण कोटि के चरित्र से संभव नहीं है। परन्तु उस समय अपनी क्षीण शक्ति से अवगत रह, विद्रोह न कर, शनैः शनैः वातावरण बनाना वह मुख्य कार्य समझती है और इसी उपक्रम में पुरातनपंथी महाराज उसे बाहर नहीं जाने देते तो वह किले के अन्दर ही, बन्धन सहकर युद्धाभ्यास करती है, शारीरिक दृढ़ता बढ़ाती है और अन्यों को भी इसकी शिक्षा देती है।

राजा जाने में प्रतिकूल मनोभावापन्न उसे देखकर भी उसकी शक्ति और महती क्रियाशीलता का अनुभव करते हैं, उसकी बुद्धि और चातुर्य जानते हैं। तभी मेजर एलिस से कहते हैं—"मेजर साहब, हमारी रानी स्त्री जरूर है, परन्तु उसमें ऐसे गुण हैं कि संसार के बड़े-बड़े मर्द उसके पैरों की धूल अपने माथे पर चढ़ावेंगे।" (पृष्ठ १२२)।

और इसी समय उन्हें पुत्र होता है जो [illegible] होता है। राजा शोकाकुल होते हैं। दामोदर राव को गोद लेते हैं और स्वर्गवासी हो जाते हैं।

(ग) इसी कुहरे भरे वातावरण में तीसरा प्रकरण आरम्भ होता है, जहाँ [illegible] और अंग्रेजों ने झाँसी पर प्रभुत्व स्थापित किया है, नाना साहब की [illegible] द्वारा [illegible] रानी झाँसी मात्र में ही नहीं, प्रत्युत सम्पूर्ण देश में [illegible] के लिए [illegible] तैयारी करती है, [illegible], रानीगढ़, मोतीगढ़ [illegible] [illegible], [illegible] देश के कोने-कोने में [illegible] [illegible] है। रानी [illegible] [illegible] [illegible] झाँसी [illegible] [illegible] (नाना साहब धामिक)

मिलते है । इस समय रानी अद्वितीय धैर्य का परिचय देती है । रानी भविष्य द्रष्टा है, तभी इस क्षण आवेश मे विद्रोह कर व्यर्थ अपनी शक्ति का क्षय नही करना चाहती —क्योकि तात्या से उसे पता चला है कि दिल्ली का बादशाह वृद्ध है, राजकुमारों में घुन लग गया है, ग्वालियर पर अग्रेजो का प्रवन्ध है, इन्दौर रौंदा हुआ है, हैदराबाद अग्रेजो का भक्त है, सिख परस्पर फूट के कारण शक्तिहीन हैं । रानी एक-एक जनता को जाग्रत कर देश को स्वतन्त्र बनाना चाहती है, स्वराज स्थापित करना चाहती है, क्योकि उसे विश्वास है—"जनता असली शक्ति है । मुझको विश्वास है कि वह अक्षय है । छत्रपति ने जनता के भरोसे ही इतने बडे दिल्ली सम्राट को ललकारा था । राजाओ के भरोसे नही ?" (पृष्ठ १४०) "जो साधन जहा मिले उसका उपयोग करना चाहिये । जनता मुख्य साधन है । राजा और नवाब पीढी दो पीढी ही योग्य होते है । परन्तु जनता की पीढियो की योग्यता कभी नही छीजती। (पृष्ठ १४१) " हमको केवल कर्म करने का अधिकार है, फल का कभी नही । हमको एक बडा सन्तोष है । जनता हमारे साथ है । जनता सब कुछ है । जनता अमर है । इसको स्वराज्य के सूत्र मे बाधना चाहिए । राजाओ को अग्रेज भले ही मिटा दें परन्तु जनता को नहीं मिटा सकते । एक दिन आवेगा जब इसी जनता के आगे हो कर मैं स्वराज्य की पताका फहराऊगी ।" (पृष्ठ १६३-६४)

रानी की कल्पना और उसका स्वप्न महान है । जब झासी को अग्रेज अपने आधीन कर लेते हैं और गोद स्वीकार नही कर रानी की पेंशन निर्धारित करते हैं तो मुन्दर पीडा से मर्माहत हो बेहोश हो जाती है । तभी रानी कितनी दृढता से कहती है—"क्यो री मूर्छित होना किससे सीखा ? क्या इस छोटे से राज्य के लिए हम लोग जीवित हैं ।" (पृष्ठ ६१) उसका गहरा विश्वास है "वे पर्वत-मालाये और मैदान, वे घाटिया और उपत्यकायें 'हर हर महादेव' से गूज उठेंगी, काप उठेंगी ।" (पृष्ठ १८३) और प्रतिज्ञा करती है—"मैं केश मुण्डन तभी कराऊगी जब हिन्दुस्तान को स्वराज्य मिल जायगा, नही तो श्मशान मे अग्नि देव मुण्डन करेंगे ।"(पृष्ठ २१४) उसके विशाल हृदय का परिचय उस स्थल पर भी मिलता है जब उसकी सहेलिया राज्य अपहरण से दुखी हो आभूषण और अलकार विहीन हो उसके सम्मुख उपस्थित होती हैं । (पृष्ठ १६२-६३) वह कहती है—"ये चिह्न तो असमर्थता और अशक्ति के हैं । अपने सब आभूषण पहनो और इस प्रकार रहो मानो कुछ हुआ ही नही है । ये आसू बल का क्षय करेंगे । अभी तो कार्य का प्रारम्भ ही नही हुआ है । सोचो, जब छत्रपति के उपरात शभाजी मारे गये, शाहू राजाराम नही रहे तब ताराबाई की गाठ में क्या रह गया था । इतने बडे मुगल सम्राट को तारावाई कैसे परास्त कर सकी ? उसने स्वराज्य की बागडोर को कैसे बढाया ? रो-रोकर ? सोचो जीजाबाई को पति-सुख नही मिला । उन्होंने छत्रपति को पाला । काहे के लिए ?" परन्तु रानी युद्ध-सग्राम मे अनाचार और अत्याचार को कभी प्रश्रय नही देगी क्योकि उसे विश्वास है—"अनाचार और अत्याचार को प्रोत्साहन एक बार मिला कि वह बार-बार सिर उठाता है । जब स्वराज्य का युद्ध होगा तब खजाने और थाने सब अपने अधिकार में किये जावेंगे । अभी नहीं ।" (पृष्ठ १९२) और वह स्वराज्य सग्राम निमित्त प्राणपन

मे प्रयत्न करती है और इसी प्रयत्न मे वह मर मिटती है।

अतएव लक्ष्मीबाई (१) वीरता, (२) सौंदर्य, (३) त्याग, (४) कर्तव्यशीलता, (५) दृढ़ता[1] (६) न्यायप्रियता, (७) उदारता, (८) सूक्ष्म परखशीलशक्ति, (९) आध्यात्मिकता, (१०) मानवीयता, (११) शारीरिक वल, (१२) सयमशीलता, (१३) चारित्रिक आत्मिक वल, (१४) सरसता, (१५) राजनैतिक चातुर्य,[2] (१६) वर्गगत सकीर्णता का अभाव,[3] (१७) मानवतावादी दृष्टिकोण[4], (१८) नारी के प्रति सजगता[5], (१९) देश प्रेम[6] (२०) स्वतन्त्र भावना, (२१) सतीत्व, (२२) धैर्य, आदि पावन एव पुनीत तत्वो के सयोजन से वनी है और इसी महानता के कारण सम्पूर्ण जनता, सभी वडे-छोटे तात्या और नाना जो उम्र में उससे वडे थे उसकी चरण रज सिर पर चढाते हैं। हिन्दू-मुसलमान उसके एक सकेत पर प्राण-समर्पण करने को तैयार रहते हैं। निश्चय ही रानी का असाधारण व्यक्तित्व है।

वह मनुष्य है, आदर्श वीर मनुष्य है। फिर भी कभी-कभी एकाध परिस्थिति में उसकी कमजोरी प्रकट होती है जिससे वह पूर्ण मनुष्य ही सिद्ध होता है। यह लेखक का कौशल ही है।

(१) जव शत्रुओ से आक्रान्त हो पराजय की भावना उसके मन मे जम जाती है तो वह आत्महत्या का विचार करती है परन्तु गीता का निष्काम कर्म तथा सहयोगियो के वाक्य से वह सजग है, पुन कर्तव्य पथ पर अग्रसर होती है। छूटती परिस्थति मे ऐसा विचार उत्पन्न होना क्षणिक आवेश मे स्वाभाविक ही है।

(२) जव अग्रेज उसकी गोद को अस्वीकार कर, झासी अपने अधिपत्य में लेने की घोपणा करते हैं तव वह आवेश मे आकर एलिस के सम्मुख कह उठती है —"मैं अपनी झासी नही दूगी।"

परन्तु पुन अपनी भूल समझ जाती है और अपने पर वन्धन रख, चुपचाप देश को जाग्रत करने के लिए समयानुसार अग्रेजो की वात स्वीकार कर लेती है और पत्र-व्यवहार द्वारा उन्हें धोखे मे रखकर कार्य करती रहती है। (पृष्ठ १६० और १६४ देखें)

(३) शादी के अवसर पर लोक-मर्यादा का ध्यान न कर सभी समाज के सम्मुख यह कहना (रानी का)—'गाठ ऐसी वाधो कि कभी न खुले' वडा खटकता है, परन्तु इसमे उसका उग्र-स्वभाव, स्पष्ट आत्म-प्रवृत्ति, और किशोर्य का भोलापन, वचपना प्रकट करता है।

(४) वरहानुद्दीन के कहने पर भी दूल्हा जू और पीरअली पर विशेप न ध्यान देना उसकी वहुत वडी गलती मालूम पडती। इसका कारण अपने व्यक्तियों पर विश्वास के साथ विधि की विडम्वना भी मान सकते हैं—जिसके कारण कि भाग्य में कुछ और ही होना लिखा था।

रानी के अतिरिक्त गगाधर राव, तात्या टोपे, रघुनाथसिंह, जवाहरसिंह, खुदावख्श, गौस खां, पीरअली, गुलमुहम्मद, नाना, सुन्दर, मुन्दर, काशी, जूही, झलकारी, कोरिन, दूल्हा जू, एलिस आदि अनेक और विविध प्रकार के पात्र हैं और लेखक की यह भी कुशलता है कि उसने सभी का थोडे ही शब्दो और कार्यों मे उन पर काफी गहरा प्रकाश पाठको के सम्मुख दे दिया। भुलाये नही जा सकते वे। उनके आचार-

व्यवहार मनोभूमि सभी का लेखक ने यत्न से थोडे मे ही विश्लेषण कर रख दिया है।

गगाधर राव—झासी के झक्की परन्तु साहित्य और ललित कलाओ के रसिक नृपति थे। अनेक कलाकार उनके आश्रय मे पनप रहे थे। नारद और नृत्य कला पर भी पूर्ण ध्यान देकर उसमे वे निखार ला चुके थे। स्वय अभिनय करने मे भी नही हिचकते।[1] साहित्य-सेवा मे अनेक हस्त लिखित ग्रन्थो आदि का उन्होंने अपूर्व सग्रह किया था।[2]

परन्तु वे क्रोधी और झक्खी थे। थोडी-सी वात पर ही रुष्ट होजाते। और उन को क्रोध आने ही फिर शीघ्र उतरता भी नही—विच्छू मे कटवाना, गर्म तार मे जनेऊ के आकार से दगवाना आदि इनके इसी क्रोधी स्वभाव के परिचायक हैं। इसके पीछे एक मनोवैज्ञानिक कारण सन्तानहीन होना भी स्वीकार किया जायगा।

वह अग्रेजो की नीति समझते थे परन्तु अपनी तथा देश की कमजोरियो[3] मे परिचित थे। इसीलिए अग्रेजो को सहायता देने और लेने मे हिचकते न थे।

वह रानी की महानता को हृदय मे समझते थे, इसीलिए रानी के प्रति उनका आचरण कटु न हुआ। वह उसे महान् समझते रहे जैसा उन्होने मृत्यु के समय स्पष्ट प्रकट भी किया है। उनका दाम्पत्य जीवन साधारण और सुखी कहा जायगा। परन्तु प्राचीन विचार रखने के कारण उन्होने रानी का पूर्णतया वन्धन हीन हो मुक्त विचरण स्वीकार नही किया। यद्यपि कुछ सीमा तक वह प्रगतिशील विचार रखते थे। जैसे कट्टर पथियो पर नजर रखना, वह नारी की पूर्ण स्वतन्त्रता के पूर्ण पक्षपाती नही थे। इसीलिए किले के अन्दर ही घुडसवारी कुश्ती आदि पसद करते थे।

वह अपरराधियो के प्रति अत्यन्त क्रूर और कठोर थे। इस प्रकार इनका सारा चरित्र स्वाभाविक, वातावरण की उपज है।

तांत्याटोपे, रघुनाथसिह, जवाहर सिह देशभक्त, कर्मठ एव वीर व्यक्ति हैं। जहा वे प्रेम की पवित्रता रखते हैं, वही दूसरी ओर उसमे राष्ट्रीय कर्त्तव्य मुख्य है। वे रानी की आज्ञा और सकेत पर प्राणो को हलि नि सकोच करने को तत्पर रखते। वे सभी आदर्शप्रेमी और देशप्रेमी हैं—राष्ट्रीय भावना के पुजारी हैं।

पीरअली अलीवहादुर भारत के इतिहास मे कलक हैं, देशद्रोही, लालची स्वार्थी और निंद्य हैं। ये रानी के भेद अग्रेजो को देते हैं और ये ही रानी की हार के मूल कारण हैं। इन्होंने ही भारत के आशारूपी सूर्य पर पराजय का तिलक लगा

---

१ इस दृष्टि से ८ से १४ आदि पृष्ठों को देखा जा सकता है। वे अभिनय के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म तत्वों पर ध्यान देते देखे जाते हैं।

२ "उन्होंने दूर-दूर से नाना प्रकार के हस्तलिखित ग्रन्थ इकट्ठे करवाये और विशाल पुस्तक भंडार से अपने पुस्तकालय को भर दिया। वेद, उपनिषद्, दर्शन, पुराण, तन्त्र, आयुर्वेद, ज्योतिष, व्याकरण, काव्य इत्यादि इतने ग्रन्थ उनके पुस्तकालय में थे कि लोग दूर-दूर से उनको देखने के लिए आने लगे।" (पृ० ८)

३ गगाधर राव स्वय अपने मुख से कहते हैं—"हमारे यहाँ फूट है। गाव-गाव में उपद्रवी, डाकू और वटमार भरे हुए हैं। अंग्रेजों के पास हथियार अच्छे हैं। इसीलिए उन्होने राज्य कायम कर लिया है।"

दिया—मात्र लोक और वैयक्तिक स्वार्थ के निमित्त ।

बरहानुद्दीन, गुल मुहम्मद, खुदाबख्श, गौस खां भी भारतीय स्वतत्रता के कर्मठ सेनानी थे जिन्होंने भारतीय स्वतत्रता के लिए युद्ध करते प्राणार्पण कर दिया ।

दूल्हा जू एक देश-भक्त व्यक्ति है परतु थोडे से अपमान ने तथा मुदर से प्रेम का प्रतिदान न पा, मनुष्य से दानव बन जाता है और युद्धकाल मे रानी से विश्वासघात कर ओछी फाटक खोल अग्रेजो की जीत का प्रथम अध्याय लिख देता है ।

सुन्दर, मुन्दर, काशी, जूही, मोती—आदर्श प्रेमिका साथ ही महान चरित्र-शील, कर्त्तव्य निष्ठा, राष्ट्रप्रेम से रगी पात्राए हैं। ये युद्ध करती हैं, जासूसी करती हैं और प्राणो का मोह त्याग भयानक-से-भयानक कार्य मे रानी के सकेत पर तत्पर रही हैं। वे प्रेम भी करती हैं, मोती के खुदाबख्श, मुदर के रघुनाथ, जूही के तात्या प्रेमी है परतु उनमे विलासिता नहीं—देश-कर्तव्य प्रथम है ।

झलकारी भी एक विचित्र नारी है जो आदर्श, वीर, निर्भीक, तथा स्नेहशीला है। पूरन की स्त्री होकर, प्राचीन समारो मे जहा पति का नाम लेने मे सकोच करती है वहा आवश्यकता आने पर युद्ध मे भी पीछे नही हटती । उस समय तो पाठको का सिर उसके सम्मान मे झुक जाता है जब वह रानी को निकल भागने मे पर्याप्त अवसर प्राप्त हो इस कामना से स्वय अग्रेजो के कैम्प मे अपने को लक्ष्मीबाई घोपित करती चली जाती है ।

बख्शनजू और बरशी जो आदर्श दम्पति और देशप्रेमी हैं। इस प्रकार कुछ पात्र आदर्श, कुछ नीच, कुछ प्रगतिशील, कुछ परिवर्तनशील (जैसे दूल्हा जू) कुछ वर्गगत (जैसे डनलप, एलिस आदि) और कुछ व्यक्तिगत (जैसे गौस खा, जवाहरसिंह, रघुनाथ सिंह आदि) पात्र हैं। पात्रों के व्यवहार, क्रिया कलाप और मनोवैज्ञानिकता पर भी उचित ध्यान दिया गया है ।

अहिल्याबाई

हिन्दी उपन्यास-सम्राट श्री वृन्दावनलाल की वस्तुमयता, भावपूर्णता तथा लक्ष्य सभी सतुलित एव सयोजित कला के यथार्थ से मुखरित हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से ही नहीं प्रत्युत अन्यान्य दृष्टियो से भी आलोच्य कथाकार के साहित्य का महत्व सुरक्षित है। लगभग ६० वर्षों मे पचास से अधिक पुस्तको की सृष्टि कर वर्माजी ने हिन्दी-पाठकों को आश्चर्यान्वित ही नही, अपितु हिंदी-साहित्य के गौरवपूर्ण भण्डार को अमूल्य निधियो से भर दिया है । प्रस्तुत लेख मे हम उनके उपन्यास अहिल्याबाई के मूल्याकन का प्रयास करेंगे, जिनमे प्रेमचन्द्र के परिभाषानुरूप अहिल्याबाई का सम्पूर्ण जीवन चित्रित है। यह भगवतीचरण वर्मा के 'तीन वर्ष' की तरह अधूरे जीवन-वृत्त पर आधारित नहीं है ।

वर्माजी का नवीन उपन्यास 'अहिल्याबाई' पढते समय अनायास आस्ट्रेलिया के कथाकार वेन्स पामर की 'The birth day' रचना स्मरण हो आती है । आलोच्य कृति श्री जयशकर 'प्रसाद' के नायिका प्रधान रूपको की तरह है, जिसमे एक आदर्श वीर कर्तव्यनिष्ठ, विवेकशील हिन्दू नारी की कथा-वस्तु है, जिस पर शरीर की छाया

की तरह करुणा और वेदना सर्वदा छाई रहती हैं। प्रसाद के नाटक सुखान्त होकर भी करुणा की रागिनी मे निमज्जित रहते हैं, जिससे पाठको की आखें अनायास सजल हो उठती हैं, परन्तु अहिल्याबाई का जीवन-स्रोत ही मानो करुणा, विषाद की गगा से निकलकर, जीवनपर्यन्त कठोर साधना और तपस्यामयी भूमियो से होकर अन्ततोगत्वा अवसाद और पीडा के उद्वेलित ज्वार भाटो मे परिपूर्ण सागर मे विलीन हो जाता है। वह तूफानी नदी की तरह गरजती और चीत्कार नही करती, वरन शान्त व निश्चल। भाव से हृदय मे अतृप्त मनोभावो को सयमित किये, वात्सल्य की मनोव्यथा को सजोये रहती है। साधारण कुल मे उत्पन्न अहिल्याबाई अपने चातुर्य कुशाग्रता के प्राबल्य से इतिहास प्रसिद्ध सूबेदार मल्हारराव होलकर के पुत्र खडेराव की पत्नी के रूप मे स्वीकृत होकर महारानी बनती है, परन्तु कर्मठ की तरह जीवन-यापन करने पर भी आदर्श और आध्यात्मिक विचार-धाराओ को प्रश्रय देने पर भी वह पुत्र-हीना, पतिहीना और सर्वहीना हो जाती है। दस-बारह वर्ष की अवस्था मे उसका विवाह होता है, फिर लगभग १८ वर्षों तक पति के कठोर व्यवहार से पीडित हो २९ वर्ष की अवस्था मे विधवा हो जाती है। तत्पश्चात् बयालीस-तेंतालीस वर्ष की अवस्था मे उसे अपने पुत्र मालोराव के देहान्त का कठोर दु ख सहना पडता है। फिर लगभग ६२ वर्ष की अवस्था में उसका दौहित्र नत्थू चल बसता है। चार वर्ष पीछे दामाद यशवन्तराव फणसे की मृत्यु होती है और उसकी पुत्री मुक्ताबाई सती हो जाती है, फिर भी विपत्तियो और दु खो के मडराते रहने पर भी वह लोक-सेविका बनी रहती है, राजकार्य से विमुख नही होती। लेकिन दुर्भाग्य उसका साथ नही छोडता। अपने राज्य-विस्तार मे वह आदर्श रूप, शान्ति तथा आनन्द उत्पन्न न कर सकी, जिसकी उसमे तीव्र-मनोकामना थी। मल्हार, दूर के सम्बन्धी तुकोजीराव के पुत्र को वह कर्तव्य-परायण सदाचारी नृपति के रूप में देखना चाहती थी, पर वह मल्हार भी कुप्रवृत्तियो से आच्छन्न पराजय की शृखला से सर्वदा आबद्ध रहा। प्रस्तुत स्थल पर मैथलीशरण गुप्त की निम्न पक्तियाँ स्मरण हो आतीं हैं —

अबला जीवन हाय, तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध, और आँखों में पानी॥

यहाँ पर मैं यह भी स्पष्ट कह दू, वेन्स पामर का पात्र जहाँ दु ख से दूर भागना चाहता है, दूर के जीवन को अपने जीवन-सदृश्य महत्वपूर्ण नहीं मानता, वहाँ अहिल्याबाई विपरीत तत्वों से निर्मित भारतीय आदर्श नारी का प्रतीक है, जिसमे दृष्टिकोण का अन्तर है, मनोभावो और विचारो अन्तर है, जो भारतीय सस्कृति और सभ्यता का प्रतिफलन है, भारतीय अध्यातम-परक प्रवृत्तिमूलक देश का स्वप्न है, जिसे आज बहुत कालोपरान्त विश्व अनेक माध्यम से अपनाना चाह रहा है और वही हमारी सस्कृति की विजय भी है, ऐसा मैं मानता हू। 'डा० देव' (अमृता प्रीतम) का नायक भी अहिल्याबाई की तरह महान् और दिव्य है। निश्चय ही शास्त्रीय दृष्टि से कौशल, सुसगठन रोचकता, जिज्ञासा आदि तत्वो की पुष्टि से यह सरल कथावस्तु सयोजित कलाकृति है, जो कल्पना और इतिहास की रगीन कूची से निर्मित हो अपनी मौलिकता का अभिव्यक्तिकरण स्पष्टतया कर देती है।

अहिल्यावाई का जीवन गाल्सवर्दी के मोची की तरह है जो परम कर्तव्य और परमार्थ की वेदी पर सर्वस्व न्योछावर कर देता है, पर आह तक नही करता। वह मल्हार के भ्रष्टाचरण तथा लूट एव अन्य अराजक तथ्यो से व्यथित होती है, अवसाद मे भर उठती है, उसके अतराल मे वेदना की हिलोरें उठती हैं, परतु जन-कल्याणार्थ विषपायी शिव की तरह सवको आत्मसात कर लेती है और उसका सत्य, उसका आदर्श, विजयी होता है। इसलिए सर जॉन मालकम ने (जो अहिल्यावाई का समकालीन था) लिखा है —

"It is an extraordinary picture, a female without vanity, a bigot without intolerance, a mind imbued with the deepest superstition yet receiving no impression except what promoted the happiness of those under its impression, a being exercising in the most active and able manner despostic power not merely with sincere humility but under the severest moral restraint that a strict conscience could impose on human action, and all this combined with the greatest indulgence for the weakness and fault of others."

अहिल्यावाई प्रतीक को नहीं, वरन् विचार को महत्व देती है। जब उसकी मूर्ति की पूजा की जाने लगती है, तो उसे अपार दुख होता है और वह बोल उठती है—"कारबारी ने मेरी मूर्ति को भी प्रणाम किया होगा। विनय की याद दिलाने के लिए वह प्रतीक खडा किया गया था। विचार बिसराया जाने लगा, प्रतीक की पूजा हो उठी।" वह आत्म प्रशसा को हेय समझती है, तभी तो वह एक कवि की पुस्तक को, जो उसकी प्रशस्ति सुनाने आया था, नर्मदा मे फेंकवा देती है। वह तो सोचती है—'कला का कर्तव्य मानव को ऊपर उठा देने का है, गिराने का नही है।' उक्त पुस्तक की भूमिका मे लेखक ने स्पष्टरूपेण उसके प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए लिखा है—"उन्होंने छुटपन मे जितना पढा, वडा होने पर जितना देखा और सुना, जिस वातावरण से वह घिरी हुई थी, जिन पूर्वाग्रहो मे वह दबी हुई थी, उनके ऊपर बहुधा इतना उठती रही—यही एक वडे विस्मय की वात है।" इसी श्रद्धागत भावो ने वर्माजी को उपन्यास लिखने की उत्कट प्रेरणा दी है, ऐसा प्रतीत होता है। निश्चय ही अहिल्यावाई का चरित्र गतिशील, कर्मठ, सशक्त, व्यक्तित्व-प्रधान तथा पूर्ण सफल है, जिसमे मानवता का स्वप्न साकार हो उठा है। अहिल्यावाई का मातृहृदय का उद्गार देख वृन्दावनलालजी की एक अन्य कृति 'प्रत्यागत' की 'फूलरानी' का स्मरण हो आता है। 'फूलरानी' का मातृहृदय स्पष्ट रूप से अहिल्यावाई से अधिक तीव्रता से मुखरित हो उठा है, क्योकि फूलरानी को केवल पुत्र प्यारा है, उसे समाज और राज्य की जनता के सम्बन्ध मे चिन्तन की आवश्यकता नही पडती। अहिल्यावाई का चरित्र कई स्थलो पर अभिनयात्मक और मुख्यत विश्लेषणात्मक है। स्वाभाविकता उसका प्राण है। सिन्दूरी जैसी दोषग्रस्त, मोहाभिभूत नारी का अहिल्यावाई के ससर्ग से सद्-प्रवृत्तियो के वशीभूत होना अहिल्यावाई के चरित्र की महानता का द्योतक है। अहिल्यावाई के पश्चात् मल्हार का जीवन मुख्यत वर्णित है, जो कुत्सित मनोभावपन्न कुसगति-ग्रस्त भ्रष्ट युवा है, जो लालच का पुतला है, जो मातुश्री (अहिल्यावाई) तक

को प्रवचना के जाल मे फासकर राजा बनने का स्वप्न देखता है, केवल विलास की परितृप्ति के लिए-अहम् के परितोष के लिए। उसका चरित्र भी इतना यथार्थ और सफल चित्रित है कि जिसे पढकर उसके प्रति निश्चय ही पाठको को घृणा उत्पन्न हो उठती है, जो उसके चरित्र की सफलता का द्योतक है। वह अपनी मा तक को अपमानित कर बैठता है। मातुश्री को भी, जिसे जनता देवी की तरह मानती है—धोखा देता है, निरीहो को लूट लेता है, बडे भाई तथा अन्य बडो से अनादर पूर्वक व्यवहार करता है। वह कुत्सित और पतित व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करता है। वह अविवेकी है, कामुक है, शराबी और शत शत दुर्गुणो से आच्छन्न है। वह तत्कालीन भ्रष्ट और दोषाग्रस्त राजनैतिक पुरुषो का मूर्त-रूप है—साथ ही वह ऐतिहासिक पुरुष भी है। उसके चरित्र को उपन्यास के जीवित पात्र रूप मे परिणत करने मे अवश्य ही कुछ घटनाओ को वर्मा जी ने अपनी ओर से सुन्दरता पूर्वक सजा दिया है। वह राजनीतिज्ञ होकर भी मूर्ख है, चेखफ की कहानी 'खुशी' के नायक मीत्या कुल्यागेव की तरह, जो यह नही जानता है कि बदनामी का प्रचार कितना बुरा है।

वर्मा जी के अन्य ऐतिहासिक उपन्यासो मे भी यह रोमास-तत्व कार्य करता दीख पडता है। आलोच्य कृति मे मल्हार राव तथा आनन्दी और सिंदूरी के कथानक मे रोमास की पुट है।

तुकाजी, काशीराव आदि का उतने प्रखर और व्यापक रूप मे नही चित्रित हो सका है। सम्पूर्ण कथावस्तु मल्हार-राव तथा अहिल्याबाई पर ही केन्द्रित होने के कारण अन्य पात्रो का रूप उतना उभर नही पाया है। वे ऐतिहासिक पात्र मात्र ही रह गये हैं। आनन्दी और सिंदूरी (जिनका नाम लेखक ने परिवर्तित कर दिया है) एक ही चित्र के दो पहलू व्यजित करते हैं। एक मल्हार से उपेक्षित होने पर प्रतिशोध चाहती है, तो दूसरा उससे प्रेम पाकर भी मुक्ति। दोनो निश्चय ही विचित्र व्यक्तित्व से सयुक्त हैं, जिसमे उनका अपना अपना व्यक्तित्व पूर्णता से निखरा है।

ऐतिहासिक उपन्यास मे वातावरण और तत्युगीन सामयिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था के वर्णन का चातुर्य और कौशल निश्चय ही वृन्दावनलाल मे अद्भुत है। 'गढकुडार' मे बुन्देलखड का चित्रण बडा स्वाभाविक तथा सफल है, जिसकी प्रशसा गुलाबराय ने भी की है। आलोच्य-कृति मे महाराष्ट्रीय तथा मध्य-भारत की, तत्युगीन चिता-धाराओ की, वर्मा जी ने जैसे पूर्णता से अनुभूति प्राप्त की है। स्मरण रहे ऐतिहासिक कथानको मे वातावरण का भी अधिक महत्व है। किशोरी लाल गोस्वामी अपनी ऐतिहासिक कृतियो मे बहुत दूर तक असफल इसी त्रुटि के कारण रहे। उस युग मे कैसे भारत खड-खड मे विभक्त हो विभिन्न मनोवृत्तियो वाले शासको द्वारा शासित था, कैसी अनेकता, अराजकता का चतुर्दिक प्रचार की कृतियो की सफलता के आधारभूत कारण पर प्रकाश डालते हुऐ C Rickett ने 'Realism' को महत्व दिया है।

उसी प्रकार वर्माजी की सफलता का बडा रहस्य यथार्थ भूमियो का स्वाभाविक अभिव्यक्तिकरण ही है। इसीलिए श्री रामचद्र शुक्ल ने भी वर्मा जी की बडी प्रशसा की है।

कथोपकथन का भी कथानक के विकास, पात्रो की चारित्रिक विशिष्टता के अनुसार "पात्रानुकूल वैचित्र्य के साथ ही उसमे स्वाभाविकता, सार्थकता और सजीवता और लाघवता के गुणो का होना वाछनीय है। अहिल्यावाई मे कथोपकथन मानसिक, सामाजिक, प्राकृतिक स्थितियो पर प्रकाश डालता है। अत कथोपकथन की दृष्टि से भी आलोच्य कृति एक सफल रचना है।

अहिल्यावाई के विचार और उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए हम कह सकते हैं कि इसमे आदर्शोन्मुख यथार्थ है। प्रेमचन्द पर कई स्थल पर मात्र उपदेशक होने का दोपारोपण शुक्ल जी ने किया है। उसी प्रकार प्रस्तुत कृति मे कई स्थल पर वर्माजी उपदेशक जैसे वन गये हैं, फिर भी प्रेमचन्द्र जी से कम ही। इस दृष्टि से 'प्रत्यागत' वर्माजी की अन्यतम सफल कृति मानी जायगी। 'प्रस्तुत कृति' की भूमिका मे वर्मा जी ने इसके लिखने के सबध मे लिखा है—"इदौर मे प्रति वर्ष भाद्रपद कृष्ण, चतुर्दशी के दिन अहिल्योत्सव होता चला आता है। १९४९ के उत्सव का उद्घाटन करने के लिये अहिल्योत्सव समिति ने कृपा पूर्वक मुझे आमन्त्रित किया। मैंने उस अवसर पर वचन दिया था कि अहिल्यावाई पर कुछ लिखूगा।

केवल ऐतिहासिक वर्णन या मनोरजन मात्र अभीष्ट नही है। जीवन-चरित्र की प्रणाली से काम बनता न दीखा तो मैंने उपन्यास लिखने की सोची।" परन्तु मूल मे इससे भी वडा सत्य का प्रसार यथार्थवत् छवियो द्वारा करना लेखक का लक्ष्य रहा है, जिसमे आज और आने वाले कल के लिये भी तो उसमे कुछ हो।

शैली की दृष्टि से 'प्रत्यागत', 'मृगनयनी' आदि कृतिया निश्चय ही 'अहिल्यावाई' मे आगे हैं, क्योकि इसमे वर्णनात्मकता अधिक है। यह भी स्वीकृत सत्य है कि कई स्थलो पर इनकी अन्य कृतियो के समान प्रकृति के विभिन्न रूपो का वडा ही नैसर्गिक और जीवित वर्णन है। इनकी भाषा सरल, स्वाभाविक तथा मुहावरेदार होती है। परन्तु राजा राधिकारमण जी की तरह मुहावरो का अत्यधिक प्रयोग नही है, जिसमे भाषा मे चपलता तो नही आती, परन्तु स्वाभाविकता के कारण सौन्दर्य की अभिवृद्धि स्वय हो जाती है। मैंने अपने एक लेख मे स्पष्ट कहा है कि प्रेमचन्द्र की सफलता मे भाषा सरलता अपना महत्वपूर्ण योग देती है। वर्मा जी की भाषा मे वही गुण वर्तमान है।

अन्ततोगत्वा यह निष्कर्ष नि सकोच दिया जा सकता है कि सभी औपन्यासिक तत्वो पर विचार करने के पश्चात 'अहिल्यावाई' एक सफल उपन्यास है। यदि तथ्यो के प्रवल मोह पर थोडा सयम रखा जाता तो इसका और अधिक सौन्दर्य निखरता।

'भुवन विक्रम'

'भुवन विक्रम' श्री वृन्दावनलाल वर्मा का नवीनतम उपन्यास (१९५४) है, जिसमे उत्तर-वैदिक काल की कथावस्तु, कल्पना और ऐतिहासिक अन्वेपण का रगीन और जीवन्त चित्र उपस्थित किया गया है। लेखक ने स्वय कहा है, "इस विषय के अग पर मैंने 'ललित विक्रम' नामक नाटक (१९५३) भी लिखा है। परन्तु "भुवन-

विक्रम' (उपन्यास) मे उससे कही अधिक चरित्र और घटनाये इत्यादि हैं।" (परिचय--वृन्दावनलाल वर्मा, पृष्ठ १०)

'भुवन विक्रम' मे वैदिक-कालीन सयम, अनुशासन, सघर्ष, आचार, विचार, सभ्यता, सस्कृति का सुदृढ सयोजन है, अनुशीलन है, कथा विस्तृत और व्यापक है। सक्षिप्त मे कथावस्तु इस प्रकार है — अयोध्यापति, नृपति रोमक के राज्यकाल मे कई वर्षों तक वर्षा नही होने के परिणाम स्वरूप किसान और निम्न वर्गो की दशा दयनीय हो जाती है, उचित राजकीय व्यवस्था के अभाव मे और व्यापारियो की शोषण-वृत्ति के परिणाम स्वरूप भयानक अकाल पडता है। नृपति के पुत्र भुवन की चचल-वाचाल वृत्ति मे क्षुब्ध उसके गुरु आचार्य मेघ भी रोमक के पुत्र प्रेम से क्रुद्ध हो जनता में राजा के प्रति विरोध कराते हैं। राजा की उदार वृत्ति के कारण तथा दास-प्रथा के प्रतिकूल होने के कारण व्यापारी-वर्ग भी विद्रोहियो की सहायता करते हैं और तत्कालीन व्यवस्थानुसार जन-पद की समिति द्वारा अनिश्चित काल तक के लिए रोमक को राजच्युत कराकर दीर्घबाहु (धनाढ्य क्षत्रिय), धनाढ्य व्यापारी नीलमणि (फिनीशियन) तथा राज्य वर्ग की ओर से पुरोहित सोम और मेघ एक समिति गठन कर राज्य चलाने लगते है। धौम्य ऋषि महातत्व-ज्ञानी के आश्रम मे भुवन को शिक्षा निमित्त रोमक रखकर, राज्यच्युत व्यवस्था मे अपनी पराजय से मूल कारण जानने के लिए व्यग्र हो भ्रमण करते हैं, जहा अनेकानेक विचार सुनने को मिलते हैं और जिसके फलस्वरूप वे कोई निश्चित निष्कर्ष नही निकाल पाते हैं। भुवन आश्रम मे अपनी चचल वृत्ति के प्रतिकूल समुचित ज्ञानार्जन करता है, कर्तव्यपरायण बन जाता है, वैदिक महत्वपूर्ण मन्त्रो के अर्थ से अवगत हो पाता है। वह आरुणि और कपिजल नामक शूद्र ऋषि (धौम्य के शिष्य) के महत्व से प्रभावित हो अपनी जीवन-धारा उचित मार्ग मे प्रवाहित करता है।

इसी बीच भुवन का प्रेम भी आरभ होता है। गौरी नामक क्षत्रिय युवती अयोध्या के अकाल के कारण नैमिषारण्य की सीमा मे, धौम्य के आश्रम के समीपवर्त्ती ग्राम मे अपने अभिभावको के साथ रहने लगती है।

उसके प्रति भुवन स्वाभाविक रूप से आकृष्ट होता है और शुद्ध प्रेम करने लगता है और एक दिन उसकी मा द्वारा शका प्रकट किये जाने पर उसे धर्मपत्नी रूप मे स्वीकार करने की प्रतिज्ञा लेता है। धौम्य ऋषि वेद और कल्पक नामक क्रोधी और चपल शिष्यो द्वारा भुवन के प्रेम-व्यापार से अवगत हो, ब्रह्मचर्य जीवन मे आपदकाल मे साधना मे व्याघात उत्पन्न न हो—इस इच्छा से वशीभूत हो भुवन को आज्ञा देते है कि किसी भी स्त्री से एकान्त मे वार्ते न करे, किसी भी स्त्री पर आख न उठावे, किसी के यहा एक बार से अधिक भिक्षा मागने न जाये। भुवन साधन की दृढता के लिए यह आदेश महत्वपूर्ण मान सफलतापूर्वक पालन करता है।

वर्षों के पश्चात् रोमक भी ज्ञानार्जन निमित्त धौम्य के आश्रम में उपस्थित होते हैं और उनसे अपने पतन का वास्तविक कारण जानना चाहते हैं। रोमक के अन्त करण मे प्रच्छन्न या प्रत्यक्ष रूप मे यह भावना उत्पन्न हो गई थी (लोगो से सुनने के कारण) कि उदारतावश उसने शूद्रो को भी तप करने का अधिकार दे

-ाला और जिसमे कपिंजल नामक नील का दास, जो नील के अत्याचार से पीडित हो धौम्य के आश्रम मे आकर तप कर रहा है, उसके पतन का मूल कारण है। धौम्य रोमक की हिंसात्मक तथा राज्य-लोभ की प्रवलता ज्ञात कर परीक्षा निमित्त कपिंजल की हत्या कर, पाप-मुक्त हो राज्य-प्राप्त करने को कहते हैं। रोमक लालसाभिभूत हो, मोहान्ध हो, इस कर्म के लिये चल पडते है और भुवन रोमक को कपिंजल का स्थान दिखाने, धौम्य की आज्ञा पर रोमक के साथ चलकर मार्ग मे पिता को सत्य का प्रकाश दिखा, राज्य-मोह के त्याग का पाठ पढा—ऐसे दुष्कर्म को रोक लेता है। रोमक की आँखें खुल जाती हैं, तब धौम्य पतन के वास्तविक कारण, जैसे आलस्य, स्वार्थ, दृढता की कमी आदि को बताकर सत्कर्म की प्रेरणा देते हैं और भुवन स्नातक की परीक्षा मे उत्तीर्ण हो, आशीर्वाद प्राप्त कर पिता के साथ अयोध्या लौटता है। पानी भी खूब बरसता है। वे पुन राज्य प्राप्ति की चेष्टा करने लगते हैं। जन-पद मेघ के व्यवहार और धनाढ्यो की प्रवलता से अप्रसन्न रहता है। नील दीर्घबाहु को अपनी पुत्री हिमानी से परिणय-सस्कार के प्रलोभन पर वश मे किये रहता है और मेघ को धन आदि देकर अपने मनोनुकूल बनाये रखता है। इस प्रकार वह विदेशी भारतीय जनता का शोपण करता और प्रभुत्व अधिष्ठित किए रहता है। नील और मेघ जनपद की हवा पहचान रोमक वश को समाप्त करने की दुर्भावना से हिमानी और भुवन को प्रणयी बनाने का षड्यन्त्र करते हैं। रोमक परस्पर के द्वेष की समाप्ति तथा निर्धनो को भीख देने के लिने ऋण-प्राप्ति-हेतु (जिससे प्रसन्न हो जनता उसे पुन राजा बनावे यह सम्बन्ध स्थापित करने को तत्पर हो जाते हैं और भुवन को भी अपनी माँ और पिता की आज्ञा पर अनिच्छापूर्वक ही,(क्योकि वह हिमानी की चारित्रिक धृष्टता आदि से परिचित था) तैयार होना पडता है। गौरी के प्रति प्रेम भी उसे यह कर्म करने से रोकता है, परन्तु यह ज्ञात कर कि गौरी वहा से अयोध्या लौटते समय नदी की बाढ मे अचानक माता-पिता के साथ समाप्त हो गई है, दुखी मन से, पिता की दानशीलता मे व्यवधान न होने देने के लिये प्रस्ताव स्वीकार करता है। धौम्य अयोध्या की स्थिति से अवगत हो कपिंजल को तप की पूर्णता बता अयोध्या भेज देते हैं। कपिंजल नील के यहा आकर नौकरी आरम्भ करता है, जिससे वह धन प्राप्त कर नील को देकर अपने ऋण से मुक्त हो सके, क्योकि उस युग मे ऋण न चुकाने पर मनुष्य दास हो जाता था और चुकाने पर मुक्त। नील कपिंजल को परिवर्तित आकृति के कारण नही पहचान कर उसे नौकर बना लेता है। गौरी भी अयोध्या आते समय बाढ मे अचानक पडकर, माता-पिता खोकर और एक पेड के सहारे डूबने से बचकर अयोध्या पहुँचकर नील की पुत्री हिमानी के यहा नौकरी करने लगती है, जिससे वह धनार्जन कर अपने पिता द्वारा रोमक के लिये गए अकाल के ऋण को चुका सके। कपिंजल और गौरी परस्पर पहचान कर भाई-बहन की तरह रहने लगते हैं और मेघ और नील के षड्यन्त्र से अवगत हो उन पर दृष्टि रखने लगते हैं। नील और हिमानी कपिंजल और गौरी के व्यवहार मे प्रसन्न हो, विश्वास कर, साथ रहने लगते हैं, और गुप्त पत्र कपिंजल द्वारा ही मेघ के पास भेजते हैं, परन्तु बीच मे ही गौरी द्वारा कपिंजल एक गुप्त

पत्र का आशय जानकर (कपिंजल निरक्षर है।) भुवन रोमक आदि को पत्र पढा-कर, रहस्य से अवगत करा पुन वह पत्र मेघ के पास पहुँचा आता है। रोमक, भुवन सभी सावधान हो बरात लिये नील के पास पहुँचते हैं। मेघ अपने दल को सुसज्जित कर नील की पशुशाला मे प्रच्छन्न रूप से रखकर, स्वय विवाह मे पुरोहित वन उपस्थित होता है। हिमानी अपने देश की प्रथानुमार पहले अपने देवता वाल-देव की पूजा करने भुवन को एक कमरे मे ले जाती है। भुवन सावधानीपूर्वक झुककर मूर्ति को प्रणाम करना चाहता है, उसी समय हिमानी पीठ मे छुरा भोक देना चाहती है, परन्तु गौरी, जिसे हिमानी अपनी सहायता के लिये साथ लिये थी, उसे धकेलकर वाध लेती है। पुन नील की साकेतिक भापानुमार भुवन शख फूकता है और पहले से ही तत्पर आरुणि दीर्घवाहु की, सोममेघ को, रोमक नील को परास्त कर देते हैं। पशुशाला मे छिपे लोग वेद और कलपक के कौशल से पशुशाला के द्वार वन्द होने के कारण शख सुनकर भी भीतर ही तडपकर रह जाते है और भीतर के वधे पशु कोलाहल देख भयाक्रान्त हो रस्सी तोडकर योद्धाओ की ही पीडा का कारण वनते हैं। इस कारण मेघ और नील का पड्यत्र विफल होता है। मेघ के पास से गुप्त पत्र वरामद होता है। मेघ देश निष्कासित होता है। भुवन की मा भुवन और गौरी के प्रेम से अवगत हो और गौरी के उपकार से कृतज्ञ हो दोनो का परिणय सस्कार कर देती है और वे राज्य पुन प्राप्त कर लेते हैं। गौरी और कपिंजल अपने श्रम द्वारा अर्जित धन को रोमक और नील को क्रमश देकर ऋण-मुक्त हो जाते हैं। इस प्रकार कथा समाप्त होती है। कथानक विस्तृत, परन्तु सश्लिष्ट है और उसका विकास और जिज्ञासापूर्ण गति आदि उनके अन्य उपन्यासो के सदृश ही सफल है। परिणय-सस्कार मे पड्यत्र उनके 'गढ कुडार' मे भी मिलता है। वहा यह पड्यत्र पूर्ण सफल होता है, परन्तु यह स्मरणीय है कि वहा इस पड्यत्र द्वारा न्यायी और आदर्शपक्ष विजयी होता है। यहा इस पड्यत्र को विफल कर ही आदर्श पक्ष जीत ग्रहण करता है। 'ललित विक्रम' मे यह अश नही है। निश्चय ही लम्बी कथा का इतना सफल निर्वाह वहुत कम उपन्यासों मे देखने को मिलेगा। लम्बे कथानक का कारण देवकीनन्दन खत्री का उपन्यास है, जिसमे लम्बा कथानक औत्सुक्य सयोजित होता था। वर्मा जी, प्रेमचन्द्र आदि ने सामान्य जनता का दिशा परिवर्तन-किया, परन्तु लम्बा कथानक और जिज्ञासा के प्रबल स्रोत के सफल निर्वाह के द्वारा। खत्री जी के उपन्यास युग के वाद की उपन्यास-कृतियो की कथावस्तु के सवध मे मेरी यही धारणा है। जिज्ञासा, वेग, स्वाभाविकता, कौशल आदि सभी सफल कथानक के अपेक्षित तत्वो का समुचित निर्वाह आलोच्य पुस्तक मे दृष्टिगत होता हैं। परिसमाप्ति भी पराकाष्ठा (climax) पर लाकर सुन्दर ढग से हुई है। 'ललित विक्रम' मे गौरी, हिमानी आदि का प्रसग नही आया है। दोनो रचनाओ का कथानक वहुत साम्य होकर भी इन दोनो पात्रो के सयोजन से भिन्नता भी अनिवार्य रूप मे आ गई है। 'ललित विक्रम' और 'भुवन विक्रम' मे देशकालीन स्थिति, आर्थिक सामाजिक सक्राति भी नही है, वही राज्य, वही भूमि, वही नृपति है, परन्तु रोमक के पुत्र का नाम वहा ललित रखा है, इसमे भुवन या ललित नाम लेखक की अपनी कल्पना का नाम है, ऐतिहासिक नाम नही।

राजलिप्सा हिंसक-वृतियो का उद्रेक करती है, इसका उदाहरण शेक्स-पीयर की 'जूलियस सीजर' आदि कृतियो मे भी देख सकते है। भारतवर्ष के इतिहास मे इसके अनेक ज्वलन्त दृष्टान्त है। जयचन्द, राणासागा आदि सभी इस दृष्टि से ज्ञात हैं। राज्य के लिये भयानक युद्ध, विराटा की पद्मिनी, 'गढ कुढार,' 'कचनार,' 'मृगनयनी,' 'झाँसी की रानी-लक्ष्मीवाई' आदि वर्मा जी की अनेक कृतियो मे पाते हैं। परन्तु अन्य कृतियो मे जहाँ रक्तपात होता है, वहाँ आलोच्य कृति मे ऐसा नही हो पाता है। कोई भी मुख्य पात्र समाप्त नही होते। साथ ही प्राय सभी पुस्तको मे सत्य-पथ के पात्र एव पक्ष का ही विजयी होना चित्रित है। 'झासी की रानी लक्ष्मी बाई' और 'विराटा की पद्मिनी' मे सत्य-पक्ष पराजित होता है, परन्तु वे प्रेरणा की शक्तिमयी लहर छोड जाते हैं। झाँसी की रानी की वास्तविक दृष्टि से मृत्यु नही होती है, क्योकि उसके द्वारा उत्पन्न राष्ट्रीय-चेतना, वीरत्व-भावना, देश-प्रेम क्या कभी मर सकता था ?

पुस्तक का नामकरण भी भुवन के धर्म और शक्ति के समुचित सेवा-स्वरूप विक्रम के सुन्दर विजय-स्वरूप उचित ही लगता है। प्राय वर्मा जी के ऐतिहासिक उपन्यासो मे नारी प्रधान होती है और उन्ही के नाम पर नामकरण भी किया गया है। उनके 'भुवन विक्रम', 'मुसाहिव जू' आदि कुछ ही पुरुप-प्रधान उपन्यास हैं। परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नही कि नारी-प्रधान उपन्यासो मे पुरुप महत्व नही रखते या पुरुप-प्रधान मे नारी। आलोच्य कृति मे भी हिमानी और गौरी का चरित्र बडा महत्त्वपूर्ण है, फिर भी भुवन ही सम्पूर्ण सूत्रो का आधार है।

मैं अपने कई लेखो मे स्पष्ट कर चुका हूँ कि प्रेमचन्द, वृन्दावनलाल वर्मा और राजाराधिका रमण मे 'आदर्शोन्मुख' यथार्थ मूल रूप से कार्य करता है। प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम' और 'सेवासदन' आदि, राजा साहब के 'राम-रहीम' और वृन्दावनलाल की 'मृगनयनी', 'भुवन विक्रम' आदि को इस दृष्टि से देख सकते हैं। 'भुवन विक्रम' मे लेखक ने स्वय लिखा है, "उस काल के सलोनेपन, जीवन, सयम और सद्यता को हम आज के जीवन मे उतार सके, तो क्या वात है।"

विना सयम और अनुशासन के जीवन की गाडी आगे नही वढाई जा सकती। प्राचीन साहित्य मे स्थान-स्थान पर उसका विवेचन और पोपण किया गया है। वर्तमान समाज की अनुशासनहीनता से जब प्राचीन काल के समाज की सयमशीलता की तुलना करते हैं, तब आश्चर्य होता है कि क्या से क्या हो गया है। वैदिक काल के एक अग पर लिखने की वहुत समय से इच्छा थी। उस काल की तरुण और मद्य ओजस्विता का स्पन्दन इतिहास और कथाओ मे स्थान-स्थान मिलता है।" (परिचय-लेखक)।

उपर्युक्त उद्धृत वाक्याश द्वारा आदर्श-ग्रहण और शिक्षण की मूल प्रवृतिया विम्वित हो जाती हैं। लेखक को वर्तमान मे फैली अनास्था और उदासीनता का वायु-मडल अवरुद्ध नही कर पाता है और उसे विश्वास है, "मानव सम्पूर्णतया कभी अशक्त नही होता, हो नही सकता—यदि ऐसा हो, तो सृष्टि का कार्य खडित हो जाय। हमे अपने समाज मे जो कुछ भी शिथिलता, अकर्मण्यता और ऊचे आदर्श के प्रति गति-

हीनता दिखलाई पडती है, वह विकास के क्रम की एक कडी-मात्र है, जो चिरकाल तक नही रह सकती ।" (परिचय-लेखक) ।

इस प्रकार वर्मा जी आस्थावान कलाकार है । परन्तु ये विकृत हेय प्रवृतिया किस प्रकार समाप्त होगी और समुज्जवल किरणो का दर्शन होगा ? इसी भावना से प्रेरणासक्त हो मार्ग-दर्शन निमित्त लेखक ने प्रस्तुत रचना की है । उत्तर-वैदिक काल में रोमक शासनान्तर्गत इसी प्रकार की गलित मानसिक विकृतिया प्रवल हो उठी थी, अराजकता के कारण सास्कृतिक, राष्ट्रीय जीवन मे विक्षेप उत्पन्न हो गया था । अनुशासन और सयम की प्रेरणा-मूलक शृखला विछिन्न हो विखर गई थी । रोमक की उदासीनता, कर्मशीलता का समुचित अभाव, नील आदि व्यापारियो की अराष्ट्रीय शोषण-वृति, भुवन का 'कृत मे दक्षिणो हस्ते जयो मे सव्य आहित' (अथर्व-वेद-७ ४२ ८ का श्लोक) मत्र का समुचित अर्थ विना ज्ञात किये चचल-वृति का अनुसरण, मेघ के आचार्यत्व का अहम् सभी मिलकर अराजकता तथा विप्लव उत्पन्न करने का कारण वनते है। परन्तु जव रोमक और भुवन उन गूढ मन्त्रो का समुचित अर्थ धौम्य ऋषि द्वारा ज्ञात करते हैं, ऋत धर्म से सचालित पुरुषार्थ अपना पाते हैं । 'अरिष्टास्याम तन्वा सुवीरा (अथर्व-४ ३), अदीनास्याम शरद शतम् (अदीन होकर सौ वर्ष जिए) (यजुर्वेद-३६ २४), कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषे-च्छत समा (ससार मे मनुष्य कर्म करता हुआ सौ वर्ष जीने की इच्छा करे, यजु० ४० २), आरोहणमक्रमण जीवतो जीवतोऽयजम् (ऊपर उठना और आगे वढना प्रत्येक जीव का लक्ष्य है, अथर्व ४ ३० ६) आदि तत्वों को ग्रहण कर यह प्रार्थना करते हैं। "उतदेव अवहित देवा उन्नयथा पुन (देव, मुझ गिरे को ऊपर उठाओ, ऋग्वेद-१० १३७ १), तन्मे मन शिवसकल्पमस्तु (मेरा मन कल्याणकारी सकल्प वाला हो—यजु० ३४ १) तो वे विजयी होते है, क्योकि उन्हे यह समुचित वोध हो जाता है कि इच्छन्ति देवा सुन्वन्त न स्वप्नाय स्पृहयन्ति (देवगण पुरुषार्थी को चाहते हैं, सोये हुये को नही—ऋग्वेद ८ २ १८), शतहस्त समाहर सहस्त्र सकिर (सैकडो हाथो से इकट्ठा करो और सहस्त्रो से वाट दो-अथर्व ०३ १४ ५), माकृध कस्यास्विधनम-(यजुर्वेद-४० १), ऋतस्य पन्थी न तरन्ति दुष्कृत (दुष्कर्मी मनुष्य सत्य मार्ग को पार नही कर सकते, ऋग०-९ ७३ ६), भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वप्नम् (सजगता वैभव देती है, सोना और आलस्य में पडे रहना दरिद्रता को बुलाना है-यजु० ३० १९), तो वे विक्रमी हो जाते हैं, विजयी हो जाते है। इन्ही सूक्तो के सन्निवेश और आराधना से भुवन और रोमक द्वारा सत्य-वोध होना चित्रित किया गया है, जो वर्तमान के लिए भी आदर्शात्मक और व्यावहारिक प्रेरणा-स्रोत सिद्ध होगा । धौम्य ऋषि भुवन को यही तत्व-ज्ञान जीवन के साफल्य के लिये आवश्यक ठहराते हैं—'विवेक के साथ प्राचीन को जानो, पहचानो और समझो, वर्तमान को भली-भाति देखो, परखो और उसमे चलो और भूत तथा वर्तमान दोनो की सहायता से भविष्य को प्रवल बनाओ भय और वाधाओ के सामने कभी न झुको जीवन की लहरो पर दृढता के साथ आरूढ हो । जो कुछ भी सीखा है, उसे पुरुषार्थ के साथ सत्य, शिव और सुन्दर की दृष्टि से कार्यान्वित करो ।" (पृ० १९२) पुन वे गूढता से कहते हैं—"पुराने कुर्ते और कञ्चुक

इत्यादि देखने मे तो अच्छे लगते हैं और पुराने होने के नाते पुरानी स्मृति को सुहावना भी बना देते हैं, परन्तु बढी हुई देह के लिये ओछे पड जाने के कारण पहिने नही जा सकते—या तो फट-फटाकर तार-तार हो जायेंगे या देह को जकडते दुखाते रहेंगे। हा, उनमे बुने हुए सोने-चादी के तार और पिरोये हुए हीरे-मोती नए वस्त्र बनाने के काम मे आ सकते हैं। बिना ठीक नाप-तौल के नये वस्त्र भी या तो ढीले बैठते हैं या ओछे पडते हैं। ये भी व्यर्थ जाते हैं या हसी के कारण बनते हैं। यही बात पुराने और नये शास्त्रो के उपयोग-प्रयोग के लिये भी लागू है।" (पृ० १९३) और वेदज्ञ-स्वरूप बने आरुणि को स्पष्टता से शिक्षा देते हैं—"जो व्यक्ति कर्म का ज्ञान की उपेक्षा करके सेवन करते हैं, वे गहरे अधकार मे चले जाते हैं और जो कर्म की उपेक्षा करके केवल ज्ञान मे रमते हैं, वे उससे भी अधिक अधकार मे खप जाते हैं। ज्ञान और कर्म का सामंजस्य जीवन का यथार्थ समझो।" (पृ० २०४) जयशकर प्रसाद ने बुद्धि, कर्म और श्रद्धा के समन्वय की प्रेरणा 'कामायनी' के माध्यम से दी है, वहा वर्माजी ने श्रद्धा को ज्ञान के अतर्गत ही अतर्मुक्त कर दिया है। धौम्य का यह वाक्य भी बडा महत्वपूर्ण है, "धर्म, अर्थ और काम को इस प्रकार भोगो कि एक दूसरे से टकराते न फिरें।"

वार्तालाप मे स्वाभाविक पात्रोचित, कथावस्तु की प्रगति की प्रेरणा, जिज्ञासा आदि सभी अपेक्षित तत्व 'भुवन विक्रम' मे हैं। वर्मा जी के वार्तालाप स्वाभाविक सरल पात्रो की मनोदशा पर प्रकाश डालने वाले तथा जीवत गतिशीलता आदि तत्वो के सतुलन से सौन्दर्यान्वित होते हैं। गौरी, हिमानी, धौम्य और उनके शिष्यो का वार्तालाप उदाहरणार्थ देखें। इस दृष्टि से पृष्ठ २३९-२४० ध्यातत्व हैं।

'भुवन विक्रम' मे भी अन्यान्य पुस्तको के सदृश वर्मा जी ने सुन्दर प्रकृति-चित्रण प्रस्तुत किया है। निश्चय ही प्रकृति के जीवत-चित्रण हिन्दी की कम उपन्यास कृतियो मे दृष्टिगत होते हैं। कितनी सूक्ष्मता से सजीवता-पूर्ण प्रकृति-चित्रण 'भुवन विक्रम' मे हैं, इसके लिये हम उसके प्रथम पृष्ठ को ही देखें। ऐतिहासिक उपन्यासकार सर वाल्टर स्कॉट की कृतियो मे प्रकृति का बडा सुन्दर चित्रण मिलता है जिस पर मैं अन्यत्र प्रकाश डाल चुका हूँ।

'झासी की रानी—'लक्ष्मीबाई' 'अहिल्याबाई' आदि कृतियो मे आरम्भ के कुछ पृष्ठ परिचयात्मक होने से आकर्षक नही लगते परन्तु 'भुवन विक्रम' मे वर्मा जी उस दोष से मुक्त हो गये है।

प्रत्येक देश की जनता की विचारशक्ति दृढ नही होती। विचारो और मनोभावो मे निरतर शीघ्रता मे परिवर्तन होता रहता है। उनके विचारो मे भी समानता नही रहती। राजा रोमक राज्यच्युत होने पर जनता की भावना से परिचित होने का प्रयास करते हैं, उससे अपने पतन का कारण जानना चाहते हैं, परन्तु कोई निश्चित तथ्य नही ज्ञात होता। कोई कुछ कहता है, कोई कुछ। क्षण मे मेघ से प्रभावित हो जनता मेघ का समर्थन करती पुन रोमक की दानशीलता से रोमक का शेक्सपीयर ने इसलिये 'जूलियस सीजर' के Act III,Scene I,II मे इसकी भर्त्सना की है। 'Black Tulip' मे डयूमा ने भी ऐसा ही सिद्ध किया है।

वर्माजी की कृतियो मे भाषा का सरलपन सर्वत्र दीखता है जो वे गूढ-तत्व भी

सरल शब्दो मे प्रकट करते हैं। प्रसाद जी की तरह तत्सम शब्दो से आबद्ध या अज्ञेय की तरह मनोवैज्ञानिक आदि टेकनीकल विशिष्ट शब्दो से पूर्ण नही। वेद के गहन तत्त्वो को भी उसी सरल भाषा मे निहित कर दिया है। धौम्य के आदेश और उपदेश इसके उदाहरण हैं। भाषा मे बुन्देली शब्द ठसक, मोथरी आदि भी मिलते हैं जो क्षेत्रीय प्रभाव है। एक-आध जगह भाषा की गडबडी भी मिलती है, 'जैसे बहुत पानी बरसता रहा था।' और वाक्य मे मुहावरे भी आते हैं। 'चवड-चवड' शब्दो का प्रयोग उनकी कई कृतियो मे है, जो सम्भवत प्रान्तीय शब्द है। एक विदेशी से यह कहलाना (भुवन विक्रम मे') "मान गये न भैया ? राजा मुन्ना मेरे।" (पृ० २९३) मुझे उचित नही लगता। लगता है, वे इस क्षेत्र मे विशेष सतर्क नही रहते, भावो पर विशेष दृष्टि किये रहते है। आलोच्य उपन्यासो मे रोमास का पुट है। "झासी की रानी लक्ष्मीबाई' मे वैयक्तिक प्रेम पर राष्ट्रीय प्रेम मुखर हो उठा है, आलोच्य कृति मे भी वैयक्तिक प्रेम अकर्मण्यता और देश-प्रेम व्याघात उत्पन्न नही करता।

चरित्र-चित्रण

श्रीयुत् वृन्दावनलाल वर्मा हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकारो मे सर्वश्रेष्ठ स्थान कथानक, चरित्र-चित्रण आदि सभी औपन्यासिक दृष्टियो से रखते हैं। अब हम 'भुवन विक्रम' के प्रमुख पात्रो—भुवन, गौरी, हिमानी आदि की सफलता-असफलता पर विचार करेंगे। आलोच्य उपन्यास का नायक भुवन है, जो अपने विक्रम से विजयी होता है और इसी के नाम पर पुस्तक का नामकरण भी हुआ है। भुवन नृपति रोमक का इकलौता पुत्र है, सुन्दर, परन्तु चचल वृत्ति का वाचाल युवक है—"शरीर सुडौल और चेहरे का बनाव आकर्षक। देह से लगता था जैसे आयु कुछ अधिक हो, पर चेहरे से अधकचरापन झलकता था। (पृ० २, भु० वि०) इन वाक्यो से ही उसकी वृत्ति पर स्पष्ट प्रकाश पड जाता है।

भुवन चचल और गर्वीला होकर भी क्रूर नही है—मानवीय हृदय रखता है, तभी तो वह पीडित कपिजल के साथ उदारतापूर्ण व्यवहार करता है, मेघ इसलिये उससे रुष्ट भी हो जाता है। भुवन की सहृदयता का ही परिणाम है कि कपिजल को दयनीय अवस्था मे देख वह उसे अपने लक्ष्य तक पहुचाने को तत्पर होता है और दुलार के स्वर मे कहता है, "मैं तुम्हे घोडे पर रखकर लिए चलता हू, वैद्य से उपचार कराऊगा। (पृ० १७, भु० वि०) कल्पक और वेद को काधे से जुआँ खीचते देख वह करुणार्द्र होकर उन्हे सहायता देने के लिये उद्यत होता है।

धौम्य ऋषि के आश्रम मे वह सयम और अनुशासन से अपनी चचल-वृत्ति आदि पर विजय प्राप्त करता है। धौम्य द्वारा उसकी सवेदनशील मानवीय वृत्ति उचित और सन्तुलित विकास प्राप्त करती है और वह विक्रमशील बन जाता है।

भुवन मे सत्पथ-सचरण की आत्मिक लालसा है, तभी तो सयमहीनता और अहम् दमन के निमित्त धौम्य के आदेश का प्रसन्नतापूर्वक पालन करता है और वह अपनी प्रियतमा गौरी से भी मिलना और बातें करना छोड देता है।

भुवन उच्च भावना से गौरी के प्रति आदर्श प्रेम रखता है। परन्तु कर्त्तव्य के

सम्मुख अपने प्रेम पर सयम भी रखता है और धौम्य के आदेशानुसार गौरा से मिलना तक छोड देता है। फिर भी उसके प्रति शुद्ध प्रेम हृदय से बनाये रखता है।देखिए, गौरी की मृत्यु ज्ञात कर अपनी भावना किन शब्दो में वह प्रकट करता है, "अरे वह (गौरी)! युवती शरीर और चेहरे-मोहरे दोनो से वय मे बढी-चढी दीखती थी, होगी वह भी इसी आयु की। कोमलता, स्नेह, सौन्दर्य और निर्मलता की मूर्ति जिसे जीवन-सगिनी बनाने का शपथपूर्वक वचन दिया था। मेरे दुर्भाग्य ने उसे मुझसे छीन लिया।" और भुवन का माथा जलने लगा। उसे पूर्वस्मृति बडी पीडा पहुचाती है, —"नैमिषारण्य के वे जगली फूल! उस दिन वह मुझे दे रही थी और उसकी गाय गर्दन उझकाकर हम दोनो की ओर देख रही थी। मैंने उसको कितना कष्ट दिया था भोले सौन्दर्य की उस प्रतिमा को!! साक्षात गौरी को!!! वह चली गयी और मैं यहा खडा-खडा रो रहा हू। निर्मम! पत्थर!"

वह गुरु-वचन पालन-कर्ता, साथ ही पितृ-भक्त भी है और उन लोगो की इच्छा से हिमानी से अप्रसन्न रहने पर भी विवाह के लिये स्वीकृति दे डालता है।

गौरी क्षत्रिय वश की पूर्ण भारतीय उच्चादर्श की नारी है, जिसके अन्दर प्रेम का समर्पण, भावना का गाम्भीर्य, चरित्र की दृढता, त्याग की महिमा और सेवा की तत्परता है। वर्माजी की प्राय सभी नायिकायें उच्चादर्श स्थापित करने वाली होती हैं। अहिल्याबाई, मृगनयनी, झासी की रानी लक्ष्मीबाई, कचनार सभी इसी की उदाहरण हैं। निश्चय ही नारी मनोविज्ञान के साथ उसकी पवित्रता और उच्चता देखनी हो तो वर्मा जी की कृति मे देखें। गौरी सदा भुवन को उच्च विचार और आदर्श की दृष्टि से देखती है। जब उसे हिमानी, मेघ आदि से भुवन के सर्वनाश होने की शका होती है, तो वह कितनी नारीगत कोमलता और स्वाभाविकता से प्रार्थना करती है, "प्रभो! उनको बचाओ, उनके बदले मे यमराज चाहे मुझे ले लें।"

गौरी की यह नारीगत कमजोरी ही है कि जब हिमानी अधूरे रूप मे अपने द्वारा भुवन के प्रति प्रणय-निवेदन की वाछा प्रकट करती है, तो उस स्थल पर उसके क्रियाकलाप द्वारा यह प्रकट हो जाता है—"गौरी ने फिर खासते-खासते कपडे मे अपना मुह छिपा लिया। पर अब खासी नही आ रही थी, दम फूलने लगा था।" नारी अपने दिल पर लगी ठेस को आसू द्वारा ही तो शान्त करना चाहती है। गौरी का प्रेम कोलाहलपूर्ण नही, शान्त, मूक और निरीह ढग का है। इसी प्रकार का प्रेम डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी की 'बाण भट्ट की आत्म-कथा' पुस्तक मे है। अचानक जब भुवन उससे मिलना छोड देता है, तब वह अपने ही भाग्य को दोषी ठहराती है, जैसा भारतीय नारियो की स्वाभाविक मनोदशा है—" वे कदाचित (मुझे) न पहचाने। पहिचान भी लेंगे, तो फिर तिरस्कार नही, उपेक्षा या क्या? करें तो करलें। मुझे क्या! मेरे लिये तो वे ही हैं और रहेगे।" गौरी के शरीर के कण कण मे भुवन के कल्याण की भावनाए सन्निहित है—"मैं भुवन से प्रेम करती हू, वह चाहे या न चाहें, मैं उनकी रक्षा मे अपने तन के खण्ड-खण्ड कर दूगी। मैं उस अवसर पर दूर नही हो सकती। डूगी भी तो दौड पडूगी और जल्दी आग मे कूद पडूगी।" हिमानी मे भुवन की वह रक्षा भी करती है।

गौरी मे क्षत्रिय गौरव भी है, जहा वह हिमानी को धकेलकर उसे परास्त कर देती है(भुवन की हत्या के समय)वहा अपने पिता द्वारा रोमक से लिये ऋण को देना भी नही भूलती और हिमानी के यहा सेवा कार्य कर उसे चुका भी देती है ।

हिमानी व्यापारी नील की पुत्री, अहम् से चूर, कपटपूर्ण हिंसक प्रवृत्ति की है । हिमानी का वाह्य परिचय लेखक के शब्दो मे इस प्रकार है

"एक रथ पर एक युवती थी और दूसरे पर एक युवक । युवक की आयु पन्द्रह वर्ष की है । दोनो की भौहे सिकुडी पर युवती की वडी आखो पर मिकुडन गहरी, लगता था कि युवती सामने वाले रथ पर अपने घोडो को चढाये देती है । युवक उतर पडा । बोला 'एक तरफ कर लो । हटो ।' कोडा हाथ मे लिये युवती भी उतर पडी । 'कहा कर लें ? जगह ही नही ।' युवती का स्वर पैना था, जैसे मोर का, जो वरसात के वादलो को देखकर नही, दूसरे मोर को लडने के लिये चुनौती देता हुआ चीखता है । और युवक के अयोध्या के राजकुमार उद्घोपित करने पर विना सकुचे हुए उत्तर देती है—"और मैं हू श्रीमान नीलफणिश की पुत्री, जिसका नाम यहा और समुद्र के पार भी प्रसिद्ध है ।" यह है हिमानी, उद्दण्ड, और दर्प से उद्दीप्त।। हिमानी जिस ससार मे पली है, उसका उस पर गहरा प्रभाव है,—'नील कजूस था, पर कंडे वाला भी । भीतर-भीतर क्रूर और ऊपर-ऊपर वडा शिष्ट । लडकी को प्यार करता था, पर उससे भी वढकर अपने भविष्य को ।' हिमानी की मा नही थी तो क्या, नील का वर्तमान तो उसके साथ था, और दूर के भविष्य की आशा भी । हिमानी ने वर्तमान मे अपने को ढाल लिया था और भविष्य को वर्तमान की चुनौती देना उसका स्वभाव वन गया था । डा० रागेय राघव की पुस्तक 'मुर्दों का टीला' मे विदेशी नीलूफर भी उसी प्रकार चचल और उत्तेजक नारी के रूप मे चित्रित है । परन्तु नीलूफर के सम्मुख जहा प्रेम मुख्य कारण है, वहा हिमानी के सम्मुख राजनीति निश्चय ही हिमानी असत् वृत्तियों की प्रतीक है । वह अपने देवता से भी प्रार्थना करती है, "जो हमसे द्वेप करे उसे जला डालिए, हमारे शत्रुओ को मार दीजिये । हमको इस तरह की शक्ति दीजिये कि हम अपना पसारा दुनिया भर मे कर सकें । वडे-वडे पुरुपो को नीचा दिखलाने का सामर्थ्य दो मुझे ।" (पृष्ठ ३०)

वह दूषित और कपट नीतिमयी नारी है । अपने कपटाचरण द्वारा दीर्घवाहु को जाल मे आवद्ध कर, उसे विवाह का प्रलोभन दे, उल्लू सीधा करती है । राजा को मनोनुकूल न पाकर उसके विरुद्ध दीर्घवाहु आदि को प्रेरित करती रहती है, "राज्य की जो दुर्दशा हो रही है, उसकी जिम्मेवारी है रोमक की । रोमक को गद्दी पर से उतारने का प्रयत्न करो ।" (पृष्ठ ३२) और मेघ आदि के सहयोग से भुवन और रोमक आदि के सर्वनाश का भयानक पड्यन्त्र रचती है, भुवन से शादी के वहाने समाप्त कर देना चाहती है । इस कार्य मे वह इतनी पटु है कि गौरी को अपने निकट वरावर रखकर भी शीघ्रता से गुप्त वातें नही वतलाती ।

वह कृपण स्वभाव की भी है, अपने नौकरो को पूर्णतया भोजन नही देती । इस दृष्टि से हम प्रस्तुत पुस्तक के १३६–१३७ पृष्ठ देख सकते हैं । उसकी नीचता की तो पराकाष्ठा उस समय देखने को मिलती है, जव वह अपने देवता वालदेव से प्रार्थना

करती है, "टाडे को जहा जाना है, वहा तक पहुचने के समय के लिये चगा हो जावे, क्योंकि जानकार नौकर है, फिर मर जावे, तब तक दूसरा चतुर नौकर खोज लूंगी।" (पृष्ठ १३८)।

उसके अन्दर मनुष्य के प्रति प्रेम है ही नही, उसकी हृदयहीनता तो पराकाष्ठा पर दीखती है, जब प्रेम के प्रसग मे गौरी के ही मुख पर उसके प्रेमी की मृत्यु की चर्चा स्पष्ट और बिना कोई पीडा और सवेदना के कह डालती है (पृष्ठ ४०) जैसे यह कोई महत्वहीन बात हो। अपने मुर्गों को दीर्घबाहु, भुवन आदि नाम देकर गाली देना आदि उसकी दुष्टता के चिह्न हैं।

उसे अपने रूप पर भी अभिमान है। गौरी की सुन्दरता से सशकित होना उसका नारी मनोविज्ञान है और इसीलिये वह उसमे कुरूपता आरोपित करने के लिये उसका नाम विकृत कर खेती रखती है। उदाहरणार्थ, पृष्ठ ३२३ आदि देख सकते हैं। निश्चय ही इस प्रकार की पतनोन्मुख स्त्रिया ससार मे मिलती हैं। हिमानी का चरित्र भी बडा सशक्त और सफल चित्रित हुआ है। परन्तु यही पर यह भी ध्यातव्य है कि नीलूफर प्रेम के अभाव मे चचल और क्रुद्ध होती है, वहा हिमानी प्रतिक्रिया-वश नही अपितु स्वभावत कृपण, हिंसक एव दुष्ट नारी है।

रोमक—'Economic Life and Progress in Ancient India' नामक डा० नारायणचन्द्र बद्योपाध्याय द्वारा लिखित पुस्तक मे रोमपाद नाम आया है, परन्तु अयोध्या-नरेशो की एक वशावली मे वर्मा जी को रोमक नाम मिला, रोम-पाद नही। इसलिए रोमक नाम ही रखा। "इक्ष्वाकु वश के इस रोमक की आयु चालीस के उस पार होगी। शरीर से तगडा, चेहरा सुन्दर और रोबीला। रेशमी धोती, कुर्ता और सिर पर लाल रग के रेशम का उष्णीश। कमर मे म्यान मे पडी तलवार, जो पीले रेशमी फेंटे से कसी लटक रही थी। गले मे मोतियो की माला, भुजा पर सोने के भुजबन्ध और कलाइयो पर कडे ।" डा० नारायणचन्द्र की उक्त पुस्तक मे उनके राज्य-काल मे अकाल का उल्लेख है। वे (रोमक) उदार पुरुष हैं, अकाल पडने पर जनता मे अन्न और धन बाटते हैं, राज्य की ओर से अनेकानेक यज्ञो का अनुष्ठान करते हैं। परन्तु यहा उनकी प्रगति-शील भावना और उदारवृति पर ही प्रकाश पडता है। वे यज्ञ मे पशु बलि नही कराते, दास-प्रथा के भी प्रतिकूल भाव रखते हैं। इसीलिये नील को स्पष्ट रूप मे कह देते हैं—

"मैं दास प्रथा को अच्छा नही समझता। हमारे यहा कहा है कि ऊपर उठना और आगे बढना प्रत्येक जीव का लक्ष्य है कपिजल या किसी भी दास की पकड-धकड मे मैं कोई सहायता नही कर सकूगा" (स्मरण रहे यह भी वेदोनुकूल तत्व है।) इसी प्रथा के विपरीत विचार रखने के कारण नील, मेघ आदि उससे मनोमालिन्य रखते हैं।

वे ज्ञानी भी हैं और अपने पुत्र को ऋचाओं की शिक्षा देते रहते हैं। परन्तु वे सिद्धान्त के समुचित अर्थ समझने से वचित हैं। तभी उनको पुरुषार्थ और विजय का सम्बन्ध बताते हैं, परन्तु धर्म को हृदय मे रखकर ही, ऐसा समझ मे नही आता। (पृष्ठ १७९)। परन्तु उनमे त्रुटिया हैं, जिसके कारण वे पतनोन्मुख होते हैं, राज-च्युत होते हैं, "कभी कुछ नही और कभी एकाएक कुछ कर डालने के स्वभाव ने उनके

प्रयत्नो को विकृत और लचर वना दिया है ।" उनकी त्रुटियो पर प्रकाश पृष्ठ मख्या ९९ और १०० मे विस्तार से देखा जा सकता है ।

अन्त मे वह कपिंजल की हत्या पर तत्पर होकर दिग्भ्रमित हो जाते है । पर इस अवस्था मे भुवन द्वारा प्रकाश पा इस पाप मे वच जाते हैं और मद्भावना के स्फुरण और धौम्य द्वारा शिक्षा प्राप्त कर अपनी त्रुटियो को ममझ जाते हैं । धौम्य ऋषि के उपदेश के अनुसार (पृष्ठ १८३) राज करने वाले के पाप हैं—आलस्य, आगे की न सोचना, ठीक निश्चय पर न पहुचकर परस्पर विरोधी विचारो के बीच मे झूलते रहना, वेटवेगार लेना, खेती एव शिल्प की महायता न करना, ऋपियो का तिरस्कार करना, लुटेरो को न दवा पाना, लाखो विवर्तन भूमि अपनी खेती के लिये रख लेना और भूमिहीनो को मारे-मारे भटकने देना, जनपद के कोप को अपना ममझना, काम अधूरे छोड देना, मन मे लालच को वनाये फिरना ।" इस तत्व को भली भाति हृदयङ्गम कर लेने के वाद रोमक अपना उचित सुधार कर विजयी होते हैं ।

मेघ आचार्य द्विज हैं, परन्तु वैदिक रीति के विपरीत क्रोधी हैं, जिसके फलस्वरूप धौम्य ऋषि और सोम आदि पुरुप इन्हे आचार्य नही मानते । भुवन उनके साथ रहकर भी उनसे प्रभावित नही होता । उनका परिचय लेखक के ही शव्दो मे देखे, "मेघ उतरती अवस्था का दीर्घकाय सावला पुरुष था । सिर पर जटाजूट, ठोडी के नीचे लहराने वाली खिचडी रग दाढी, कमर मे सफेद सूती करधनी, गले मे रुद्राक्ष, पैरो मे खडाऊ, शरीर पर ऊनी उत्तरीय । आकृति से जान पडता था कि हटी, क्रोधी और हिंसक-प्रवृति का है । आखें गड्ढे मे ऐसी धसी हुई कि गडाकर देखें, तो लगे कि मोम के हृदय को छेदकर पीठ के पार होकर ही दम लेंगी । पर असल मे दृष्टि निर्वल थी ।" (पृष्ठ ८)

वे निम्न स्तर के व्यक्तियो के साथ, दासो के साथ उदारता स्वीकार नही कर सकते । तभी तो कपिंजल उन्हे प्रणाम नही करता, तो कह वैठते हैं, "असल मे (रोमक) के शिथिल शासन के कारण ही दासो और शूद्रो ने इतना सिर उठा रखा है ।"(पृष्ठ-१२) और जव भुवन नील के दास पर किये गये अत्याचार के विरुद्ध वोलता है, तो मेघ विचलित हो उठते हैं, (पृष्ठ १४-१५) "इस शूद्र से तेरा क्या नाता है ?" और भुवन के इस उत्तर पर, 'कुछ भी नही, केवल धर्म का' तो वे आग वन गरज उठते हैं, "नीच, दुप्ट, पापी ।' उनके इसी क्रोधी स्वभाव का उदाहरण है जव मेघ द्वारा भुवन पर किये गये आक्षेपो पर रोमक ध्यान नही देते तो वे "अभिज्ञान शाकुन्तल" के मुनि दुर्वासा के सदृश शाप दे वैटते हैं 'तुम मिटोगे, तुम्हारा सर्वनाश होगा । तुमको जवतक गद्दी पर से नही उतारा, चैन नही लूगा ।" (पृष्ठ १३)

मेघ का तेज उत्कृष्ट नही, तभी तो उसकी शक्ति को अहकार सदा पालता-पोपता रहता था । षड्यन्त्र रचना की प्रतिभा उसमे थी ही ।' (पृष्ठ ६४) परतु यह सत्य है कि कुछ काल के लिये असत्य, पाप, प्रवल हो उठता है, 'सत्य हरिश्चद्र' मे विश्वामित्र के कारण भी कुछ काल ऐसा ही हुआ था, परन्तु वह अन्ततोगत्वा परास्त होता है । मेघ के साधको का साथी था अन्ध-विश्वास को वढाने वाला, मानव की विकास-प्रेरणा और निर्भीकता को कुटिल करने वाला वेद-वादरत कर्मकाडी ।" (पृष्ठ १०४)

और वे अल्पकाल के लिये रोमक को राज्यच्युत कर शासन प्रवलता से करते हैं, परन्तु उसका अन्त वडा ही दयनीय होता है—देश निष्कासन। धौम्यकह ते हैं, "चोर डाकू, अधर्मी, अत्याचारी दस्यु ये शूद्र है। श्रम करने वाला शूद्र नही है। जन्म से कोई भी शूद्र नही। स्मृति और श्रुति की मेरी व्याख्या यही है और मैं इसी को चलाऊगा। अहकार, द्वेप, भय, परिग्रह और वासनाओ से लिप्त लोग भी दस्यु और शूद्र कहलायेगे। मानव के सवसे वडे शत्रु अहकार और स्वार्थ हैं। अहकारी, द्वेषी और क्रोधी नीच हैं।" (पृष्ठ १२५) मेघ नीच और शूद्र हैं। जिस प्रकार अम्ब-रीष मे तामसी वृति वाले दुर्वासा अपने पाप का फल भोगते हैं, उसी प्रकार मेघ भी, जिस प्रकार हिमानी खलनायिका है, उसी तरह इन्हे खलनायक कह सकते हैं।

इसके अतिरिक्त वेद, कल्पक, कपिजल, धौम्य आदि भी वडे स्वाभाविक और जीवन्त पात्र हैं। पात्रों का मनोश्विलेषण, क्रिया-प्रक्रिया आदि सफलता के साथ वर्णित हैं। पात्र-चित्रण के सभी प्रकार जैसे लेखक द्वारा स्वय चरित्र प्रकट कर, क्रिया-कलापो द्वारा और दूसरे पात्र के चारित्रिक वैशिष्ट्य पर प्रकाश डाल कर, व्यवहृत हैं।

आलोच्य पुस्तक मे मुझे यह वात अवश्य खटकी है कि आरुणि, जिसे कर्म-शील ज्ञानी के रूप मे लेखक ने चित्रित किया है, शीघ्र विना सोचे-धारणा वना लेता है, अभिमत प्रकट कर देता है, हिमानी को एक वार देखता है और विना उसके अदर वैठे हुए तुरन्त सोचता है कि 'इस स्त्री मे कठोरता, प्रचडता का कोई लक्षण है' (पृष्ठ २६९)। उसका पुन यह सोचना (पृष्ठ २७१) कि 'हिमानी कठोर स्वभाव की तो नही पर कुछ लफगी अवश्य है।' और भुवन पर कह आक्षेप करना (पृष्ठ २७६) कि "यह (हिमानी) भयकर तो अशमात्र भी नही। तुम मूर्ख ही रहे" अनुचित लगता है। ज्ञानी विना समुचित सोचे-समझे न ऐसी धारणा वना सकता है, न वोल सकता है, वेद और कल्पक ऐसा कहते, तो उचित हो सकता था। फिर भी यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वर्मा जी की यह सफल कृति है। इसके लिये वर्मा जी प्रशसा के पात्र हैं।

'माधव जी सिन्धिया'

'माधवजी सिन्धिया' ५७७ पृष्ठो की जटिल घटनायुक्त ऐतिहासिक उपन्यास कृति है जिसमे अठारहवी शताव्दी के पेशवा के पटेल श्री माधवजी सिंधिया, Steel under velvet gloves[1] का महान जीवन चित्रित है और उक्त आधार पर ही पुस्तक नामकरण भी किया गया है।

आलोच्य पुस्तक मे इतनी घटनाए और मोड है कि क्रमवद्ध कथा-विकास का स्मरण किसी पाठक को शायद ही रहे। इसमे ऐसा प्रतीत होता है कि तथ्यो का भयानक मोह लेखक के अन्दर आसन मारकर वैठा है। निश्चय ही वर्मा जी तथ्यो के प्रवल आग्रही रहे हैं।

---

१ Memoirs of Central India, जनरल मालकम (जो माधव जी का सम सामयिक था।)

माधव जी सिंधिया, जो लेखक के विचार मे राजदर्शी हैं,[1] किम प्रकार भारत मे विद्यमान अनेक क्रूर प्रभजनो से भारत-पुष्प को सुरक्षित रखने का प्रयत्न करते हैं, अग्रेजो, फ्रासीसियो, अहमदशाह अब्दाली और विदेशी तथा देशी शत्रुओ की शक्तियो के मध्य, भारत मे फैली अनास्था, द्वेप, विपमता की लहर मे वे भारतीय शक्ति को सूत्रवद्ध कर, उन दोपो से मुक्त करने का प्रयत्न करते है, यही मूलाधार है। अब्दाली और उसके वशजो ने वारम्वार, अवसर से पर्याप्त लाभ उठाकर, भारत को लूटा, नृशस अत्याचार से इतिहास की सृष्टि की। अग्रेज और फ्रासीमी अपना सत्ता के सस्थापन मे निरन्तर सचेष्ट थे और भारतीय अभिमानी रजवाडे तथा मुगल वश के दरवारियो मे ताक्ष्ण कटुता थी। इतनी विपमता मे, पग-पग काटे होने पर भी, एक राजदर्शी ने भारतीय एकता का प्रयत्न किया, भारतीय सम्कृति की कल्पना के स्वप्न को साकार करने का अकथ तथा निरन्तर प्रयत्न किया, और अपने मराठो वन्धुओ द्वारा विद्वेप की वेदी पर वलिदान किया गया। फिर भारत का पतन निश्चित हो गया।[2]

प्रस्तुत कृति का कैन्वास (Canvas) इतना वडा है जिसमे सम्पूर्ण हिन्दुस्तान तथा अफगानिस्तान आदि अकित है। निश्चय ही कभी-कभी ऐमा प्रतीत होता है, जैसे यह कुछ निश्चितकाल का इतिहास हो। हा, यह स्वीकार करना पडेगा कि इतने वडे आधारफलक को लेकर चलने मे लेखक की मफलता की कमौटी कडी हो गई है।

सक्षिप्त मे आलोच्य कृति का कथानक देखें। हैदरावाद के निजामुलमुल्क की मृत्यु के पश्चात उसके पुत्र गाजीउद्दीन ने मराठो की सहायता से हैदरावाद पर अधिकार स्थापित करने का प्रयत्न किया। परन्तु उसके सम्वन्धी ने उसे धोखे से विप दे दिया। तव उसके भतीजो ने दो दल मे वट कर एक ने फ्रासीसियो का दूसरे ने मराठो का आश्रय ग्रहण किया। मराठो के लिए हैदरावाद काटा था जिसे वे नही भूल सकते थे।

---

१ जर्मनो का सगठन करने वाले विख्यात विस्मार्क ने राजनीतिज्ञ और राजदर्शी में यह अन्तर बतलाया है—"राजनीतिज्ञ आने वाले चुनाव की चिन्ता में ग्रस्त रहता है, परन्तु राजदर्शी आने वाली पीढी के कल्याण की वात सोचा करता है।"

२ 'महादजी शिन्दे ह्य्याजी कायद पत्रें' की भूमिका में लेखक डा० यदुनाथ सरकार ने लिखा है—"From such an intimate study the man emerges even greater than we supposed him before The habitual meekness of spirit, the respect for venerable persons which this strong and busy man of action displayed even at the height of his earthly glory which was to him but a crown of thorns He towers over Maratha history in solitary grandeur, a ruler of India without an ally, without a party, without even an able and reliable civil and diplomatic service or strong and honest advisors If Nana Fadnis had possessed only half of Machiavelli's patriotism and honesty, or even a wise perception of self-interest and had backed Madhavaji at the outset then the whole course of late Maratha history might have become different

उसी समय रुहेलों और अवध-नवाब सफदरजग के मध्य युद्ध हो गया। सफदर ने अहमद अब्दाली को बुलाया जो आकर पुन लौट गया, इसलिए उसने मराठो से सहायता की याचना और मराठो की सेना के सम्मुख रुहेल भाग गए। उसी समय अब्दाली का आक्रमण हुआ, जिसने लाहौर, मुल्तान हस्तगत कर लिया और दिल्ली के शासक अहमद शाह ने उसकी आधीनता स्वीकार कर ली। निजाम के विरुद्ध लडने वाली मराठी सेना के नायक रानोजी सिंधिया थे, साथ ही उसके दो लडके दत्ता जी और माधव जी थे। परतु इसी समय रानो जी का देहान्त हो गया। निजामुल मुल्क का तीसरा लडका सलावत जग निजाम था। मराठा सेना पुरन्दर के मातहत मे लडी। भयानक युद्ध मे निजाम ने अपनी हार और क्षति का अदाज कर सन्धि कर ली।

शिहाबुद्दीन ने सारी स्थितियों से अवगत हो सिन्धिया भाइयो से मित्रता की प्रार्थना की और माधवजी पर अनुराग व्यत कर उन्हे पक्ष मे करना चाहा। शिहाबुद्दीन गाजीउद्दीन का पुत्र था। उसने अपने शिक्षक कश्मीरी के बताए मार्ग पर चलकर दिल्ली-शासक का मीर बख्शी बनने का प्रयत्न किया और वजीर सफदरजग को फसाकर, उसे पिता समान कृपा बनाए रखने को तैयार कर, मीरबख्शी बन गया, क्योंकि बादशाह सफदर की इच्छा के प्रतिकूल कुछ करने का साहस ही नही रखता था। उसी समय नजीब (रुहेलों का नेता) वजीर का नौकर बनकर साम्राज्य हस्तगत करने का प्रयत्न करने लगा। मराठो के मध्य भी फूट और कलह कार्य कर रहा था। साहू के शासक होने पर भी पेशवा के हाथ सत्ता थी। बाजीराव पेशवा किसी प्रकार परिस्थिति सभाले हुए था। उसी समय ताराबाई जो फूट और द्वेष फैलाकर परिस्थिति जटिल कर रही थी, उसे शान्त करने के निमित्त माधवजी उसके पास आते हैं। परन्तु वे असफल होते हैं। स्वय बालाजी राव कर्नाटक युद्ध को सफलता से सम्पाप्त कर ताराबाई से बातचीत कर, उसे कुछ सीमा तक शान्त करते हैं। फिर दिल्ली से मराठा सैनिको को बुलाहट हुई क्योंकि सफदर जग ने बादशाह से बगावत कर दी। शिहाब परिस्थिति से लाभ उठाकर बादशाह की ओर मिल जाता है और सफदर तथा बादशाह दोनो ओर से मराठो को निमन्त्रण मिलता है। शिहाब का सहायक नजीब था। इस प्रकार यह युद्ध शिहाब और सफदर के बीच था।

जाटो के राजा सूरजमल ने निमन्त्रित होकर नजीब का पक्ष लिया और मराठों ने शिहाब का। सफदर अपनी सेना अपने मित्र राजेन्द्र गिरि गोसाईं और जाटो की सेना पर भरोसा रखता था। परन्तु शिहाब ने सफदर के तेईस सहस्र योद्धाओं को प्रलोभन देकर बादशाह के दल मे मिला लिया। नजीब ने पन्द्रह हजार रुहेले इकट्ठे किये। बादशाह के पास रुपया नही था, परन्तु शिहाब अपना रुपया खर्च कर-यह सब कर रहा था जिससे सफदर के समाप्त होने पर स्वय वह सब कुछ बन जाए। सभी आमन्त्रित एकत्र हुए। घोर युद्ध हुआ। शिहाब ने सेना मे उत्साह उत्पन्न करने के निमित्त बादशाह को सबके सम्मुख लाना चाहा। बादशाह ने सफदर की जगह एक अन्य व्यक्ति को वजीर बना लिया। सफदर अवध की सूबेदारी लिये लखनऊ चला गया। नजीब को दुआब और गंगापार का क्षेत्र जागीर मे प्राप्त हुआ। मराठो की सेना ने

जाटो को हराया और सूरजमल ने अन्त मे सन्धि कर ली । अन्त मे अनेक युद्धोपरान्त वादशाह ने शिहाव को वजीर वना दिया । शिहाव ने शाहजादा औरगजेब के प्रपौत्र को जेल से मुक्त कर, उसे वादशाह वना दिया । उसी समय तारावाई के सिर उठाने और निजामअली से खटपट होने की सूचना मि ी । इस समय माधव जी पूना मे थे । उन्हे सूचना मिली कि उनके वडे भाई को जोधपुर मे कत्ल कर दिया गया । पेशवा ने रघुनाथ को माल विभाग देकर माधवजी को मालवा होते हुए दिल्ली और पजाव जाने को कहा । उसी समय हैदरअली और हैदरावाद से युद्ध छिड गया । हैदरावाद ने परास्त हो मराठो से सन्धि कर ली और हैदरअली भी हार गया, जिसके फल स्वरूप माधवजी को थोडी देर के लिए रुक जाना पडा ।

पजाव की स्थिति भी अराजपूर्ण और अव्यवस्थित थी । मुगलानी वेगम के सभाले मे परिस्थिति न थी । उसी समय सिक्खो को लेकर कुछ सरदारो ने विद्रोह किया । अब्दाली जो तुर्की और पठान सिपाहियो के वल पर शासन चला रहा था, वह वेगम का भाई लगता था । शिहाव ने अवसर से लाभ उठाकर वेगम के राज्य को हडपने का प्रयत्न किया । परन्तु शिहाव के वदख्शानी सिपाहियो को वेतन नही मिलने के कारण गडवडी हुई । इसलिए शिहाव के शिक्षक अकीवत ने दमन द्वारा जनता मे रुपया वसूल किया । फिर भी वेतन नही चुकाया जा सका जिससे सैनिक विगडे और शिहाव ने फौज को खुश करने के लिए अकीवत को मार दिया । फिर शिहाव पजाव की ओर वढा । मुगलानी वेगम ने अपनी पुत्री उम्दा वेगम की, जिससे शिहाव की वचपन मे ही सगाई हो गई थी, सुरक्षा के लिए शिहाव के पास पैगाम भेजा । शिहाव उसे जाल मे फास कर कैद करना चाहता था । परन्तु उसकी वदख्शानी सेना विगड गई और शिहाव की वेइज्जती की । किसी प्रकार वह वचकर, नजीव को, रुहेलो द्वारा फौज को मार डालने और लूटने की आज्ञा दी । नजीव यही चाहता था । उसने आज्ञा का पालन किया । उसकी शक्ति-प्रवल हो गई । शिहाव ने उसे सूरजमल से युद्ध करने को कहा, पर वहा समझौता हो गया ।

शिहाब ने वेगम को कैद कर लिया और अदीना वेग, जो अलग पजाव मे विद्रोह खडा कर रहा था, उसे मिला लिया । यह सवाद सुन अब्दाली पजाव की ओर वढा । वह एक बार हार कर पुन दूसरी बार वढा ।

तभी गन्ना बेगम की रूप-प्रशसा शिहाव ने सुनी और उसे महल मे ले आने का प्रयत्न करने लगा । इसी वीच सूरजमल के पुत्र जवाहरसिंह से उम्दा वेगम का प्रेम हो गया और एक आयोजित प्रयोग मे उसे उठा ले जाने की बात ठहरी । परन्तु जव जवाहर सिंह ने उठाकर ले जाना चाहा तभी उसका पिता सूचना पा पहुचा और उसे ऐसा करने से रोक लिया । इसी कारण सूरजमल और उसके पुत्र जवाहरसिंह मे वैमनस्य हो गया । परन्तु सूरजमल शिहाव की आखो मे स्थान पाना चाहता था इसी लिए उसके प्रयत्न से गन्ना की शादी शिहाव से की गई । उसी समय अब्दाली बढा । पेशवा रुपयो के अभाव मे था । शिहाव ने नजीव से अब्दाली को रोकने को कहा तो उसने रुपये की माग की । और परस्पर वाक्युद्ध हो गया । नजीव उसे नि सहाय छोड कर अब्दाली से जा मिला । साठ हजार सेना लिये अब्दाली आगे वढा । इस मौके पर

सूरजमल की शर्तें मजूर न होने पर वह भी अलग हो गया। नि सहाय होकर उसने शाहवली फकीर के पास जाकर अब्दाली को रक्त-पात मे रोकने की प्रार्थना की। और कैद की गई बेगम को छोड दिया जिससे वह अब्दाली को समझाकर शिहाब के मैल को हटा सके। पुन शिहाब भी उसकी शरण मे चला गया।

अब्दाली ने अपने पुत्र तिमूरशाह की शादी आलमगीर (बादशाह) की पुत्री से करा उसे काबुल भेज दिया और मुगलानी बेगम की पुत्री उम्दा की शादी शिहाब से करादी और गल्ला पीकदान उठाया करेगी, यह तय हुआ। दिल्ली को अब्दाली ने खूब लूटा और शिहाब को भी कैद कर लिया।

ग्वालियर मे मराठी सेनापति अन्ता जी थे। वे दिल्ली से मराठी सेना लेकर भागे और पीछा करती अब्दाली की सेना को हराया भी। अन्ताजी भागकर सूरजमल के पास पहुचे। उसे और अब्दाली से युद्ध करने को कहा। अब्दाली ने ब्रज पर आक्रमण कर जवाहरसिंह को भगा दिया। मथुरा-वृन्दावन की भूमि रक्त से लाल हो गई। अब्दाली ने अत्यन्त नृशस और अमानुषिक अत्याचार किया। और हजारो बदियो और बेगमो के साथ २८ सहस्र सवारो पर माल लेकर काबुल लौट गया। उसने आलमगीर को बादशाह, नजीब को नायक और शिहाब को वजीर बना दिया।

आलमगीर ने मराठो से सहायता मागी। नवाब मराठो से लडा। शिहाब मराठो की शरण मे चला गया। मल्हार राव बीच मे आ पडा और नजीब की प्रार्थना पर उसे गोद लिया पुत्र मानकर छोड दिया। नजीब दिल्ली छोडकर गगा पार चला गया। फिर मराठी सेना पजाब बढी और लाहौर के सूबेदार तिमूरशाह (अब्दाली के पुत्र) को भगा दिया। इस युद्ध मे माधवजी भी थे। बेग लाहौर का सूबेदार हुआ। रघुनाथराव दक्षिण चले गए। दत्ताजी और माधवजी को नजीब के दमनार्थ भेजा गया जो पुन शिहाब के कामदारो को उत्तरी दोआब से निकालकर उत्तर प्रदेश मे अधिकार बढा रहा था।

उसी समय अब्दाली पुन ६० हजार सेना लेकर हिन्दुस्तान की ओर बढा। शिहाब ने आलमगीर की हत्या कर, औरगजेब के छोटे लडके कामबख्श के नाती सानी को जेल से निकालकर गद्दी पर बैठाया। नजीब को छोडकर दत्ता पजाब की ओर बढे। सिक्ख अब्दाली से डर कर भागे। अदीना बेग भी भाग गया। नजीब पुन अब्दाली से मिल गया। मराठो से युद्ध हुआ जिसमे मराठे हारे। नजीब उन्हें खदेरता जयपुर चला गया। इस युद्ध मे मराठो की बडी हानि हुई। यमुना के टापू मे भी युद्धोपरान्त दत्ताजी मारे गए। मराठे हारे। जनकोजी घायल हुए। मल्हारराव सेना सहित माधवजी से आ मिले और दिल्ली की ओर बढे। परन्तु अब्दाली के सम्मुख नहीं लडे। दिल्ली लूट लेने के बाद अब्दाली मराठो को घेरता रहा। उसने डीग पर पर आक्रमण किया। परन्तु उसे जीत न सका। वह ग्रीष्म ऋतु के कारण लौट जाना चाहता। परन्तु नजीब के आग्रह से रुका रहा क्योंकि वह और भी कार्पी लूट करना चाहता था।

कर्नाटक मराठो से पूरी तरह हार गया। हैदराबाद ने भी हारकर सबसे

भी दे दिया। इसी समय पेशवा को उत्तर की सूचना आई। पेशवा की स्त्री गोपिका-वाई के क्रोधी स्वभाव से मराठो मे भी एकता नहीं थी। इसलिए उत्तर रघुनाथ राव को न भेजकर सदाशिव को भेजने की वात ठहरी। पेशवा के पुत्र विश्वराय प्रधान सेनापति, सदाशिव उपसेनापति, और अधिनायको मे इब्राहीम गर्दी, मल्हार राव जनकोजी, माधवजी सिन्धिया थे, जिसमे सव मिलाकर ३०००० सिपाही थे। निजाम और कर्नाटक के लिए भी कुछ सेना पूना रखी गई। दिल्ली मराठो के हाथ आ गई। १७६० मे दिल्ली मे सभा हुई जिसमे तय होना था कि क्या किया जाए। उसमे भाऊ ने मल्हार, होलकर, सूरजमल आदि से वुरा वर्ताव किया। शिहाव भी सूरजमल के साथ उठकर चला गया। मल्हार राव और माधवजी विश्वासराव के कहने पर सूरजमल आदि को मनाने गए। भाऊ अपने उद्दण्ड स्वभाव से नही सोच सका कि "इस समय किसी भी प्रकार सवको एक गाठ से वाधे रखने की आवश्यकता है।" (पृ० २२०) सूरजमल और शिहाव रज होकर भरतपुर चले गये और अपने साथ अपनी २०००० सेना भी लेते गए। मराठो की शक्ति कमजोर हो गई। दिल्ली मे पहले शाह आलम को वादशाह और शुजाउद्दौला को वजीर घोषित कर मराठो ने अन्न की कमी देख कुजपुर को, जहा अब्दाली का अन्न-भण्डार था और प्रमुख मार्ग था, जीत लिया। परन्तु वाद मे पर्याप्त सहायता और अन्न के अभाव तथा उत्साह की कमी के कारण वह हारने लगे और कुजपुर हाथ से निकल गया और अन्न भी नही मिला। इस स्थिति मे खाई निकलकर अब्दाली की सेना पर टूट पडने की आवश्यकता समझी गई। १७६१ के इस युद्ध मे विश्वास राव, भाऊ, इब्राहीम गार्दी मारे गए, धन-जन की क्षति हुई। मल्हार अलग निकल गया। केवल माधवजी, वालाजी जनार्दन वच निकले। नजीव मीर और सव कुछ वना दिया गया। अब्दाली लूट कर चला गया। नजीव अपने पुत्र जाविता खा को दिल्ली का शासक वना अपनी स्थिति मजवूत करने अपने क्षेत्र मे चला गया। अब्दाली ने जाते समय पुन सन्धि-पत्र भेजा जिसमे कुछ शर्तें थी। परन्तु वह स्वीकार नही की गई। अब्दाली ने शाहशुजा को वजीर और शाह आलम को वादशाह वना दिया।

इसी समय सूरजमल नजीव से युद्ध करता हुआ मारा गया। जवाहरसिंह ने उस पर आक्रमण किया। होलकर नजीव से मिल गया। गन्ना वेगम ने वेश वदलकर जवाहरसिंह को सारे षड्यन्त्रो की सूचना दी। जवाहरसिंह सावधान होकर लौट गया। नजीव सवकुछ वन गया। शिहाव भी दिल्ली न टिक सका। जवाहरसिंह ने शिहाव को अपने आश्रय से निकाल दिया और योजनानुसार मार्ग मे जाते समय गन्ना वेगम को ले भागने का प्रयत्न किया, परन्तु इस वार भी वह निष्फल रहा। वाद मेगन्ना वेगम सिक्ख का वेश धारण कर, भाग निकलती है, और मार्ग मे जयपुर के सिपाहियों द्वारा जवाहरसिंह की कामुकता और नीचता जानकर, माधवजी सिन्धिया के पास नौकरी करने लगती है (मर्द के वेश मे ही)। राघोवा जो मनमानी करना चाहता था, माधव से सहायता की उम्मीद न कर, उसने एक व्यक्ति द्वारा माधव जी की हत्या का प्रयत्न किया परन्तु गुनीसिंह (सिक्ख वेशधारी गन्ना वेगम) के प्रयत्न से वह निष्फल हो गया।

जयपुर और जवाहरसिंह मे कई वार युद्ध हुआ और युद्ध मे ही दोनो मारे गए।

नजीव उत्तर मे हाथ वढाता जा रहा था। मराठो मे फूट होने से उपयुक्त अवसर मिल रहा था। और गुप्त रूप से होलकर से उसे सहायता भी मिल रही थी। एक दिन माधव जी ने नजीव की चिट्ठी पकड कर यह भण्डाफोड किया। तबतक नजीव मर चुका था। उसका पुत्र जाविता भागा और हरद्वार के पास खाई खोदकर लडने लगा। जाविता बुरी तरह हारा। धन-जन की क्षति हुई। वह हिमालय की तराई मे भाग गया। पुन उसने सन्धि के लिए पत्र-व्यवहार किया। माधव जी जीत के वाद नूरावाद चले आए। वहा (दिल्ली) वादशाह से सन्धि कर विशाजी और होलकर ने जाविता को वजीर वना दिया।

माधवजी को माधवराव पेशवा के क्षय रोग से मरने पर नारायणराव की मृत्यु राघोवा के षडयन्त्र द्वारा होने की सूचना मिली। राघो स्वय पेशवा बनने का षड्यन्त्र करने लगा था और इस कार्य मे वह अग्रेजो से भी सहायता लेना चाहता था। परन्तु नाना फडनवीस, माधव जी और तुकोजी आदि ने नारायणराव पेशवा के नवजात शिशु को पेशवा का अधिकार दिया। राघोवा गुजरात भाग गया और उसने अग्रेजो से सन्धि करली और उन्हे सालसिट के टापू को लिख दिया। एक दिन गन्ना वेगम जम्हूरियत के अजीज की सभा मे गई जहा वह शिहाव तथा उक्त सम्प्रदाय की गुप्त बातें जानकर माधव जी को वताना चाहती थी। परन्तु वहा शिहाव उसे सुन्दर औरत समझ अपने गुण्डो द्वारा गायव करा देता है। वह नूरावाद ले जाई जाती है, जहा विष-पान कर समाप्त हो जाती है। माधव जी सुनकर नूरावाद पहुचते हैं। परन्तु तव तक वह मर चुकी होती हैं।

अग्रेज मराठो से लडने को तैयार होते है। दिल्ली मे वादशाह और जाविता खा मे युद्ध होता है। जाविता हार कर सिक्ख हो जाता है। उसके पुत्र को हिजरा वना दिया जाता है। उसी समय माधव जी ने युद्ध मे अग्रेजो को हराया और वाडगाव की सन्धि मे उन्हें (अग्रेजो को) सालसिट टापू और गुजरात का अपहृत प्रदेश छोडने को कहा। परन्तु अग्रेज कुछ समय मे ही इस सन्धि को खण्डित कर आगे वढने लगे। अग्रेजो और मराठो को रुपये की आवश्यकता थी इसीलिए दोनो मे सालवाई की सन्धि हुई।

हैदरअली अग्रेजो से लड रहा था, वह मर गया। टीपू उठ खडा हुआ। टीपू भी अग्रेजो से लडने लगा। मराठे इसे सहायता करना चाहते थे परन्तु उसने हजारो हिंदुओ को समाप्त किया था इसलिए वे उसे सहायता करने मे सकोच करते थे। हमदानी को माधव जी ने हराया। दिल्ली के वादशाह ने माधवजी से रक्षा के लिए स्वय आकर अर्चना की। माधव जी स्वय मीर वख्शी न बनकर पेशवा को वनाता है और सेना-खर्च के लिए आगरा, डीग आदि क्षेत्रो को जीत लिया। माधवजी को रुपयो की कमी थी और विद्रोही हार कर भी रुपया लेना नही चाहते थे। उधर जयपुर और जोधपुर मिलकर मराठो से युद्ध करने की सोचने लगे थे। उसी समय दिल्ली मे जमहूरियत की स्थापना की गई और शाहआलम को हटाकर वेदार वख्श को गद्दी पर बैठाया गया। पुन गुलाम कादिर (जाविता का पुत्र) उसे हटा कर स्वय गद्दी पर बैठ गया और उसने शाह आलम तथा उसके परिवार के साथ पूर्व-द्वेष का वदला। लिया। इस्माईल और कादिर मे झगडा हो गया। इस्माईल माधव जी के पास गया

गुलाम कादिर पजाव की ओर भागा। परन्तु उसके सैनिको ने उसे मार दिया। दिल्ली पुन माधव जी के अधीन हो गई। शाह आलम बादशाह बना और पेशवा के लिए वकील मुतलक और मुख्तार का पद और माधव जी को नायब का पद प्राप्त हुआ। माधव जी की सेना ने इस्माईल को हराया और कैद कर लिया। फिर जोधपुर और जयपुर तथा मेवाड हारे।

उसी समय नाना की सूचना मिली, जो अग्रेजो और निजाम की सहायता से टीपू को नष्ट कर उसके राज्य का हिस्सेदार बनना चाहता था। नाना को माधवजी ने समझाया कि अग्रेजो की शक्ति न बढने दी जाए। माधव जी ने पूना पहुचकर माधव राव नारायण द्वितीय को, जो १७ वर्ष (लगभग) का था, एक विराट आयोजन कर खिल्लत प्रदान की, जिससे अग्रेज शकित हुए। नाना और तुको जी जलकर माधव जी के विरोधी बन गए। पेशवा का माधव जी को बहुत मानना भी एक कारण था। फिर मल्हार ने माधव जी को धोखे मे पान मे विष दे दिया। इस प्रकार एक महान राजदर्शी जो भारतीय सस्कृति की स्थापना मे तत्पर थे, समाप्त हो गए। उपन्यास यही समाप्त हो जाता है।

"कथानक का चयन अपनी भावना की प्रेरणा से होता है। चरित्र बहुधा पहले आ जाते हैं। कभी कथानक के साथ-साथ भी।" (वर्माजी का पत्र मेरे नाम ३०-१०-५७)।

उपर्युक्त वाक्याश द्वारा वर्मा जी की एक प्रमुख प्रवृत्ति पर प्रकाश पडता है। वर्माजी के सम्मुख चरित्र निर्माण (character painting) की प्रबल-भावना रहती है। 'अहिल्याबाई,' 'मुसाहिब जू,' 'मृगनयनी,' 'भुवन विक्रम,' 'झासी की रानी—लक्ष्मी-बाई' आदि कृतियो के विश्लेषण द्वारा उपर्युक्त तत्व स्पष्ट किया जा चुका है। यह तो स्वीकार करना ही पडेगा कि इतनी घटनाओ और पात्रो की सकुलता के परिणामत आलोच्य पुस्तक मे लगभग २५० पृष्ठो तक माधव जी का चरित्र उभर सका है और नायक द्वारा एकसूत्रता भी स्थापित नही हो पाती है। उक्त आधार के फलस्वरूप नामकरण की विशेष सार्थकता नही प्रतीत होती।

मैं पूर्व ही स्पष्ट कर चुका हू कि वर्मा जी मे उद्देश्यपूर्ण कला की प्रवृति है। प्रस्तुत कृति के माध्यम से भी माधव जी की चारित्रिक विशिष्टता द्वारा, तथा युग की विशृखलित, वैषम्यग्रस्त, अहितकर वृत्तियो और वैमनस्यता एव स्वार्थपरता की सकीर्ण परिधि के फलस्वरूप अनेकता का क्षोभजनक निष्कर्ष चित्रित कर लेखक एक चेतना एव जागरूकता की वाछा करता है। माधव जी का चरित्र एकसूत्रता, स्वतत्रता और उज्ज्वल त्यागमय आदर्श का प्रतीक है।

आलोच्य कृति मे (१) भारत की राजनैतिक स्थिति मे उथल-पुथल (२) वैय-क्तिक स्वार्थपरता निमित्त कलह, (३) तत्युगीन वातावरण एव परिस्थितियो (पृष्ठ १२, २०, ३९, ४४४ आदि देखें), (४) चरित्र-निर्माण के कौशल, (५) सवेदनात्मक और करुणवृत्तियो के विस्तार सापेक्ष, (६) राजनैतिक जटिलता, (७) कला के प्रति ईमानदारी और गहराई (८) गत्यात्मकता, (९) गृह-कलह, परस्पर भेद-भावना, (१०) तत्युगीन विलासी-वृत्ति, (११) नारी-भावना (उस युग की नारियो की स्थिति पर

प्रकाश डालती हुई गन्ना बेगम जवाहरसिंह से स्पष्ट कहती है, "औरतें आप लोगों की जूतियां हैं। पुरानी पटी और उतार फेंकी।" (पृष्ठ ८२), (१२) हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना की प्रतिष्ठा (माधव जी सिंधिया और इब्राहीम गार्दी इसी भावना को ओजस्वी रूप में प्रकट करते हैं), (१३) युद्ध (देखें पृष्ठ २६९), एवं (१४) देश-प्रेम और कर्त्तव्य (१५) जातिवादी भावना और संघर्ष आदि के चित्रण में लेखक को सफलता मिली है। वर्मा जी जहाँ भारतीय संस्कृति के उपासक हैं, वहां संकीर्णता के नहीं। और इसी भावना की स्थापना माधवजी सिन्धिया और इब्राहीम गार्दी द्वारा सफलतापूर्वक की गई है। इन पात्रों के माध्यम से वर्मा जी की प्रवृत्तियों और भावनाओं पर बहुत अंशों में प्रकाश पड़ जाता है।

आलोच्य कृति में भाषा-शैली सम्बन्धी कोई नवीन दिशा का आरम्भ नहीं है।

माधव जी सिन्धिया, गन्ना बेगम, उम्दा बेगम, जवाहरसिंह, शिहाब, शाहआलम, नजीब, सफदर, शाहवली, इब्राहीम, विश्वासराव, गोपिका बाई, त्रियम्बक, अकीदत खाँ, अब्दाली, जाविता, मुहम्मद शाह, रामलाल आदि इसमें सैकड़ों पात्र-पात्राएं हैं। फिर भी सभी पात्रों का कम-से-कम शब्दों और कम स्थान में सुन्दर निर्वाह है। पात्रों की मनोवैज्ञानिकता आदि सभी पक्षों पर सहज ढंग से प्रकाश पड़ जाता है।

माधव जी सिन्धिया को आलोच्य कृति में प्रमुख नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसका स्वप्न है, " भारत भर की शक्तियों का एकीकरण और सामञ्जस्य करके ऐसे संघ की स्थापना करना जिसमें भारतीय संस्कृति की रक्षा हो जाए, उसका विकास हो और वह निरन्तर बढ़े।" (पृष्ठ ४३८) वे तो स्पष्ट कहते हैं, "मैं अपने लिए कोई राज्य स्थापित नहीं करना चाहता अपने को जनता के सुख का साधन बनाए रखना चाहता हूं। मेरी इच्छा है, सम्पूर्ण भारतीय रियासतों का एक संघ बने, उनमें व्यवस्था स्थापित हो।" (पृष्ठ ५३२)।

निश्चय ही माधव जी के चरित्र में अत्यन्त त्याग और मौन करुणा का सम्मिश्रण है। वे सदा देश, राष्ट्र और भारतीय संस्कृति के लिए अपने जीवन को न्योछावर कर देते हैं। यद्यपि वे चाहते तो अधिक-से-अधिक धन और सत्ता भोग सकते थे। उनके त्यागपूर्ण निर्मल चरित्र का ही प्रमाण है जो रामलाल उनकी हत्या करने के लिए उनके यहां नौकरी करता है। वह उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हो उनकी रक्षा ही करता है। उसकी राजनीतिक चातुरी (पृष्ठ ६ में देखें), नयमशीलता (४४, ४५, ४६ आदि पृष्ठों में), धर्म-भावना (पृष्ठ १२५), उदारता (१३२, २४४ आदि में), कृतज्ञता (पृष्ठ ३६०, ४१८ आदि में), आदि समवेत रूप पाठकों पर गहरा प्रभाव डालते हैं। यही कारण है, सभी निष्पक्ष पात्र माधव जी की प्रशंसा किये बिना नहीं रहते।

शिहाब, नजीब, अब्दाली आदि क्रूर, स्वार्थी-चरित्र के उदाहरण हैं जिनके प्रति पाठकों के मन में भी घृणा उत्पन्न हो जाती है। और यही पर लेखक की सफलता भी मानी जायगी।

गन्ना बेगम मौन प्रेमिका का स्वर्णिम दीप है, जिसके प्रकाश में उष्णता तो है परन्तु सूर्य की तरह प्रचण्डता नहीं, उसके आलोक में जीवन का स्वप्न निर्मित होता है।

: ४ :

हिन्दी-गद्य-निर्माता : दिशा और देन

अनेकानेक अनुभूतियो, सवेदनाओ, यथार्थमयता, परिवेश और चेतना के उज्ज्वल प्राणवान तथ्यो की समन्वय-भूमि पर युगयुगान्तर से सूक्ष्मदर्शी सुदृढ कलाकारो ने साहित्य का निर्माण किया है। जीवन के समग्र मूल्यो द्वारा निर्मित साहित्य इस दृष्टि से ऐतिहासिक दर्पण की सापेक्षता के अतिरिक्त अन्य महत्त्वो का सयोजन नैसर्गिक रूप से करता है। इस सर्वाधिक मूल्य-युक्त जीवन हेतु गगा मे कितने प्राण-बिन्दुओ का सचय और समर्पण है, इसकी निरपेक्ष गणना सम्भव कदापि नही।

परन्तु, हिन्दी-गद्य की लघुधारा ने हिमालय-शृग से निसृत हो, मार्गगत सकीर्ण काराओ का सीमोल्लघन कर प्रेमचन्द, वृन्दावनलाल वर्मा और राजा राधिकारमण के भागीरथ प्रयत्न से विस्तृत समतल का सस्पर्शन और उर्वरता का नियोजन कर, समर्थ गगा का विराटत्व ग्रहण किया, इसका मूल्याकन भी निरपेक्ष ऐतिहासिक दृष्टिकोण की वाछा रखता है। अब तक लिखे गए हिन्दी-साहित्य का इतिहास इस दृष्टि से बडा अपूर्ण और त्रुटिसगत है। इतिहास-निर्माण मे जिस स्वस्थ मूल्याकन की अपेक्षा है, उस पर केन्द्रित किये बिना इतिहास-सृष्टि दोषयुक्त होगी ही।

हिन्दी-गद्य की विविध भावभूमियो के व्यापकत्व-ग्रहण का युग १९०० के आरम्भ से स्वीकृत है जब अल्प जीवन की मुक्त सास के पश्चात् नया मोड ले प्रेमचन्द, वृन्दावनलाल वर्मा और राजा राधिकारमण उपस्थित हुए।[1] तीनो की तीन धाराए थी, तीन प्रेरणाए थी, तीन क्षितिज के निर्माण की सुकल्पनाए थी। यह नितान्त आश्चर्यमूलक तत्त्व है कि हिन्दी-इतिहास-लेखक और हिन्दी-आलोचक केवल प्रेमचन्द की दिशा के मूल्याकन मे ही अपने कर्त्तव्य मे इति-श्री समझते रहे और अन्य प्रमुख दिशाओ को नही समझ सके, समुचित गत्यान्वेषण नही कर सके। प्रस्तुत निबन्ध मे उक्त तीन दिशाओ, परिमाणो, धरातलो की विवृत्ति अभीष्ट है, जिससे उपर्युक्त निर्दिष्ट सत्य का वाछित रूप मे दृष्टि-बोध सभव हो।

उपन्यास

ग्रामीण | ऐतिहासिक | राजनैतिक | सामाजिक | दार्शनिक | पौराणिक | आचलिक

प्रेमचन्द—ग्रामीण+सामाजिक+राजनैतिक+पारिवारिक

वृन्दावनलाल वर्मा—सामाजिक+पारिवारिक+राजनैतिक+ऐतिहासिक

राजा राधिकारमण—सामाजिक+पारिवारिक+आध्यात्मिक

---

१ देखें 'चुम्बन और चांटा एक समीक्षा'—सियारामशरणप्रसाद।

वर्ग

सामन्ती वर्ग | धनी वर्ग (रईस आदि जिसे उच्च वर्ग मध्य वर्ग भी कह सकते हैं) | निम्न वर्ग | मध्य वर्ग

(*i*) मध्य वर्ग+निम्न वर्ग—मुख्यत प्रेमचन्द साहित्य मे ।

(*ii*) सामन्ती वर्ग+धनी वर्ग+मध्य वर्ग+निम्न वर्ग—वृन्दावनलाल मे, ऐतिहासिक उपन्यासो मे मुख्यत सामन्ती वर्ग और उससे सम्बन्धित वर्ग ।

धनी वर्ग+निम्न वर्ग+मध्य वर्ग+मुख्यत राजा राधिकारमण साहित्य में, फिर भी प्रेमचन्द-साहित्य मे निम्न वर्ग, वृन्दावनलाल वर्मा के साहित्य मे सामन्ती वर्ग तथा राजा राधिकारमण में धनी वर्ग बडा महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है ।

उक्त तीनो कलाकारो के पूर्व हिन्दी-गद्य निसृत होकर भी तन्वी स्थिति मे था, तथैव वह ऐय्यारी और हितोपदेश तथा मित्रलाभ-पद्धति पर अनुरल था जिसमे उपदेश तथा जिज्ञासा की प्रधानता थी, स्वाभाविकता, सामाजिक आवेष्ठन का यथार्थ और सामान्य जीवन की छविया अकित और निवेष्ठित नहीं हो पाई थी, वह प्राण-प्रतिष्ठान मे प्रधान नही हो पाया था । प्रेमचन्द के पूर्व गद्य-प्रणेताओ मे मुख्यत 'चन्द्र-कान्ता-सतति' के रचयिता देवकीनन्दन खत्री (स०१९१८-१९७०), गहमरी (१९२३-२००३), 'परीक्षा-गुरु' के प्रणेता प० किशोरीलाल गोस्वामी (स० १९२३-१९८९) आदि का नाम आता है जिन्होने हिन्दी की सेवा, हिन्दी-पाठको की सख्या की अभि-वृद्धि कर मुख्यत की और हिन्दी की ओर जनता ने ध्यान उन्मुख किया । परन्तु, तबतक चरित्र और औपन्यासिक अपेक्षित तत्त्व नही मुखरित हो पाये थे ।

"हिन्दी उपन्यास-क्षेत्र मे प्रेमचन्द जी की रचनाओ ने युगान्तर उपस्थित किया ।"[1] परन्तु युगान्तर शब्द के प्रयोग-काल में हमे वृन्दावनलाल वर्मा और राजा राधिकारमण का नाम भी जोडना आवश्यक है, तभी समुचित पृष्ठभूमि और धरातल का ज्ञान हो सकेगा ।

मूल—१ (क) प्रेमचन्द—सामान्य जीवन की उत्प्रेरणा और आदर्श का आग्रह ।
(ख) वृन्दावनलाल वर्मा—ओज-तत्त्व, वीर-भावना ।
(ग) राजा राधिकारमण—समन्वय-तत्त्व, शाति-भाव ।
२ (क) प्रेमचन्द—सामाजिक, ग्राम-जीवन मुख्यत , तथा मध्य और निम्न वर्ग।
(ख) वृन्दावनलाल वर्मा—राजपरिवार, सामन्ती वर्ग मुख्यत ।
(ग) राजा राधिकारमण—उच्चवर्ग, धनी वर्ग और मध्य वर्ग मुख्यत. ।
३ (क) प्रेमचन्द—कथानक के साथ निम्न भूखण्डो, वर्गों के चित्रण मे युगान्तरी पदार्पण ।
(ख) वृन्दावनलाल वर्मा—ऐतिहासिक क्षेत्र मे नवोन्मेपी दृष्टि और मौलिकता ।
(ग) राजा राधिकारमण—भाषा के क्षेत्र मे युगान्तर ।

---

१. हिन्दी साहित्य, डा० श्यामसुन्दर दास, पृ० ३२५ ।

४. (क) प्रेमचन्द—सामान्य रूप।
(ख) वृन्दावनलाल वर्मा—वीरत्वपूर्ण।
(ग) राजा राधिकारमण—दार्शनिक और पहेली एव विचित्र रूप मे।

साम्य—(i) सामाजिक चित्रण की प्रवणता।
(ii) चरित्र का जीवन्त दर्शन, प्राकृतिक मनोभूमि।
(iii) कथानक की रचियता।
(iv) आदर्शोन्मुख यथार्थ, सात्विक प्रेरणा।
(v) भारतीय जीवन मे सास्कृतिक प्रतिष्ठान।
(vi) प्रेम तत्त्व के विस्तार की आकाक्षा।
(vii) शिल्प से अधिक, भावपक्ष पर दृष्टि।
(viii) मनोवैज्ञानिक परीक्षण।
(ix) भाषा के परिमार्जन का अभाव।
(x) सूक्तियो के प्रति आधुनिक लेखक अज्ञेय आदि सदृश विशेष आसक्ति नही।
(xi) नवीन चेतना, नवीन मूल्याकन की प्रेरणा।
(xii) नारी पात्रो के प्रति विशेप जागरूकता।
(xiii) उलझी सवेदनाओ का सर्वथा अभाव (आज मनोविज्ञान के प्रभाव मे, आधुनिकता और नवीनता निमित्त अनेक लेखक दिग्भ्रमित हो रहे हैं। यहाँ उनका नाम गिनाना आवश्यक है)।

प्रेमचन्द (स० १९३७-१९७३), वृन्दावनलाल वर्मा (१८८९ मे जन्म) और राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह (स० १८७१ मे जन्म) मे यद्यपि अनेक साम्य आलोचको को दृष्टिगत होंगे, परन्तु इसके विपरीत स्वतत्र और मौलिक क्षेत्रो का समादर साहित्यिक मूल्याकन निमित्त ध्यातव्य होगा।

(i) तीनो महाप्राणो मे सामाजिक चित्रण की प्रवणता अभूतपूर्व है। उनके चित्र निष्प्राण, निस्तेज एव धुधले कदापि नही वरन् सशक्त, सप्राण, मर्म को स्पर्श कर, मन स्थिति को सवेदनशील बनाने मे सूक्ष्म हैं। मनोभूमि मे रस-सचार में, साधारणीकरण मे सफल सिद्ध हैं। उदाहरणार्थ, प्रेमचन्द के 'गोदान,' 'गबन,' वृन्दावनलाल वर्मा कृत 'झासी की रानी लक्ष्मीबाई', 'मृगनयनी,' और राजा साहब रचित 'राम रहीम,' 'सूरदास,' आदि का मनोयोगपूर्वक अध्ययन कर सकते हैं।

(ii) चरित्रो का जीवत दर्शन (प्राकृतिक रूप मे) सक्षिप्त रूप मे विचार किया जा सकता है। अग्रेजी-साहित्य मे डिकेंस (Dickens), चार्ल्स लैंब (Charles Lamb), H G Wells, Hardy, Walter Scott, Eliot आदि का नाम सगर्व लिया जाता है। राजा साहब द्वारा चित्रित बिजली और बेला (राम रहीम), सूरदास, धनिया (सूरदास), गुलाबी (चुम्बन और चाटा), मीनी (पूरब और पश्चिम), अजीत, सुधा, (पुरुष और नारी), वृन्दावनलाल वर्मा के दलीपसिंह, कचनार (कचनार), मृगनयनी, लाखी (मृगनयनी), टहल, देशराज (अमरबेल), लक्ष्मीबाई, गौस खा, सुन्दर, मुन्दर (झासी की रानी लक्ष्मीबाई) गौरी, हिमानी (भुवन विक्रम),

माधव जी (माधव जी सिंधिया), सरस्वती, उजियारी, (प्रेम की भेंट), आदि तथा प्रेमचद के होरी, गोवर, धनिया (गोदान), जालपा, रमानाथ, (गबन) सुमन, (सेवा सदन) सूरदास, (रग भूमि) आदि साहित्य के अमर पात्र है जिनके जीवत स्वर युग-युगातर गुजरित होते रहेगे। वे अविस्मरणीय प्राणी हैं।

(*iii*) कथानक की रोचकता कला-सृष्टि के साफल्य के निमित्त अनिवार्य तत्त्व है, जिनका सफल उपयोग आलोच्य साहित्यवेत्ताओ ने किया है। उनकी कृतियो मे जिज्ञासा और औत्सुक्य की मात्रा पूर्णरूपेण है जो उक्त कलाकारो की कृतियो के पाठक अवश्य स्वीकार करेंगे। उदाहरणार्थ हम उन कलाकारो की किसी भी उपन्यास-कृति का अवलोकन कर सकते हैं।

उनकी कृतियो मे प्राय कथानक अनेक मोड और पगडडियो पर सचरित होता चलता है और विस्तृत होता है। इसके पीछे, मूलरूप मे, पृष्ठभूमि मे कुछ अनिवार्य दृष्टिकोण थे, प्रभावित भावनाए थी। उनके पूर्व खत्री आदि ऐय्यारी और जासूसी कृतियो से और विभिन्न औत्सुक्यपूर्ण कथानको के माध्यम से जन-रुचि को एक स्वाद दे चुके थे, एक मनोरजन दे चुके थे। 'अतएव (क) उनकी कृतियो का प्रभाव (अगत), (ख) एव जन-रुचि को ध्यान मे रख समुचित लक्ष्य की ओर सफलतापूर्वक सन्मुख करने के निमित्त यह अपेक्षित था। वे वातावरण का ध्यान रख दिशा का परिवर्तन स्वस्थ पथ की ओर कराना चाहते थे जिसके परिणामत हिन्दी के पाठको ने उनके स्वागत मे व्याघात उत्पन्न नही किया और उन्हे (पाठको को) स्वस्थ भोज्य भी प्राप्त हुआ। तीनो ने यथासम्भव निकट एव अगल-बगल से कथानक का चयन किया। वृन्दावनलाल वर्मा जी के सम्बन्ध मे प्रश्न स्वाभाविक होगा, परन्तु इसके लिए उनके सामाजिक, परिवारिक उपन्यासो को देख सकते हैं, और यह भी सत्य है कि वर्मा जी ने इसी निकटता के निमित्त अपने निकटतम ऐतिहासिक युग की भूमि का सस्पर्शन किया, जिनके सम्बन्ध मे उन्होंने अपने मित्रो, अभिभावको आदि द्वारा सुना, कण-कण मे गुजरित मद्य निनाद का श्रवण किया—लिपिबद्ध किया। 'जानी-सुनी देखी'-माला (राजा साहब) इसी दिशा मे प्रयास है। राजा जी ने स्वय मुझे एक साहित्यिक समारोह मे भाग लेने जाते समय यात्रा मे बताया था कि उनके उपन्यासो के सभी पात्र सच्चे हैं, काल्पनिक नही।

(*iv*) आदर्शोन्मुख, यथार्थ, सात्विक प्रेरणा उनकी कलाकृतियो मे मूल-शीर्ष है जो स्वय इन स्पष्टवादियो ने स्वीकार किया है।

राजा साहब प्राय 'सु' और 'कु' पक्षो का यथार्थ दिग्दर्शन करा एक प्रेरणा का स्रोत देते हैं जो उपयोगितावादी दृष्टिकोण का परिणाम है। वे वाह्य सौन्दर्य के विपरीत आन्तरिक सौदर्य और प्रगति के प्रतिष्ठापक है। 'चुम्बन और चाँटा' भी निर्दिष्ट दिशा-सूचक उपन्यास है। 'राम रहीम' 'पूरब और पश्चिम' मे भी यह द्रष्टव्य है। प्रेमचद वृन्दावनलाल वर्मा और राजा राधिकारमण मे यह एक अभूतपूर्व सम्यक दृष्टि है। परन्तु मूल लक्ष्य तक पहुँचने का मार्ग और छविया नितात विभिन्न हैं। वृन्दावन-लाल वर्मा ऐतिहासिक ओजपूर्ण वीथियो मे, राजा साहब धनी और मध्य एव सामान्य स्तर के वर्गो के आध्यात्मिक, सांस्कृतिक पथ-बोध द्वारा एव प्रेमचन्द जीवन की

सकीर्णता और सकरुण विम्वो की शान्ति के निमित्त, आदर्श के उज्ज्वल, प्रशस्त लक्ष्य-पथ का अभियान या निरूपण करते हैं एव तत्सम्वन्धी विधिवत् निराकरणो से इमी लक्ष्य की अर्चना करते हैं—यह पूर्णतया स्पष्ट और सत्य है।

'मृगनयनी', 'लगन', 'प्रत्यागत,' 'कचनार', 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'रामरहीम', 'पूरब और पच्छिम,' सभी उसी सत्य के अभियोजक हैं। वृन्दावनलाल वर्मा सामन्ती परिवार की सात्विक प्रेरणा की विजय दिखा, प्रेमचन्द जी निम्न और उपेक्षित वर्ग की तृष्णामय जिन्दगी का कारुण्य एव आदर्श का सस्थापन कर और राजा साहव 'कु' और 'सु' का सघर्ष और आध्यात्मिकता, सात्विकता का समादर कर इसी सत्य के अकन मे सचेष्ट दीखते हैं।

(i) "मैं तथ्य का उपासक हू, तथ्य को सृजनात्मक ढग से प्रस्तुत करना मैं सत्य की पूजा और कला का प्राण समझता हू। यदि यह प्रस्तुतीकरण निरुद्देश्य है या 'कला के लिए कला' आदर्श है—तो व्यर्थ है। केवल मनोरजन या मनोविश्लेपण लेखक का सामाजिक कर्त्तव्य नही है। सामाजिक कर्त्तव्य की सीमा दिखलाई नही पडती, परन्तु अपनी-अपनी परिधि की स्थापना तो की ही जा सकती है।"—वृन्दावनलाल वर्मा

(ii) (क) "माना कि सत्य को सुन्दर, रुचिकर करने के लिए थोडा-सा स्वप्न या रहस्य का दामन जरूरी है—शायद कथानक के क्षेत्र मे सत्य एकछत्र होकर नही जचता। जो हो, मगर मैं पूछता हू, कौन ऐसा जीवन है जिसके अन्दर वैचित्र्य नही, रस का उपादान न हो। मानव का मन तो इतना गहन है कि हम उसकी सतह पर ही रह जाते हैं, तैर कर तह की अनुभूतियो तक वैसी गुजर नही। अव किसी कुशल लेखनी के खुल-खेलने के लिए हरी-भरी पटभूमि और क्या होगी ? आखिर आनन्द का परि-वेश तो सत्य पर है, न स्वप्न पर। वह तो कलाकार की कलम का करश्मा है कि वह जिधर ढल गया मूरत वोल गई।"—नारी क्या एक पहेली ?—राजा राधिकारमण

(ख) "कला के अन्दर तो रोचकता ही नही, उपयोगिता भी चाहिए।"—चुम्बन और चाँटा, पृ० २।

"आखिर सचाई बडी चीज है जरूर, पर सचाई के साथ दामन पर कला की सजाई और पच्चीकारी भी मिली-जुली रहे, तो फिर उपयोग के साथ-साथ उपभोग का भी सयोग सोने मे सुहागा का असर लाये।"—वही, पृ० ६।

(iii) (क) हमारा ख्याल है कि क्यो न कुशल साहित्यकार कोई विचार-प्रधान रचना भी इतनी सुन्दरता से करें जिसमे मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियो का सघर्ष निभता रहे। कला के लिए कला का समय वह होता है जव देश सम्पन्न और सुखी हो। जब हम देखते हैं कि हम भाति-भाति के राजनीतिक और सामाजिक वन्धनो से जकडे हुए हैं, जिधर निगाह उठती है, उधर दुख और दरिद्रता के भीषण दृश्य दिखलाई देते हैं, विपत्ति का करुण-क्रन्दन सुनाई देता है, तो कैसे सम्भव है कि का किसी विचारशील प्राणी का हृदय न दहल उठे।"—प्रेमचद।

(ख) "यथार्थ यदि हमारी आखें खोल देता है तो आदर्शवाद हमे उठाकर किसी मनोरम स्थान मे पहुँचा देता है। लेकिन जहाँ आदर्शवाद मे यह गुण है वहाँ इस वात की भी शका है कि हम ऐसे चित्रो को न चित्रित कर बैठें जो सिद्धान्त की

मूर्ति मात्र हो, जिसमे जीवन न हो। किसी देवता की कामना करना मुश्किल नही है लेकिन, उस देवता मे प्राण-प्रतिष्ठा करना मुश्किल है। 'इसलिए वही उपन्यास उच्च-कोटि के समझे जाते हैं जहा यथार्थवाद और आदर्शवाद का समावेश हो गया हो। उसे आप 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' कह सकते हैं। आदर्शवाद को सजीव बनाने के लिए यथार्थवाद का उपयोग होना चाहिए और अच्छे उपन्यास की यही विशेषता है। उपन्यास की सबसे बडी विभूति ऐसे चित्रो की सृष्टि है जो अपने सद्व्यवहार और सद्विचार से पाठको को मोहित कर ले, जिस उपन्यास मे यह गुण नही, वह दो कौडी है।"—प्रेमचद (कुछ विचार, पृ० ७६)।

(*v*) मनोवैज्ञानिक परीक्षण (psychological observation) प्रेमचद-साहित्य से मुख्यत आरम्भ होता है। इसके पूर्व अविश्वसनीय और आकस्मिक तत्त्वो का प्रावल्य था। प्रेमचद, वृन्दावनलाल वर्मा और राजा साहब की यह देन भी ऐतिहासिक-वेत्ताओ के सम्मुख विचारणीय और अनुपेक्षनीय तत्त्व बनकर है। होरी का ग्वाल को ठगकर गाय प्राप्त करना, सस्कार एव आवेष्ठन के फलस्वरूप दारिद्रपूर्ण जीवन मे गाय की लालसा, नारी का आभूषण-प्रेम, गुलाबी की पढने की आन्तरिक अभिलाषा और मानसिंह का प्रेम, जमीदार साहब का डाकू पर क्रोध आदि सभी मनोवैज्ञानिक जीवन के नैसर्गिक रूप सत्यता से सूक्ष्म निरीक्षण के उदाहरण है, कलाकारो की साहित्य-शक्ति परखशील उद्भावनाओ के प्रमाण हैं। कुछ विदेशी उपन्यासकारो ने अपने प्रसिद्ध उपन्यासो की पृष्ठभूमि मे मनोविज्ञान को प्रमुख आवारित अगो-उपागो का चित्रण, जिसे फ्रायड ने मनोविज्ञान के धरातल पर प्रतिस्थापित किया था, अतिशय सूक्ष्म कलाओ के साथ किया है। ग्रीक उपन्यासकार Sophocles का Oedipus, Aceschylas का 'The Elektra', Shakspeare का 'Hamlet', Balzac का 'Pera Gorot', Proust का 'Remembrance of Things', तथा George Eliot, George Meredith, Thomas Hardy, D H Lawrence, Virginia Woulf James Zoice आदि इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

(*vi*) प्रेम-तत्त्व के विस्तार की आकाक्षा उपर्युक्त निर्माताओ मे व्यापक रूप से समाविष्ट है। युग की अनास्थापरक परतत्रता के कष्टप्रद-शृखलाबद्ध जन-जीवन मे, भौतिकवादी स्वार्थान्ध तथा अहम् के व्यापक उद्दाम के युग मे जीवन्त एव पीयूष तत्त्व, जिसका प्रचार काव्य के माध्यम से छायावादी कवियो के अतिरिक्त मैथिली-शरण गुप्त आदि तथा अन्य धाराओं के कविगण तथा प्रातीय भाषाओ के कलाकार, जैसे शरत बाबू, रवि बाबू आदि एव राजनैतिक क्षेत्र से गाधी जी अपने अन्त करण की सबल भावना मे कर रहे थे—'अहिल्याबाई,' 'लक्ष्मीबाई,' मीनी, सोफिया आदि मे वाछित रूप मे है और जो सफलता की कसौटी पर स्वर्णिम है।

(*vii*) भाषा के परिमार्जन का अभाव उक्त कलाकारो मे निश्चित ही देखा जा सकता है। तीनो सादगी के उपासक थे, अतैव वे भाषा के विद्वान के रूप मे नहीं आये। प्रेमचद और वृन्दावनलाल वर्मा जी की भाषा मे जहा सरलता है, वहा उर्दू का चापल्य राजा जी मे है। भावागत दोष के उदाहरण दिए जा सकते हैं। वर्मा-जी मे क्षेत्रीय शब्द और मुहावरे भी पर्याप्त हैं।

(*viii*) सूक्तियो का प्रबल आग्रह इनके साहित्य मे नही पाते जो आज के आधुनिक और अपने विद्वान लेखक की कोटि मे परिगणित कराने के मोहाभिभूत अकाक्षी साहित्यिको मे देखते है। 'शेखर एक जीवनी' मे तो एक पात्र मात्र सूक्तिया बोलता है। 'पथ की खोज, (डा० देवराज) मे भी यह प्रवृत्ति सबल है परन्तु, प्रेमचद और वृन्दावनलाल वर्मा तो जो कहते हैं सरल और सरस भाषा मे और वे सूक्तियो मे मोह नही रखते। यद्यपि उनके साहित्य मे सर्वग्राह्य अनेक सूक्तिया हैं, परन्तु विद्वता का मोह कदापि नही। और यह इन लोगो की विशिष्टता ही है। उदाहरण तो अनेक देखे जा सकते हैं।

(*ix*) शिल्प से अधिक भाव-पक्ष पर दृष्टि इन तीनो कलाकारो की आधार-शिला है। राजा साहब की शैली निराली अवश्य है, और उनमे प्रेमचन्द और वृन्दावन लाल से थोडी अधिक सजगता है, परन्तु यह इनके सम्पूर्ण जीवन मे भीगी हुई एव समा गई शैली है। वे बोलते और परस्पर वार्तालाप भी इसी शैली मे करते है।[1] आज के आधुनिक लेखक, जैसे अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, धर्मवीर, भारती आदि शिल्प-वैभव का किंचित विस्मरण नही कर पाते क्योकि उनकी सम्यक उपयोगिता मूल्य रखती है। (परन्तु यह सत्य है और जिसे धर्मवीर भारती ने 'सूरज का सातवा घोडा' मे स्वीकार भी किया है कि प्राय जहा भावपक्ष कमजोर होता है वहा शिल्प-टैक्नीक पर विशेष ध्यान दिया जाता है। हमारे आलोच्य कथाकारो की भावना की शुद्धता और सादगी की सरसता मे मार्मिकता सग्रहीत है। अतएव यही कारण है अज्ञेय आदि की कृतिया जहा कभी-कभी ऊबा देने लगती है, वहा इनकी कृतिया भावना की तीव्रता उत्पन्न करती हैं—अन्यमनस्कता का प्रादुर्भाव नही करती। इनकी कृतिया आरम्भ करने पर आद्योपात पढने की बलवती इच्छा उत्पन्न हो जाती है।

(*x*) हम उनमे उलझी सवेदना नही देखते जो आज के नवीनता के आग्रहियो मे पाते हैं। मनोविज्ञान के मनन-अध्ययन मे प्रभावित आज के बहुत से लेखक स्वय उलझते जा रहे हैं। किसी-किसी मे तो यह खटकने लगता है क्योकि उनके विचार, उनकी सवेदनाए स्वय उलझी होती हैं, उनमे निर्दिष्ट लक्ष्योन्मुख भावना नही रहती, एदर्थ दोष उत्पन्न होने का स्वाभाविक कारण होता है। हमारे आलोच्य गद्यनिर्मा-

---

१ राजाजी की भाषा का प्रवाह अखण्ड है और इस दृष्टि से वे साहित्य में अनोखे हैं। उर्दू मिश्रित मुहावरायुक्त सरस भाषा का प्रयोग, उनके व्यक्तित्व के विशेष रूप हैं। मैं निसकोच कह सकता हू कि उनके दैनिक तथा व्यावहारिक वार्तालाप की भाषा और उनकी पुस्तकों की भाषा में पूर्णत सादृश्य है, उन्होंने दिनचर्या के लिए जिस भाषा को अपनाया है, उसे छोड़कर कृत्रिम रूप में भाषा का प्रयोग वे अपनी कृतियों में अनुचित समझते हैं। वे भाषा के कोष को विस्तृत करने के पक्ष में हैं। विदेशी शब्दों को भी अपने में (हिन्दी मे) समाहित कर लेना हिन्दी की उसी प्रकार महत्ता मानते हैं जिस प्रकार भारतवासी अनेक विदेशियों को पचाकर भी भारतीय बने रहे। उन्होंने बताया कि प्रारम्भ में वे सस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग करते थे। महात्मा गाधी के ससर्ग मे आकर तथा उनके कहने पर उन्होंने ऐसी भाषा और शैली का सृजन बिना सकोच आरम्भ किया।"—विस्तार के लिए 'रामराज्य' कानपुर का २१-१०-५६ का अक देखें 'राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह व्यक्तित्व का अद्भुत आकर्षण —लेखक सियाराम शरणप्रसाद)

ताओ मे मानव-विज्ञान तथा मनोविज्ञान की सूक्ष्म परख अवश्य है और जीवनानुभव का समन्वय भी है, मात्र पुस्तकीय ज्ञान नही, इन्हो ने जीवन के विविध एव नानागत अनुभवो से विचार-सदर्भ तैयार किया। परन्तु दृष्टिकोण स्पष्ट और सुलझे होने के परिणामत उनकी भावना दिग्भ्रमित न थी, सवेदना और अनुभूति विचार-ज्ञान के सतप्त सबल वाष्प रूप मे विनष्ट नही हुई। उनके सम्मुख लक्ष्य था, अनुभव था, समाज का व्यापक रूप विवृत था। अहम् का दुराग्रह नहीं था, ईमानदारी और सचाई भावना की पृष्ठभूमि थी, समुचित क्षितिज निर्माण की सुदृढ कल्पना थी।

(xi) भारतीय जीवन मे सास्कृतिक प्रतिष्ठान की मनोदशा तीनो मे प्राप्य है। उनके पात्र भारत की भूमि से उत्पन्न भारतीय सस्कृति और सस्कार के प्रतीक हैं। यह सत्य है कि अनुचित दिशोन्मुखी अपनी भ्रमित वैकल्पिक बुद्धि का दुष्परिणाम प्राप्त करते हैं। भगवतीचरण वर्मा, देवराज, अज्ञेय आदि पाश्चात्य मनोवृत्ति-परिचालित पात्र-सृजन मे दत्तचित दीखते हैं जिससे एक भयानक विक्षेप उत्पन्न होता है। परन्तु, हमारे आलोच्य कथाकारो, हिन्दी-साहित्य के सबल निर्माताओ मे यह विषमता नही, अहिल्याबाई, रूपा, सोना, कचनार, कुमुद, निर्मला, धनिया, वेला, गुलाबी, होरी सभी हमारे कथन के प्रमाण ही हैं।

(xii) नारी के सात्विक प्रेम तथा उसके उचित सम्मान की भावना हम तीनो मे पाते हैं। इसके पूर्व हिन्दी मे नारी अधिक विशद रूप से समादृत नही हुई थी[1] बाद अचल के उपन्यासो मे भी नारी का महत्वपूर्ण स्थान देखते हैं।

इस प्रकार हम दिशा भावना, सौंदर्य-सधान आदि की दृष्टियो से उक्त कलाकारो मे अपूर्व साम्य के विधान-कार्यों को देखते हैं।

परन्तु, हम इन महत्वपूर्ण साम्य-शक्ति और सफलता के तत्वो पर ही सीमित न होकर अनेक नितात विशिष्ट आधारो, वैयक्तिक क्षितिज, कल्पनाओ आदि सर्वाधिक

---

१ वृन्दावनलाल के नारीगत विचार के लिए 'युगचेतना और पृष्ठभूमि' तथा 'हिन्दी उपन्यास-कार और नारी' शीर्षक लेख देखें। (२) प्रेमचन्द—(क) "स्वदेश की अभी तक किसी ने व्याख्या नहीं की पर नारियों की मानरक्षा उसका प्रधान अग है और होना चाहिए।"—रगभूमि, पृष्ठ ४८४

(ख) "मैं समझता हू कि नारी केवल माता है और इसके उपरान्त वह जो कुछ है, वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र है। मातृत्व ससार की सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या और सबसे महान विजय है।" गोदान, पृष्ठ ४३३।

(ग) "मैं ऐसी औरत चाहता हू, जो मेरे जीवन को पवित्र और उज्ज्वल बना दे, अपने प्रेम और त्याग से।" गोदान, पृष्ठ २४४।

स्मरण रहे इन्होंने विविध प्रकार की नारियों को अपने उपन्यास में ग्रहण किया है—नीच और उच्च सभी को स्थान दिया है, परन्तु उनकी "दृष्टि मे स्त्री पुरुष की 'सहचरी' है, 'अनुचरी' नहीं।" —प्रेमनारायण टडन, प्रे० च० गोदान एक अध्ययन।'

(३) (क) "स्त्रियों की शिक्षा उनके अन्दर की महत्ता है, सेवा और सयम की क्षमता है" गम रहीम, पृष्ठ ६३ इसी प्रकार के भाव पृष्ठ ८९३ (वही) में भी व्यक्त है।

(ख) "अगर जीवन सग्राम में स्त्रियां हाथ बटाने पर उद्यत हो सकीं, तो यह निश्चित है कि नारियों की निगाह मे सतीत्व के प्रचलित आदर्श की जगह नारीत्व का उत्कर्ष स्वातन्त्र्य होगा और प्रत्येक समाज में स्त्री धर्म का नवीन स्वरूप अनिवार्य होगा।"—रामरहीम पृष्ठ ५८८।

महत्वशील उत्प्रेरणाओ का उल्लेख करेंगे,जिन आधारो पर इतिहासवेत्ताओ और हिंदी-आलोचको को नवीन मूल्याकन की प्रेरणा देकर और इस दोष पर ध्यान न देकर आखें वन्द रखने वाले के लिए उनकी अनुचित दृष्टि का प्रमाण सिद्ध करेंगे।

उक्त निर्माताओ के विशाल वक्ष की ईंट, उनके आवेग, वातावरण सर्वथा अपने हैं—जीवन दर्शन और मार्ग-भिन्नता भी है।

(क) वृन्दावनलाल वर्मा जीवन मे ओज-तत्त्वो के आग्रही रहे। उन्होंने ओज को जीवन का शृङ्गार स्वीकार किया, सिद्धि का साधन माना। उनके साहित्य में आदर्श प्रतिष्ठान मे जीवन के शौर्य, आत्मा की शक्ति पर विशेष महत्व केन्द्रीभूत है। 'मृगनयनी' मे मानसिंह, लाखी और मृगनयनी के चरित्र मे इसी शक्ति का समन्वय है। जहाँ वे एक ओर शक्ति-साधना मे सलग्न हैं, वहाँ दूसरी ओर भावना और शुद्धता के मूल की उपासना उनमे अपेक्षित है। 'झासी की रानी लक्ष्मी बाई', 'गढ कुढार', 'भुवन विक्रम' मुसाहिब जू', 'माधव जी सिन्धिया' आदि मे इसी सत्य का प्रत्यक्षीकरण है। ओजपरक साहित्य-सृजन मे वर्मा जी की लेखनी अद्वितीय है।

राजा साहब मे सबसे बडी भावना समन्वय की है। वे गाधी-दर्शन से, गाधी-जी के ससर्ग से एव उनके आचरण से जीवन के शृङ्गार की सात्विक कल्पना करते हैं। वे (i) हिंदू और मुस्लिम, (ii) धनी और गरीब, (iii) हिन्दी और उर्दू का समन्वय चाहते है, जिससे जीवन के अनौचित्य विशृखलित जीवन-सघर्ष, घृणा और उद्दाम अहम् की परिसमाप्ति शात की दिशा मे, प्रेम-पूर्ण जीवन के स्वस्थ विकास मे हो। उदाहरणार्थ 'चुम्बन और चाँटा', 'पूरब और पच्छिम', आदि कृतियो पर दृष्टिपात कर सकते हैं जिसके मूल मे समन्वयवादी दृष्टिकोण परिलक्षित है। राजा जी का विश्वास है, इसी समन्वय मे जीवन का आनन्द लहरा सकता है। वे जबान के भेद-पूर्ण मसले को बुरा मानते हैं।[1]

प्रेमचन्द मे सामान्य जीवन की उत्प्रेरणा, निम्न और अन्य वर्णों के यथार्थमय सस्कार और मनोवृत्ति, मालिन्य, आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक सघर्षों का प्राबल्य है। सामाजिक जीवन की गतिविधियो के यथार्थ चित्रण मे करुणा की जीवनभूत धारा द्वारा आदर्श के प्रतिष्ठान की प्रयत्नशीलता है। वे होरी के माध्यम से निम्न वर्ग की वीभत्सता अकित कर राय साहब की पैशाचिकता, हिंसक मनोवृत्ति का दिग्दर्शन कर, जीवन के सात्विक और वास्तविक उद्धार और सच्ची विकासशील स्थिति का अभियान, आदर्श भावना के ग्रहण का सस्थापन करते हैं। वैषम्य की कटुता, जघन्यता की परिस्थिति मे वे हृदय-परिवर्तन के सिद्धान्त मे विश्वास कर, आदर्श के नियोजन मे सचेष्ट हैं। उनका आदर्श एक भिन्न भाव-भूमि और भिन्न बीज से उत्पन्न होता है और अपना सौरभ बिखेरता है। उदाहरणार्थ 'सेवा-सदन', 'प्रेमाश्रम', आदि हमारे सम्मुख हैं। जीवन की उच्चता की भावना तीनो मे प्रबल है। परन्तु प्रेमचन्द ओज

---

१ "दो जबान होने से वह तो दो होता नहीं ?" (पृष्ठ ५०२, राम रहीम) और "जिसे तुम सस्कृत जबान में राम कहती हो, उसे तुम अगर फारसी जुबान में रहमान कहोगी तो उससे क्या वह राम हराम हो गया ? आखिर दोनों में से कोई भी तुम्हारी अपनी जुबान नहीं।" (पृष्ठ ६७६, वही)

एव वीरता के यश-गायक नही है, जैसे वर्मा जी हैं।

(ख) युगान्तरकालीन साहित्य-प्रेरणाओ की कोटि मे तीनो हैं। प्रेमचन्द कथानक के साथ निम्न भूखण्डो, वर्गों के जीवन्त चित्रण मे युगान्तरकारी सिद्ध हुए, वहा राजा राधिकारमणसिंह भाषा के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण क्राति की सभावना लेकर आए और वृन्दावनलाल वर्मा का, ऐतिहासिक क्षेत्र मे, नवोन्मेषी दृष्टि और मौलिकता का परिचय मूल्य रखता है। हिन्दी ऐतिहासिक क्षेत्र मे वृन्दावनलाल वर्मा ने स्कॉट से कम महत्वपूर्ण कार्य नही किया।[1]

हम ऊपर ही व्यक्त कर चुके हैं कि राजा साहब का उद्भव एक क्रान्ति की भावना लेकर आया। शैली और दार्शनिक मतैक्य की पृष्ठभूमि मे अनेक मर्मों का उद्घाटन सहज सुलभ है। शिल्प और प्रसाधन की दृष्टि से राजा जी की शैली एक समाधान लेकर आयी थी, हिन्दी और उर्दू के मध्य विस्तृत खाई मिटाने को प्रवृत्त हुई थी। ब्रजभाषा से सघर्ष ले जब खडी बोली निरन्तर अग्रसर हुई तो उर्दू से भयानक सघर्ष हुआ। उसी समय गाधी जी भी राजनैतिक क्षेत्र मे धर्म-समझौता, हिन्दू-मुसलमान समझौता का शखनाद कर रहे थे। राजा साहब साहित्य-क्षेत्र मे गाधी जी की प्रेरणा से आये और उन्हीं के मतानुसार एक ऐसी शैली का प्रारम्भ किया जो सर्व मान्य होकर दो विपरीत धर्म-सस्कारगत व्यक्तियो के लिये भाषागत विवादो की परिसमाप्ति मे नीव बन सके। और राजा जी ने उर्दू से चपलता ग्रहण कर सम्मिश्रण-युक्त शैली का आलम्बन ग्रहण किया। उन्होंने ऐसी भाषा-शैली के ग्रहण का कारण भी स्पष्ट बतलाया—"जबान के मसले पर कृत्रिम सघर्ष क्यो? एक मास और खून से बने भाइयो मे खून-खराबी क्यो? जबान के मसले को लेकर लडना हमारी अज्ञानता का द्योतक है।" और सामजस्य-सूत्र के निमित्त उन्होंने एक मिश्रित रूप ग्रहण किया।

वृन्दावनलाल वर्मा जी द्वारा ऐतिहासिक साहित्य की देन अविस्मरणीय हैं। उनके पूर्व ऐतिहासिक कृतिया न्यूनतम मात्रा मे लिखी गई जिनका ऐतिहासिक और औपन्यासिक मूल्य नहीं के बराबर है। वर्मा जी ने ऐतिहासिक मूल्यो का मौलिकता से निर्धारण किया और नवोन्मेषी तत्वो का पूर्वाग्रह से विमुक्त नव-निर्माण, और नव प्राण-प्रतिष्ठा दी चित्रो को, मूर्तियो को। लक्ष्मीबाई का सघर्ष वैयक्तिक स्वातत्र्य का सिंहनाद और प्रयास नही था वरन् राष्ट्रीय चेतना की जागृति मे, पिसती स्वातत्र्य-भावना का दहकता अगार था। 'मृगनयनी', 'भुवन विक्रम', 'माधव जी सिन्धिया', मे भी राष्ट्रीय पुनीत भावना का समावेश, भारतीय सस्कृति का सम्मुज्ज्वल दिग्दर्शन मुख्य है। राष्ट्रीयता की पुकार युग की कराहती पुकार के निमित्त भी आवश्यक प्रतीत हुई। भारत परतन्त्रता की अग्नि में जल रहा था, नैराश्य और अनास्था से समस्त वायुमडल आच्छन्न था, उस समय उन्होंने साहित्य-सृष्टियो के माध्यम से ओज के नियोजन द्वारा भी उत्साह और स्फूर्ति का निर्माण किया। मानवता के सच्चे पुजारी के नाते सास्कृतिक उच्चता प्रस्तुत करते हुए वीरत्व का हुकार युगानुकूल परिवेश मे सग्रहीत किया।

ऐतिहासिक छवियो को नये सिरे से नई, स्वतत्र दृष्टि से, विचारणीय बना दिया

---

[1] स्कॉट और वृन्दावनलाल वर्मा विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन अन्य अध्याय में दिया गया है।

और ऐतिहासिक साहित्य का मापदड और स्तर वहुत ऊपर उठा लिया, मौलिकता के समावेश द्वारा उचित प्राण-प्रतिष्ठा दी।

प्रेमचद ने उपन्याम-क्षेत्र मे भिन्न रूपो का परिवर्तन उपस्थित किया, कथानक मे युगान्तर लाया, मूल्याकन और विश्लेपण मे गहराई तक प्रवेश किया। प्रेमचद के पूर्व कथानक क्षेत्र मे यथार्थ जीवन का अभाव था और निम्नस्तर के पात्रो का समादर भी उस मनोयोग से नही हुआ था। उन्होने निम्न वर्गो को महानुभूति मे परखा, देखा, उनका सत्यता से परिवेक्षण किया, अनेक सस्कार, आवेष्ठन, परिवेश और विक्षेप को प्रकट किया, मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया। होरी का उसके परिवार का, इतनी महानुभूति के साथ चित्रण युगातरकालीन भाववेत्ता का ही रूप प्रकट करता है। प्रगतिशील तत्वो के साथ आदर्श का निर्माण, असत वृत्तियो मे परित्राण का सकल्प उनमे मिलता है। वे जमीदारो के दुष्कर्म और अत्याचार के विरोधी थे, परन्तु उन प्राणियो और व्यक्तियो के नही। वे गाधीवादी विचार-धारा से प्रभावित थे और प्रगतिमूलक चेतनाओ को भी नही भूले थे। इसीलिए श्यामसुन्दर दास ने लिखा है, "हिन्दी उपन्यास क्षेत्र मे प्रेमचद (स० १९३७–१९९३) की रचनाओ ने युगान्तर उपस्थित कर दिया। प्रेमचद जी ने देहाती समाज का अनुभव प्राप्त किया है और उनके सुख-दुख को समझते हैं। सामाजिक कुरीतियो को दूर करने के उद्देश्य से इन्होंने व्यग-शैली स्वीकृत नही की, मीठी चुटकियो का प्रयोग किया। मानसिक वृत्तियो के उत्थान-पतन का सुन्दर चित्र अकित करने मे प्रेमचद-जी की प्रसिद्धि है। वर्णन की आकर्षक शक्ति प्रेमचद को मिली है। इस कार्य मे वे ससार के वडे-वडे उपन्यासकारो के समकक्ष हैं।"

निश्चय ही, उन्होंने नया मोड साहित्य मे उपस्थित किया। ग्रामीण वर्ग-सघर्ष का, किसानो और मजदूरो का इतना शुद्ध प्रस्तुतीकरण इनके पूर्व अलभ्य था। साहित्य और जीवन से गहरा सम्बन्ध स्थापित करने मे प्रेमचद ने अभूतपूर्व कार्य किया। उन्होंने अपना मतव्य स्पष्ट शब्दो मे व्यक्त करते हुए लिखा है, "उपन्यास मानव-चरित्र का चित्र है।"[1]

(ग) नारी सम्बन्धी भी एक महत्वपूर्ण पक्ष है जिस पर विचार आवश्यक है। समाज की प्रगति, निर्माण-प्रेरणा मे पुरुष और नारी दोनो का सम्यक सहयोग स्वीकृत है। अतएव उपन्यास मे जब पूर्ण समाज का, युग का, परिवार का, प्रतिविम्ब अकित रहता है तो नारी अनुपेक्षनीय हो जाती है।

प्रेमचद ने नारी को सामान्य रूप मे ग्रहण किया, जिनके हृदय मे नारीसुलभ कमजोरियाँ हैं, गहनो के प्रति स्वाभाविक प्रेम है (गवन), सौतेले पुत्र के प्रति एक भिन्न भावना है (विमाता), जो धन और मन से गिरती और उठती भी हैं। वे यथा-वसर उच्चता भी प्रदर्शित करती हैं। अर्थात नारी के विभिन्न और स्वाभाविक रूपो का उनमे अकन है।

परन्तु वृन्दावनलाल वर्मा ने सामान्य और स्वाभाविक नारी पात्रो के अकन के अतिरिक्त ओजतत्व के आरोप पर विशेष ध्यान दिया। उनके उत्थान मे उज्ज्वल

---

१ देखें, 'कुछ विचार', भाग प्रथम, पृष्ठ ७१।

चारित्रिक नीव मे सफलता के अभियान मे वीरत्व का सयोजन किया। लक्ष्मीबाई, सुन्दर, मुन्दर, मृगनयनी, लाखी, कचनार, गौरी सभी यथासम्भव अपने देश, अपनी इज्जत और राष्ट्रीयता के विभिन्न अस्त्र-शस्त्र लेकर समर-भूमि मे उपस्थित होती है। नारियो का नि सन्देह अत्यन्त गौरवान्वित रूप वर्मा जी के साहित्य मे दृष्टिगत होता है जिसकी चर्चा 'हिन्दी उपन्यासकार और नारी' एव 'युगचेतना और पृष्ठभूमि' अध्यायो मे मैंने विस्तार से की है।

राजा राधिकारमण ने भी नारियों को विविध मन स्थितियो से युक्त चित्राकित किया है। बिजली जहा लालसा के कारण तृष्णाओ के सागर मे डूबती है, वहा बेला एक आदर्श का अवलम्ब ग्रहण कर निरन्तर दुख और करुणा से आप्लावित रहती है और सात्विक विजय प्राप्त करती है। धनिया जहा भारतीय सस्कार और प्रतिक्रिया के कारण बूढो और सूरदास की चीजें चोरी करती है, वहा मीनी (पूरब-और पच्छिम) उच्चादर्श की परिकल्पना और साधना मे सलग्न दीखती है। राजा साहब की स्वाभाविक वृत्ति नारी-चरित्र की उज्ज्वलता और गरिमा की ओर विशेष उन्मुख है। परन्तु नारियो के इन विविध रूपो के कारण, जीवन मे अद्भुत उत्थान और पतन के कारण सर्वत्र राजा साहब ने उन्हे कौतूहल-दृष्टि से देखा है—पहेली स्वीकार किया है। गुलाबी के चरित्र की परख मे यही सत्य अन्तर्हित है। नारी की सूक्ष्म, उलझी, गत्यात्मक, सश्लिष्ट मन स्थिति के प्रति उन्होंने जिज्ञासा और आश्चर्य का भाव ही प्रदर्शित किया। 'नारी क्या एक पहेली' पुस्तक भी इस दृष्टि से विशेष ध्यातव्य है।[1]

(घ) प्रेमचन्द मे निम्नस्तर, मध्य एव जमीदार-वर्ग का बडा सूक्ष्म और विपद-चित्रण है। उनके 'गोदान', 'गबन' आदि किसी भी उपन्यास को इस दृष्टि से देख सकते हैं, जिनमे उनका वर्गगत सस्कार, परिवश, व्यवहार, विचार, दर्शन, सब कुछ यथार्थरूप मे व्यजित है। मध्यवर्ग भी स्वाभाविक रूप मे उनके उपन्यासो मे आते हैं। वृन्दालाल वर्मा मे राज परिवार, सामन्तीय वर्ग-चित्रण विशेष रूप से मिलता

---

१ 'नारी क्या एक पहेली' में राजा जी ने स्वय लिखा है—"याद नहीं, जाने कब से सुनते आए हैं कि नारी की बातें नारी ही जाने। उसकी प्रकृति के रेशे-रेशे में ही वह कब-क्या ही फितरत है कि उसका पता कोई क्या ढू ढे, कहा ढू ढे। तो बस, समझ लीजिये कि नारी तो एक पहेली है-पहेली। वह जिस हद तक हमारे सामने खुलती है उससे कहीं अधिक अपने पर पर्दा रखती है निरन्तर। जो कुछ हम देख पाते हैं वह उसका तमाम जलवा नहीं, जो कुछ हम ढू ढ पाते हैं, वह उसका तमाम परिचय नहीं, जो कुछ हम सू घ पाते हैं वह उसका तमाम सौरभ नहीं, और जो कुछ हम सुन पाते हैं वह कुछ उसके दिल की सदा नहीं, उसकी वाणी की ही व्यजना है अधिकतर। ऐसी है नारी प्रकृति की निराली अन्वेषणा—वह 'नेति नेति' की पुकार हिलोरें लेती रहती है हमारे अन्दर। वह न अपनी मुस्कान में आती है न अपनी निगाह में और न अपने आसुओं के प्रवाह में बहकर किसी किनारे लग पाती है कि उसे उलट पुलट कर ढू ढ लें, और बातों में तो उसे कोई पा ही नहीं सकता—बस, यह आई वह गई और रह गए हम हाथ मलकर। वह किधर मुड़ जायगी और क्या से क्या कर दिखायेगी, यह रहस्य ही तो अनूठा अन्दाज है उसका, और तक हमारी बुद्धि की पहुंच नहीं।" और उक्त पुस्तक की अपनी तीनों कहानियों द्वारा यही तथ्य सिद्ध कर दिया है। 'रामरहीम' के पृष्ठ २६१ और २६० में भी यही भाव व्यक्त हैं।

है (ऐतिहासिक उपन्यासो मे) और उनके मनोभाव, क्रिया-प्रतिक्रिया, प्रवृति, प्रेरणा, रहन-सहन स्पष्टता से कौशलपूर्ण चित्रित है। 'मृगनयनी' को उदाहरण स्वरूप लें। किस प्रकार महाराज तोमर अपने सैन्य-सगठन के अतिरिक्त मनोरजन और विलासी उपादानो पर भी विशेष ध्यान रखता है, तोमर की रानिया किस प्रकार परस्पर व्यवहार और वातावरण का निर्माण किए रहती है, मुसलमान बादशाह किस प्रकार विलास की सीमा का अतिक्रमण किये रहते है। 'गढकुडार', 'विराटा की पद्मिनी', 'माधव जी सिन्धिया', 'अहिल्याबाई', 'टूटे काटे', 'कचनार' आदि मे भी यह व्यापकता से देख सकते हैं।

राजा साहब ने धनी और ऐश्वर्यपूर्ण परिवार और समाज का बडा जीवत चित्रण किया है। बिजली के परिवार तथा नवाब सम्बन्धी प्रसगो की इस दृष्टि से चर्चा की जा सकती है। यो राजा साहब ने भी वृन्दावनलाल वर्मा सदृश ही मध्य और निम्न परिवार और समाज को अग्राह्य नही माना, परन्तु धनीवर्ग की छाया मे पले हुए व्यक्तियो का भोजन, स्वादलिप्सा, व्यवहार आदि विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। 'चुम्बन और चाटा' का सेठ भी इसी सत्य का परिचायक है। स्मरण रहे, राजा साहब स्वय एक उच्च और धनाढ्य राज्य-परिवार के प्राणी हैं।[1]

इस प्रकार हम स्पष्ट देखते है, तीनो निर्माताओ का समुचित मूल्याकन हिंदी साहित्य मे होना और इतिहास-सृष्टि मे सन्तुलन का निर्वाह होना परमावश्यक है।

---

१ राजा साहब के जीवन वृत्त के लिए गद्यकार राजा 'राधिकारमण'। ले०—सियराम शरण एम० ए०, या ओंकार शरद लिखित 'राजा राधिकारमण, व्यक्ति और कला' देखें।

: ५ :

वृन्दावनलाल वर्मा के साहित्य में ओज-तत्त्व

श्री वृन्दावनलाल वर्मा का हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकारो मे शीर्ष-स्थान है, परन्तु उनके सामाजिक उपन्यास भी कम महत्वपूर्ण तथा प्रभावपूर्ण नही। उदाहरणस्वरूप, हम 'अमरवेल',' प्रत्यागत' आदि को देख सकते हैं। प्रस्तुत निवध मे हम वर्माजी के प्रसिद्ध उपन्यास 'मृगनयनी', 'झासी की रानी लक्ष्मीबाई' मे ओज-तत्त्व की चर्चा करेंगे जो आलोच्य कृतियो की सफलता मे सुदृढ तत्त्व हैं।

निश्चय ही ओज-तत्त्व चित्त मे आवेग उत्पन्न करता है। वीर, वीभत्स, रौद्र आदि रसो मे यह तत्त्व पर्याप्त मात्रा मे देखा जा सकता है। कविता मे ओज-उत्साह के निमित्त कठोर वर्णों के प्रयोग की व्यवस्था है।

मानव-जीवन-चक्र निरन्तर प्रगतिशील रह, विविध भाव-भूमियो की छवियो से आलोडित हो, क्रिया-प्रतिक्रिया के आवर्त्तन मे ह्रास और उन्नति के अमिय और हलाहल का रूप अनुभूत कर, अनुभव-निधि सग्रह कर प्रवृत्यानुसार दृश्यवान लोक को अपनी वाणी से, प्रयत्न-शास्त्र का सहारा ग्रहण कर, प्रभाव-उत्पन्न की मनोकाक्षा का स्वप्न देखता है। उस भूमि का सन्निहित बीज स्नेहशीलता पर निर्भर कर कला-क्षेत्र मे समाहृत हो पाता है। इसी वैयक्तिक अनुभवन-प्रस्फुरण पर सुखान्त और दुखान्त, कल्याणपरक, हसोन्मुख कला-श्रेणियाँ रखी जाती है।

जब मनुष्य यथार्थवत् सत्य से सचालित ठोस भाव भूमि उपस्थित करता है, तो प्रेरणात्मक जीवन तत्वो को भी सुन्दरता पूर्वक सजा देता है। 'मृगनयनी' के साथ भी यह सत्य सतुलित रूप मे दर्शनीय है।

मृगनयनी उपन्यास मे वृन्दावनलाल जी ने (क) मृगनयनी तथा लाखी एव अटल की बाल्यावस्था एव युवावस्था के साहसपूर्ण, रोचक कार्यो मे (ख) मानसिंह तोमर, मृगनयनी, लाखी के चारित्रिक सगठन मे (ग) युद्धकाल मे अटल, तोमर, मृगनयनी, लाखी के चमत्कारिक क्रिया-कलाप मे तथा अन्य छोटे-मोटे स्थलो मे उपर्युक्त तत्व का समावेश कौशल से किया है, जिससे उन सभी महिमा-मडित चरित्रो का मनोविश्लेपण, धैर्य्य, दृढता, वीरता का प्रदर्शन स्वाभाविक रूप मे हो सका है। और उक्त गुणो से विभूपित चित्रित करने मे इतिहास की रक्षा के साथ ही भारतीय वीर प्राणियो के प्रति, अपनी प्रकाश दीप्त सस्कृति के प्रति श्रद्धापूर्ण भावनाओ का उन्मेप भी होता है।

ऐतिहासिक उपन्यास 'दिव्या' (यशपाल-कृत) मे जहाँ भारतीय सस्कृति की उपेक्षा का प्रबल भाव-स्रोत है वहाँ 'मृगनयनी' की सृष्टि भारत भूमि मे है, जहाँ वह भारतीय आदर्श तथा वीर-नारी का प्रतीक बनती है। वह दिव्या की तरह अनैतिकता को प्रश्रय देना जीवन-सिद्धि हेतु स्वीकार नही करती, सोचती तक नहीं है।

दिव्या मे जहाँ नायिका दिव्या का चरित्र भीरु, परिस्थितियो के झझा के कारण भिन्न-भिन्न दिशा ग्रहण करता है, वहाँ मृगनयनी तेजस्वी नारी है, ओजपूर्ण कर्तव्य उसके जीवन का शृगार है।

मृगनयनी और लाखी वाल्यकाल से ही जीवकोपार्जन के निमित्त कर्त्तव्य करती हैं, जगली अरने, भैसे और अनेक हिंसक तथा वलिष्ट जानवरो का लक्ष्य वेध करती हैं और मृगनयनी के इसी ओजपूर्ण कार्य से मुग्ध हो मानसिंह तोमर, उसे अन्य जाति की होने पर भी पत्नी के रूप में स्वीकार करते हैं। मृगनयनी जहा वैवाहिक वन्धन मे आवद्ध हो मुख्यत कला की सेविका वन जाती है वहा लाखो आजन्म यातनाओ, पीडाओ से मुक्ति के लिए अस्त्र को ग्रहण किए रहती है। वह नटो के जाल को काट कर अपने चरित्र तथा देश की सुरक्षा करती है, दुश्मनो को तीर मे वेध कर कर गढ की रक्षा करती है और अन्त मे भी उसे हाथ मे धनुप-वाण लिए शत्रुओ से युद्ध करना पडता है। निश्चय ही इस दृष्टि से लाखी का चरित्र कुछ सीमा तक मृगनयनी से अधिक ओजस्वी और साहसिक है। क्योंकि उसे अनवरत जीवन के विभिन्न युद्धो (जैसे उसके प्रेमी अटल को दूसरी जाति का होने के परिणाम स्वरूप उसके परिणय-सस्कार-ग्रहण मे सामाजिक विरोध होता है आदि) मे उलझना पडता है। इस तरह ओजस्वी चित्रो और वर्णनो से आलोच्य उपन्यास पूरी तरह भरा है। उदाहरणार्थ, पाठक कुछ स्थलो को देख सकते हैं—"एक क्षण के उपरान्त ही पूरी लम्बाई-चौडाई वाला भरा-पूरा नाहर मानसिंह के मचान की दिशा मे गर्दन जरा-सी मोडकर देखते हुए आता दिखलाई पडा। निन्नी (मृगनयनी) ने तुरन्त गर्दन का निशाना वाधा और पूरी शक्ति के साथ डोरी को खीचकर तीर छोड दिया—अविलम्व दूसरा चढा लिया।

नाहर की गर्दन मे तीर घस गया। नाहर ने तडप और हुकार के साथ ऊपर को उचाट भरी और जिस ठौर से उचटा था उसी पर गिर कर अपने नाखूनो से धरती खोद-खोदकर धूल उडाने लगा थोडी देर वाद नाहर समाप्त हो गया, हाँका वढता आ रहा था। लाखी के सामने कुछ दूरी से खडवड और जोर की सास का शब्द सुनायी पडा। लाखी तैयार हो गई। नाहर पर एक दृष्टि डालकर निन्नी ने भी मुडकर तीर सभाला। कमान पर चढाया ही था कि एक वडा पूरा अरना भैसा फुसकारे मारता हुआ सामने से छोटी-छोटी झाडी को रौंदता, कुचलता आ गया : लाखी ने तीर का निशाना लेकर तीर छोडा, कोई दूसरा ठीक वैठता ही नही था। तीर अरने के माथे पर पडा और थोडा-सा धस गया। अरने ने दोनो को देख लिया, झपटा। जब तक लाखी दूसरा तीर चलावे, निन्नी ने अरने के मस्तक के वीचो-वीच का निशाना लेकर तीर छोड दिया। तीर अपने निशाने पर तो लगा परन्तु इतनी जल्दी से चलाया गया कि पूरी शक्ति को लेकर न छूट सका। माथे की ऊपरी हड्डी की एक तट को ही फोड सका। ठठकर रह गया। अरने ने जोर की झिडकर लगायी और उनकी ओर पूछ उठाए हुए आया। लाखी ने दूसरा तीर छोडा। तीर उसके नयनो को ही फोड पाया। अरना थोडा हिचका। परन्तु अतर इतना कम रह गया था कि तरकस मे से तीर निकाल कर प्रत्यचा पर नही चढाया जा सकता था। अरने की वडी-वडी लाल आखो से अगारे छूट रहे थे और फुफकार मे से फेन उड रहा था।

निन्नी ने कमान को एक ओर फेंककर वर्छी उठायी और अरने की दिशा मे सीधी की ही थी कि वह लपका। निन्नी पेड से एक पग आगे बढ आयी। लाखी ने बगल से कमान की डोरी पर तीर चढाया परन्तु छोड नही पायी। सिर को थोडा-सा नीचा किए हुए उन दोनो को अपने माथे और सींगो की जड से पीस कर फेंक देने के लिए अरना और बढा। उन दोनो का कचूमर निकालने के लिए एक क्षण ही और रह गया था कि निन्नी ने पूरे बल और वेग के साथ अरने के माथे पर वर्छी ठोक दी। वर्छी तीर के कुछ ऊपर जाकर लगी। अरना उपेक्षा के साथ बढता चला आया। निन्नी एक हाथ से वर्छी की डॉड पकडे रही और पेड के तने से थोडी-सी बगल कर गई। अरना खाई हुई वर्छी समेत पेड से जा टकराया। निन्नी के हाथ से वर्छी छूट गई। मूठ पेड के तने पर अड गई।

अरने के अपने ही धक्के से वर्छी का फल माथे की हड्डियो को तोडता-फोडता और भी धस गया। निन्नी उछल कर पीछे हट गई। उसने अपना छुरा निकाल लिया। लाखी ने तीर कमान को फेंककर अपनी वर्छी उठायी और अरने पर हुलना चाहती थी कि अरना लडखडा कर गिर पडा। सिर हिलाने लगा और जल्दी-जल्दी फसकने लगा। उसको चक्कर आ रहा था। परन्तु वह मरा नही था। निन्नी ने उसकी गर्दन का निशाना तानकर छुरे को फेंका। वह ऊपर से निकल गया। खन्न से अरने के बगल मे जा गिरा। लाखी ने पूरी शक्ति साथ उसकी कोख पर वर्छी चलायी परन्तु अरना लडखडाते पैरो भी उठ खडा हुआ और वर्छी एक टाग को छीलती हुई धरती मे धस गई। मूठ लाखी के हाथ से सरक गई। लाखी अपने को निकाल कर पीछे हट गई। उस छुरे के सिवाय उन दोनो के हाथ मे अब और कोई हथियार न था। आतुरता मे फेंके हुए तीर कमानो को उठाने के लिए गाठ मे आधा क्षण भी नही था। निन्नी को केवल एक उपाय सूझा। उसने उछल कर अपनी ओर वाले एक सीग को दोनो हाथो से पकड कर अरने को प्रचण्ड वेग के साथ धक्का दिया। अरना मुड गया, रिल गया और धम्म से गिर गया, निन्नी भी उसके सीग को पकडे हुए उस पर गिरी। परन्तु तुरत सम्भल गई। उसका छोटा-सा मूगिया मुडासा झटके के साथ खुलकर अरने पर जा गिरा—"एक छोर अपने पर, काफी धरती पर।" इसी प्रकार के दृश्य लिए 'मृगनयनी' के ५२-५३, १८, १५४,४६३-६४, २८४ आदि पृष्ठो को देख सकते हैं जहा उन दोनो वीराङ्गनाओ का अरना को उठा लेना, चार मुसलमान शत्रु-सैनिको को मार भगाना आदि बडा चित्रात्मक और जीवन्त वर्णन है। मालूम पडता है ये घटनाए आखो के सम्मुख ही हो रही हो। उन सभी पृष्ठो मे बडा ओजस्वी रूप अकित है।

मानसिंह का चरित्र भी बडा ओजस्वी दृढ तथा आदर्श वीर नृपति का है जो अपने देश की स्वतत्रता के लिए सर्वदा शत्रुओ से युद्ध करता रहता है, चतुराई से उनके विपुल सैनिको का दमन कर अजय बना रहता है। उदाहरणार्थ, 'मृगनयनी' का उत्तरार्द्ध देख सकते हैं।

इस प्रकार (क) वैयक्तिक जीवन, (ख) राष्ट्रीय चेतना, (३) आदर्श भावना आदि के सयोजन मे ओज-तत्त्व का यथेष्ट उपयोग है।

'झासी की रानी-लक्ष्मीवाई', 'कचनार', 'गढकुढार', 'विराटा की पद्मिनी,' 'माधव जी सिन्धिया,' 'भुवन विक्रम' सभी मे ऐसे अनेक स्थल हैं जब ओज की तीव्र-धारा पाठको को देखने को मिलती है।

'झासी की रानी-लक्ष्मीवाई' मे भी हम एक स्थल देखें—

"ऊपर ज्यादा पानी वरस गया था, इसलिए वेतवा वेतहाशा उठला गई। हवा, आधी के रूप मे चल रही थी। मल्लाहो के लिए नाव का लगाना असम्भव था। अनेक घुडसवारो के दिल टूटने लगे।

वेतवा का शोर आधी का साथ पाकर तुमुल हो उठा।

रानी ने आज्ञा दी, 'कूद पडो!' और वे सवसे आगे घोडे पर पानी मे घुस गई।

वेतवा की धार पुज के ऊपर पुज-सी दिखलाई पडती थी। क्रम अभग और अनन्त-सा। जव एक क्षण मे ही अनेक वार एक जलपुज दूसरे से सघर्ष खाता और एक दूसरे से आगे निकल जाने का अनवरत, अथक अटूट प्रयास करता तव इतना फेनिल हो जाता कि सारी नदी मे फेन-ही-फेन दिखलाई पडता था। झाग की इतनी वडी निरन्तर वहती और उत्पन्न होती हुई राशिया आडे आ जाती थीं कि घुडसवारो को सामने का किनारा नही दिखलाई पड पाता था।

लहरो के एक पल्लड को चीरा, उस पर के झाग को वेधा कि दूसरा सामने। शब्द-मय प्रवाह की निरर्थक भाषा मानो वारवार कहती थी वचो, वचो! सामने की उथल-पुथल से आगे वढे कि वगल से थपेड पडी। घोडे आँखें फाडे, नथनो से जल फुफकारते वढ रहे थे। वे अपना और अपने सवार का सकट समझ रहे थे। सवार के पैर घोडे से चिमटे हुए और उनके पैरो के नीचे घोडे की निष्प्तत्व टाप। और टाप के नीचे? न जाने कितनी गहराई! सवारो के चारो ओर भँवरे पड-पड जा रही थीं। एक भँवर वनी, पार की, दूसरी तुरत मौजूद। परतु अपनी रानी और उनकी सहेलियो को आगे देखकर किस सिपाही के मन मे अधिक समय तक भय ठहर सकता था। रानी के घोडे का केवल सिर ऊपर, शेष भाग पानी और झाग मे! रानी की कमर तक झाग, पानी और धार के साथ वहकर आया हुआ झाडी-झकाड। धार की वूदो की झडी उचट-उचट कर आँखो मे, वालो पर, और सारे शरीर पर वरस रही थी। जव कभी सिपाहियो और सहेलियो को उत्साह देना होता तो हँस-हँसकर शावाशी देती।"

(पृष्ठ २८३)

एक दूसरा दृश्य देखें—"रानी और मुन्दर के पास से जो डाकू घोडे पर सवार जरा पीछे निकला वह मतर्क था। नगी तलवार हाथ मे, गले मे सोने का जेवर। वस्त्र भी उसके अच्छे थे। रानी ने निर्णय किया कि यह सागरसिंह (प्रसिद्ध डाकू) है। रानी ने मुन्दर को मुस्कराकर इशारा किया। मुन्दर ने होठ दावे और सपाटे के साथ उस पर टूटी। रानी दूसरी वगल से। सागरसिंह ने घोडा तेज किया। इन दोनो ने पीछा किया। जव मार्ग कुछ समस्थल आया, जमीन मुलायम और कीचड वाली मिली। सागरसिंह को एक ओर से मुन्दर ने दवाया और दूसरी ओर से रानी ने।

आत्मरक्षा के भाव से प्रेरित होकर उसने रानी पर वार किया। तुरत

मुन्दर ने चपल गति से अपनी तलवार उसपर ढाई। वार ओछा पडा, घोडे की पीठ पर। उधर रानी ने घोडे को फुर्ती के साथ जरा-सा रोका। वह कुछ अगुल पीछे हुई और सागरसिंह का वार उनसे आगे निकल गया। रानी ने अपनी तलवार ऐसी कसी कि सागर की तलवार के दो टुकडे हो गए। उसने अपने घोडे को वहुत खीचा दावा, परन्तु उसकी पीठ कट चुकी थी। मुन्दर ने सागरसिंह की गर्दन को ताक कर तलवार उवारी कि रानी ने तुरत कहा 'जीवित पकडना है,' और रानी ने इस तरकीव मे अपना घोडा सागरसिंह की वरावरी पर किया कि वह सट गया। रानी ने सागरसिंह की कमर मे अपना हाथ डाला। मुन्दर समझ गई कि क्या करना है। दूसरी ओर से उसने अपना हाथ उसकी कमर मे लपेट दिया और झटका देकर घोडे पर से उठा लिया। घोडा पीछे रह गया। सागरसिंह ने इस वज्र-पाश मे से निकलने, खिसकने की वहुत कोशिश की परतु वह सफल न हो सका। उसने अपने दाँतो को काम मे लाने का प्रयत्न किया। रानी ने तुरत कहा—'सावधान, यदि मुह खोला तो तलवार ठूम दू गी।" (पृष्ट २९०-२९१)}

इसी प्रकार के अनेक उदाहरण उनकी अन्यान्य कृतियो मे दृष्टिगत होते हैं। लक्ष्मीवाई, भुवन विक्रम, माधवजी आदि का सम्पूर्ण जीवन ओज से निर्मित है। अनेक उदाहरणो को यहाँ रखना सम्भव नही है।

निश्चय ही हिन्दी-साहित्य मे ऐसे उपन्यासो की वडी कमी है जिसमे मनुष्य के अन्दर स्फूर्ति, तेज और चेतना उत्पन्न हो। मेरी दृष्टि मे ऐसे एक ही लेखक हैं वर्मा जी।

: ६ :

हिन्दी-उपन्यासकार और नारी

जीवन का चक्र, प्रगति का विस्तार पुरुष और नारी के आधार पर ही अवस्थित है। नारी और पुरुष सृष्टि के माध्यम हैं और उपभोक्ता भी। दुर्गा के साथ जहा वाणीदायिनी सरस्वती का, बुद्धि-सागर बृहस्पति का, धन-शक्ति लक्ष्मी का सयोग कर ऋषियो ने पूर्णता की आराधना की, वहा आज का मनुष्य मात्र एकपक्षीय हो गया है, जिसका दुर्वह परिणाम हुआ—सघर्ष। नारी अपने कारुणिक तत्व के कारण परतन्त्र बन गई। पुरुषो का अत्याचार प्रचड हो उठा। मुगल कालीन वासना-जनित ज्वार से परित्राण-निमित्त आवरण का आग्रह आज दुराग्रह हो गया। महादेवी वर्मा ने इसी सत्य का मार्मिक उद्घाटन करते हुए लिखा है—"इस समय तो भारतीय पुरुष जैसे अपने मनोरजन के लिए रग-बिरगे पक्षी पाल लेता है, उमी प्रकार एक स्त्री को पाल लेता है तथा अपने पालित पशु-पक्षियो के समान ही यह उसके शरीर और मन पर अपना अधिकार समझता है।"[1] पुन वे 'अतीत के चलचित्र' मे लिखती हैं, "साधारण रूप-वैभव के साधन ही नही, मुट्ठी भर अन्न भी स्त्री के सम्पूर्ण जीवन से भारी ठहरता है।"[2] लेकिन सच्ची विकासशाल स्थिति के आह्वान के लिये निराला ने ठीक ही लिखा है—"जब तक स्त्रियो मे नवीन जीवन की स्फूर्ति नही भर जायगी, तब तक गुलामी का नाश नही हो सकता।" महात्मा गाधी भी ऐसे ही विचारो के पोषक थे। इस सत्य के लिये आवश्यकतानुरूप वृन्दावनलाल वर्मा, मैथिलीशरण गुप्त प्रसाद, मामा वरेरकर आदि लेखको की दृष्टि नारी की ओर बिना व्याघात के पडी। और इस विषय को अनुपेक्षणीय समझा गया। निश्चय ही नारी-विषयक समस्या पर हिंदी-उपन्यासकारो की भी दृष्टि जाना परमावश्यक था क्योकि गद्य मे सामयिक चेतना की यथार्थ भावभूमि अधिक स्पर्श हो पाती है। वृन्दावनलाल वर्मा, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद आदि ने नारी-जाति के सुन्दर चित्र का अकन करते हुए उसे तेजोमय, गौरव-पूर्ण स्थान दिया है। उर्मिला, अहिल्याबाई, कामायनी, लक्ष्मीबाई, अलका, ध्रुवस्वामिनी आदि पात्रो के माध्यम से यह सत्य समझा जा सकता है। नारी विधायक-शक्ति है, जो प्रेम, करुणा, दया, ममता, वीरता सबका आगार है। अत नारी का आज के युग मे समुचित विकास और उसकी आत्मिक और रचनात्मक शक्तियो का आह्वान स्वाभावत आवश्यक प्रतीत होता है। विश्वजनीन समस्या है शान्ति, प्रेम और एकसूत्रता तथा उसका निदान हो सकती है नारी।

यह भी स्मरणीय तथ्य है कि श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने नारी-स्वातत्र्य के युग मे उनके अन्तर्जातीय विवाह और स्वच्छन्द विचरण तथा तेजोमय रूप का निर्माण किया,

---

१ महादेवी वर्मा—'शृङ्खला की कड़िया'।

२ ,, —'अतीत के चलचित्र'।

आदर्श भारतीय-संस्कृति की पोषिका नारियो का उज्ज्वल रूप चित्रित किया। उदाहरण-स्वरूप मृगनयनी, लाखी, विराटा की पद्मिनी, लक्ष्मीबाई, गौरी, अहिल्याबाई आदि को ले सकते हैं। सर्वश्री जैनेन्द्र, अज्ञेय, रागेय राघव, भगवतीचरण वर्मा आदि ने 'यौन परिकल्पनाओ तथा वासना के विकृत-रूप के उपयोग मे उन्मे छूट दी है और आदर्शवाद पर कुठाराघात किया है, जो राष्ट्रीय-निर्माण मे, किसी दृष्टि से, प्रशसनीय प्रयत्न स्वीकृत नही हो सकता।[1] मेरे विचार से यह मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया है और नारियो को पथभ्रष्ट करने का मोह जाल-सा है। यह सब स्वतन्त्र प्रेम के नाम पर किया जाता रहा है। प्रेम एक अभूतपूर्व भावना है, जिनके माध्यम से मानव एक-सूत्रता, शान्ति तथा सगठन पूर्ति कर सकता है, परतृप्ति का सुख ग्रहण कर सकता है।" "प्रेम" हेनरीवान डाइक के शब्दो मे आदान नही, किन्तु प्रदान है। वह न तो भोग-विलास का सम्मोहक स्वप्न है और न वासनाओ का उन्माद। यह सब प्रेम नही हो सकता। भलाई, शान्ति और सच्चरित्रता को प्रेम कहते है, इन सद्गुणो मे ही प्रेम निवास करता है। ससार मे इस प्रकार प्रेम ही सर्व श्रेष्ठ और चिरस्थायी वस्तु है।" निश्चय ही प्रेम का यह महत्वान्वित रूप है। अत शक्ति के प्रतीको को उचित रूप से समझकर प्रेम के विस्तार के लिए नारी के महत्व को समझें और नारी अपनी शक्ति का पूर्ण प्रस्तार सम्पूर्ण जगत को दे। नारी के इस तत्त्व के जबतक हम साधक न बनेंगे, तबतक वास्तविक श्रीवृद्धि की कल्पना आकाश-महल की कल्पना होगी। श्री वृन्दावनलाल वर्मा, जयशकर प्रसाद (काव्य मे) मैथिलीशरण गुप्त (काव्य मे) आदि ने इसी तत्व के प्रसार का प्रयत्न अपने साहित्य के माध्यम से किया है। देखिये श्री जयशकर प्रसाद कहते हैं :—

नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पग-तल में;
पीयूष स्त्रोत-सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल में।[2]

करुणा संवेदना का सजात गुण है। यदि क्रौंच की हत्या वेदनापूर्ण समुद्र का आलोडन-विलोडन न कर पाती तो वाल्मीकि का सत्यरूप जो आज दृष्टिगत होता है, वह कदापि न होता। गाधी जी की आत्मा दैन्य-दारिद्र मे ग्रस्त मानवता को देख दग्ध न होती तो आज वे महात्मा का पद न प्राप्त कर पाते। श्रीमती विजय-लक्ष्मी पण्डित देश की यदि आवश्यकता पर पूर्णतया ध्यान न देती तो उनके लिये नारी होकर देश-विदेश की यात्रा का कष्ट दुर्वह हो जाता। तथैव सवेदना करुणा को जाग्रत करती है और हमे आज उक्त गुण का समावेश और प्रसार नारी के लिये आवश्यक ठहराना चाहिये, न कि मात्र वासना की स्वतन्त्रता। वृद्ध-विवाह, बाल-विवाह, दहेज, वेश्यावृत्ति, पर्दा-प्रथा, राजनैतिक अधिकार आदि अनेक विषयो का प्रकटीकरण

---

१ मनु ने लिखा है—" जो पुरुष यत्नपूर्वक स्त्री की रक्षा करता है, वह अपनी सन्तान, चरित्र, परिवार, धर्म और अपने आप की रक्षा करता है।'

२ 'कामायनी' (प्रसाद कृत)।

उपन्यास-साहित्य मे आवश्यक प्रतीत हुआ और इसे हिन्दी-उपन्यासकारो ने अपनी दृष्टि और चेतनानुरूप ग्रहण किया। प्रेमचन्द जी ने भी नारीगत अनेक ममस्याओ को उठाया परन्तु समाधान आदर्शवादी रखा। 'सेवा सदन' मे वेश्या का सुधार नियोजित है। 'निर्मला' मे भी अनमेल विवाह की समस्या उपस्थित है। उस समय भारत के प्रत्येक साहित्य (प्रान्तीय साहित्य) मे नारी समस्या एक अनिवार्य प्रश्न के रूप मे है। मराठी मे 'पण लक्षात कोण घेतो ?' 'मायेचावाजार', 'सुशीलेचा देव', 'दौलत', 'विधवा कुमारी', 'सुकलेलें फूल', 'उल्का', 'मगलेलें देऊल' आदि इस दृष्ठि मे पठनीय हैं। प्रो० फडके की 'दौलत', खाडेकर की 'हिखा चाफा', दोनो पुस्तके महत्वपूर्ण हैं। 'दौलत', की निर्मला व 'हिखा चाफा' की सुलभा मे प्रेम का स्वातन्त्र्य व्यक्त है। 'क्रौंचवध' मे भी पति रहते, स्त्री का पर-पुरुष से प्रेम दिखाया गया है। मामा वरेरकर ने 'सर्व मगला' उपन्यास मे कुछ दशको पूर्व देश के सभ्य समाज भी शिक्षित महिलाओ को कौन-कौन अमानवीय अत्याचारो को सहना पडता था उसका सजीव वर्णन किया है।

श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने लाखी और मृगनयनी के अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन और झासी की रानी लक्ष्मीबाई के माध्यम से पर्दा-प्रथा पर आक्षेप कर नारियो को मुक्त-वायु मे विचरण की प्रेरणा और शक्ति-मत्ता प्रदान की। उनके अन्दर-आत्म रक्षा और सुरक्षा के निमित्त चारित्रिक बल का उद्दाम रूप दिग्दर्शित किया, वहा सभी पक्षो मे आदर्श का निर्वाह नितान्त अपेक्षित सत्य स्वीकृत हुआ है। प्रेम की पवित्रता की दृष्टि से हजारीप्रसाद द्विवेदी कृत 'वाणभट्ट की आत्मा-कथा' भी ध्यात्व है[1] परन्तु जैनेन्द्र ने नारी-विषयक समस्या को उठाकर पवित्रता-का विस्मरण कर दिया है। 'सुनीता' को उदाहरण स्वरूप देख सकते हैं।

रागेय राघव के 'घरौंदे', अज्ञेय के 'शेखर एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', सर्वदानन्द के 'नरमेध', उपेन्द्रनाथ अश्क की 'गिरती दीवारें' सभी मे प्रेम-विवाह और यौन-परितुष्टि को पूर्णतया अलग-अलग स्वीकार किया गया है। सर्वदानन्द ने सौतेले पुत्र से मा का प्रेम, 'नदी के द्वीप' मे पर-पुरुष प्रेम, रागेय राघव के साहित्य मे भी यौन और विवाह के निर्वाह मे आदर्श की उपेक्षा, भगवतीचरण वर्मा के 'तीन वर्ष' मे निर्द्वन्द्व यौन-परितृप्ति आदि चित्र दृष्टिगत हैं, जो स्वतन्त्रता के विकृत रूप ही हैं—नैतिकता और आत्मोन्नति की विस्मृति ही हैं। हम जानते हैं कि अधिक पानी पी ले तो घोडा मर भी जाता है यही अवस्था इन कलाकारो की कृतियो मे है। यशपाल ने तो इस दिशा मे अधिक स्वच्छन्दता का समावेश किया है। "यशपाल की दृष्टि मे तो नारी वह रूमाल है, जिससे जितने आदमी चाहे अपना मुख पोछ सकें, पोछ सकते हैं। उस से कालिख छूटेगा ही, लगेगा नही।"[2] यशपाल-साहित्य के नारी पात्रो की चर्चा करते

---

१ 'प्रेम विराट् के लिए उत्सर्ग है, वासना स्वार्थ के लिए मलीमस भाव है। प्रेम लक्ष्य से मुक्त होता है, वासना लक्ष्यहीन। प्रेम यज्ञीय छन्द है। प्रेम के विस्तृत राज्य में सयम का प्रकाश है। प्रेम सोम है और वासना सुरा। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल (प्रणय के बीज सूत्र) और प्रेम जीवन को विशालता देता है, ऊचा उठाती है और महती पूर्णताओं की ओर अग्रसर करता है।—डा० ज्युलियन हक्सले (प्रेम एक परिचय) और प्रेम के इसी रूप की प्रतिष्ठा वर्मा जी में है।

२ त्रिभुवनसिंह, एम० ए०—हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ ११३।

हुए मोतीसिंह ने ठीक ही कहा है—"क्या नर्गिस, क्या गुलशन, क्या चन्दा और क्या राज, और यमुना सभी जैसे आत्मदान को, नारीत्व को, समर्पित करने के लिए व्यग्र और आतुर हैं। नारीत्व का बोझ जैसे उनके लिये असह्य है। यशपाल के जिस किसी पात्र से उनकी भेंट हो जाय, इस दुर्वह भार को वे उतार फेंकती है।"[1] इस प्रकार रोमांस और विलास का खुला प्रचार हिन्दी में प्रवेश कर गया है। इसी की पराकाष्ठा द्वारिका प्रसाद के 'घेरे के बाहर' उपन्यास को मानना चाहिये। "इस प्रकार विवाह एक धार्मिक संस्कार न रह कर एक अनर्थक समझौता होता जा रहा है।" (त्रिभुवन-सिंह, हिन्दी-उपन्यास और यथार्थवाद)। वि स खांडेकर ने 'क्रौंचवध' में सुलोचना के विवाहित रहने पर भी दिनकर के प्रति रति का भाव आरोपित कर इसी दिशा में प्रयाण किया है। मुझे आश्चर्य तो यह है जिस सुलोचना में वह मा की आखे देखता है उसे प्रेयसी के रूप में अपना लेता है। ये लेखक भूलते हैं कि काम-विषयक संयम में, कर्तृत्व शक्ति का तेज बढता है, जैसा हम वर्मा जी के उपन्यासो के प्रेमी-पात्रो मे पाते हैं। उदाहरणार्थ, 'झासी की रानी लक्ष्मीबाई' को ही लें। 'अचल' जी के 'चढती धूप' मे भी प्रेम दर्शनीय है।

'The group within the society which suffers the greatest continence displays the greatest energy and dominates the society" (डा० अनविन) खाडेकर के 'क्रौंचवध' नामक मराठी उपन्यास में दिलीप सुलोचना से प्रेम कर भी कामासक्त, दैहिक आसक्ति से निर्लिप्त रहता है और फलत वह निरन्तर

---

१ 'आलोचना' का उपन्यास अंक, पृष्ठ २०६ 'अश्लील और श्लील' सम्बन्धी प्रश्न का उत्तर (ज्ञानोदय, प्रणय अंक, १९५८, पृष्ठ १०) देते हुए अज्ञेय जी ने लिखा है—"श्लील और अश्लीलता का प्रश्न तत्कालीन सामाजिक नैतिकता का प्रश्न है। देखना अश्लील नहीं है, अधूरा देखना अश्लील है। इतना ही नहीं शिशु और माता का एक दूसरे के सम्मुख नग्नता नंगापन और अश्लीलता नहीं है; यह भी अनुरागबद्ध प्रणयी-युगल की एक दूसरे के सम्मुख नग्नता भी नंगापन या अश्लीलता नहीं है। वहा अश्लीलता उसी को दीखती है जो अधूरा देखता है, जो केवल नंगापन देखता है, उसे औचित्य देनेवाली पूर्णता को नहीं। यह बात जितनी पाठक के बारे में लागू है उतनी ही लेखक के बारे में, अगर वह वैसा देखता है, या दिखाना चाहता है, तो वह अश्लील है। क्योंकि वह अधूरा है अर्थात असाहित्यिक है।" यह मान्यता कितनी दूर तक स्वीकार की जायगी और कितना पाश्चात्य प्रभावित दृष्टिकोण है यह अलग विचारणीय है। साथ ही इतना तो मानना ही होगा कि एक 'सामाजिक स्वीकृत सीमा' का मूल्य है और वही मापदंड भी बनती रही है। साथ ही "श्लील और अश्लील केवल समय (कनवेंशन) है, जो हर समाज और सामाजिक स्थिति के अपने अलग-अलग होते हैं।" पुन उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर अज्ञेय जी के द्वारा 'नदी के द्वीप पर' अस्वीकार किये गए अश्लील दोष को मैं नितान्त भ्रामक मानता हूँ।

जैनेन्द्र कुमार अपना भिन्न मत रखते हैं—"घटना-घटना ही होती है। अपने आप में न वह अश्लील होती है न शिष्ट। हमारा उस घटना के साथ क्या नाता है, उसके प्रति क्या वृत्ति है—अश्लीलता इस पर निर्भर है। जहा शरीर सम्बन्धी सत्य है, उसके वर्णन में, चित्रण में, सवार-व्यवहार में, दर्शन-स्मरण में असत्य है, कपट है, वही अश्लीलता है।"—(अश्लील और अश्लीलता निबंध, पृष्ठ ४०५-४१५) और इसी दृष्टिकोण से उन्होंने 'सुनीता' के आलोचकों को उत्तर देना चाहा है। परन्तु यह भी सर्वथा व्यक्तिवादी दृष्टिकोण है। मैंने उपर्युक्त निर्धारित आधारों पर ही विचार प्रस्तुत किया है।

अपने राष्ट्रीय कर्तव्य मे दत्तचित्त रहता है। जीवन के युद्ध मे कर्तव्य-विमुख नही हो पाता। वृन्दावनलाल जी की कृतियो मे भी अनैतिकता को प्रश्रय नही दिया गया है। नूरबाई वेश्या (टूटे काटे) होकर भी भक्ति विह्वला नारी बनकर आदर्श को सम्मान देती है। हा, 'टूटे काटे' मे रोनी ही एक ऐसी स्त्री है जो अपने आदर्श से विचलित होती है, परन्तु इसके लिए उसे अभिशाप मिलता है। वह सदा तृषित और अभिशप्त रही, शाति के अभाव से ग्रस्त रही, साथ ही वह इतनी भी नही गिरी कि पति के रहते दूसरे से प्रेमालाप करे। जब उसे विश्वास हो जाता है कि उसका पति मर गया तब उसका मनोवैज्ञानिक यौन उसे इस दिशा मे सचालित करता है, फिर भी उसमे शारीरिक सम्पर्क नही होता। वर्मा जी के ऐतिहासिक, सामाजिक सभी उपन्यासो मे नारी के सतीत्व का बडा भव्य रूप है। उनके सम्मुख उसका अत्यन्त महत्व है।[1] राष्ट्रीय प्रेम तथा प्रेम का आदर्श निर्वाह देखना हो तो वर्माजी की कृतियो का हम अवलोकन करें। नारी का आदर्श, शुद्ध भारतीय मनोराज्य की कल्पना डा० रामकुमार ने भी 'कुल ललना' मे की है। नारी इस दृष्टि से महत्वजनीन हो उठी है, उसका कर्तव्य भी विस्तृत हो उठा है। वह अपनी इस सामाजिक कल्याणप्रद शक्ति-स्रोत मानवता के परित्राण के लिये चतुर्दिक वितरित करें, यही नवीन स्वतन्त्र भारत की कामना है।

---

१ 'अचल मेरा कोई' को अपवाद मानकर ही मैं ऐसा कह रहा हू है क्योंकि यही एक सर्वथा भिन्न विचारबोधक कृति है। इसकी विस्तार से चर्चा अलग की गई है।

: ७ :

वृन्दावनलाल वर्मा और सर वाल्टर स्कॉट[1]

(तुलनात्मक अध्ययन)

यह सर्व स्वीकृत सत्य है कि अभिव्यक्ति मनुष्य की अनिवार्य क्रिया है और कला-सृजन का सुधार भी, जिस नीव पर भावोन्वेपी, प्राणभूत साहित्य अवस्थित हो एक सिद्धि का निर्णायक होता है, और इस अभिव्यक्ति मे प्रेरणा चतुर्दिक समाहित विच्छिन्न-अविच्छिन्न अनन्त तथ्य हैं। साहित्यकार वैयक्तिक रुचि वैशिष्ट्यानुरूप, सीमित दृष्टिवोध और मान्यता के कूलो मे अनुवर्तनी साहित्य-गगा के पवाह की वाछा रखता है। उदाहरणस्वरूप, राहुल साकृत्यायन कृत '२२ वी सदी', 'वोल्गा से गगा', राजा राधिकारमण कृत 'राम रहीम', प्रेमचद कृत 'प्रेमाश्रम', 'सेवासदन', वृन्दावनलाल वर्मा कृत 'अमरवेल' आदि को ले सकते हैं। इसी वस्तुस्थित्यानुकूल सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक आदि साहित्य का विन्यास और वर्गीकरण होता रहता है, तथा वैयक्तिक प्रेरणानुकूल साहित्यकार क्षेत्र निर्धारित करता है। वॉल्टर स्कॉट और वृन्दावनलाल वर्मा ने अपनी मन स्थिति के अनुरूप ऐतिहासिक क्षेत्र को मुख्यत ग्रहण किया यद्यपि अन्य विपयो पर भी लेखनी का कौशल प्रदर्शित किया। प्रस्तुत निवन्ध मे हम वृन्दावनलाल वर्मा और वाल्टर स्कॉट का तुलनात्मक अध्ययन सक्षेप मे उपस्थित करेंगे।

सामयिक स्थिति—वाल्टर स्कॉट का जन्म-काल (१७७९—एडिनवर्ग Edinburgh) ऐसा सक्रान्तिकालीन काल है जव विविध प्रेरणाभूत कारण फास क्राति (The French Revolution) को सश्लिष्ट कर रहे थे,नीव वना रहे थे। विचारो मे विचित्र तनाव उपस्थित था। ऐसी स्थिति मे स्कॉट ने एक निश्चित धारणा दृढ कर इतिहास-पक्ष ग्रहण किया। वृन्दावनलाल वर्मा का जन्म सन् १८८९ मे मऊरानी ग्राम (झासी जिला के अन्तर्गत) मे हुआ। उनके सस्कार-ग्रहण और विचार-परिपक्वता का युग सघर्पपूर्ण और सक्रान्तिकालीन ही था जव भारतवर्ष की परतत्रता के अन्धकारा-च्छन्न क्षितिज मे स्वतत्रता का वैभवयुक्त, शालीन सूर्यउदय होने जा रहा था और १९४२ आन्दोलन का शीघ्र महाविस्फोट होने वाला था। १९४७ की पूर्णस्वतत्रता के स्वप्न-साकार का दिवस समीप आ रहा था। राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक सभी क्षेत्रो मे नेतागण सन्निवद्ध थे महत्वजनीन प्रयत्न मे। अग्रेजो का दमन-चक्र भी विभिन्न रूपो मे चल रहा था। वर्मा जी की आत्मा क्षुब्ध थी, "उस समय मेरी आयु लगभग ग्यारह-वारह वर्प की थी जव मैं झासी जिले के ललितपुर स्कूल की पाचवी कक्षा मे पढ़ता था। अग्रेजी मे लिखा मार्सडन कृत 'भारतवर्ष का इतिहास' पढाया जाता था। उसमे पढा कि भारत 'गरम मुल्क' है इसीलिए यहा के निवासी कमजोर हैं और इसी

---

१ सर्व प्रथम श्री गणेशशकर विद्यार्थी ने वर्मा जी को हिन्दी का 'स्कॉट' कहा था।

कारण वे वाहर से आये ठण्डे देशो के लोगो के मुकावले हारते चले गए। आगे कभी नही हारेंगे क्योकि ठडे देश वाले अग्रेज आ गए हैं—सदा वने रहेंगे। मेरा रोम-रोम जल उठा। राम, कृष्ण, अर्जुन, भीम के देशवासी कमजोर ! और ये सदा अग्रेजो के गुलाम वने रहेगे !! पुस्तक का यह सफा नोच डाला। अभिभावक ने मेरी पिटाई की।

जव अभिभावक को कारण मालूम हुआ तव पछताते हुए वोले—अग्रेज ने गलत लिखा है। जव वडे हो जाओगे तव अन्य पुस्तको मे सही वात पढने को मिलेगी। मैंने उसी दिन गाँठ वाधी कि खूव पढूगा और सही वातो का पता लगाकर कुछ लिखूगा भी। एक पजावी मित्र के घर भोज मे गया। वहा वुन्देलखण्ड और वुन्देलखण्डियो की दरिद्रता के साथ उनकी निंदा और ठठोली रूप मे सुनी। छत्रसाल, वीरसिंह इत्यादि के पहले चदेले—आल्हा-ऊदल भी यही हुए थे। यही लक्ष्मीवाई हुई। भारत के ऐसे प्रदेश की निंदा जहा मेरे माता-पिता ने जन्म लिया और जहा की मेरी मिट्टी है। उन लोगो को उत्तर तो न दे सका परन्तु प्रण किया कि इतिहास और परम्परा के पीछे पडकर कुछ लिखूगा और दिखलाऊँगा कि जैसी यहा की प्रकृति, पहाड, जगल, झीलें और मैदान-मनोहर हैं वैसा ही यहा का इतिहास भी शक्तिशाली और स्फूर्तिदायक है। पहले इतिहास लिखने का विचार था परन्तु किस्से-कहानिया, वीरगाथाएँ सुनने का छुटपन से व्यसन था और फिर मिल गए वॉल्टर स्कॉट पढने को तो मैंने अपनी वात कहने का माध्यम उपन्यास चुना।" (वृन्दावनलाल वर्मा अपनी लेखनी से)।

इस प्रकार दोनो ने ऐतिहासिक-साहित्य के क्षेत्र मे अभूतपूर्व कार्य किया और वे अपने-अपने साहित्य मे सर्वश्रेष्ठ कलाकार सिद्ध हुए।

कृतिया, स्थान और समय—स्कॉट के निम्नलिखित ग्यारह उपन्यास स्कॉटलैण्ड लेकर चले हैं जिसमे १८ वी शताब्दी का काल-खड सयोजित है—(i) Waverley, (ii) Guy Manneing, (iii) The Black Dwarf, (iv) The Artiquary, (v) Rob Roy, (vi) Heart of Midlothian, (vii) The Bride of Lammermoor, (viii) The Pirati, (ix) Redgauntlet, (x) St Roman's Well (xi) The Highland Widow और निम्नलिखित ६ उपन्यास स्काटलैंड के प्रारम्भिक (early) कालखड के जीवन को लेकर उपस्थित हुए हैं (i) Old Mortality, (ii) The Abbot, (iii) The Monastery, (*ii*) Castle Dangerous, (v) The Legend of Montrose (vi) The Fair Maid of Perth तथा सात उपन्यासो मे इगलिश ऐतिहासिक क्षेत्र (English History) को परन्तु १८वी शताब्दी के पूर्व तक को ग्रहण किया गया है (i) Ivanhoe, (ii) Kenil Worth, (iii) The Fortune of Nigel, (iv) Wood Stock, (v) Peveril of Peak (vi) The Betrothed, (vii) The Talisman और तीन उपन्यासो का क्षेत्र ब्रिटिश द्वीप समूह (British Isles) से वाहर का है—(i) Quentin Durward, (ii) Anne of Geieristein, (iii) Count Robert of Paris इस प्रकार स्कॉट के उपन्यासो मे केवल तीन ही ऐतिहासिक उपन्यास नही है और अत्यधिक उपन्यासो मे स्काटलैण्ड को ग्रहण किया गया है।

वृन्दावनलाल वर्मा की लगभग ४८ कृतियो मे ऐतिहासिक उपन्यास १६ हैं (क) गढ कुढार, (ख) विराटा की पद्मिनी, (ग) झासी की रानी लक्ष्मीबाई, (घ) राणासागा (ङ) कचनार, (च) मृगनयनी, (छ) अहिल्याबाई (ज) माधवजी सिन्धिया, (झ) टूटे

काटे (ञ) शाह गफूर, (ट) मुसाहिव-जू, (ठ) सत्तर सौ वत्तीस, (ड) छत्रसाल (ढ) ललितादित्य, (ण) भुवनविक्रम, (त) आनन्दवन, पांच ऐतिहासिक नाटक हैं— (क) फूल की वोली, (ख) हसमयूर, (ग) जहांदरशाह, (घ) पूर्व की ओर (ङ) झासी की रानी, इसके अतिरिक्त लगभग १० सामाजिक नाटक, ९ सामाजिक उपन्यास, ५ एकाकी-नाटक, ४ कहानी-सग्रह हैं। अपनी कृतियो मे वर्मा जी ने मुख्यत वुन्देलखण्ड, राजस्थान, मध्यभारत को उपस्थित किया है और जिनमे कुछ आधुनिक समस्यापरक हैं, अधिकाश मे मुसलमान तथा मुगलकालीन युग का चित्र है। मैं ऊपर ही स्पष्ट कर चुका हू, वर्मा-जी के मन मे वुन्देलखण्ड से गहरा प्रेम था जिस पर लिखने की उनकी प्रवल इच्छा थी जिस प्रकार स्कॉट का अटूट प्रेम स्काटलैण्ड के प्रति था।

युद्धपरक—कृतियो की प्रवृत्ति तथा विषयक अभिव्यजन वैशिष्ट्य द्वारा किंचित ज्ञातव्य है कि दोनो की कृतियाँ मूलत ऐतिहासिक क्षेत्र-प्रवष्टि की ओर हैं। उपर्युक्त कृतियो के विषय और अभिव्यक्ति का परिवेक्षण करते समय यह प्रतीत होता है कि दोनो के साहित्य का पर्याप्त अश युद्धपरक है।

स्कॉट ने तो कई युद्धपरक कविताओ की सृष्टि की जो अपने साहित्य मे अमूल्य मानी जाती हैं। The Pibroch of Donald Dhu को वहुत आलोचक सर्वश्रेष्ठ युद्ध विषयक काव्य के अन्तर्गत गणना करते हैं। स्मरण रहे स्कॉट का शोक-गीत (Elegy) भी वहुत उत्कर्षपूर्ण है। उदाहरण के लिये On Pitt and Fox को देख सकते हैं। The Fiery Cross जो Lady of the Lake का अश है, निश्चय ही कलात्मक दृष्टि से भी सफल है। वृन्दावनलाल वर्मा का युद्धपरक साहित्य भी हिन्दी मे अमूल्य और सर्वश्रेष्ठ है। 'मृगनयनी' मे लाखी और मृगनयनी अटल आदि का, 'विराटा की पद्मिनी, मे कुन्जर सिह आदि का, 'झाँसी की रानी-लक्ष्मी वाई' के पात्रो का युद्ध इतना स्वाभाविक, जीवित तथा उत्कृष्ट है कि हिन्दी के सभी आलोचक एक स्वर से उनकी (वर्मा जी की) प्रशसा करते हैं। 'कचनार', 'टूटे काटे', 'माधवजी सिंधिया', 'झाँसी की रानी लक्ष्मीवाई' आदि कोई भी उनकी ऐतिहासिक कृतियो को देखें तो युद्ध का वडा सजीव और रोमाचकारी चित्र प्राप्त होगा जिनमे राष्ट्रीयता, कर्तव्य, धर्म, आत्म-गौरव के रक्षण के निमित्त युद्ध का सफल आह्वान हुआ है।

रोमांस—स्कॉट का साहित्य रोमास की नीव पर अधिष्ठित है। उदाहरण स्वरूप 'The Legend of Montrose' आदि कृति को देखें। Compton Rickett ने अपने इतिहास मे लिखा है Strictly considered every Historical Novel is a romantic speculation". Ivanhoe मे रेवेका (Rebecca) और व्लैक नाइट (Black Knight) का प्रेम मूलाधार है। स्कॉट के साहित्य मे यह सतर्क और सत्यता से प्रकट हुआ है। वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासो मे भी रोमास मिलता है। 'गढकुंडार' और 'विराटा पद्मिनी' को तो विशुद्ध रूप मे इसी पैटर्न की कृति स्वीकार करनी चाहिये। वर्मा जी के रोमांस मे एक महत्वपूर्ण दृष्टि यह है कि उनके पात्र जीवन मे राष्ट्रीय-कर्तव्य सामाजिक सेवा के वाद ही रोमास का महत्व स्वीकार

करते हैं, उनके सम्मुख कर्तव्य की पुकार महत्वपूर्ण है फिर रोमास।' गढ कुंडार' और 'विराटा की पद्मिनी' को छोडकर 'झांसी की रानी लक्ष्मी बाई', 'मृगनयनी' आदि को देखें। वर्मा जी के ऐसे भी उपन्यास हैं जिनमे रोमाम न के बराबर है जैसे 'मुसाहिब जू'। Arthur James Grant M. A ने स्कॉट के साहित्य पर मतव्य प्रकट करते हुए लिखा है— "He (Walter Scott) turned with an inborn passion to the great master of Romance" वर्मा जी के सम्बन्ध मे उसी दृढता से यह बात कही जा सकती है कि कर्तव्य और प्रेम-मिश्रित साहित्य मे वर्मा जी अद्वितीय हैं। स्कॉट मे युद्ध भी रोमास के कारण हैं। 'विराटा की पद्मिनी' और 'गढ कुडार' मे भी रोमास अवश्य प्रवल है। परन्तु आगे चलकर'झासी की रानी लक्ष्मीबाई' मृगनयनी' आदि में प्रेम सबल होकर भी कर्तव्य के पश्चात् ध्यातव्य है। सुन्दर, मुन्दर, कचनार आदि सभी कर्तव्य को प्रथम और प्रेम को द्वितीय स्थान देती हैं। इस दृष्टि से भारतीयता (आदर्श) की प्रतिष्ठा वर्मा जी मे हैं।

प्रकृति-चित्रण—प्रकृति-चित्रण की अपूर्व सफलता की दृष्टि से स्कॉट और वृन्दावनलाल वर्मा की तुलना अपेक्षित है। वर्माजी प्राय सभी कृतियो मे प्रकृति का वडा आकर्षक, जीवित चित्रण मिलता है क्योंकि लेखक ने स्वय प्रकृति के मध्य रह उसका दर्शन और अनुभव किया है। उदाहरण के लिए देखें—"चैत लग गया था। वसन्त ने पत्थरो और ककडो तक पर फुलवाडिया पसार दी। टेसू के फूलो ने क्षितिज को सजा दिया और धरती पर रग-विरगे चौक पूर दिए। समीर और प्रभजन मे भी महक समा गई। रात और सगीत से पुलकित हो उठे।"—(झासी की रानी-लक्ष्मी वाई)।

वर्मा जी के प्राय सभी उपन्यासो मे उपवन आदि दृश्यो का अकन वडा काव्यात्मक है। वे इतने सरस और आकर्षक होते हैं कि हम प्रशसा किए विना नही रह सकते। परन्तु स्मरण रहे आलोच्य कथाकार ने प्रकृति के उग्र भयानक रूप का भी उपयोग कौशल से किया है। स्कॉट भी प्राकृतिक-चित्रण की सफलता के लिए प्रसिद्ध है। उसकी उपन्यास-कृति 'The Antiquary' से सदा इसके उदाहरण दिए जाते हैं। रस्किन ने तो इसलिए स्कॉट की वडी प्रशसा की है। The Antiquary के अध्याय सात और आठ मे जो उग्र भयानक आधी और ज्वारभाटा का चित्र उसने खीच दिया है वह साहित्य मे अमर और स्मरणीय है। प्रसगवश यहा पर यह कहना विपयान्तर न होगा कि श्री 'श्याम' जोशी ने वर्मा जी के प्राकृतिक-वर्णन को चित्र-काव्य और गद्य-काव्य की कोटि मे रखा है।

पात्र-चित्रण—स्कॉट ने पात्रो का मनोवैज्ञानिक और जीवन्त चित्रण अपने साहित्य मे अकित किया है। मुख्य रूप से पहाडी जीवन (Highland life), किसान वर्ग तथा सज्जनो (Nobel) का वडा मनोदैहिक समूहात्मक क्रियाओ का सूक्ष्म अवलोकन किया है। स्कॉट की कृतियो की सफलता के आधारभूत कारणो पर प्रकाश डालते हुए अपने इतिहास मे C. Rickett ने लिखा है—"Scott's success as a historical novelist lay in his sturdy Realism" यद्यपि स्कॉट से यह आशा अधिक की जाती थी कि वह मध्यवर्ग का अधिक सफल चित्रण कर सकेगा पर सफ-

लता उसने दूसरे वर्ग चित्रण मे प्राप्त की। वृन्दावनलाल वर्मा ने ग्रामीण, निम्न श्रेणी की जनता तथा राजकीय तथा उच्चस्तरीय वर्ग के चित्रण मे कामयावी प्राप्त की है। स्कॉट के पात्र-चित्रण की सफलता के लिए The Waverley Gley Mannering Rob Roy, Talisman, Wood Stock आदि पुस्तको को देख सकते हैं। 'The Heart of Midlothian' मे Deans परिवार का, The Antiquary मे मल्लाहो का चित्रण हम नि सकोच देख सकते हैं। Arthur James Grant, M ने तो स्पष्ट शब्दो मे कहा है—"His (Scott's) survey of life was too wide and his sympathy too far reaching to allow him to become the mere exponent of national ideas, and he has never in consequence been acclaimed as the special representative of Scotland, as Burns has been But his devotion to Scotland was a fervent passion But Scotland did not only give him an inspiration and a theme, it also furnished him with a vantage ground for that comprehensive and generous survey of life which is the outstanding characteristic of his work" इसी सफलता के लिए तो Jaffery जैसे आलोचक ने भी उसकी प्रशसा की है। चरित्र और वातावरण चित्रण की दृष्टि से Waverley मे The death of Fergus वहुत महत्वपूर्ण है। हिन्दी के उपन्यास सम्राट् वृन्दावनलाल वर्मा भी प्रस्तुत गुण के लिए प्रशसनीय उद्घोषित किए जायेंगे क्योकि उन्हे मानव-शास्त्र की पूरी जानकारी है, उसमे वे विद्यार्थी रह चुके हैं तथा जीवन के विस्तृत अनुभवो का कोप भी उनके पास है। इनके ऐसे पात्र भी है जो इतनी जटिल मनोक्रियाओ को समाविष्ट कर चलते हैं कि उनका सफल निर्वाह साधारण लेखक कभी नही कर सकते। उनके पात्र साधारण, असाधारण दिव्य सभी कोटि के है और सभी क्षेत्रो मे उन्हे सफलता मिली है। उदाहरण के लिए कचनार, नूर वाई, कुमुद, मृगनयनी, सोना, रूपा, झासी की रानी लक्ष्मीवाई किसी को ले सकते हैं। दलीपसिंह का जो असाधारण व्यक्तित्व है, मुख्य पात्र के रूप मे रचित लेखक की प्रतिभा का फल है। नौकर तथा अन्य ग्रामीण निम्न वर्गों के चित्रण की सफलता का दिग्दर्शन 'झासी की रानी लक्ष्मीवाई', 'अमर वेल', 'प्रत्यागत' आदि उचित रूप मे कर देते है। मनोवैज्ञानिक परीक्षण के साथ ही चरित्र की सफलता वर्मा जी की साधना की सिद्धि का परिचायक है। वर्मा जी ने मध्य वर्ग के चित्रण मे भी सफलता प्राप्त की जो स्कॉट नही कर सका।

हास्य—जो कलाकार विस्तृत प्रतिभा और ग्रहणशील शक्ति रखता है वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर दृष्टिपात अवश्य करता है। वृन्दावनलाल वर्मा तथा स्कॉट दोनो के साहित्य मे हास्य मिलता है। हास्य की दृष्टि मे स्कॉट की कृति Rob Roy देख सकते है। वर्मा जी मे हास्य अधिक मात्रा मे नही मिलता है। केवल 'मृगनयनी' मे वघरी तथा 'सोना' मे रूपा के पति के आचरण मे हास्य उत्पन्न कराया गया है। वघरी की वातो से नही, वरन् उसके भोजन, व्यवहार तथा उसकी आवाज का वर्णन कर उक्त तत्व का समावेश किया गया है। उदाहरण के लिए 'मृगनयनी' को देखें। 'सोना' मे नि सदेह रूपा के पति अनूप की वातो और आचरण ने उस तत्व का प्रस्फुरण कराया गया है। जैकोवाइट (Jacobite) परिवार मे माली Andrew Fair Service

ने हास्य उत्पन्न किया है (Rob Roy), परन्तु Andrew का हास्य बघरी की तरह अधिक गूढ महत्व कदापि नही रखता। Andrew का हास्य महानुभूतिपूर्ण है, परन्तु बघरी घर के हास्य मे यह नही है।

करुणा—वर्मा जी तथा स्कॉट दोनो को साहित्य करुणा मे आप्लावित है। दोनो के सुहृदयो ने इस क्षेत्र मे अभीप्ट सिद्धि ग्रहण की है। स्कॉट ने 'Waverly' मे Fergus की मृत्यु का जो चित्र अकित किया है, वह स्पर्श किये विना नही रहता। उदाहरण के लिये प्रस्तुत कृति का LXVIII और LXIX अध्याय देखें। Antiquary मे किसानो की जिन्दगी तथा The Fishermen's Funeral मे दुखान्त कहानी वडी सजीवता से मुखरित है। वर्मा जी मे लाखी की मृत्यु, झासी की रानी की परिसमाप्ति और पतन, कुमुद की आत्महत्या आदि चित्रण ही वडे ही मार्मिक, हृदय-स्पर्शी हैं जिनकी तुलना वगाल के वकिमचन्द तथा शरत के उपन्यास, प्रेमचन्द के 'गोदान' तथा शेक्सपीयर के दुखान्त नाटको से कर सकते हैं, जिनमे तीव्र करुणा का वेग प्रवाहमान है और जो पाठको के मन पर विचित्र गहरा प्रभाव डालते हैं। तभी तो 'झासी की रानी-लक्ष्मीवाई' पुस्तक छपते समय कम्पोजीटर (वर्ण नियोजक) भी रो देते थे, सूक्ष्म और सजग तथा विकसित भापानुभूति प्रवण पाठको की वात तो और है। वर्मा जी के ऐतिहासिक उपन्यास, 'झासी की रानी-लक्ष्मीवाई' 'मृगनयनी', विराटा की पद्मिनी' आदि के अतिरिक्त उनके सामाजिक तथा प्रेमपरक उपन्यास 'प्रत्यागत', 'प्रेम की भेंट' आदि भी इस दिशा मे महत्वपूर्ण हैं। स्कॉट की The Bride of Lammermoor कृति आद्योपान्त वेदना और करुणा से आप्लावित है। उदाहरण के लिए उसमे से अध्याय XXXI, XXXII देख सकते हैं। 'The marrige and death of Lucy Ashton' मे अस्टोन की शादी और मृत्यु का चित्र भी अद्वितीय है।

आदर्शपरक भावना—स्कॉट और वृन्दावनलाल वर्मा दोनो दो युग के विभिन्न मनोवृत्ति सचालित देश की उत्पत्ति होकर भी विचार की दृष्टि से अभूतपूर्व साम्य रखते हैं। वर्माजी ने'टूटे काटे' 'लगन', 'कचनार' 'मुसाहिब जू, अहिल्यावाई' सभी मे आदर्शवाद मनोराज्य की स्थापना की है। स्कॉट भी उक्त भावना का समर्थक तथा पोपक था। उसने अपने जीवन मे भी उसे उतारने का प्रयत्न किया। परन्तु वर्माजी की तरह ही, उसने भी साहित्य मे हठपूर्वक अपने विचारो को प्रतिष्ठित नही किया जो दोष प्रेमचद पर किया जाता है। Grant M. A ने तो स्पष्ट ही लिखा हैं—

'Scott was a man of strong even passionate, his opinions on political and religious controversies, but his opinions are not obtruded into his books" Macaulay ने अपने इतिहास के १३ वें अध्याय में Waverley उपन्यासो के विषय मे लिखा है—"Whatever was repulsive was softened down, whatever was graceful and noble was brought prominently forward The places which he described become holy ground and were visited by thousands of pilgrims' स्कॉट विरोधी विचार धारा की सस्था के प्रति भी अनुदार नही हुआ, टोरी का सदस्य होकर भी ह्विग

(Whig) पार्टी के नेताओ का उसने सुन्दर चित्र उपस्थित किया। उसी प्रकार कैथोलिको के भी उसने दो वर्गों को मुख्यत उपस्थित किया है और आदर्शवादी दृष्टिकोण रखा है। George Eliot और स्कॉट दोनो आदर्श ग्रामीण जीवन चित्रण मे साम्य रखते हैं। उदाहरण स्वरूप स्कॉट के उपन्यास The Heart of Midlothian, The Antiquary तथा इलियट के Silas Marner, Adam Bede, The Mill on the Floss को देखें। Carlyle ने शिक्षा न देने का दोप स्कॉट पर लगाया है पर वह गलत है। उसने सकेत किया है, ग्रहण करना हमारा काम है। वर्माजी ने भी स्पष्ट लिखा है कि मैं सकेत ही करता हू। साथ ही उच्च और निम्न श्रेणियो के पात्रो के चित्रण मे भी आदर्श वर्माजी अवश्य रखते हैं। उदाहरण के लिए सुन्दर, मृगनयनी, लाखी, मुसाहिव जू, किसी को देखें। स्कॉट की तरह उदार दृष्टिकोण वर्मा जी मे भी अवश्य ही है तभी तो उन्होंने अपनी कृतियों मे भारतीय आदर्श तथा सस्कृति की स्थापना के साथ ही इस्लाम धर्म के पात्रो का भी वडा आकर्षक और सहानुभूतिपरक चित्रण किया है। उदाहरण के लिये 'मृगनयनी' उपन्यास देखें।

वातावरण—वातावरण की अवतारणा मे वर्माजी और स्कॉट दोनो ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। तभी तो कई कल्पना सयोजित ऐतिहासिक कथावस्तु भी अपनी महत्ता उद्घोपित करती है। स्कॉट की कृतियो से एक उदाहरण Wauerley का Fergus की मृत्यु तथा जाँच का दृश्य देखें। वर्माजी ने भी बुन्देलखण्ड के भूभागो का, लाखी तथा शत्रुओ के युद्ध तथा मृगनयनी के शिकार प्रदर्शन का जो वातावरण उपस्थित किया है इसे प्रत्येक आलोचक प्रशसनीय स्वीकार करेंगे। स्कॉट के साथ वर्माजी ने भी सामयिक स्थिति के चित्रण मे सफलता प्राप्त की है।

नाटकीयता—नाटकीयता से उपन्यास मे आकर्षण का वेग वढता है, रोचकता का समावेश होता है। स्कॉट के (Woodstock) मे तथा वर्मा के जी 'मृगनयनी' आदि उपन्यासो मे पर्याप्त-मात्रा मे उक्त गुण को देख सकते हैं।

ऐतिहासिक भूलें—कल्पना का आग्रह तथा ऐतिहासिक भूलें स्कॉट मे वहुत है, परन्तु चित्रण की प्रवीणता के कारण उनकी कृतियाँ मार्मिक और सफल हो गई हैं। वेवरली और 'टेलीसमैन' मे यह दोप काफी है। परन्तु वर्मा जी के साथ यह वात सत्य नही है। उन्होंने ऐतिहासिक कृतियो मे इतिहास की पर्याप्त रक्षा की है। कल्पना मे जहाँ अधिक काम लिया गया है वहा भी इतिहास विरोध मे उत्पन्न नही हुआ है। उदाहरण के लिए हम 'टूटे काँटे' को ही लें। परन्तु इतना सत्य है कि कहीं-कही ऐतिहासिक तथ्यो की प्रवलता के कारण शिथिलता उत्पन्न हो गई है जैसे 'अहिल्यावाई' 'मृगनयनी', आदि मे। इसीलिए वर्मा जी के सम्बन्ध मे एक आलोचक ने कहा है—" वर्मा जी ने इतिहास के सत्य को निकट से परखा है और उनके पात्र उधार लिये हुए नही वरन् चिर-परिचित ऐतिहासिक-मानव हैं, जो परिस्थितियो के अनुकूल जीवन मे सतत् सघर्ष वहन करते हैं।"

भाषा—भाषा की दृष्टि से दोनो कलाकारो के साहित्य मे दोप है। कार्लाइल ने यहा तक कहा कि स्कॉट मात्र पैसे के लिये विना ध्यान दिये पुस्तक पर पुस्तक लिखता था। परन्तु यह आक्षेप उचित नही। वह साहित्यकार था, पैसा लक्ष्य नहीं था,

नही तो अमर कलाकार नही हो मकता था। उमका साहित्य उतना श्रेष्ठ नही हो पाता। वर्मा जी पर भी कुछ लोग यह कहा करते हैं, परन्तु उनको उचित ढग से सोचकर निष्कर्ष देना चाहिए, नही तो वर्मा जी आज आलोचको की दृष्टि मे सर्वश्रेष्ठ उपन्यास-कार नही स्वीकृत होते। 'प्रत्यागत', 'मृगनयनी', 'झांमी की रानी-लक्ष्मीबाई', 'प्रेम की भेंट', 'लगन' आदि का पाठक यह समझ सकता है। इतना अवश्य स्वीकार करते हैं हैं कि वर्माजी की भाषा मे व्याकरणगत दोष हैं। कही-कही भाषा परिमार्जित नहीं दीखती है और अनावश्यक रूप मे बुन्देली और मध्यभारत के प्रादेशिक शब्दो का प्रयोग मिलता है। निश्चय ही ऐसा ज्ञात होता है कि दोनो ऐतिहासिक साहित्य प्रणेताओ ने भाषा पर अधिक ध्यान नही दिया।

शैली—वर्मा जी और स्कॉट दोनो शैली की दृष्टि से भी साम्य रखते हैं। दोनो की शैली सरस, सहज, प्रवाहयुक्त, परन्तु आकर्षक है। गम्भीर सत्य को भी सरल ढग से कहना चाहते हैं। इस दृष्टि से प्रेमचन्द से वे साम्य रखते हैं। स्कॉट तो विगत युग के कलाकार थे, परन्तु वर्मा जी जिनका युग २०वी शताब्दी है, जहा अज्ञेय, प्रसाद, जैनेन्द्र, अचल आदि क्लिष्ट शैली के समर्थक हैं, इसलिए उन्हे इस ओर ध्यान देना चाहिए।

स्कॉट और वृन्दावनलाल मे अनेक साम्य के साथ भिन्नता भी है। जैसे स्कॉट का क्षेत्र कविता भी था जिसकी चर्चा मैं ऊपर कर चुका हू, परन्तु वर्माजी का मात्र गद्य यद्यपि आरम्भ मे वर्माजी ने भी कविता की परन्तु सफलता न देखकर इस क्षेत्र को छोड दिया, ऐसा उन्होंने स्वय लिखा है।

सबसे बडी भिन्नता यह है कि वर्माजी की कृतियो मे नारी की अधिक प्रधानता है जिसमे युग-चेतना पृष्ठभूमि के रूप मे काम करती है। परन्तु स्कॉट के साथ यह तथ्य दृष्टव्य नही हैं।

अन्त मे यह स्मरणीय है कि इतने साम्य के वर्तमान रहने पर भी वर्माजी का साहित्य नकल या प्रभावित साहित्य नही है वरन् मौलिक है, अपनी भूमि, अपनी धारणायें, अपना दृष्टिकोण तथा अपनी समस्याए हैं। आदर्श और सस्कृति की रक्षा मे भारतीयता का निर्वाह है परन्तु मानवतावादी भावना से युक्त जो एक कुशल और महान् कलाकार से आपेक्षित है, तभी तो वर्माजी की कृतियो का अन्य विदेशी भाषाओ मे भी अनुवाद हो रहा है।

हिंदी के अन्य ऐतिहासिक उपन्यासकार तथा वर्मा जी

जयशङ्कर 'प्रसाद' और वृन्दावनलाल वर्मा

छायावाद के प्रमुख कवि श्री जयशङ्कर 'प्रसाद' बहुमुखी प्रतिभा के कलाकार थे, जिन्होंने कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास सभी क्षेत्रो मे गौरवपूर्ण स्थान बना लिया था। 'कामायनी' जहाँ काव्य-गौरव है, वहाँ 'ध्रुवस्वामिनी', 'चन्द्रगुप्त' आदि महत्वपूर्ण रूपक हैं। 'कंकाल' और 'तितली' के पश्चात् 'इरावती' ऐतिहासिक उपन्यास के अपूर्ण रचनाकाल मे ही उनका देहावसान हो गया और उनकी इस मृत्यु से क्षति का अन्दाज किया सकता है। इस अधूरी कृति के अध्ययन द्वारा 'प्रसाद' जी के ऐतिहासिक उपन्यासकार का मूल्यांकन कठिन है, फिर भी उक्त कृति की अपूर्णता मे ही जो तत्त्व, जो रूप उभर सके हैं, उनके आधार पर उनकी चर्चा संभव है।

'इरावती' मे मौर्यवंश के बृहस्पतिमित्र-युग की कथा है, जिसमे कथा-विकास, घटना-चक्र आदि इतनी सरसता से वेगपूर्ण अग्रसर होते हैं जो अवश्यमेव श्लाघनीय हैं। लगभग १३६ पृष्ठो तक के साथ यह सत्य सन्तुलित है, आगे निर्वाह के सम्बन्ध मे आशा ही की जा सकती थी, प्रामाणिक रूप मे कुछ कहना अनुचित है।

"मानवता ने अपने युगो के जीवन मे सृष्टि का विनाश किया है, और विनाश से सृष्टि की है। चित्र बनता-बनता बिगड जाता है। जैसे प्रत्येक रेखा नपी-तुली होने पर भी कृत्रिमता से असंगत हो जाती है। फिर भी चित्र बनाने के लिये कूँचियो को दूसरे पट पर पोंछने लगता है और तब ? हाँ, सचमुच वह फूल-सा बन जाता है। अति सुन्दर बनाने के लोभ में प्राय. वस्तु को वीभत्स बना दिया जाता है। फिर तो उससे नाता तोड लेना आवश्यक हो जाता है। हमारी अहिंसा अब हमारी हिंसा करने लगी है। हमारा प्रेम हमीं से द्वेष करने लगा और देखो, धर्म पाप बनता जा रहा है।"[1]

'प्रसाद' की प्रेरणामूलक और उद्देश्यात्मक प्रवृत्ति उनकी कृतियो में दृष्टव्य है। उनमें समस्याए गहरी उपस्थित रहती हैं। उपर्युक्त उद्धृत अंश द्वारा भी इसी सत्य का प्रमाण उपस्थित होता है। स्पष्ट है, भावना और दार्शनिकता के प्रति उनका झुकाव है। नाटक और काव्य-क्षेत्र में वे जिस सामान्य स्तर से उच्च स्तरीय द्वन्द्वात्मक पहलू को स्पर्श कर बढते हैं, दार्शनिकता का समन्वय किए चलते हैं। वह 'इरावती' में भी निश्चित रूपेण घ्यातव्य हैं। Philosophical attitude जैसे 'प्रसाद' के स्वभाव मे ही समन्वित हो गए हैं। धार्मिक मनोभावो का संघर्ष तथा वासना और कर्तव्य का दर्शन प्रस्तुत अपूर्ण पुस्तक मे अधिक स्पष्ट दीख पडता है। बौद्ध और ब्राह्मण धर्म तथा हिन्दू-धर्म का अन्त विरोध, संघर्ष जीवन रूप मे चित्रित कर जैसे लगता है 'प्रसाद' ने बौद्ध धर्म की अहिंसा और कुंठापूर्ण, निरीह जीवन के विपरीत,

---

१ 'इरावती' की पाण्डुलिपि के साथ लेखक के संकेत-पत्र, जो भावपीठिका हैं।

पौरुषत्वपूर्ण तेजस्वी, हिन्दू धर्म के आनन्दवाद को जीवन-हेतु, आवश्यक अनुभव किया, जो उनकी टिप्पणी द्वारा भी व्यक्त है। 'प्रसाद' ने अपने युग मे गाधीवाद की अहिंसा-नीति द्वारा भारतीय आनन्द का ह्रास और नत होते देख जैसे पृष्ठभूमि उपस्थित कर इस समस्या को ग्रहण किया। गाधी-सिद्धात की शीतलता और निरीहता से, अहिंसा से, अग्रेज अपनी प्रभु-सत्ता द्वारा लाभ उठा, दमन कर, भारतीय स्वातत्र्य-सग्राम को नष्ट करने मे तत्पर थे। गांधीजी द्वारा सचालित अहिंसक आदोलन अनेक बार असफल रहा, और इन सभी दृश्यो, सभी घटनाओ से जैसे 'प्रसाद' की आत्मा पर कुठाराघात हुआ, सकेत-पत्र द्वारा ऐसा ही ज्ञात होता है। यशपाल की कृति 'दिव्या' सर्वथा भिन्न-भाव-भूमि है। दिव्या हिन्दू धर्म द्वारा असन्तोष ही असन्तोष प्राप्त कर मारिश (चरवाक) को ग्रहण कर लेती है। 'इरावती' मे इरावती का बौद्ध धर्म से असन्तोष और ब्रह्मचारी पुजारी का ओजपूर्ण आनन्दवाद प्रचार[1] उपर्युक्त तथ्य प्रकट करते हैं। (स्मरण रहे, 'कामायनी' की सृष्टि आनन्दवाद को लेकर ही है। और 'कामायनी' के पश्चात 'इरावती' की सृष्टि आरम्भ हुई थी।) 'चन्द्रगुप्त' मे चाण्क्य के ब्राह्मणत्व का तेज एक ही दिशा का सकेत करता है। श्री वृन्दावनलाल वर्मा की कृतियो मे बौद्ध काल नियोजित नही है, तथैव वर्मा जी मध्ययुग को ही मुख्यत ग्रहण करते हैं। ('भुवन विक्रम' ही एक अन्य काल की ऐतिहासिक भूमि पर आधारित है, वह उत्तर-वैदिककालीन है) जिसमे धार्मिक सघर्ष के ऊपर राजनैतिक सघर्ष मूलभूत है। परन्तु, यह अवश्य स्वीकार किया जायगा कि प्रसाद-चित्रित तत्युगीन द्वेष-भाव, कुचक्र, परस्पर सघर्ष, राजनैतिक आलोडन-विलोडन बडा रोचक और मार्मिक है, जिस प्रकार वृन्दावनलाल वर्मा की ऐतिहासिक कृतियो मे पाते हैं। डा० रागेयराघव की कृतियो की भी इस दृष्टि से प्रशसा की जायगी।

ऐतिहासिक वस्तु-ग्रहण कर, सर्वथा महत्वान्वित एव मौलिक खोज, नवीन वस्तु सत्य का उद्घाटन और ऐतिहासिकता का काव्यात्मक तूलिका द्वारा सफल प्रस्तुतीकरण एव अकन प्रसाद जी की विशिष्टता है। उन्होंने जितने प्राचीनतम काल-खण्डो के अन्दर प्रविष्ट कर नवीन सत्यो की खोज की है, वे अपेक्षित महत्व की वस्तु हैं। 'चन्दगुप्त' 'ध्रुव स्वामिनी' आदि नाटको एव उनकी भूमिकाओ के अध्ययन द्वारा इस सत्य को समझा जा सकता है। निश्चय ही यह आशा की जाती हैं कि 'इरावती' की पूर्णता एव इसकी भूमिका भी हिन्दी-ससार के लिए अत्यन्त मूल्यवान वस्तु होती। ऐतिहासिक मौलिक चिन्तन वृन्दावनलाल वर्मा की कृतियो मे पाते हैं। डा० रागेय राघव ने भी ऐतिहासिक तथ्य की ओर विशेष ध्यान दिया है।

---

१ ब्रह्मचारी का स्पष्ट मत है—"मेरी विचारधारा पगु नहीं है, उन्मुक्त नील आकाश की तरह विस्तृत, सबको अवकाश देने के लिए प्रस्तुत। चारों ओर आनन्द की सीमा में प्रसन्न और वह प्रसन्नता प्रत्येक अवस्था में रहने वाले प्राणियों के विरुद्ध न होगी, चारों ओर उजला उजला प्रकाश, जैसे, त्याग और ग्रहण अपनी स्वतन्त्र सत्ता अलग बनाकर लड़ते नहीं। विश्व का उज्ज्वल पक्ष अधकार की भूमिका पर नृत्य करता दीख पड़े, सबको आलिगन करके आत्मा का आनन्द, स्वरूप, शुद्ध और स्ववश रहे यह स्थिति क्या अच्छी नहीं? कहीं अशिव नहीं। सर्वत्र शिव। सर्वत्र आनन्द। फिर क्यों भय!" (इरावती)।

'इरावती' प्रसाद की कुछ अन्य कृतियो के सदृश नारी-प्रधान है, जिस आधार पर नामकरण भी हुआ है । प्रसाद द्वारा चित्रित नारी-पात्र अद्भुत महत्वयुक्त व्यक्तित्व का गुरुत्व लिये रहती है । वृन्दावनलाल वर्मा की ऐतिहासिक उपन्यास-कृतियो के साथ भी ऐसा ही है । उनके अधिक ऐतिहासिक उपन्यास नारी-जीवन के चित्र पर आधारित हैं । जयशकर प्रसाद और वृन्दावनलाल आदि मे नारी के प्रति अत्यन्त जागरूकता देखते हैं, जिसका आवश्यक कारण है, वे अशक्त और हीन-दीन समझी जाने वाली नारियो का गौरव प्रतिष्ठान एव स्वतन्त्रता की सच्ची छवि और युगानुकूल उत्पन्न नारी-आन्दोलन मूलभूत कारण है (इस तथ्य पर युगचेतना और पृष्ठभूमि शीर्षक अध्याय मे विस्तार से प्रकाश डाला जा चुका है) ।

जिस प्रकार वृन्दावनलाल वर्मा की कृतियो मे रोमास पर्याप्त दृष्टिगत होता है, उसी प्रकार प्रसाद की 'इरावती' मे भी पाते हैं । डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, राहुल साकृत्यायन, यशपाल, डा० रागेय राघव, भगवतीचरण वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, स्कॉट (Walter Scott), ड्यूमा आदि सभी ऐतिहासिक उपन्यासकारो की कृतियो मे यह तत्व वर्तमान है । परन्तु यह भी मैं पूर्व ही स्पष्ट कर चुका हू कि वर्मा जी के कई पात्र देश-कर्तव्य के सम्मुख व्यक्तिगत प्रेम का बलिदान कर देते हैं । 'इरावती' मे अग्निमित्र का व्यक्तिगत प्रेम राष्ट्र-प्रेम से प्रमुख है, पता नही आगे चलकर वह प्रेम किस रूप में बदलता, कृति के पूर्ण होने पर ही निश्चय रूप से कुछ कहा जा सकता था ।

'इरावती' की भाषा वर्मा की कृतियो से अधिक सश्लिष्ट, सस्कृतनिष्ठ और अलकारिक है और रागेय राघव, भगवतीचरण वर्मा की ऐतिहासिक कृतियो की भाषा के बहुत समीप है । वृन्दावनलाल वर्मा की भाषा अत्यन्त सरल और सहज है । उदाहरणार्थ 'इरावती' के कुछ स्थल देखें—"सगीत समारोह था । पुष्प पात्रों मे अगर और कस्तूरी की वत्तियाँ जल रही थी, बडे-बडे दीपधारो मे गध तेल की दीपिकाए अपने अभ्रक के खोल मे जल रही थी । आमोद से कक्ष भर उठा था । पर्दे डाल दिये गये थे । वीणा गुजरित हुई । मृदग पर थाप पडे । वीणा के विलम्बित स्वर लहराने लगे । (पृष्ठ १२४) और जालीदार चाँदी के बडे-बडे निवात, जिनके भीतर अभ्रक लगे हुए थे, अपने पचदीप को जैसे अपने भीतर ही जला रहे थे । ठीक उसी तरह अग्निमित्र भी जल रहा था । (पृष्ठ १३३)अलकारिता के अतिरिक्त वार्तालाप मे प्रसाद-जी अपनी प्रसिद्ध प्रवृत्ति के अनुरूप सूत्रमय वाक्यावलिया देते चलते हैं, दार्शनिकता सर्वत्र साथ चलती है, इनके नाटकों मे तो निम्न स्वर के पात्र भी गम्भीर बातें बोलते हैं । "सृष्टि, स्थिति, सहार, तिरोभाव और अनुग्रह की नित्य लीला से समस्त अवकाश भर उठा है । आत्मशक्ति के विस्तृत विद्युतकण अपने स्वरूप मे चमक उठो, उठो मगलमय जागरण के लिए विषाद निद्रा से उठो ।" (इरावती पृष्ठ ६९) और "इस भेदपूर्ण विवेक की सीमा खोजते हुए जब हम आते हैं, तब सत्य का वही स्वरूप सामने आता है, जिसमे हम पुद्गल मात्र बन जाते हैं और सदैव किसी उच्च अप्राप्त सत्य को पाने के लिए तरसते रहते हैं ।" (इरावती, पृष्ठ १२९) । परन्तु वृन्दावनलाल वर्मा जी सरलता के सयोजक हैं, उपासक हैं, गम्भीर और दार्शनिक एव गूढ तत्वो को

भी वे सरल रूप मे रखते हैं, सरल भाषा मे व्यक्त करते हैं। उदाहरणार्थ हम 'भुवन विक्रम' को देख सकते हैं। "परन्तु जहाँ प्रसाद की भाषा मे कवित्व या दर्शन का अन्त स्रोत प्रवहमान है, वहा यशपाल के वाक्यो मे ("दिव्या" मे) भाषा क्लिष्टमात्र है।"[1] द्विवेदीजी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास मे भी ऐसी ही असाधारण भाषा है, जिनका लेखक को ही यशपाल की तरह शब्दार्थ देना पड़ा है।

अन्त मे इतना ही कहा जायेगा कि 'इरावती' अधूरी होकर भी उपेक्षनीय और अमहत्वपूर्ण नही है। पता नही किसी आधार पर नलिन विलोचन शर्मा ने इसे महत्वहीन मान लिया है।[2]

श्री वृन्दावनलाल वर्मा और श्री राहुल साकृत्यायन

श्री राहुल साकृत्यायन महान् विद्वान एव चिन्तक व्यक्ति हैं। हिन्दी को उन्होने अनेक प्रकार की वस्तुओ से समृद्ध करने का सफल प्रयत्न किया है, इसे हिन्दी के प्रत्येक पाठक स्वीकार करेंगे। 'मधुर स्वप्न', 'सिंह सेनापति', और 'जय यौधेय' उनके ऐतिहासिक उपन्यास हैं जिनके आधार पर हम उनका तुलनात्मक मूल्याकन (ऐतिहासिक उपन्यासकार की दृष्टि से) उपस्थित करेंगे।

'मधुर स्वप्न' १९५० मे प्रकाशित ३३५ पृष्ठों का उपन्यास है जिसकी "रगभूमि दजला (तिग्रा) से वक्षु नदी (मध्य एशिया) तक की है और काल ४९२ से ५२९ ई० ।" (प्राक्कथन-लेखक) इसमे कवात् के राजत्व काल मे होने वाले शोषण, चिन्तन वृत्ति, धार्मिक सघर्ष आदि का बड़ा प्रामाणिक तथा कटु चित्र है। 'सिंह सेनापति' भी राहुल जी की ऐतिहासिक 'मौलिक कृति है' (राहुल जी ने स्वय मुझे एक पत्र मे ऐसा लिखा था) जिसमे वैशाली गणराज्य के सेनापति सिंह का अद्भुत पराक्रम पूर्ण जीवन चित्रित है। कथानक का आरम्भ तक्षशिला के आचार्य बहुलश्व के शिष्यत्व ग्रहण करते, शिक्षारम्भ से होता है। इसमे गणराज्य लिच्छवियो के युग की घटना है, जिसमे तत्युगीन मुक्त व्यवहार, सामाजिक धारणाओ आदि का स्पष्ट चित्रण है।

'जय यौधेय' आत्मकथारूप मे यौधेय गण के जय नामक व्यक्ति पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यास है (स्मरण रहे, आत्मकथा के रूप मे सफल ऐतिहासिक उपन्यास इने-गिने हैं। बाण भट्ट की आत्मकथा (द्विवेदी कृत) भी इसी शैली मे लिखित है) जिसमे ई० सन् ३५०-४०० (गुप्त सवत् ३०-८०) की राजनीति, सामाजिक सांस्कृतिक अवस्था का सफल चित्र अकित है। 'मधुर स्वप्न' और 'सिंह सेनापति' मे धार्मिक, आर्थिक सघर्ष एव 'जय यौधेय' मे गणतन्त्री भावना एव राजतन्त्र का सघर्ष मुख्य है और उसी की पृष्ठ-भूमि मे व्यवहार, आचार-भावना, मनोवृत्ति, आर्थिक, सामाजिक दशा उल्लेखित है। परन्तु यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि 'मधुर स्वप्न' के कथानक का विकास, विस्तार, परिणति, आलोडन-विलोडन अधिक सफल हो पाता यदि अवान्तर प्रसग, अनावश्यक विस्तार एव सैद्धान्तिक चर्चा मे सयम रखा जाता। सत्य तो यह है, उससे बहुत सीमा तक शैथिल्य उत्पन्न हो गया है, जिज्ञासा के सचरण मे

---

१ सियारामशरण प्रसाद— 'दिव्या एक अध्ययन' पृष्ठ २१।
२ शर्मा जी ने 'हिन्दी उपन्यास' लेख में ऐसा विचार प्रकट किया है।

व्याघात उपस्थित होता है । अन्दरजगर ने जो 'बहुजन हिताय दीन (धर्म)' बुद्ध के सिद्धान्त आदर्श समाज को प्लातोन की अधिक व्यावहारिक राजनीति से एक लोकहित निमित्त दीन प्रचलित करना चाहा था (जो साम्यवादी भावना के सन्निकट था), वह वहाँ के कट्टर, धर्मरूढिग्रस्त धार्मिक नेताओ और शोषक, हिंसक राजतन्त्र के पोषक द्वारा कुछ काल के लिए नष्ट कर दिया गया, 'मधुर स्वप्न' खण्डित कर दिया गया । 'सिंह सेनापति' का कथानक क्रमश रोचकतापूर्ण विकसित होता हुआ समाप्त होता है, परन्तु मध्यभाग मे गतिशीलता मे, आचार-प्रणाली और व्यवहार आदि के विस्तृत चित्रण की प्रकृति के फलस्वरूप शिथिलता आ गई है । 'जय यौधेय', 'मधुर स्वप्न' और 'सिंह सेनापति' सभी मे जन हितार्थ राजतन्त्र का विरोध तथा गणराज्य की त्रुटियो पर प्रकाश डाला गया है । 'सिंह सेनापति' मे तो स्पष्ट लिखा है—"राजतन्त्र नर-नारियो का बन्दीगृह है । वहाँ राजा के सम्मुख मनुष्य का कोई मूल्य नही । वहा नारीत्व क्रीडा और कामुकता के लिए खिलौना है । वहा स्वतन्त्र मानव के लिए कोई स्थान नही ।" (पृष्ठ १०७) उन्होंने अपनी पुस्तक 'राजस्थानी रनिवास' मे इसका बडा मार्मिक और खुला रूप उपस्थित किया है । वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यास के दृष्टिकोण से इनका दृष्टिकोण सर्वथा भिन्न है । वृन्दावनलाल वर्मा जी ने जहा नृपति के आदर्श स्वरूप पर विशेष ध्यान दिया (लक्ष्मीबाई, अहिल्याबाई आदि उदाहरण है) वहा राजतन्त्र का ही आमूल विरोध राहुल जी की कृतियो मे पूर्ण उभार के साथ है । राजतन्त्र के विद्रोहात्मक स्वर मे लेखक (राहुल जी) के मानस मे बैठी भारत पर स्थापित अग्रेजो की राजतन्त्री प्रणाली भी है । 'सिंह सेनापति, में (क) ऐतिहासिकता, (ख) बौद्ध धर्म आस्था, (ग) हिन्दुओ का भोज्य, रहन-सहन माम-भक्षण, (घ) विलासिता, (ङ) राजनैतिक रग, (च) रोमास, (छ) स्वाभाविक मनोवैज्ञानिक क्रिया, प्रक्रिया, आदि का चित्र देखा जा सकता है । प्राय यही प्रवृत्ति 'जय यौधेय', 'मधुर स्वप्न' मे भी दीख पडती है । धर्म के प्रति अच्छा regard (आदर) निश्चित रूप से उनकी सभी कृतियो मे है (स्मरण रहे, राहुल जी बौद्ध धर्म से बहुत निकट मनोभूमि रखते हैं और उसका बहुत प्रभाव अपने पर स्वीकार करते हैं) । वृन्दावनलाल जी मे बौद्ध धर्म की स्वीकृति और आस्था नही । परन्तु, एक और विशिष्टता पर प्रकाश डालना आवश्यक है कि हिन्दी के प्राय सभी ऐतिहासिक उपन्यासो की भूमि भारतवर्ष है । वहा राहुलजी ने प्राचीनतम काल-खण्डो (वृन्दावनलाल ने मुख्य रूप मे मध्य युग को ग्रहण किया, केवल 'भुवन विक्रम' को छोडकर) के साथ ही भारत से दूर की भूमि को भी अपने इतिहास ज्ञान के बल पर, पूर्ण प्रामाणिकता तथा ऐतिहासिक मत्वो के साथ उपस्थित किया । वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासो के साथ भी यह सत्य है (ऐतिहासिक प्रामाणिकता) 'सिंह सेनापति' और 'जय यौधेय' मे 'वाद' विशेष का स्पष्ट प्रचार नही है, जिसके फलस्वरूप 'मधुर स्वप्न' से ये दोनो कृतिया अधिक सफल और रोचक बन पडी हैं । 'जय यौधेय' इन सभी मे अधिक सरसता तथा औपन्यासिक सफलता पा सका है । इसमे सिद्धातो की चर्चा मे पृष्ठो के पृष्ठ अनावश्यक रूप से नही रगे गए हैं । इसमे साम्यवादी विचारधारा के प्रति आस्था प्रकट कर भी प्रचार (propaganda) ऐसा नहीं लगता हैं, जैसा हमे कभी-कभी 'मधुर स्वप्न' मे अनुभव होता । साथ इसका

कथानक भी अधिक जिज्ञासापूर्ण, सशक्त, स्वाभाविक ढग मे सचरित एव मोड खाता चलता है। कोई भी अश विच्छिन्न या अवान्तर और व्यर्थ नही, जैसा 'वैशाली की नगर वधू' (चतुरसेन शास्त्री कृत उपन्यास) मे दीखता है। 'वैशाली की नगर वधू' इस दृष्टि से वडी असम्बद्ध घटनाओ और अवान्तर विपयान्तरो युक्त असफल कृति है।

यद्यपि इन दो उपन्यासो का अत दुखात्मक है, 'मधुर स्वप्न' तथा' 'जय यौधेय') परन्तु लेखक मे नैराश्य या कुठा नही, उसे विश्वास है कि 'मज्दा ने धरती, आकाश, पर्वत, पानी सब बनाया, साथ ही आदमी को कितना सुन्दर ही नही, कितना चमत्कारिक हाथ दिया, ऐसा हाथ जो मनुष्य छोड, किसी के पास नही है। उसी हाथ ने यह सब कुछ किया। उसी हाथ से काम करो, ससार मे दुख का लेश नही रह जायगा अन्त मे मनुष्य अवश्य अपने ध्येय पर पहुँचेगा, वह ध्येय है समस्त मानवो की समता, परस्पर प्रेम और सार्वत्रिक सुख-समृद्धि।" (पृष्ट १२८ 'मधुर स्वप्न') और "सत्य का अकुर कभी पद-दलित नही किया जा सकता। एक बार भूमि के अन्दर दब जाने पर भी वह फिर उठता है।" (पृष्ठ ३०७, वही) और वह मार्ग है कि "मनुष्य के भीतर से तेरा-मेरा का भाव उठ जाए।" सिंह सेनापति तो अन्त मे बौद्ध धर्म ग्रहण कर लेता है। राहुल जी ने बुद्ध धर्म की व्यापकता एव उसकी सफलता के आधारभूत तत्वो पर प्रकाश डालते हुए, सिंह का बौद्ध धर्म स्वीकार कर, उसकी (उक्त विचारधारा की) महानता का सकेत किया है (स्मरण रहे, वे अपनी भावना का बौद्ध धर्म से अधिक सामजस्य देखते हैं)-"बुद्ध,धर्म और सघ को त्रिरत्न कहते हैं, क्योकि यही दुनिया मे रत्न की भाति सर्वश्रेष्ठ पदार्थ है।" (सि० से०, पृ० ३०९) इसके विपरीत प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यास 'इरावती' और उनके नाटको मे मुख्यत ब्राह्मण धर्म का तेजस्वी स्वर है। वृन्दावनलाल के उपन्यासो मे निराशा का स्वर नही, वे प्राय आदर्शमूलक है।

'जय यौधेय' और 'सिंह सेनापति' मे युद्ध तथा शिकार का बडा आकर्षक चित्र हैं, जिस प्रकार सफल चित्र वृन्दावनलाल वर्मा की कृतियो मे पाते हैं। 'जय यौधेय' में प्रकृति चित्रण भी बडा सफल है (उदाहरणार्थ उत्सव सकेत आदि प्रकरणो मे पहाड, समुद्र आदि के वर्णनो मे देख सकते हैं)। लेखक का यात्रा-अनुभव इसमे प्रतिफलित हो उठा है।

हाँ, यही पर हिंदी-पाठको से यह कहना आवश्यक नही होगा कि अपनी प्रकृति तथा दृष्टिकोण के फलस्वरूप जहाँ हिंदी के लेखक जिसमे जयशकर प्रसाद भी हैं, 'चन्द्रगुप्त' आदि की प्रशसा करते हैं, वहाँ राहुल जी ने 'जय यौधेय' मे लाक्षित किया है, क्योकि वह राजतत्र का पोषक था, गणराज्य का भक्षक था, और उसी प्रसग मे कालिदास की, जो सामन्तो और नृपो के आश्रम मे रहते थे, भर्त्सना की है। वस्तुत यह दृष्टिकोण का ही प्रतिफलन है। 'ध्रुवस्वामिनी', मे जहा प्रसाद जी ने चन्द्रगुप्त को वीर, बुद्धिमान तथा आदर्श व्यक्तित्व स्वीकार किया है, वहा राहुल जी ने उसे कामुक, धूर्त कहा है और उसी के हाथ रामगुप्त की हत्या करादी है। प्रसाद जी की खोज से यहा राहुल जी का मेल नही खाता। और जय चन्द्रगुप्त से युद्ध करता, अपने गणराज्य की रक्षा मे तत्पर, मर मिटता है, जिस प्रकार झासी की रानी लक्ष्मी

दीखता है, आखो का प्राधान्य इसमे भी अन्य इद्रियो की अपेक्षा अधिक है—रूप का, रग का, शोभा का, सौंदर्य का, इसमें भी जमकर वर्णन किया गया है। ।"[1] और सचमुच प्रस्तुत पुस्तक मे वाणभट्ट की दृष्टिचेतना और प्रवृत्यानुकूल लेखक ने सौंदर्य और रूप वर्णन की प्रवृत्ति का परिचय देकर सत्यता निहित करने का प्रयत्न किया है। साथ ही उन्होंने अतरग भाव-भूमियो का भी सफल सयोजन किया है और इसी से प्रस्तुत उपन्यास की आत्म-कथा के रूप मे लिखे जाने पर भी औपन्यासिक जिज्ञासा और सफलता वढ गयी है। वर्मा जी ने इस पद्धति मे उपन्यासो की सृष्टि नही है परतु, वे भी अतरग-बहिरग चित्रण की सफलता के श्रेष्ठ अधिकारी है। उदाहरणार्थ 'कचनार', 'गुढ कुडार' आदि किसी भी ऐतिहासिक उपन्यास को देख सकते हैं।

सबसे बडा साम्य भावना का है। डा० द्विवेदी जी की प्रवृत्ति आदर्शोन्मुख है और वर्मा जी की भी। वर्मा जी और द्विवेदी जी दोनो ही नारी का आदर्श प्रतिष्ठापित करते हैं—दोनो ही नारी के प्रति श्रद्धालु और उदार हैं। नारी-महत्ता और आदर्श अभिव्यक्तिकरण की दृष्टि से दोनो का मूल्याकन किया जा सकता है।

डा० साहब ने तो नारी को 'देवमदिर' ही माना है। इतनी ही पवित्रता वर्मा जी के ऐतिहासिक उपन्यासो मे देख सकते हैं। वे नारिया जो प्रेम करती हैं तो सात्विक और कुछ ऐतिहासिक भ्रष्ट नारिया यदि वर्मा जी द्वारा चित्रित हुई हैं तो वे भी ज्ञान प्राप्त कर पवित्र वन जाती हैं। 'अहिल्यावाई' मे इसका स्पष्ट उदाहरण हैं। डा० साहव ने एक भी भ्रष्ट नारी का चित्रण नही किया है। यदि निपुणिका नर्त्तकी हैं तो भीतर से महान आत्मा से पवित्र चरित्र से, उच्चकार्य मे अद्वितीय। वर्मा जी के प्रेम मे शरत की गरिमा है और डा० साहव के प्रेम मे भी आदर्श नारी का सौंदर्य है, शृगार है।

'वाणभट्ट की आत्मकथा' का कथानक रोचक, जिज्ञासापूर्ण, गतिशील तथा सजीव है, औपन्यासिक दृष्टि से अपेक्षित महत्त्व का अधिकारी है। वार्तालाप, चरित्र-चित्रण आदि सभी औपन्यासिक तत्त्व इनमे विद्यमान हैं।

लेकिन भाषा के सवध मे प्रश्न उठता है। डा० द्विवेदी ने वाण की सामासिक और अलकारिक भाषा प्रवृत्यानुरूप ही भाषा को ग्रहण किया है जिस प्रयास मे 'वाणभट्ट की आत्मकथा' मे स्पष्टतया दो भाषा शैलिया दृष्टिगत होती हैं।

(क) "मैं तेजी से बढा जा रहा था। भावी जीवन की रगीन कल्पनाओं मे डूबते-इतराते, मनुष्य को आस-पास देखने की फुरसत कहा होती है। मैं एक प्रकार से आख मूद कर चल रहा था। इसी समय एक क्षीण कोमल कठ ने पुकारा—"भट्ट, ओ भट्ट, इधर देखो, मुझे पहचानते हो ?" इस आवाज ने मुझे चौंका दिया। इस सुदूर स्थाण्वीश्वर मे मुझे पहचानने वाला यह कौन है ? भागते हुए इस छोटे से वल्ला जिस प्रकार रोक देती है उसी प्रकार मेरी दौडती हुई विचार-धारा को इस आवाज ने रोक दिया।"[2]

---

१ 'वाणभट्ट की आत्मकथा', पृ० ३८६।

२ वही, पृ० १७।

क्योकि वह मृग जाति की मानी गई। चारवाक सहिता मे अडा-प्रकरण है परन्तु इस विषय मे वह मौन है । वैवक-शास्त्र भी उसी प्रकार मौन है । निगट ने केवल रक्त को दोष-पूर्ण वनाने वाला मास को कहा है । ऋग्वेद मे आए प्रकरण को विचारको ने इद्रियो का दमन प्रतीक माना है। परन्तु, ऐतरेय ब्राह्मण (१ १५) मे लिखा है कि प्रतिष्ठित अतिथि का सत्कार नृप को वैल या गाय मास से करना चाहिए । आधुनिक सस्कृत मे अतिथि का नाम 'गोघ्य' (गाय मारने वाला) भी है। कृष्ण यजुर्वेद के ब्राह्मण, गोपथ -ब्राह्मण[1] में भी चर्चा है । शतपथ-ब्राह्मण मे इस विषय पर विवाद है कि पुरोहित को गाय-मास खाना चाहिए, या वैल का । अन्त मे परिणाम निकाला गया कि दोनो ही मास न खाए। परन्तु, याज्ञवल्क्य कहते है कि नर्म हो तो खा सकते हैं। (शतपथ ३।१।२।२१) महाभारत मे हिमा का विरोध है ।[2] इस प्रकार यह प्रश्न अलग से विचार-योग्य है । वुद्ध भी पशु-वध के विरुद्ध थे जैसा दीर्घनिकाय से पता लगता है ।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी और वृन्दावनलाल वर्मा

डा० द्विवेदी ने भी एक ऐतिहासिक कृति की सृष्टि की है जिसकी हिंदी-साहित्य मे विशेष चर्चा है । वह पुस्तक है 'वाण भट्ट की आत्मकथा' । यद्यपि नाम-करण मे 'आत्मकथा' शब्द व्यवहृत है और यह प्रथम पुरुष मे लिपिवद्ध है फिर भी यह एक सफल उपन्यास है । यो इसमे भी कुछ त्रुटिया हैं जिनकी चर्चा हम नीचे करेंगे ।

"इतिहास की दृष्टि से छोटी-मोटी कुछ असगतिया चाहे निकल आवें पर अधिकाश मे उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री से कथा की सामग्री का कोई विरोध नही है । विशेष लक्ष करने की वात है इस कथा के भौगोलिक स्थान । स्थाराविश्वर और चरणाद्रि दुर्ग (चुनार) का नाममात्र का उल्लेख है । परतु भद्रेश्वर दुर्ग और इसके समीपवर्ती स्थानो का कुछ अधिक वर्णन है जो काफी सकेतपूर्ण है ।' [3] अतएव ऐतिहासिकता पर लेखक ने ध्यान रखने का प्रयत्न किया है और महाराज हर्ष के वाणभट्ट को सफलतापूर्वक चित्रित करने का प्रयास किया है । इस दृष्टि से वर्मा जी से साम्य माना जा सकता है क्योकि दोनो ऐतिहासिक सत्य से विमुख नही होते वरन उसकी स्थापना का सफल प्रयत्न करते हैं । प्रसगवश यह कहना अनुचित नही कि उक्त काल के चित्रण मे डा० रागेय राघव की कृतियो के अध्ययन से कई स्थल मेल नही खाते ।

"कादम्बरी की शैली के साथ कथा की शैली मे ऊपर-ऊपर से वहुत साम्य

---

१ अथात सवनीयस्यशोर्विभाग व्याख्यास्याम, उद्ध,तव्यावदानानि, "हनुसजिहवे प्रस्तोतु कण्ठ सककुद प्रतिहर्तु । श्येन पक्ष उदगातुर्दक्षिण पार्श्व सासमध्वर्यें, सव्यमुपगात्रोणा सव्योंस । प्रतिप्रस्थातुदक्षिणा श्रोणीरथ्यास्त्री ब्रह्मक्रोऽवमक्थ्यें, ब्रह्माच्छासिन उरू पोतु सव्याश्रोणि होतुरपरसकथं मैत्रावरुणस्योरूरच्छावाकस्य, दक्षिणादोर्नेष्ट सव्यान्सदस्य सदन्चानूक च गृहपतेर्जाहनी पत्न्यास्तासां ब्राह्मणेन प्रतिग्राहयति, वनिष्ठुर्हृदय वृक्कौ चाङ्गुल्यानि दक्षिणोवाहुराग्नींधस्य सव्य आत्रेयस्य दक्षिणौ पादौ गृहपतेर्व्रतप्रदस्यसव्योपादौ गृहपत्न्या व्रत प्रदाया । गोपथ ३।१८

२ अघ्न्या इति गवा नाम, क.स्तुताहन्तुमर्हति । न हिंसा धर्म उच्यते ।

३ 'वाणभट्ट की आत्मा कथा', पृ० ३८७ ।

दीखता है, आखो का प्राधान्य इसमे भी अन्य इद्रियो की अपेक्षा अधिक है—रूप का, रग का, शोभा का, सौंदर्य का, इसमे भी जमकर वर्णन किया गया है।' ।"[1] और सचमुच प्रस्तुत पुस्तक मे वाणभट्ट की दृष्टिचेतना और प्रवृत्यानुकूल लेखक ने सौंदर्य और रूप वर्णन की प्रवृत्ति का परिचय देकर सत्यता निहित करने का प्रयत्न किया है। साथ ही उन्होने अतरग भाव-भूमियो का भी सफल सयोजन किया है और इसी से प्रस्तुत उपन्यास की आत्म-कथा के रूप मे लिखे जाने पर भी औपन्यासिक जिज्ञासा और सफलता वढ गयी है। वर्मा जी ने इस पद्धति मे उपन्यासो की सृष्टि नही है परतु, वे भी अतरग-वहिरग चित्रण की सफलता के श्रेष्ठ अधिकारी हैं। उदाहरणार्थ 'कचनार', 'गुढ कुडार' आदि किसी भी ऐतिहासिक उपन्यास को देख सकते हैं।

सवसे वडा साम्य भावना का है। डा० द्विवेदी जी की प्रवृत्ति आदर्शोन्मुख है और वर्मा जी की भी। वर्मा जी और द्विवेदी जी दोनो ही नारी का आदर्श प्रतिष्ठापित करते हैं—दोनो ही नारी के प्रति श्रद्धालु और उदार हैं। नारी-महत्ता और आदर्श अभिव्यक्तिकरण की दृष्टि से दोनो का मूल्याकन किया जा सकता है।

डा० साहव ने तो नारी को 'देवमदिर' ही माना है। इतनी ही पवित्रता वर्मा जी के ऐतिहासिक उपन्यासो मे देख सकते हैं। वे नारिया जो प्रेम करती हैं तो सात्विक और कुछ ऐतिहासिक भ्रष्ट नारिया यदि वर्मा जी द्वारा चित्रित हुई हैं तो वे भी ज्ञान प्राप्त कर पवित्र वन जाती है। 'अहिल्यावाई' मे इसका स्पष्ट उदाहरण हैं। डा० साहव ने एक भी भ्रष्ट नारी का चित्रण नही किया है। यदि निपुणिका नर्त्तकी हैं तो भीतर से महान आत्मा से पवित्र चरित्र से, उच्चकार्य से अद्वितीय। वर्मा जी के प्रेम मे शरत की गरिमा है और डा० साहव के प्रेम मे भी आदर्श नारी का सौंदर्य है, शृगार है।

'वाणभट्ट की आत्मकथा' का कथानक रोचक, जिज्ञासापूर्ण, गतिशील तथा सजीव है, औपन्यासिक दृष्टि से अपेक्षित महत्त्व का अधिकारी है। वार्तालाप, चरित्र-चित्रण आदि सभी औपन्यासिक तत्त्व इसमे विद्यमान हैं।

लेकिन भाषा के सवध मे प्रश्न उठता है। डा० द्विवेदी ने वाण की सामासिक और अलकारिक भाषा प्रवृत्यानुरूप ही भाषा को ग्रहण किया है जिस प्रयास मे 'वाणभट्ट की आत्मकथा' मे स्पष्टतया दो भाषा शैलिया दृष्टिगत होती हैं।

(क) "मैं तेजी से वढा जा रहा था। भावी जीवन की रगीन कल्पनाओं मे डूबते-उतराते, मनुष्य को आस-पास देखने की फुरसत कहा होती है। मैं एक प्रकार से आख मूद कर चल रहा था। इसी समय एक क्षीण कोमल कठ ने पुकारा—"भट्ट, ओ भट्ट, इधर देखो, मुझे पहचानते हो?" इस आवाज ने मुझे चौंका दिया। इस सुदूर स्थाण्वीश्वर मे मुझे पहचानने वाला यह कौन है? भागते हुए इस छोटे को वल्गा जिस प्रकार रोक देती है उसी प्रकार मेरी दौडती हुई विचार-धारा को इस आवाज ने रोक दिया।"[2]

---

१ 'वाणभट्ट की आत्मकथा', पृ० ३८६।

२ वही, पृ० १७।

उपर्युक्त भाषा-शैली अत्यत सरल है।

(ख) " वृक्षो और लताओ पर वसत का प्रभाव पूर्ण रूप से व्याप्त हो गया था, विकसित मजरियो के सौरभ से स्वय आकृष्ट भ्रमरावली ने आम के वृक्षो को छा लिया था, पुष्प-धूलि के केसर-चूर्ण सघन भाव मे वर्षित होकर वन भूमि को पीत वालुकामय पुलिन के रूप मे परिणत कर रहे थे, पुष्प-मधु के पान से आमत्त भ्रमरियाँ विह्वल भाव से लता रूप प्रेखा-दोला पर झूला झूल रही थी, मत्त का कोकिल, लवली के विकसित पल्लवो के अन्तराल मे लुककायित होकर पुष्प-मधु निकाल रहे थे और इसलिए उन पेडो के नीचे मधु वृष्टि-सी हो रही थी, किसी-किसी वृक्ष और लता से जीर्ण पुष्प गिर रहे थे और भ्रमर-भार से जर्जरित उनके गर्भ-केसरो से लता मडप मनोरम हो उठे ।"[1] ऐसे उदाहरणो के लिए ११६, ११८, १२१, २६६ आदि पृष्ठो को देख सकते हैं। यत्र-तत्र इससे भी बोझिल भाषा ('बाणभट्ट की आत्मकथा' मे) व्यवहृत हुई है। भाषा कही-कही इतनी क्लिष्ट है कि उसका पर्यायवाची शब्द या सरल शब्द कोष्ठ मे देना पडा है। ऐसी भाषा अनेकानेक स्थलो पर व्यक्त हुई है।

वर्मा जी के साथ यह सत्य नही है। उनके प्रकृति चरित्र मे कुछ अलकारिता आई है, परन्तु बोझिलपन नही। डा० द्विवेदी ने बाणभट्ट की प्रवृति के अनुसार ऐसा किया है। कोष्ठ मे शब्दार्थ देना या अति अप्रचलित शब्दो के प्रयोग जैसे 'घन अलक्तक' रस (महावर), कवरी (जूडे) प्रच्छदपट (चादर), सिक्थ-करण्डक (मोमबत्ती की पेटारी), सौगन्धिक पुटिका (इत्रदान), पतद्‌ग्रह (पीकदान), तिरष्करणी (पर्दा), रोमथन व्यस्त (पागुर मे लगे हुए), स्मयमान (मुस्कुराते हुए) आदि दोष के ही परिचायक हैं। कोष्ठ मे अर्थ बतलाते चलना औपन्यासिक दृष्टि से दोष के अन्तर्गत ही स्वीकार किया जायगा। क्योकि यदि उनकी भाषा-शैली स्वभाविक ढग से बनी थी तो कोष्ठ मे शब्दो को देने की आवश्यकता न थी, यह पाडित्य-प्रदर्शन का मोह ही लगता है। फिर 'फुट नोट' देकर अशो की प्रामाणिकता और वर्णन के दृष्टि-ग्रहण पर प्रकाश डालना चाहा है, जो निर्थरक है। वर्मा जी इस प्रवृति के विपरीत लेखक हैं।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' मे यह दोष वर्तमान रहने पर भी सफलता के अनेक तत्व हैं। इसमे तत्युगीन पद्धति, शिल्प, साधना पद्धति, प्रचलित भावावृति, वेषभूषा सब पर समुचित ढग से प्रकाश पडता है। अवधूत अघोर का वर्णन भी सरस और सुन्दर माना जायगा।

इसममे उपमा और उत्प्रेक्षा का प्रयोग अत्यधिक है, जो बाणभट्ट लिखित होने की भावना पुष्ट करने के निमित्त है। वर्मा जी मे यह प्रवृति कदापि नही। परन्तु कुछ स्थल बाणभट्ट के बहुत ही सुन्दर है। "देवी के सामने एक लौह-वेदिका पर कज्जल के समान काला भैंसा स्थापित था, जिससे सारे शरीर पर भक्तजनो ने लाल थापे दे रखे थे। ऐसा लगता था वह साक्षात यमराज का वाहन है और यमराज के रक्ताक्त हाथो से थप्पर मार-मार कर उसे चलाया है।"

त्यागपूर्ण प्रेम की इसमे महत्ती योजना है। निपुणिका का बलिदान ऐसा ही

---

१ 'बाणभट्ट की आत्मकथा', पृ० ६६।

है, "उसने प्रेम की दो दिशाओ का एक सूत्र कर दिया था।" यहाँ शरत की याद वरवस हो आती है। वर्मा जी की नायिका भी प्रेम के आदर्श को रखती है। उदाहरणार्थ, 'झाँसी की रानी लक्ष्मी वाई' को देख सकते हैं।

वृन्दावनलाल वर्मा और चतुरसेन शास्त्री

आचार्य चतुरसेन हिन्दी के पुराने लेखक है और उन्होने कई ऐतिहासिक कृतियो हिंदी को दी हैं जिनमे 'वैशाली की नगर वधू', 'सोमनाथ', 'वय रक्षाम', 'पूर्णाहुति' आदि कृतिया द्रष्टव्य हैं।

सर्वप्रथम 'वैशाली की नगर वधू' को ही लें जो भूमिका सहित ८९७ पृष्ठो की मोटी पुस्तक है, परन्तु मुख्य विषय से सम्बन्वित कथा लगभग ४०० पृष्ठो मे है और सव अवान्तर, निरर्थक, असम्वद्ध हैं, ज्ञान-प्रदर्शन की रूढिभावना से ग्रस्त हैं। जिस कृति मे लगभग ४०० पृष्ठ निरर्थक और कथा से विशृ खलित एव असम्वद्ध हो, उसे किसी भी दृष्टि से सफल कलाकृति नहीं स्वीकार किया जा सकता। पता नही किस गर्व से लेखक (आचार्य चतुरसेन शास्त्री) ने 'भूमि' मे यह लिखा है, "पात्रो के नाम कुछ को छोडकर प्राय सभी काल्पनिक हैं। केवल ऐतिहासिक जनो का नाम सत्य है। पात्रो की काल परिधि का कुछ भी विचार नहीं किया गया, और आवश्यकता पडने पर इतिहास के सत्य की रक्षा करने की कुछ भी परवाह नही की गई है।" (पृष्ठ ८८५–८८६ भूमि)। आलोच्य कृति मे इतनी अशृंखलता, असगतियाँ है कि सबकी विस्तार से चर्चा की जाए तो पुस्तक ही तैयार हो जाए।

पूर्वार्द्ध खण्ड मे तो मूलत मगध से सम्बन्वित तथा वैशाली नगर वधू से असम्वन्धित घटनाए हैं जिनकी चर्चा अनपेक्षित थी, परन्तु लेखक को मोह ने तथा अभिमान ने गलत मार्ग पर अग्रसर कर दिया है। चम्पानगरी, प्रसेनजित आदि की घटनाओं को छोडकर और विस्तार के मोह से मुक्त होकर लेखक वैशाली की नगरवधू से सुसम्वद्ध वस्तु रखता तो उचित होता। प्रथम भाग मे प्रसेनजित, चम्पा की राजकुमारी (राजनन्दनी), साम्य, महावीर काश्यप आदि सैकडो कल्पित तथा ऐतिहासिक पात्र हैं जिनसे वैशाली की नगर वधू का कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्वन्ध नही और वे द्वितीय भाग मे कभी दर्शन भी नही देते, न उनकी कोई उपयोगिता ही सिद्ध होती है, और मालूम पडते हैं जैसे वे लोप हो गए हो। चरित्र का निर्माण कर निभाने की कला का उनमे सर्वथा अभाव है। द्वितीय भाग मे भी कुछ घटनाए मोहवश लेखक ने उपस्थित की हैं जैसे छाया पुरुष, मन्थान भैरव की कल्पना, प्रतिहार-पत्नी आदि की चर्चा नितात निरर्थक हैं। वह (भैरव) प्रतिज्ञा करता है कि कुण्डनी तथा अम्बपाली को मिलेगा, उन्हे भोग करेगा, परन्तु कुण्डनी के वाद फिर अम्बपाली के पास नही जाता। यदि लेखक उसे अम्बपाली के निकट उपस्थित करता, और उससे कथानक पर प्रभाव उपस्थित करता तो उसकी उपयोगिता थी—परन्तु बीच मे ही लेखक उसे भूल गया है, ऐसा ही अन्याय शास्त्री जी ने कई पात्रो के साथ किया है, अतएव निभाने की कला की कमी बुरी तरह खटकती है। कहाँ तक कहा जाए, यह शास्त्री जी की असफल कृति ही है। कई अध्याय तो लेखक ने अपने ज्ञान-प्रदर्शन के लिए ही अनावश्यक

रूप से इसमे लिख डाले हैं। जैसे कीमियागर गौट-पाद आदि अध्याय। पता नही औपन्यासिक सफलता को समझने वाला लेखक यह कैसे लिखता है, "इस उपन्यास मे हमने केवल हठपूर्वक यज्ञ की एक झलक दिखाने की चेष्टा की है।" परन्तु हठ सफलता मे व्याघात है इसे लेखक को समझना चाहिए। सफल लेखक स्वाभाविकता का पक्ष लेता है। हठपूर्वक भरने से कला की चुस्ती मे शिथिलता आती है। 'वोल्गा से गगा' और 'सिह सेनापति' को जिसे शास्त्री जी ने कहानी-कला तथा उपन्यास के साधारण 'गुण' से भी हीन कहा है, उसकी तुलना मे शास्त्री की यह पुस्तक कदापि नही टहरी और वह एक आरम्भिक युग के किसी नये लेखक की रचना मालूम पडती है, किसी सिद्धहस्त की नही।

शास्त्री जी ने इसमे अम्वपाली तथा उसके कारण वैशाली के विनष्ट होने की घटना को उठाया है। इसका अन्त भी इतना प्रभावहीन हुआ है कि जरा भी मार्मिकता नही दीखती। और जो विचार उन्होने वृन्दावनलाल वर्मा के लिए प्रकट किया है—"वृन्दावनलाल वर्मा इतिहास की सत्य-रेखाओ पर ही चले, इससे उनके उपन्यासो मे इतिहास रस की अपेक्षा इतिहास सत्य अधिक व्यक्त हुआ है। इससे उनकी रचना मे भावना और तल्लीनता की अपेक्षा सतर्कता अधिक व्यक्त हुई है। इस कारण उनके उपन्यास हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क पर अपना प्रभाव छोडते हैं और पाठक उनके पात्रो के सुख-दुख को अपने सुख-दुख मे आरोपित नही कर पाता तथा एक सहानुभूतिपूर्ण दर्शनमात्र ही रह जाता है।" ये दोष वस्तुत वृन्दावनलाल पर नही, शास्त्री जी पर ही घटित होते हैं। मैं विश्वासपूर्ण कह सकता हू वृन्दावनलाल के ऐतिहासिक उपन्यास मर्म को छूते हैं। उनमे (वर्मा जी मे) चरित्र-निर्माण के साथ निभाने की भी कला है, अवान्तर प्रसग और ज्ञान-प्रदर्शन का दुराग्रह नही है।

"वैशाली की नगर वधू" मे पात्रो का मनोवैज्ञानिक चित्रण भी नही है। देखिए विम्वसार जब अम्बपाली से अभिसार कर लौटता है और उसे मालूम पडता है कि वह उसकी अपनी पुत्री नही, मातगी के गर्भ से वर्षकार की पुत्री है, अर्थात् सौतेली पुत्री है, तो हर्ष से उछल पडता है। कितने अस्वाभाविक और भ्रष्ट रूप मे लेखक ने उसे चित्रित किया है यह प्रत्येक पाठक सोच सकता है। इसी प्रकार की अनेक प्रक्रियाए-प्रतिक्रियाए हैं जिन्हे विस्तार-भय से यहाँ लिखना कठिन है।

युद्ध का प्रकाश-वर्णन आदि अध्याय मात्र वर्णनात्मक हैं जो पूर्णतया अरोचक हैं। उपशीर्षक मे घटनाओ और विषयो को बाँटकर लिखना भी कोई नवीन टेकनीक नही है। जैसे धिक्कृत कानून, गण सन्निपात, नील पद्म प्रासाद आदि। आलोच्य-कृति मे रोमास और युद्ध मूल है जो प्राय ऐतिहासिक कृतियो मे पाते हैं। इतना तो स्वीकार करना पडेगा कि रोमास और युद्ध का सुन्दर वर्णन है। महावीर और बुद्ध धर्म-प्रचार की घटनाए भी मूलकथा से सुन्दर ढग से सुसम्वद्ध नही हो पाती हैं। एक प्रबल दोष है। बुद्ध धर्म के प्रचार और प्रसार का प्रसग भी बडे अनाकर्षक ढग से वर्णित है।

इसमे कुछ व्यावहारिक दोष भी हैं जैसे नवजात शिशु का (जो तुरत पैदा हुआ हो) मुह मे अगूठा रखे चित्रित करना (पृ० १०२), आदि। इसी प्रकार महावीर का कुत्तो द्वारा काट खाया जाना चित्रित करना बडा अस्वाभाविक और अरोचक है।

महावीर को जिस रूप मे चित्रित किया है, वह बडा दोषपूर्ण लगता है जैसे बच्चे उसे कुढाते हैं, कुत्ता दौडता रहता है, आदि। फिर उसकी विशेष चर्चा स्वीकार कर तुरत उनके, बडी सख्या मे, शिष्य बन जाते हैं। पाठक उदाहरण के लिए 'सर्वजित महावीर' अध्याय देखें। बौद्ध धर्म के प्रचार तथा बुद्ध के धर्म दीक्षित होने मे लेखक कोई व्यवस्थित, सुन्दर तर्कपूर्ण कारण उपस्थित नही करता और इससे साहित्यिक चाहना नष्ट ही हुई है। बुद्ध का वैशाली सभा मे सम्मिलित हो तर्क-वितर्क करना उचित नही लगता। 'जेतवन मे तथागत' आदि अध्याय भी अनावश्यक हैं जिसमे ज्ञान प्रदर्शन की भावना ही मूल रूप से कार्य करती है। यज्ञ आदि के विधान मे लेखक का अध्ययन ही प्रमुख है।

प्रकृति चित्रण भी इसमे एकाध स्थल पर ही मिलते है जिसमे पुरानी पद्धति ही है, नवीनता नही, नवीन सौंदर्यबोध नही, परम्परागतता मात्र ही है। एक उदाहरण देखें—"आम बौरा रहे थे और उसकी सुगन्ध से मत्त भौरो के गुञ्जन वातावरण मे गूज रहे थे। वृक्षो ने नवीन कोमल परिधान ग्रहण किया था। शीत कम हो गया था। सान्ध्य क्षण मनोरम था। अस्तगत सूर्य की लाल-लाल किरणें नव कुसुमित वृक्षो पर लोहित प्रभा बिखेर रही थी।" (पृ० १४८) इसके विपरीति वर्माजी मे प्रकृति बडे स्वाभाविक सरस और आकर्षक रूप मे चित्रित है।

स्वामिभक्ति, सौंदर्य-शक्ति, राजनैतिक-सघर्ष, धार्मिक सघर्ष, तत्युगीन राज्यो के उत्थान-पतन, ईर्षा-द्वेष आदि सुन्दर ढग से आए हैं। इसमे भाषा के भी कई रूप मिलते हैं—(१) सरल भाषा—"पुष्करिणी का जल इतना निर्मल था कि उसके तल की प्रत्येक वस्तु स्पष्ट दीख पडती थी। उसमे अनेक रगो के बडे-बडे कमल खिले थे। पुष्करिणी मे सन्ध्या समय बहुत-सी रग-बिरगी मछलियाँ क्रीडा किया करती थी। पुष्करिणी के चारो ओर जो कमलवन था उसकी शोभा अनोखी मोहिनी शक्ति रखती थी।" (पृ० ३८) ऐसी ही भाषा प्राय सर्वत्र प्रयुक्त है।

(२) कही-कही 'अछताती-पछताती' जैसे शब्दो का भी प्रयोग है।

(३) कही-कही अप्रचलित शब्दो का प्रयोग है जैसे लोध्ररेणु (पृ० ६५), वल्कलिकाए (पृ० ४८२) आदि।

(४) कही-कही सस्कृतनिष्ठ भाषा शैली भी उपस्थित हुई है, जैसे "उन्हे भगवान् ने धार्मिक कथा द्वारा सदर्शित, समादर्पित, समुत्तेजित सम्प्रहर्षित किया।" (पृ० ७८०)।

(५) अलकारिक भाषा—"शुभ्रचद्र की ज्योत्स्ना मे, शुभ्र वसन भूषिता, शुभ्र वर्णा, शुभामना, अम्बपाली उस स्वच्छ शुभ्र शिला-खण्ड पर बैठी मूर्तिमती ज्योत्स्ना मालूम हो रही थी।" (पृ० ३२)।

(६) कही-कही भाषा शैली बडी अस्वाभाविक तथा कृत्रिम बन गई है। उदाहरण देखें—"उनकी करधनी बडे-बडे इक्कीस मणियो की बनी थी, जिनमे प्रत्येक का भार ग्यारह टक था। वे माणिक्य उसकी देह-यष्टि मे लिपटे हुए उस मधु दिवस के प्रभात की स्वर्ण-धूप मे इक्कीस बालारुण की छटा विस्तार कर रहे थे—उनकी घन सुचिक्कण अलकें प्रभात की मद समीर मे क्रीडा कर रही थी। स्वर्णखचित कञ्चुकी मे

सुगठित युगल-यौवन दर्शको पर मादक प्रभाव डाल रहे थे।" (पृ० ४८३)। एक और उदाहरण देखें—"एक दासी ने आकर गवाक्षो की रंगीन चककलिकाएं उघाड दीं। दूसरी दासी गन्ध-द्रव्य जलाकर गन्धस्तम्भो पर रख गई। दो-तीन दासियो ने विविध मधुगन्ध वाले पुष्पो के उरच्छद-तोरण बाध दिये।" (पृ०४८२)। परन्तु वृन्दावनलाल की भाषा मे एकरूपता है, कही अस्वाभाविकता नही। राहुल तथा यशपाल की भाषा-शैली मे विविधता है।

सब मिलाकर मेरे मतानुसार यह एक असफल औपन्यासिककृति ही मानी जायगी।

'पूर्णाहुति' (चतुरसेन शास्त्री कृत) 'पृथ्वीराज रासो' पर मूलत आधारित है, जिसमे लेखक की कोई विशेषता नहीं। मूल ग्रन्थ रासो को ही अप्रामाणिक स्वीकार कर लेखक ने ऐतिहासिक प्रवृत्ति पर सोच कर नही लिखा है। यह पुस्तक भी असफल और अमार्मिक है।

'वय रक्षाम' भी ७६९ पृष्ठो की शास्त्री जी की एक असफल रचना है। स्मरण रहे, असफल मैंने औपन्यासिक दृष्टि से ही कहा है। लगभग ३०० पृष्ठो मे 'भाष्यम' लिखकर लेखक ने उल्लेखित घटनाओ की प्रामाणिकता सिद्ध की है, जिसमे लेखक की प्रदर्शन प्रवृत्ति विशेष रूप से प्रकट होती है। इसमे कई अनावश्यक प्रसग उठाए गए हैं। इसमे इतनी अरोचकता और असम्बलता है कि पाठक झल्ला उठता है। एक इतिहास से भी कई गुणा अधिक इसमे अरोचकता है। पृष्ठ-पृष्ठ वश-परम्परा और वशो की उत्पत्ति विवरण आदि के लिए नष्ट किये गये हैं। उदाहरण के लिए पृ० १०० आदि देख सकते हैं। यत्रतत्र एक ही तथ्य की पुनरावृत्ति है। सूक्ष्म विश्लेषण, चरित्र निर्वाह, मानसिक दशा, अन्तर्संघर्ष, क्रिया-प्रतिक्रिया शून्य है—अन्त प्रवेश नही है—इसकी कथा उसी प्रकार है जैसे एक इतिहासकार किसी तथ्य और वश आदि का विवरण देता आगे बढता जाता है परन्तु यह दोष वृन्दावनलाल मे नही हैं। वे पात्रो के निर्वाह की कला जानते हैं। उनके पात्र और कथानक जीवन्त और ठोस आधार लेकर उपस्थित होते हैं और औपन्यासिक तत्वो से सयोजित होते हैं।

आलोच्य कृति मे जहा कुछ वार्तालाप चलता है वहा बीच मे अनावश्यक रूप से, ज्ञानमोह के कारण, प्रदर्शन की भावना से लेखक सस्कृत मे वार्तालाप कराने लगता है, जिसकी वस्तुत कोई उपयोगिता नही होती। इससे भी औपन्यासिक सौंदर्य मे क्षति ही पहुची है। एक उदाहरण देखें—

"रावण ने भी यह देखा। वह धीरे-धीरे आगे आया। मन्दोदरी ने खडी हो कर कहा—

"जयत्वार्य पुत्र! इद आयनम्।"

"अये मन्दोदरी, आस्यताम्।

"यदार्य पुत्र आज्ञापयति।"—(पृष्ठ ९५) इसी प्रकार के वार्तालाप मे पृष्ठ के पृष्ठ रग डाले गए हैं। यत्र-तत्र मत्र उच्चारण काल मे जहा सस्कृत वाक्यावलिया प्रयुक्त हुई हैं, वहा ऐसा प्रयोग नही खटकता जैसे मकराक्ष के यहा चरक का मत्र उच्चारण। परतु ऐसे अश न्यून हैं। कही-कही अध्याय के अध्याय सस्कृत मे ही हैं। पता नही

किस आवेश मे लेखक ने ऐसा किया है।

इसमे प्रकृति वर्णन परम्परागत है जिसमे कोई चारुता, मौलिकता और आकर्षण नही जो हम वृन्दावनलाल वर्मा, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, रागेय राघव आदि मे पाते हैं। एक उदाहरण देखें—"इस समय शरद ऋतु बीत गई थी और हेमत आ गई थी। परम रमणीय गोदावरी के निर्मल जल मे रावण स्वच्छद विहार करता और वहा की स्वच्छ वायु मे स्फूर्तिलाभ करता था। इस समय वहा वन-उपवनो की शोभा निराली हो रही थी। सूर्य दक्षिणायन थे। यह काल हिमालय की ओर बढने योग्य न था। वहा की वायु समशीतोष्ण थी। हेमत मे रात्रि अधिक अधकार युक्त हो जाती है। रात्रि का समय भी दिन से बढ गया था। चद्रमा का सौभाग्य भगवान् भास्कर ने हरण कर लिया था। कोहरे तथा पाले के कारण पूर्णिमा की रात्रि भी मलिन धूमिल-सी प्रतीत होती थी। वन-प्रदेश की शस्य श्यामला भूमि सूर्य के उदय होते ही सुहावनी प्रतीत होने लगी।" (पृष्ठ १६८, व० र०)

शास्त्री जी का मन रूप-वर्णन मे विशेष मग्न रहा है। परतु उस सौंदर्य एव रूप-वर्णन मे परम्परागतता ही अधिक है बाह्य-पक्ष ही प्रबल है। उदाहरण के लिए पृष्ठ ८८, ९२, १७९, ४९८ आदि देख सकते हैं।

"वह सोलहो सुलक्षणो से युक्त थी। उसके केश काले, सघन, चिकने और घुघराले थे। वे पादचुम्बन कर रहे थे।" (पृष्ठ ८८)

"उन सुदरियो के बीच घिरी हुई चित्रागदा नक्षत्रो के बीच मे चन्द्रकला के समान सुशोभित होने लगी। वह उत्फुल्ल, शतदल कमल के समान प्रसन्नवदना, चल-चचल मकरन्द लोलुप भ्रमर लोचना, हसगामिनी, कमलगधा चित्रागदा गधर्वराज कन्या, काम सजीवनी-सी प्रतीत हो रही थी।" (पृष्ठ २००)

परतु यह तो मानना ही होगा कि इसमे यत्र-तत्र युद्ध आदि का सुदर वर्णन है। उदाहरण के लिए पृष्ठ १९१-१९२, आदि देखे जा सकते हैं।

आलोच्य कृति मे भाषा की एकता भी नही है। कही-कही अत्यन्त कृत्रिमता आ गई है। भाषा के कुछ रूपो के उदाहरण नीचे उपस्थित किए जाते हैं—

(क) "कज्जल कूट के समान गहन श्यामल, अनावृत, उन्मुख यौवन, नील-मणि-सी ज्योतिमयी बडी-बडी आखें, तीखे कटाक्षो से भरपूर—जिसमे मद्यासक्ति लाल डोरे, मदघूर्णित दृष्टि, कम्बु-ग्रीवा पर अधर धरे-से गहरे लाल उत्फुल्ल अधर उज्जवल हीरकावलि-सी धवल दतपक्ति, सम्पुष्ट प्रतिबिम्बित कपोल और प्रम्य मेघ-सी सघन गहन काली घुघराली मुक्त कुतलावलि, जिसमे गुथे ताजे कमलदल, शतदल, कण्ठ मे स्वर्ण-भार ग्रथित गुज्जा-माल अनावृत, उन्मुख, अचल यौवन युगल पर निरतर आघात करती हुई, मासल अनफलक भुजाओ मे स्वर्णवलय और क्षीण कटि मे स्वर्ण-मेखला, रत्नाम्बरमडित सम्पुष्ट जघननितम्ब, गुल्फ मे स्वर्ण पैजनिया, उनके नीचे हेमतार-सूत्र ग्रथित कच्छप चर्म उपानत आवृत्त चरण-कमल नव्य किशोरी।" (पृष्ठ १)

(ख) " · · इसके बाद दीपोज्ज्वल कुसुम धूप गधाढ्य शयनागार, कोमल पर्यंक, विनत वितान, अभिनदनीय मृदुभाषण और सस्नेह-सव्रीड समाचरन, अविरल परि-हास, पेशलालाप-परिपूर्ण पुलकदतुर शरीरदिवहालनलाववत्रा-नावित्ता।" (पृष्ठ ४६८)

(ग) "तरुण ने धनुष पर हाथ डाला। गर्दन ऊची कर इधर-उधर देखा। वह लम्बे-लम्बे डग भरता वन मे घुस गया। एक हरिण और कुछ पक्षी मार कर वह लौटा। " (पृष्ठ ६)

(घ) कही-कही ठेठ हिंदी के शब्द भी प्रयुक्त है जैसे ल्ल्लो-चप्पो (पृष्ठ ११३)।

(ड) कही-कही 'विग्निपन्न' आदि जैसे शब्द प्रयुक्त हुए है जो अप्रचलित है।

(च) कही-कही अग्रेजी आदि विदेशी शब्दो के प्रयोग भी मिलते है। जैसे "चिलियन, मुस्टेरियन, रेनडियन" आदि (पृष्ठ २२)

(छ) कही भ्रष्ट प्रयोग भी हैं जैसे—"मार्के की वात।" (पृष्ठ ३५)

और ऐसे प्रयोगो के कारण भी आलोच्य उपन्यास निम्न कोटि का बन गया है।

विचारगत भी इसमे अनेक दोप हैं जिनकी यहा सविस्तार चर्चा अनावश्यक लगती है। एक जगह शास्त्री जी ने लिखा है—"एट्रोपेटन", प्रदेश का देमावद पर्वत सारे ससार मे ऐसा स्थान है, जहा रात-दिन सूर्य अस्त नही होता। रात-दिन प्रकाश रहता है।" (पृष्ठ १११ मे) परतु आज के वैज्ञानिक युग के लेखक को ऐसी गलत बातें नही लिखनी चाहिए और इसकी चर्चा भी पुस्तक मे अनावश्यक ही है। आरम्भ मे जो शास्त्री जी ने वासनात्मक रूप चित्रित किया है वह भी अनावश्यक है तथा निम्नस्तर के लेखको की याद दिलाता है। ६७२ मे अभिमार का वर्णन भी परम्परागत ही है। पृष्ठ ५५० मे हनुमान का एक महासर्प की आकृति वाले जीव द्वारा निगल लिए जाने पर गर्भ फाड, वाहर निकल आना वडा अस्वाभाविक लगता है।

हा, आलोच्य पुस्तक का नामकरण उचित है। "उसने (रावण ने) वैदिक-अवैदिक सारी प्रथाओ और परम्पराओ को मिला-मिलाकर 'रक्ष सस्कृति' की स्थापना की थी। 'वय रक्षाम' उसका नारा था।" (पृष्ठ १०१) और यही प्रयत्न करता रावण उपस्थित हुआ है। शास्त्री जी ने रावण को वेदज्ञ तथा वेद लिखने वाला म ना है, परतु यह एक विवादास्पद तथ्य है। डा० द्विवेदी इसे अप्रामाणिक मानते हैं।

चौथी कृति 'सोमनाथ' है जो मुझे इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना लगी। इसमे कथानक रोचक, पात्र जीवत तथा हृदय को छूते हैं। परतु के मए मुशी के उपन्यास 'जय सोमनाथ' से अधिक इसकी सफलता नही मानी जा सकती है।

'सोमनाथ' मे करुणा और युद्ध का सफल निर्वाह है। घोघा वापा, दद्दा, चालुक्य आदि का शौर्य और युद्ध महत्वपूर्ण है जिसे निष्पक्ष पाठक अवश्य ही स्वीकार करेंगे। परन्तु गजनी के सैनिको का वर्णन करते समय शास्त्री जी साधारण गणित का भी ध्यान नही रखते। उसके सैनिक मरते हैं, फिर भी उनकी सख्या मे कमी नही होती और जैसे वे भूमि फाडकर वाहर निकलते आते हैं।

दामो महता, गजदेव, दद्दा, भीमसिंह, चौला, घोघा वापा आदि अनेक चरित्र शास्त्री जी के सफल चरित्र माने जायेंगे। निश्चय ही इसी कृति को लेकर शास्त्री जी को मैं ऐतिहासिक उपन्यासकार का महत्व दूगा। भारतीय राज्यो मे परस्पर द्वेष और असगठन तथा तत्कालीन राजनैतिक-सामाजिक स्थिति का भी इसमे समुचित प्रकाश है। 'विराटा की पद्मिनी' और 'झासी की रानी लक्ष्मीबाई' को पढते समय जिस प्रकार हृदय के तार वेदना और करुणा से झकृत हो उठते हैं, इसी प्रकार की स्थिति,

इसके कुछ स्थलो के पढते समय होती है ।

भगवतीचरण वर्मा और वृन्दावनलाल वर्मा

भगवतीचरण वर्मा हिन्दी के श्रेष्ठ गीतिकार, सफल व्यगकथा लेखक और एकाकीकार माने जाते हैं । उन्होने भी कुछ ऐतिहासिक उपन्यासो की सृष्टि की है, परन्तु इनमे ऐतिहासिक सत्व उतना प्रबल नही जितना वृन्दावनलाल वर्मा जी की कृतियो मे उपलब्ध है । भगवती बाबू के 'पतन' और 'चित्रलेखा' मे अन्तिम कृति ही विशेष महत्वपूर्ण है । 'पतन' नवाब वाजिदअलीशाह के युग की कहानी है जिसमे उक्त नवाब तथा अन्य पात्रो की वासनाजनित उद्दाम लहरें हैं, परन्तु 'पतन' एक ऐय्यारी टाइप (Type) की कृति स्वीकार की जायगी जिसे लेखक ने सम्भवत किवदतियो एव कल्पनाधार पर निर्मित किया है, यद्यपि उसमे कुछ ऐतिहासिक पात्रो का भी नाम है । 'पतन' का प्रमुख पात्र वाजिदअलीशाह से मिलता है, उसे अपनी अलौकिक, अदृश शक्तिदार भविष्य की सूचना देता है । फिर भी उसे ऐतिहासिक महत्व कदापि प्राप्त नही हो सकता । स्मरण रहे, वृन्दावनलाल की कोई भी ऐतिहासिक पुस्तक ऐसे निर्बल आधार पर निर्मित नही है और न उनमे ऐय्यारी ही है ।

'पतन' की भाषा भगवतीचरण वर्मा की अन्य सामाजिक पुस्तको की भाषा सदृश ही सरल है और सरलपन वृन्दावन जी की कृतियो मे दृष्टगत है । फिर भी निष्कर्ष स्वरूप यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि औपन्यासिक दृष्टि से 'पतन' 'तीन वर्ष' की तरह ही असफल और महत्वहीन कृति है । वृन्दावनलाल जी की कोई भी ऐतिहासिक कृति इस प्रकार महत्वहीन, उपेक्षनीय नही है ।

'चित्रलेखा' निश्चय ही भगवतीचरण वर्मा की महत्वपूर्ण कृति है, जिसमे दार्शनिक चिन्तन मुख्य है । स्मरण रहे, उसमे मोह, राग, प्रेम, वासना आदि तात्विक दशाओ का दार्शनिक चिन्तन एव उनपर विचार अभिव्यक्तिकरण की यह प्रवृत्ति प्रबल है, यह प्रवृत्ति हम वृन्दावनलाल जी मे नही पाते है । प्रसगवश यह भी ज्ञातव्य है कि यह प्रवृत्ति 'पतन' से ही भगवतीचरण वर्मा मे देखी जाती है जो 'चित्रलेखा' मे व्यापकत्व ग्रहण करती है । चित्रलेखा' मे सन्निहित प्रवृत्ति से वृन्दालाल वर्मा का साम्य स्थापित नही किया जा सकता । भगवतीचरण वर्मा की प्रवृत्ति जहाँ अनेक भावगत पहलुओ और चिन्तनाओ पर रमती है, और उक्त तत्वो पर मूलतया आधारित हो व्याख्यात्मक प्रणाली ग्रहण कर उनकी चर्चा मे सलग्न रहती है, वहा वर्माजी (वृन्दावनलाल) इन तत्यो पर दार्शनिक की भाति ठहर कर विचार नही करते । दार्शनिक-उलझन वृन्दावनलाल वर्माजी के सम्मुख नही है । वे सहज शब्दो मे अपनी बात, अपना मन्तव्य एव विचार प्रकट करते चलते है। उदाहरणार्थ, 'भुवन विक्रम' को देख सकते है। इसीलिए 'चित्रलेखा' एक विचार कोटि की रचना मानी जायगी, परन्तु वृन्दावनलाल वर्मा की किसी भी ऐतिहासिक कृति मे ऐसी प्रवृत्ति दृष्टिगत नही होती । फिर भी यह सत्य है कि 'चित्रलेखा' हिन्दी की अनुपेक्षनीय कृति है और जिसकी चर्चा भगवतीचरण वर्मा जी को गौरवास्पद नियोजित करती है । परन्तु, यह स्पष्टतया कहा जा सकता है कि भाषा, विचार और प्रवृत्ति,

किसी भी दृष्टि से 'चित्रलेखा' के लेखक को वृन्दावनलाल वर्मा से साम्य नही माना जा सकता। 'चित्रलेखा' मे मात्र ऐतिहासिक वातावरण है। 'चित्रलेखा' अपनी नवीन व्याख्या, नवीन दृष्टिकोण के प्रतिष्ठान मे सतत प्रयत्नशील है। कुमार गिरि और बीजगुप्त के माध्यम से पाप और पुण्य की जो व्याख्या इसमे उपस्थित की गई है, वह विवादास्पद है और जिससे वृन्दावनलाल वर्मा की चिन्तन-वृत्ति से सामजस्य नही है। वृन्दावनलाल वर्मा आदर्श का स्पष्ट दृष्टिकोण रखते हैं, 'पाप' के चिन्तन मे निश्चित निष्कर्ष रखते हैं। वे मर्यादावादी विचार के पोषक हैं।

'चित्रलेखा' मे दार्शनिक व्याख्या के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग है। उदाहरण र्थ देखें[1]

(क) " प्रेम का सम्बन्ध आत्मा से है, प्रकृति से नही है। जिस वस्तु का प्रकृति से सम्बन्ध है वह वासना है क्योकि वासना का सम्बन्ध वाह्य से है। वासना का लक्ष्य वह शरीर है, जिस पर प्रकृति ने कृपा कर उसको सुन्दर बनाया है ।"

(ख) "उस सौंदर्य से योगी के हृदय मे एक हल्का-सा कम्पन हुआ। प्रथम वार योगी ने इस कम्पन से युक्त सासारिक सुख का अनुभव किया।"

फिर भी इसमे (चित्रलेखा मे) सरसता और गतिशीलता है जो तत्व वृन्दावनलाल की कृतियो मे भी यथेष्ट है। 'चित्रलेखा' मे सर्वत्र उपर्युक्त उद्धृत पक्तियो की तरह भाषा-शैली प्रयुक्त है। 'चित्रलेखा' और 'पतन' की भाषा मे भी भिन्नता है जिसकी चर्चा की जा चुकी हैं। कुछ लोग भगवतीचरण वर्मा के दिए गए पाप-पुण्य के निष्कर्ष से विरोध प्रकट करते हैं, परन्तु उससे हमे यहा कोई सम्बन्ध नही। 'पतन' और 'चित्रलेखा' दोनो कृतियो मे यथार्थ-चित्र अकित कर लेखक कोई ठोस सकेत या समाधान, आदर्शपरक, उपस्थित नही करता ('आदर्श' कहने का तात्पर्य भारतीय आदर्श से है), वृन्दावनलाल वर्मा और भगवतीचरण वर्मा मे इस दृष्टि से भी गहरा विभेद स्थापित किया जा सकता है। अत मे यह तो स्वीकार करना ही पडेगा कि 'थाया' पढकर भी वर्मा जी उसी प्रकार स्वतत्र वने रहे, जैसे सर वॉल्टर स्कॉट की कृतियो के अध्ययन के पश्चात् भी वृन्दावनलाल वर्मा ने अपना स्वतत्र व्यक्तित्व वनाए रखा। लेकिन वृन्दावनलाल वर्मा की कुछ कृतियो मे, ऐतिहासिक्ता की दृष्टि से, अनावश्यक परिचयात्मक अध्याय मिलते हैं (उदाहरण के लिए 'मृगनयनी' आदि रखे जा सकते हैं), वह 'चित्रलेखा' मे नही है। 'चित्रलेखा' मे ऐतिहासिकता गौण है। यह मानना पडेगा कि ऐतिहासिक दृष्टि से 'चित्रलेखा' का महत्व भले ही न हो, परन्तु औपन्यासिक दृष्टि से उसका महत्व है।

यशपाल और वृन्दावनलाल वर्मा

यशपाल हिन्दी के प्रगतिशील लेखको मे हैं। प्रगतिशील लेखक द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी व्यवस्था प्रणाली मे अटूट विश्वास रखते हैं, साम्यवाद को जीवनानन्द के

---

१ 'चित्रलेखा', पृष्ठ ५५ और ७९।

चरम समाधान रूप मे ग्रहण करते हैं। यशपाल की 'दिव्या' (ऐतिहासिक उपन्यास) मे भी अप्रत्यक्षत उसी सत्य का आग्रह है।

'दिव्या' मे कलाकार ने सौन्दर्यपूरित, नृत्यनिपुण, सुकुमार दिव्या को अनवरत उत्थान-पतन की ऊची-नीची घाटियो से वहाकर, वौद्ध धर्म, ब्राह्मण धर्म को आत्म-शान्ति, जीवन-महत्व के लिए असिद्ध हेतु प्रदर्शित कर चारवाक मारिश के, भौतिक जीवनानन्द को परम लक्ष्य माननेवाले नास्तिक मारिश के, सिद्धान्त मे समर्पित कर, साम्यवाद को प्रश्रय दिया है, उसी तत्व एव सिद्धात का अप्रत्यक्षरूप से प्रचार किया है। 'दिव्या' की गम्भीर समस्या है नारी के महत्व की, उसकी शाति और उन्नति तथा सुरक्षा की। दिव्या का न ब्राह्मण धर्म मूल्य आक सका है, स्वाभिमान को आदर दे सका है, न वौद्ध धर्म। सागल राज्य की ब्राह्मण व्यवस्थानुसार वह पुरुष की भोग्या वन सकती थी, अपना समर्पण मात्र कर सकती थी परन्तु उसे उसके प्रतिदान मे कुछ नही मिल सकता था। अन्त मे प्रताडित, विह्वला, उत्पीडित दिव्या गण परिषद् के महामात्य, धर्म व्यवस्थापक भट्टारक रुद्रधीर के, दिव्या को धर्म-पत्नी स्वीकार करने की आन्तरिक लालसा प्रत्युत्तर स्वरूप व्यगघात करती है, "आचार्य, कुलमाता और कुल महादेवी निरादृत वेश्या की भाति स्वतत्र और आत्म-निर्भर नही हैं। ज्ञानी आचार्य, कुल वधू का सम्मान, कुलमाता का आदर और कुलमहादेवी का अधिकार आर्य पुरुषो का प्रश्रय मात्र है। वह नारी का सम्मान नही। उसे भोग करने वाले पराक्रमी पुरुषो का सम्मान है। आर्य, अपनी इच्छा से अपने स्वत्व का त्याग करके ही नारी वह सम्मान प्राप्त कर सकती है। ज्ञानी आर्य, जिसने अपना स्वत्व त्याग दिया, वह क्या पा सकेगा? आचार्य, दासी को क्षमा करें। दासी हीन होकर भी आत्म-निर्भर रहेगी। स्वत्वहीन होकर वह जीवित नही रहेगी।" (पृष्ठ २१२)

उसी प्रकार वौद्ध धर्म के भिक्षु पृथुसेन की कामना पर कि दिव्या अपने निर्माण के लिए तथागत धर्म स्वीकार करे, दिव्या विरोध करती हुई जोरदार शब्दो मे कहती है, "भन्ते, अपने निर्वाण धर्म का पालन करें। नारी का धर्म निर्वाण नही, सृष्टि है। भिक्षु उसे अपने मार्ग पर जाने दें।" (पृष्ठ २१३)

सागल के मूर्तिकार नास्तिक चारवाक मारिश द्वारा महत्वपूर्ण प्रकट किए गए उद्गार मारिश देवी को राज प्रासाद मे महादेवी का आसन अर्पण नही कर सकता। मारिश देवी को निर्वाण का चिरतन सुख का आश्वासन नही दे सकता। वह ससार के सुख-दुख अनुभव करता है। अनुभूति और विचार ही उसकी शक्ति है। उस अनुभूति का ही आदान-प्रदान वह देवी को कर सकता है। वह ससार के धूलि-धूसरित मार्ग का पथिक है। उस मार्ग पर देवी के नारीत्व की कामना मे वह अपना पुरुषत्व अर्पण करता है। वह आश्रय का आदान-प्रदान चाहता है। वह नश्वर जीवन मे सतोष की अनुभूति दे सकता है।" (पृष्ठ २१३) पर दिव्या भित्ती का आश्रय छोड दोनो बाहुओं को फैलाकर आर्द्र स्वर मे कह उठती है, "आश्रय दो आर्य।" और यही समस्या की अतिम परिणति है।

परन्तु, यशपाल का समाधान एकागी है, यह स्वीकृत सत्य है। यशपाल ने ब्राह्मण धर्मानुसार व्यवस्थित, प्रचलित भोग्यानारी का स्वरूप अकित किया, परन्तु

उस मनोभूमि का, उस भावना का चित्रण नही किया जहा नारी अर्धाङ्गिनी मानी गई है, वहा नारी के भी पुरुषो के समान अधिकार सुरक्षित हैं। जहा परिणय-सस्कार जैसे महत्वपूर्ण विषयो पर भी धर्मस्थीय प्रकरण के विवाह सयुक्त मे आचार्य कौटिल्य लिखते हैं—

वर्षाण्यष्टावप्रजायमानामपुत्र वन्ध्या चाकाक्षेत दश विन्दु,
द्वादश कन्याप्रसाविनीम ततः पुत्रार्थी द्वितीया विन्देत।

अर्थात ८ वर्ष तक वन्ध्या, १० वर्ष तक विन्दु अर्थात नश्यत्प्रसूति, १२ वर्ष तक कन्या प्रवासिनी की प्रतीक्षा कर पुत्रार्थी पुरुष दूसरी स्त्री का ग्रहण कर सकता है, उसी प्रकार स्त्री के सम्बन्ध मे भी कहा गया है—

नीचत्व परदेश वा प्रस्थितो राजकिल्विषी।
प्राणाभिहन्ता पतितस्त्याज्यः क्लीबोपि वा पति ॥

जयशकर प्रसाद ने वहुत अनुसन्धान से दृढतापूर्वक वताया है कि पराशर या नारद के वाक्य भी उपर्युक्त भावना से मेल खाते हैं क्योकि उनका विश्वास है कि दमयन्ती के पुनर्लग्न की घोषणा इसी आधार पर हुई होगी।

'दिव्या' मे वुद्ध-धर्म के उस महत्व को ग्रहण नही किया गया है जिस धर्म मे नारियो को भी सम्मान और आदर था, जिस धर्म मे सघमित्रा आदि स्त्रिया धर्म प्रचार के निमित्त विदेश तक जाया करती थी।

वृन्दावनलाल वर्मा मे स्त्रिया वीर, स्वाभिमानी, आदर्श, धर्मपरायण तथा पुरुषो के समान दीप्त रूप मे पाते हैं। वे नारिया सतीत्व और धर्म को नही भूल सकती। उन्हे मात्र भौतिकवाद का प्रलोभन मार्गच्युत नही कर सकता। वर्मा जी के नारी पात्र इस दृष्टि से यशपाल से मेल नही खाते, यशपाल मे जहा साम्यवादी भावना मूल है, वर्मा जी मे आदर्शप्रवण धार्मिक भावना।

इतना तो स्वीकार करना पडेगा रोचकता, कथासूत्रता आदि की दृष्टि से 'दिव्या' का भी महत्व है। यशपाल ने आगिक वेशभूषा, वातावरण, सभ्यता आदि के लिये डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, डा० मोतीचन्द, लखनऊ वौद्ध विहार के वयोवृद्ध महास्थविर भदन्त वोधानन्द तथा अजन्ता और एलौरा से सहायता ग्रहण कर प्रामाणिक रग देने का प्रयास किया है। परन्तु अपनी भावना और वाद का रग चढाकर चित्रित किया है। वर्मा जी मे तो ऐतिहासिक वातावरण की रक्षा पूरी तत्परता से पाते हैं।

'दिव्या' की भाषा से सम्बद्ध प्रश्न वडा महत्वपूर्ण है, साथ ही अनुपेक्षणीय भी। भाषा के पक्ष मे विचार प्रकट करते हुए 'दिव्या' के प्रकाशक ने लिखा है, "अतीत के रूप-रग की रक्षा के लिये कुछ असाधारण भाषा और शब्दो का प्रयोग आवश्यक हुआ है।" निश्चय ही स्मरणीय है, यशपाल ने जिस प्रकार कुछ असाधारण भाषा का प्रयोग 'दिव्या' मे किया है, उस प्रकार अपने अन्य सामाजिक उपन्यासो मे नही। वृन्दावनलाल मे वैसी सस्कृतनिष्ठ भाषा नही है वरन आज के जीवन की स्वाभाविक भाषा है। जयशकर प्रसाद के 'इरावती' उपन्यास मे सस्कृतगर्भित, तत्सम प्रधान शब्दो का वाहुल्य है। परतु जहा प्रसाद की भाषा मे कवित्व या दर्शन का अन्त स्रोत प्रवह-

मान है वहा यशपाल के वाक्यो मे भापा-क्लिष्टत्वमात्र ही है। दार्शनिक वाक्या, विचारो का आधिक्य प्रसाद की कृतियो की तरह यशपाल मे कदापि नही। 'दिव्या' की भापा इस दृष्टि से देखिए—"वृद्ध गणपति, महासेनापति मियोद्रस परिस्थिति की गुरुता अनुभव कर केन्द्रस के आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए बद्धपरिकर हुए। गणकोप और रस-सामग्री के आयोजन की व्यवस्था का कार्य उन्होने महाश्रेष्ठी प्रेस्थ को सौंपा और सैय-सधान की आयोजना महासामन्त यवन ओक्लिम को।" इनमे शब्द मात्र है। भापा का गाम्भीर्य या दार्शनिकता नही। वस्तुत 'दिव्या' मे (क) पात्रोचित भापा नही है, क्योकि प्रत्येक की भापा सस्कृतनिष्ठ है यद्यपि मारिश के कथन मे कुछ गम्भीरता उत्पन्न करने का प्रयास है, (ख) तत्सम प्रधान भापा है, (ग) यत्र-तत्र ठेठ हिंदी के शब्दो तथा (घ) उर्दू के शब्दो का भी प्रयोग है। (ङ) अलकृत भापा का भी यथेष्ठ उदाहरण है। (च) परतु मुहावरो की चचलता नही है। कई स्थलो पर (छ) लोकोक्तियो और कहावतो का भी प्रयोग है।

"देवी मल्लिका मूर्तिमान राग के रूप में अपनी किसलय-कोमल अगुलियो और मृणाल बाहुओ से सगीत के आरोहावरोह को इगित कर रही थी।" निश्चय ही यहा पर ऐसी भापा स्वाभाविक नही लगती वरन कृत्रिमता आ गई है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि 'दिव्या' मे भापा की कृत्रिमता और क्लिष्टता स्वय आग्रह रूप मे उपस्थित नही हुई है वरन लायी गई है। मैं पहले ही कह चुका हू कि वर्मा जी मे यह प्रवृत्ति देखने को नही मिलती। विस्तार के लिए 'दिव्या एक अध्ययन' (लेखक सियारामशरण प्रसाद एम ए, सा र) पुस्तक देखें।

वृन्दावनलाल वर्मा और डा० रागेय राघव

डा० रागेय राघव हिन्दी-साहित्य के उद्भट विद्वान लेखक हैं। उन्होंने कई उपन्यास लिखे हैं जिनमे ऐतिहासिक, सामाजिक, सभी क्षेत्रो का सस्पर्शन है। इतिहास-वेत्ता होने के फलस्वरूप इनकी ऐतिहासिक कृतियो मे उठाए गए काल के ऐतिहासिक चित्र और स्वाभाविकता का सन्तुलन व्याप्तत्व है। 'अधेरे के जुगनू', 'मुर्दों का टीला', 'चीवर, राह न रुकी' आदि उनकी ऐतिहासिक कृतिया हैं।

'मुर्दों का टीला', 'मोअन-जोदडो काल की जीवन्त कथानक पर आधारित है जिसमे उक्तकाल की भावभूमि, उशृखल भोग-भावना, दास-व्यापार और उनपर किये गए अमानवीय व्यापार, आर्यो-अनार्यो का सामाजिक सघर्ष और मानसिक तुला का बडे ही सुन्दर ढग से अकन है, जिसे प्रत्येक पाठक निस्सकोच स्वीकार करेंगे।

यह भी स्पष्ट है कि वर्मा जी जहाँ मुख्यत मुगल और अग्रेज-काल से ही वस्तु-चयन करते हैं, वहा रागेय राघव का क्षेत्र विस्तृत है। मोहन-जोदडो से लेकर बगाल अकाल तक उनकी दृष्टि दौडती है। 'अधेरे के जुगनू' मे प्राचीन काल की सस्कृति, सभ्यता और फैली, 'योग्यतम को जीवन का अधिकार' की भावना का प्राबल्य दीखता है 'चीवर' मे हर्षकालीन कथानक है जो हर्ष राजवश से सम्बधित है और जिसमे लेखक ने यह सिद्ध करना चाहा है— 'जीवन मे ऐसे क्षण कभी कभी आते है जब मनुष्य अपनी महत्ता का त्याग करके अपनी लघुता के माध्यम से

उच्चता की ओर अग्रसर होता है ।" ('चीवर' पृष्ठ २७६-२७७) हर्ष ने अपने जीवन के विविध परिवेशो और टेढी-मेढी पगदडियो के बीच भ्रमणशील विधियो द्वारा इस सत्य का प्रतिष्ठान सुदर ढग से किया । वह हारकर भी जीत प्राप्त कर लेता है । इसमे हर्षकालीन सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक सभी पहलुओ पर इतिहास-वेत्ता डा० राघव ने उचित प्रकाश डाला है। इस दृष्टि से वृन्दावनलालवर्मा से आलोच्य उपन्यासकार मे साम्य देखा जा सकता है। साथ ही इसमें 'दिव्या' के विपरीत मनोभूमि और आदर्श का प्रतिष्ठान है । यह भी घ्यातत्व है कि 'मुर्दों का टीला' की तरह इसमे अनास्था, नैराश्य का करुण स्वर नही प्रत्युत् त्यागमय विजय का प्राधान्य है । जिस प्रकार वर्मा जी की कृतियो मे प्राप्त है ।

उन्होने "देवकी का बेटा' मे ऐतिहासिक पुरुष कृष्ण को चमत्कारो से अलग मानवीय रूप मे चित्रित किया है । इसमे भी तत्कालीन राजनैतिक अवस्था, वर्गगत सघर्ष आदि का बडा जीवन्त चित्रण है । इस पुस्तक का प्रकाशन समय १९५४ है जब भारतीय स्वतन्त्रता विकास कर रही थी । 'मुर्दों का टीला' मे जहा लेखक ने भावुकतावश जन-शक्ति को पराजित होता दिखाया है, ठीक उसका उत्तर प्रस्तुत कृति मे है, जहा शासक कस, निर्दयी कस, जनशक्ति के सम्मुख परास्त होता है । अनएव यह स्पष्ट है कि १९४२ की घुटन और नैराश्यमूलक वृत्ति लेखक से समाप्त होकर, स्वस्थ जन धरातल प्रतिष्ठित हो गया है ।

आज प्राय अपने प्राचीन महायुद्धो को चमत्कारो से अलग कर, मानवीयता का स्वाभाविक रग देने का प्रयास चल रहा है जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रभाव है । हरिऔध ने भी 'प्रियप्रवास' मे कृष्ण को मानवीय रूप मे चित्रित किया है । वृन्दावन-लाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासो के पात्र पूर्णतया मनुष्य हैं, उनमे लोक प्रचलित या किसी चमत्कार का सयोजन नही है । रागेय राघव अपनी दिशा मे इस पुस्तक मे भी सफल रहे हैं । 'यशोधरा जीत गई' मे भी ऐतिहासिक दृष्टिकोण से साम्पदायिक रग एव बुद्ध को चमत्कारो से बचाकर चित्रित किया गया है । इसमे भी धार्मिक व्यवस्था, सघर्ष आदि पर प्रकाश पडने के साथ ही नारी यशोधरा और बुद्ध के सामा-जिक-वैयक्तिक पहलुओ पर यथेष्ट विचार है । इसमे नारी रूप मे उठी यशोधरा की मनोवृत्तियो का सघर्ष बहुत गहरा है । यशोधरा नारी की हार पुरुष के सम्मुख स्वी-कार नही करती प्रत्युत राहुल को प्रव्रज्या देना, बिना माता की अनुमति बुद्ध के अन्दर बैठे वैयक्तिक ममत्व और स्नेह ही व्यजित है । यशोधरा की जीत नारी जाति की जीत होती है । वह बुद्ध के यश से अभिभूत हो हीनतत्व से ग्रसित नही होती । यह भी एक रोचक सरस तथा पुरुष-नारी के शाश्वत सम्बन्धो को व्यजित करने वाली कृतियो के सदृश ही है ।

'विषाद मठ' इस अर्थ मे ऐतिहासिक है कि इसमें बगाल मे पडे ऐतिहासिक अकाल की यथार्थमय छवि है, करुण वातावरण का सजीव चित्रण है । इसके पात्रो का नाम भले ही काल्पनिक हो परन्तु घटनाए, दुर्भिक्ष एव अन्य अपेक्षित तत्त्व सत्य हैं । लेखक ने स्वय लिखा है—"प्रस्तुत उपन्यास तत्कालीन जनता का सच्चा इतिहास । इसमे एक भी अत्युक्ति नही, कही भी जबर्दस्ती अकाल की भीषणता को गढ़ने के

लिए कोई मनगढन्त कहानी नही। जो कुछ है, यदि सामान्य रूप से दिमाग मे, बहुत अमानुषिक होने के कारण, आसानी से नही बैठता, तब भी अविश्वास की निर्बलता दिखाकर ही इतिहास को भी फुसलाया नही जा सकता।" (दो शब्द रागेय राघव)। प्रस्तुत पुस्तक मे बगाल का लोमहर्षक अकाल बडी यथार्थमयता तथा करुणा से ओत-प्रोत है जो पाठको को एक बार अवश्य ही तिलमिला देता है, नये सिरे से सोचने को सचेष्ट ही नही, प्रत्युत विवश करता है। आलोच्यकृति की तुलना वृन्दावनलाल वर्मा कृत 'अमर बेल' (यद्यपि 'अमर बेल' ऐतिहासिक उपन्यास नही है) या किसी भी भाषा के यथार्थवादी कृतियो से कर सकते हैं। 'अमर बेल' मे भी ग्रामीण दुर्दशा और उनके कलहपूर्ण जीवन का बडा कटु चित्रण है जो जमीदारी प्रथा तथा उसके अन्त होने के ऐतिहासिक खण्ड को लेकर चला है। 'विषाद मठ' मे करुण रस के साथ बीभत्स भी है जो सचमुच 'विषाद मठ' नाम को सार्थक करने वाली कृति है। 'अमर बेल' में मुख्यरूपेण करुण रस है। 'विषाद मठ' का अत भी बीभत्स रस में होता है, 'अमर बेल' का शाति मे। रागेय राघव ने जहा 'विषाद मठ' मे वास्तविकता चित्रित कर निदान का कोई मार्ग उपस्थित नही किया है, वहा वर्मा जी अपने उपन्यासो द्वारा निदान भी रखते हैं। वृन्दावनलाल वर्मा जहा कारण के विश्लेषणो मे अधिक सचेष्ट रहते हैं और यथासम्भव ऐसा करते भी हैं वहा रागेयराघव मूलत परिणाम को अधिक केन्द्रित रख घटना चक्र को बढाते हैं। 'अमर बेल' मे निश्चित रूप से जमीदारो की कुकृतियो के प्रकाश मे कारण निर्दिष्ट है, वहा 'विषाद मठ' मे अकाल-वर्णन ही प्रधान लक्ष्य रहा है। उसके कारणो पर लेखक का ध्यान विशेषरूप से दत्तचित्त नही है। यो वर्णन के क्रम मे कुछ चर्चा मात्र है। इतना तो मानना ही पडेगा कि वेदनामय, अभिशापग्रस्त बगाल-अकाल के ककाल का चित्रण पूर्ण प्रामाणिकता तथा सजीवता से 'विषाद मठ' मे प्राप्य है जो कर्मबोधक भी है। 'विषाद मठ' की घटना के बाद की घटना 'अमर बेल' मे उपस्थित है।

यह स्मरणीय तत्व है कि डा० रागेय राघव ने उत्तर रूप मे पुस्तक लिख डालने की बडी अहम्वादी प्रवृत्ति है। 'टेढे-मेढे रास्ते' का 'सीधा सादा रास्ता', 'आनन्द मठ' का 'विषाद मठ' 'दिव्या' का 'चीवर' इसी के सकेतक हैं।

'प्रतिदान' मे महाभारत युग के ब्राह्मण और क्षत्रियो का सघर्ष मुख्य है। 'राह न रुकी' बुद्ध-युग की सामाजिक व्यवस्था पर आधारित, उनके अन्य ऐतिहासिक उपन्यासो से भिन्न टेक्नीक से युक्त, कृति है। इसके चार परिच्छेदों मे चार नाटक हैं। विवाह सस्था को लेखक ने आर्थिक स्वीकार किया है। अर्थ के कारण ही नारिया इस सम्बन्ध को स्वीकार करती हैं परन्तु यह दृष्टिकोण बड़ा खटकनेवाला तथा एकागी है और प्रस्तुत उपन्यास विचार प्रधान हो गया है। रोचकता की कमी कथा-वस्तु की गतिशीलता का अभाव बुरी तरह खटकता है। इन सभी कारणो से इनका महत्व बहुत घट जाता है।

वृन्दावनलाल वर्मा और डा० रागेय राघव दोनो की कृतियो मे युद्ध, शौर्य और शृगार का सुन्दर चित्रण मिलता है। 'मुर्दों का टीला', 'चीवर', 'अधेरे के जुगनू' सभी मे उसके उदाहरण देखे जा सकते हैं और इस दृष्टि से मेरे मतानुसार दोनो ही सफल

कलाकार हैं। परतु नारीगत वीरत्व के प्रदर्शन मे रागेय राघव मे वह तेजमयता नही जो हम 'मृगनयनी' और 'झासी की रानी लक्ष्मीवाई' मे नियोजित पाते हैं। यह भी सत्य है, वृन्दावनलाल वर्मा का युद्ध जहाँ विशेष रूप मे व्यक्ति विशेष के शौर्य और उसके पराक्रम का डका पीटता है वहाँ रागेय राघव की कृतियो मे व्यक्ति विशेष को प्रधानता नही दी जाती है। पुन वर्मा जी का युद्ध, जहाँ जीवन के उत्थान के लिए प्रमुखत दृष्टिगत होते हैं वहा राघव जी का चित्रित मघर्प दानवीय लालसा और कामुकता के कारण विशेपतया 'विपाद मठ', 'अंधेरे के जुगनू' सभी मे भयानक सघर्प और रक्तपात हैं—विपद विपाद का गहरा आक्रोश छाया है। उनमे वहुत कुछ निराशावादी प्रवृति विध्वसक रूप का प्रावल्य व्यक्त कर पाती है। परतु वर्मा जी द्वारा चित्रित युद्ध प्राय एक आदर्श, एक कर्तव्य की प्रेरणा द्वारा चालित है (मुख्यत)। वृन्दावनलाल वर्मा मे परिसमाप्ति एक प्रेरणा को सम्वल देती है, उनमे गतिशील और प्रगतिशील वने रहने का सकेत है।

पात्र-चित्रण रोचकता आदि की दृष्टियो से दोनो का मूल्य हिंदी ऐतिहासिक उपन्यास मे अक्षुण्ण रहेगा। वर्मा जी की कुछ ऐतिहासिक रचनाओ का आरम्भ जहाँ मथर हुआ है, ऐतिहासिक तथ्य को व्यक्त करते की भावना के फलस्वरूप, वहा राघव जी इस दोप से मुक्त है। परतु, यत्र-तत्र प्राकृतिक चित्रण की जो सफलता वर्मा जी की कृतियो मे देखते हैं, जिसके अनेक उदाहरण हम पुस्तको की चर्चा करते समय उद्‌धृत कर चुके है, वह रागेय राघव की कृतियो मे नही।

रागेय राघव की दृष्टि वैज्ञानिक है और उन्होंने प्राचीन कथानको का, जैसे कृष्ण कालिकामर्दन आदि का, वैज्ञानिक और तर्क-सगत चित्र उपस्थित किया गया है, वहाँ वर्मा जी ऐसे काल मे नही जाते और न उन्हे ऐसी कोई व्याख्या (interpretation) की जरूरत पडती है। उनके सभी पात्र प्राय मुगलकालीन मानवीपात्र हैं जिनके वीते अधिक समय नही हुए हैं।

वर्मा जी ने नारी पात्रो का वडा भव्य, आकर्षक और महिमाशालिनी रूप चित्रित किया है जिसकी चर्चा विस्तार से अन्य अध्याय मे है। राघव की कृतियो मे नारी वासना और लालसा के साधन रूप मे चित्रित हुई हैं। वे नारियाँ वर्मा जी की नारियो की तरह गौरव स्थापित नही कर पाती।

वर्मा जी की कृतियो मे जिस प्रकार घटनाओ के आधिक्य के साथ चरित्र भी महत्वपूर्ण होते हैं उसी प्रकार रागेय राघव की कृतियो मे देखते हैं। उदाहरणार्थ हम 'मुर्दों का टीला', 'अंधेरे के जगनू', 'चीवर' आदि को देख सकते हैं। साथ ही पात्रो की सशक्तता और सफलता की दृष्टि से दोनो ही महत्वपूर्ण हैं। नीलूफर, मणिवध, हेका, गायक (विल्लिभितूर), वेणी, राजश्री, हर्ष, यशोधरा, (रागेय राघव) और मृगनयनी, लाखी, लक्ष्मीवाई, हिमानी आदि को इस दृष्टि से देख सकते हैं। राजश्री और हर्ष का चरित्र भी 'वाणभट्ट की आत्मकथा' मे चित्रित वाणभट्ट, भट्टि, निपुणिका की तरह अत्यत दिव्य, और ओजस्वी हैं और इस दृष्टि से उनकी तुलना वर्मा जी के ऐतिहासिक पात्र माधव जी, अहिल्यावाई, लक्ष्मी वाई, मृगनयनी आदि से कर सकते हैं। उनके याग एक अपूर्व आदर्श और गौरव का इतिहास हृदय पटल पर अंकित कर डालते हैं।

रोचकता की दृष्टि से दोनो ही अपूर्व है। कथानक किस दिशा मे सचरित होगी और परिणाम क्या होगा, औत्सुक्य सर्वदा बना रहता है।

परन्तु भाषा और वस्तु-निरूपण और विचार मापदण्ड आदि की दृष्टि से दोनो मे कदापि साम्य स्वीकार नही किया जा सकता। जहाँ वर्मा जी की भाषा सहज-सरल है वहा राघव जी की भाषा कुछ अलकृत और सस्कृत शब्दावलियो की ओर विशेष झुकी हुई है और उनमे स्थानीय प्रयोग नही है। 'मुर्दों का टीला' से एक उदाहरण देखें—

"रात की धूमिल अलको को प्रभात ने स्नेह से समेटकर उनपर दमकते हुए शुक्र का शीश-फूल अपने काँपते हाथ से खोस दिया। एकबार सागर का अचल हरहरा उठा और मदिर स्पन्दन से तरगायित कम्पन प्रभात के समीकरण से झूम उठा। उस समय नील लहरो पर श्रेष्ठि मणिबन्ध का पोत थिरक रहा था।" (पृष्ठ १) ऐसी भाषा का प्रयोग यदाकदा मात्र भावुकता स्वरूप प्रकट नही है प्रत्युत सर्वत्र इसी प्रकार निर्वाह है। वार्तालाप, प्रकृति चित्रण आदि जगहो मे भी यही रूप वर्तमान है। यहा तक द्राविड पात्र भी इसी भाषा का सम्बल लेकर चलते हैं। एक और उदाहरण देखें, —"उसके स्वर मे उन्माद का लोहित जिह्व जैसे उन्मादिष्णु होकर हुकार उठा। जीवन की समस्त तृष्णा को ले जाकर जैसे महानद नील महासागर मे अर्पित करके गरज उठता है, नीलूफर के कापते स्वर मे यौवन, रूप और सगीत, गुलाम की अनाधिकार चेष्टा, एक न्याय बनकर, सत्ता के रूप मे जैसे मणिबन्ध के चरणो पर पुकार उठे कि तू मेरा स्वामी है, मैं जो कुछ हू, तेरे कारण हू।" इसी प्रकार की भाषा रागेय राघव की अन्य ऐतिहासिक कृतियो मे जैसे 'चीवर', 'अधेरे के जुगनू' मे दृष्टिगत है। 'चीवर' मे भी एक छोटा उदाहरण देखें, "श्वेत पाषाणो की दीर्घ और विस्तृत शोभा से सोपानो पर एक मदिम आलोक प्रतिध्वनित होता हुआ वापी के जल मे उतर जाता और राजश्री के सुडौल सुन्दर शरीर पर उसके गौर वर्णों मे केन्द्रित होकर नयनो को तुला पर टाग देता। जल को नीले और सुनहले कमल अपनी भीड मे आक्रात किए हुए थे। नीले मृणाल खाकर कभी-कभी श्वेत भव्य राजहस मरकत की शिलाओं पर चलकर झकार करते, कभी अपनी लम्बी, श्वेत और कोमल ग्रीवा झुकाकर उत्फुल्ल पुण्डरीक मे से मकरद खाने लगते।" (चीवर, पृष्ठ ३) 'विषाद मठ' की भाषा यद्यपि सरल है, परन्तु वर्मा जी की तरह सरलतम नही।

सब से बडी विशेषता का साम्य यह है कि दोनो की कृतियो मे पृष्ठो पर पृष्ठ मात्र दर्शन और चिंतनात्मक चर्चा मे रगे नहीं गए हैं जो प्रवृत्ति आज की अधिकाश कृतियो मे पाते हैं।' 'पथ की खोज' (डा० देवराज), 'डूबते मस्तूल' (नरेश मेहता), 'तीन वर्ष' (भगवतीचरण वर्मा), 'शेखर एक जीवनी' (अज्ञेय) 'चढती धूप' (अचल), 'तट के बन्धन' (विष्णु प्रभाकर) आदि को हम इस दृष्टि मे देख सकते हैं।

डा० रागेय राघव की कृतियो मे सस्कृति, आचार-विचार, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक स्थिति, सार्वजनिक स्थान मे नृत्य और मद्यपान की प्रथा, भोगलिप्सा का सुन्दर दिग्दर्शन, जल विहार आदि चित्रो के अकन मे उनकी बडी पैनी और कुशल प्रतिभा का परिचय मिलता है।

फिर भी एक खटकनेवाली बात 'मुर्दों का टीला' मे यह है कि इसमे अनासक्ति

की बडी उपेक्षा की गई है । मालूम पडता है वास्तव मे १९४२ की नैराश्यजनित असफलता लेखक ने अवश्य देखी थी परन्तु अतर्पक्ष पर पडने वाले उसके सशक्त प्रभावो को उसने उस समय नही समझा । 'मुर्दों का टीला' मे जनता, सम्पूर्ण जनता अन्याय के विपरीत एकत्र हो आन्दोलन करती है, क्राति करती है, परतु सैन्य शक्ति के सम्मुख वह अजेय सिद्ध न होकर पूर्णतया परास्त हो जाती है, विनष्ट हो जाती है । दुर्बर सैन्य शक्ति कुचलती हुई पताका फहराती है । इस प्रकार यहा एक अत्यत ही नैराश्य-जनित विक्षुब्ध-मन स्थिति का परिचय मिलता है । यह एक अत्यत तीखी उपेक्षा है, जिस पर रागेय राघव जैसे विद्वान लेखक को समझकर चित्रण करना चाहिए था—निष्कर्ष निर्धारित करना चाहिए था । वर्मा जी की कृतियो मे नैराश्यजनित मन स्थिति उत्पन्न नहीं होती, इसमे आशावाद का अरुणिम सूर्य सर्वदा दीखता है । 'झासी की रानी लक्ष्मी बाई' के सम्बन्ध मे प्रश्न उठ सकता है परतु इसमे आशावाद का अतर्स्रोत सूखता नही और सबसे बडी बात यह है कि इसमे जनता का बल वैसा एकत्रित नही हो पाता जैसे 'मुर्दों का टीला' मे पाते हैं । वर्मा जी की उक्त पुस्तक पढने से प्रेरणा मिलती है, जीवन सघर्ष मे गतिमय होने की दृढता मिलती है । परतु 'अधेरे के जुगनू', 'देवकी का बेटा', आदि मे लेखक ने इसके विपरीत भावभूमि मे पदार्पण कर जैसे अपनी पूर्व धारणाओ को खण्डित किया है ।

फिर, यह भी स्वीकार करना पडेगा कि राघव जी की ऐतिहासिक कृतिया सफल हैं और उनका महत्व रहेगा। कथावस्तु, पात्र, वार्तालाप आदि दृष्टियो से वे सफल हैं। यही पर यह कहना अप्रासगिक न होगा कि डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने जहा बाण-भट्ट को युवक और हर्ष को प्रौढ रूप मे रखा है वहा 'चीवर' मे चित्रित उक्त दोनो पात्र समवयस्क लगते हैं और मेरे विचारानुसार इस पर ऐतिहासिक खोज की आवश्यकता है ।

: ९ :

उपन्यासों में ऐतिहासिकता

ऐतिहासिक उपन्यास-प्रणेताओं में विशेष पटुता, सजगता और कौशल की अपेक्षा होती है क्योंकि उसे वर्तमान से भूतकाल में प्रवेशकर कर, ऐतिहासिक सत्वों की रक्षा करते हुए, भूतकालीन पात्रों के यथार्थ को स्वीकार कर उनमें प्राण भी फूकना पडता है, दूरी को को निकटत्व में परिणत कर भी, अनेक वांछित उपकरणों का ध्यान रखना पडता है। उसमें ऐतिहासिकता और साहित्यिकता का समुचित सन्तुलन माप-दण्ड का आधार होता है। जब कोई ऐतिहासिक उपन्यासकार भूतकालीन जगत से घटना और पात्र ग्रहण करता है तो उसे उसमें (*i*) वातावरण, (*ii*) रहन-सहन, (*iii*) वेश भूषा, (*iv*) तत्युगीन राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक स्थिति, (*v*) युग-चिन्तन, (*vi*) भौगोलिक-ज्ञान, (*vii*) युग-विकास, तथा अन्य यथार्थमयता का ध्यान रखने के अतिरिक्त (*viii*) उन बीते मुर्दों में प्राण का सचार करना पडता है, तथा (*ix*) उन युग-वैभव की नब्ज पर दृष्टि रखनी होती है।

राहुल जी ने सत्य ही लिखा है कि ऐतिहासिक उपन्यास में " देश-काल को तो रखना ही पडेगा और उसे देश-काल तथा उनके सम्बन्धी पात्रों को उनके अनुरूप ही चित्रित करना होगा। हर हालत में यथार्थवाद हमारे ऊपर कुछ जिम्मेवारियां, कुछ नियमों की पाबंदी" देता है। "यह पाबंदी ऐतिहासिक उपन्यास-लेखकों को निर्वाहित करनी ही होगी। उपन्यास का कलेवर बडा होता है, इसलिए उसका हर जगह निर्वाह करना कष्ट-साध्य है। ऐतिहासिक उपन्यासों में हमें ऐसे समाज और व्यक्तियों का चित्रण करना पडता है, जो सदा के लिए विलुप्त हो चुका है। किन्तु, उसने पद-चिह्न कुछ जरूर छोडे हैं, जो उनके साथ मनमानी करने की इजाजत नहीं दे सकते। इन पद-चिह्नों या ऐतिहासिक अवशेषों को पूरी तौर से अध्ययन को यदि अपने लिए दुष्कर समझते हैं तो कौन कहता है, आप जरूर ही इस पथ पर कदम रखें? ऐतिहासिक कथाकार को हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि हमारी एक पाती पर एक बडा निष्ठुर मर्मज्ञ-समूह पैनी दृष्टि से देख रहा है। - ऐतिहासिक उपन्यास-कार का विवेक वैसा ही होना चाहिए जैसा कि इतिहासकार का होता है। उसे समझना चाहिए कि कौन-सी सामग्री का मूल्य अधिक और किसका कम है। ऐतिहासिक अनौचित्य से बचने के लिए जिस तरह तत्कालीन ऐतिहासिक सामग्री और इतिहास का अच्छी तरह अध्ययन आवश्यक है, वैसे ही भौगोलिक अध्ययन की भी आवश्यकता है।"[1]

---

१ 'आलोचना' के उपन्यास विशेषांक में प्रकाशित राहुल सांकृत्यायन जी के 'ऐतिहासिक उपन्यास' शीर्षक लेख में।

इस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यासकारो का उत्तरदायित्व बहुत बडा होता है। उसे इतिहास, तत्कालीन सिक्के, ग्रन्थो आदि का विचारपूर्वक अध्ययन-मनन करना पडता है। इन समग्र दृष्टियो पर ध्यान न देने पर दोषो का होना स्वाभाविक होगा।

अब तक प्राप्त ऐतिहासिक कृतियो के उपर्युक्त दृष्टियो से कई भेद सम्भव है—(i) जो पूर्ण प्रामाणिकता तथा साहित्य के प्राणगुजार से सतुलित हो, जैसे वृन्दावनलाल वर्मा, राहुल साकृत्यायन, डा० रागेय राघव, हरीश साहित्यालकार (मैरिन्ध्री उपन्यास) आदि की कृतियो मे पाते है,

(ii) जिसमे वातावरण ऐतिहासिक हो, परन्तु पात्र और घटनाए आदि कल्पित हो, जैसे 'अन्तिम श्वास तक' (सियारामशरण प्रसाद), 'चित्रलेखा' (भगवती चरण वर्मा) आदि मे,

(iii) जिसमे पात्र ऐतिहासिक रहते हैं परन्तु घटनाए और वातावरण कल्पित हो जैसे 'अमिता' (यशपाल), 'कालिदास' (मोहनलाल विद्यालकार) आदि मे, और

(iv) जिसमे मात्र ऐतिहासिकता प्रबल हो, साहिरियकता न के बराबर, जैसे 'वय रक्षाम' (चतुरसेन शास्त्री) आदि।

इसी प्रकार और भी कई भेद सम्भव हैं जिसकी चर्चा यहाँ अनावश्यक है। वृन्दावनलाल वर्मा जी के प्राय सभी ऐतिहासिक उपन्यास उपर्युक्त वर्गीकरण के अनुसार प्रथम विभाग मे आते हैं जिसमे कई वर्षों के प्रामाणिक खोज और ऐतिहासिक सत्वो की रक्षा के साथ ही साहित्य का सुखद स्वर-गुजार निहित है। 'मृगनयनी', 'झासी की रानी-लक्ष्मीबाई', 'अहिल्याबाई', 'माधव जी सिंधिया', 'गढ कुडार' सभी के साथ यही है। जहाँ उनमे ऐतिहासिकता है वहाँ उनमे पात्र पूर्ण जीवत और प्रभाव उत्पन्न करने वाले हैं। अब हम उनकी कृतियो पर दृष्टिपात करें।

'गढ़ कुडार'

'गढ कुडार' के अधिकाश पात्र और घटनाएँ ऐतिहासिक हैं। हुरमतसिंह का कुडार का नृपति होना, सोहनपाल का सहायता प्राप्त करने के लिए कुण्डार आना, हुरमतसिह द्वारा अपने पुत्र नाग का परिणय-सस्कार सोहनपाल की पुत्री के साथ चाहा जाना, सोहनपाल का अस्वीकार करना, हुरमतसिह का उसकी पुत्री को जबरदस्ती पकडने की कुचेष्टाए, राजनैतिक चाले चलकर सोहनपाल का पुत्री की शादी के लिए तैयार होना, जलसे मे उनको मदहोश कर समाप्त करना और इस प्रकार बुन्देलो का गढपति होना, ऐतिहासिक घटनाए हैं। पवार के पुण्यपाल से बुन्देलो को इस कार्य मे सहायता प्राप्त होना और अन्त मे इसी से सोहनपाल की पुत्री हेमवती का वैवाहिक सम्बन्ध होना भी इतिहास सम्मत है।

परन्तु इसमे भी कल्पना का पर्याप्त सयोग है। किवदतियो और परम्पराओ से भी तथ्य ग्रहण किया गया है। खगार और बुन्देलो मे उक्त घटना भिन्न-भिन्न रूपो मे है जिसमे लेखक ने अधिक स्वाभाविक रूप को ग्रहण किया है। खगार बुन्देलो की कुनीति तथा उनकी मुसलमानो की मित्रता अपनी हार का कारण मानते हैं और

बुन्देले खगारो के नैतिक पतन को। वर्मा जी ने मध्य मार्ग ग्रहण कर कुछ दोषो को बुन्देलो और कुछ को खगारो पर मढ दिया है।

आलोच्य कृति मे हुरमतसिंह, सोहनपाल, नागदत्त, पुण्यपाल, विष्णुदत्त, हेमवती, सहजेन्द्र ऐतिहासिक और तारा, दिवाकर, अग्निदत्त काल्पनिक पात्र हैं, परन्तु काल्पनिक पात्रो का निर्वाह भी यथेष्ठ सुन्दर और स्वाभाविक लगता है।

निश्चय ही ऐतिहासिक तथ्यो और कल्पनो के समन्वय भूमि पर 'गढ कुंडार' का निर्माण भव्य और आकर्षक हुआ है।

तत्युगीन राजनैतिक उथल-पुथल, अत्याचार और परस्पर द्वेष, विश्वास, धार्मिक-श्रद्धा आदि का भी सफलतापूर्वक अकन हुआ है।

'विराटा की पद्मिनी'

इसमे इतिहास, किंवदतियो और कल्पना का अद्‌भुत सम्मिश्रण है जिसे वर्मा जी ने स्वय स्वीकार भी किया है। (परिचय देखें)।

देवीसिंह, लोचनसिंह, जनार्दन शर्मा, अलीमर्दान आदि वर्मा जी की कल्पना के पात्र हैं, परन्तु 'उनका इतिहास सत्यमूलक' है अर्थात् लेखक ने अनेक काल मे अस्तित्व रखने वाले पात्रो की एक साथ पिरो दिया है। वे पात्र सच्चे अवश्य हैं परन्तु एक काल के नही। "उपन्यास-कथित घटनाए सत्यमूलक होने पर भी अनेक कालो से उठाकर एक ही समय की लडी मे गूथ दी गई हैं।" (परिचय, वृन्दावनलालवर्मा, पृष्ठ २), परन्तु ऐतिहासिक वातावरण मे वे पूर्णतया फिट लगते हैं।

पद्मिनी, नायकसिंह आदि ऐतिहासिक चरित्र हैं और विराटा, रामनगर और मुसावली की दस्तूर-देहिया सरकारी दफ्तर मे उनकी चर्चा के पत्र हैं "जिनमे पद्मिनी के बलिदान का सूक्ष्म वर्णन पाया जाता है।" फिर भी विराटा की कहानी दागी परगना मोठ, जिला झासी निवासी श्री नन्दू पुरोहित से लेखक ने सुनी थी और जिसे खोजपूर्ण कार्य द्वारा (ऐतिहासिक सत्वो की खोज द्वारा) उपस्थित की है।

नायकसिंह की पत्नी भी ऐतिहासिक है जिनकी चर्चा झासी के समीपवर्ती ग्राम गोरामछिया से प्राप्त है। वातावरण, तत्युगीन शासनहीनता, हिंदू-राज्यो का परस्पर द्वेष, सघर्ष, केन्द्रीय शासन की निर्बलता के साथ ही बुन्देलखण्ड के छोटे-छोटे सामन्तो का सिर उठाना, अवध, बगाल, महाराष्ट्र, हैदराबाद आदि की राजनैतिक परिस्थिति तथा परस्पर हिंसा और विनाश की भावना तथा हरपने की कुचेष्टाए आदि ऐतिहासिक तत्य हैं। सचमुच युग की आत्मा को पकडकर ही उनमे वर्मा जी ने लिखा है—"मुझे तो कोई भी वास्तविक क्षत्रिय नही दिखाई देता। मैं तो देख रहा हू कि क्षत्रियत्व की डींग मारने वाले अपने अहकार की डकार को बढाने और परपीडन के सिवा और कुछ नही करते।"

'झासी की रानी लक्ष्मीबाई'

'झासी की रानी लक्ष्मीबाई' पूर्णत ऐतिहासिक कृति है। वर्मा जी ने स्पष्ट लिखा है—"मैंने निश्चय किया कि उपन्यास लिखूगा ऐसा जो इतिहास के रग रेशे से

सम्मत हो और उसके सदर्भ मे हो। इतिहास के कंकाल मे मास और रक्त का सचार करने के लिए मुझको उपन्यास ही अच्छा साधन प्रतीत हुआ।" (परिचय, पृष्ठ ४)। वर्मा जी ने अपने बुन्देलखण्ड-प्रेम तथा राष्ट्रीय-गर्व के विपरीत जब पारसनीक की पुस्तक 'रानी लक्ष्मीबाई का जीवन चरित्र' मे यह लिखा देखा कि रानी का शौर्य विवशता की परिस्थिति का फल था और वह अग्रेजो की ओर से प्रबन्ध करती रही, पुन रुष्ट हो उसने युद्ध आरम्भ किया, तो उनके हृदय पर चोट लगी क्योंकि परम्परा और अपने पूर्वजो से ज्ञात तत्व से यह पूर्णतया प्रतिकूल तत्व था। इसीलिए लेखक ने पूर्णतया शोधकर इसकी सृष्टि की और ऐतिहासिक प्रमाणो के द्वारा यह सत्य कर दिया कि रानी का शौर्य परिस्थिति की देन नही वरन् स्वाभाविक था। वह झासी का प्रबन्ध, कुछ काल अग्रेजो को भ्रम मे डालकर, अपने हाथ मे रखे रही, जिससे अग्रेज उस पर अविश्वास न करें, और उसे युद्ध की तैयारी का पूर्ण अवसर प्राप्त रहे। १८५८ मे अग्रेजी फौजी-अफसर के अधिकृत होने पर लिखे कुछ पत्र तथा अलीबहादुर का रोजनामचा से भी प्रमाणित है कि उसका शौर्य विवशता के कारण नही था, और उन आधारो से भी रानी के जीवन-सम्बन्धी अनेक तत्वो पर प्रकाश पडता है। पुन अलीबहादुर का १८५८ का ब्यान और गदर के जमाने के तुराबअली दरोगा के कथन से जो अग्रेजो की ओर थे एव विष्णुराव गोडसे (जो रोज के युद्ध काल मे रानी के साथ किले मे थे) के 'माझा प्रवास' (प्रबन्ध) मे उनके आखो देखे वर्णन, लेखक के पूर्वमत के पोषक ठहरे।

रानी स्वराज और स्वतन्त्रता के लिए लडी, वह तथ्य उपर्युक्त सभी के कथनो से प्रमाणित होता है। बानपुर के राजा मर्दनसिंह किसी की चिट्ठी से, जिसे रानी ने लिखी थी (जिसमे स्वराज शब्द का प्रयोग है), स्वराज्य और स्वतन्त्रता के लिए विद्रोह की बात स्पष्ट होती है। १८५८ के कलक्टरी के प्राप्त कुछ कागजो से (जो उस समय के बयान है) भी यही बात प्रमाणित होती है। अग्रेजो के अत्याचार, राज्य-विस्तार की नीति, भेद-डालने की चेष्टा आदि सभी पूर्णतया ऐतिहासिक तथ्य हैं, केवल रग और स्पन्दन लेखक का है। गगाधर का नाट्य सगीत प्रेम, स्वराज्य-क्रांति, युद्ध, सिपाही-विद्रोह आदि बातें तो प्राय सभी इतिहास-पुस्तको मे मिलती है।

लक्ष्मीबाई, मोतीबाई, जूही, दुर्गा, गगाधर, गार्डन, द्वितीय नाना, पीरअली, मोरोपन्त, मुगल खा, दामोदर राव, नवाबअली, बाजीराव पेशवा, अलीबहादुर, तात्या-टोपे, खुदाबख्श, गुलाम गौसखा, झलकारी कोरिन, भाऊ, सुन्दर, दीवान दूल्हाजू, काशी, जवाहरसिंह, मुन्दर, रघुनाथ, नत्थेखा, बखतबली, आदि सभी पात्र ऐतिहासिक हैं, घटनाए ऐतिहासिक हैं।

जिसे लोग मछरिया कहते थे, उसका नाम ही बदलकर लेखक ने छोटी रख दिया है। गोद लेने की घटना भी पूर्णतया सत्य है। परन्तु उन घटनाओ का जीवन्त अकन, पात्रो का मनोवैज्ञानिक चित्रण आदि लेखक का अपना है। आलोच्य रचना-सृष्टि के पीछे वर्मा जी का लगभग १४ वर्षों का पठन-पाठन और अनुसधान है। हुरदी कूं कूं, रानी के साथ दासियो को देने की प्रथा आदि की ऐतिहासिक ही हैं। अर्थात् लेखक ने (i) राजनैतिक, (ii) सामाजिक, (iii) धार्मिक सभी विवरणो मे इतिहास की

रक्षा की है। आरम्भ में कुछ पृष्ठ (प्रस्तावना) इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट करने के कारण तथा वंश परिचय आदि देने के कारण इतिवृत्तात्मक हो गए हैं।

'मुसाहिब जू'

'मुसाहिब जू' में घटनाएं वास्तविक हैं और मुसाहिब दलीपसिंह और रामसिंह धवेरा दो नाम सच्चे हैं और अन्य सभी कल्पित हैं। कोतवाल का मुसाहिब जू ने बन्दूक ले लेना भी सच्ची घटना है। यह १९०० शताब्दी की घटना पर आधारित लघु उपन्यास है जिसमें तत्कालीन व्यवस्था और वातावरण से अधिक कथा के केन्द्र मुसाहिब जू रहे हैं। यह घटना भी दतिया निवासी छोटू नाई द्वारा लेखक ने सुनी है, जिसने दतिया में सिपाहीगीरी की थी। वह कोतवाल का नौकर था। इनमें भी कल्पना का समुचित समावेश है।

'कचनार'

"कचनार मेरी अमरकटक यात्रा का प्रतिबिम्ब और उन आशा का प्रतीक है।" और इसी दशा और प्रेरणा से लेखक ने ऐतिहासिक कृति 'कचनार' की रचना की जिसमें पात्र-पात्राएं तथा कई घटनाएं ऐतिहासिक प्रामाणिकता से युक्त हैं।

धमोनी और सागर तथा राजगोंडो (जिनके आधीन धमोनी था) आदि ऐतिहासिक हैं। एलविन की 'फोक सौंग्स ऑव दि मेखलरेन्ज', नागपुर से सरकार द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'दि राजगोंड्स्', सर यदुनाथ सरकार के ग्रंथ 'फॉल ऑफ दि मुगल एम्पायर' आदि से कथा-चयन किया गया है और यह भी पूर्ण सत्य है कि उनमें कल्पना का पर्याप्त संयोग है।'मृगनयनी', 'अहिल्याबाई', और 'झांसी की रानी-लक्ष्मीबाई' के विपरीत इनमें कल्पना को अधिक प्रश्रय मिला है।

दलीपसिंह की स्मरण-शक्ति का चोट से लोप होने, और पुनः शनैः शनैः प्राप्त कराने में लेखक का नरशास्त्र (Anthropology) का ज्ञान तथा भवाल सन्यासी (जिसे स्मरण-शक्ति लौटी थी), तथा 'सरस्वती' मासिक में प्रकाशित एक एम० ए० का घोड़े से गिरने पर स्मरण शक्ति खोने और पुनः शनैः शनैः प्राप्त करने आदि घटनाओं का संयोग है और इन्हीं आधारों पर लेखक ने दलीप की पुनः स्मरण-शक्ति लौटने की बात लिखी है। इस पर डाक्टरों के कई मत हैं। इस सबंध में अपने मित्र डा० सक्सेना से भी वैज्ञानिक विश्लेषण की प्रामाणिकता में लेखक ने सहायता ली है।

'कचनार' "उपन्यास में वर्णित सब घटनाएं सच्ची हैं। केवल समय और स्थान का फेर है। उदाहरण के लिए डल की घटना जो उनके भाई के वध से सबंध रखती है, धमोनी की नहीं, बल्कि ओरछा राज्य स्थित उबोरा ग्राम से सबंध रखती है, डल का नाम भी उबोरा से ही लिया गया है। बाकी घटना डल का संन्यासी हो जाना, पिंडारियों द्वारा सागर की लूट में भाग लेना और अन्त में साहस के साथ वध का सामना करना सब ऐतिहासिक घटनाएं हैं। जनरल माल्कम ने अपने Memoirs of Central India में उनमें से कई का वर्णन किया है।"—(परिचय, लेखक पृष्ठ ५)।

गोसाइयों का पराक्रम, कराड़ा आदि भी ऐतिहासिक सत्य हैं। **अवन्तपुरी भी**

ऐसे ही सत्य हैं।

'कचनार' मे कल्पना, परम्परा और इतिहास का कलात्मक सयोग है जिस पर लेखक की कुशलता, काव्यात्मकता प्राण-प्रवेश पा गयी है। इसीलिए कहीं-कहीं इतिहास के विपरीत परम्परा को लेखक ने प्रामाणिक स्वीकार किया है क्योकि विदेशी और पूरी तरह न समझने वाले इतिहास लेखक जाने-अजाने रूप विकृत कर देते थे।

आलोच्य कृति मे कचनार, मानसिंह, कलावती, ललिता, मन्ना आदि काल्पनिक तथा दलीप, डरू, अचलपुरी आदि ऐतिहासिक चरित्र हैं। वातावरण ऐतिहासिक है। 'कलावती और मानसिंह तथा दलीप और कचनार का सबध भी कल्पित है।'

'मृगनयनी'

पूर्ण ऐतिहासिक प्रमाण है कि मानसिंह १४८६ से १५१६ तक ग्वालियर के नृपति रहे जिसे अग्रेज इतिहास लेखको ने इतिहास मे तोमर शासन युग का स्वर्ण युग (Golden Age of Tomar Rule) कहा तथा फरिश्ता के इतिहास लेखक ने भी मानसिंह को वीर और योग्य शासक स्वीकार किया है।

उस युग मे भारत पूर्णतया अराजकता, सघर्ष तथा विलासप्रियता से ग्रस्त तथा पीडित था। उत्तर मे सिकन्दर लोदी, राजस्थान मे कुम्भा गुजरात मे महमूद बघर्रा, मालवा मे गयासुद्दीन खिलजी, दक्षिण मे वहमनी सल्तनत और विजन गर, जौनपुर, विहार सभी क्षेत्रो मे एकसी अव्यवस्थित और सकटकालीन स्थिति थी और उसी बीच मानसिंह वहलोल, पुन सिकन्दर आदि के आक्रमण से अपने राज्य की रक्षा करता दृढ रहा। यह सब ऐतिहासिक तत्व हैं जिनका इसमे उपयोग है। ऐतिहासिक वातावरण भी समुचित रूप मे चित्रित हो सका है। उन सभी स्थितियो का सामना करते हुए मानसिंह ने कला, ललित कलाओ का समुचित आदर किया जिसके प्रमाण गूजरी महल, मान मदिर आदि आज भी दृष्टव्य हैं।

दरवारी इतिहास-लेखक अखबारनवीसो ने लिखा कि सिकन्दर ने पाच वार मानसिंह पर आक्रमण किया और प्रत्येक समय मानसिंह ने उसे सोना आदि धन देने का वचन देकर हटाया—परतु यह सत्य नही लगता—कोई एक वार या दो वार ही ऐसा विश्वास कर सकता है (मानसिंह पर) पाच वार लगातार एक बात की, एक झूठे वचन की ही आवृत्ति होती रहे, उस पर कोई विश्वास कर कैसे लौट जाता। वर्मा जी ने इसीलिए आक्रमण को स्वीकार कर, घूसकी वात को ग्रहण नही किया।

नरवर का युद्ध और भयानक सघर्ष तथा उसका पतन भी (सिकन्दर द्वारा) ऐतिहासिक घटना ही है।

मानसिंह सदृश ही दरिद्र गूजरवाला मृगनयनी भी ऐतिहासिक है। यह कहा गया है कि मानसिंह राईगाव के जगल मे शिकार निमित्त गए तो उन्होने देखा मृगनयनी ने जगली भैंसे का सींग पकडकर मोड दिया है। लेखक ने इसे ही स्वीकार किया क्योकि ग्वालियर गजीटियर और गूजर भूमि की कथाए भी इसी को स्वीकार करती हैं और यह कथन कि राजा मानसिंह ने अपने महल से देखा कि जगल मे भैंसे के सीग को मृगनयनी मोड रही है, अमान्य है, क्योकि ग्वालियर के किले मे भैंसे कैसे आ जाते

और ११ मील दूर राई से मृगनयनी जगली भैंसे को मरोडने कैसे पहुच जाती ? लेखक को इसीलिए यह स्वीकार नही हुआ और पाठको को भी ऐसा ही उचित भी मालूम पडता है ।

राई के ऊपर ऊची पहाडी पर स्थित गढी अब भी खण्डहर रूप मे वर्तमान है।

गुजरात के बघर्रा की नित्य के भोजन आदि को[1] लेखक ने फारसी की तारीख 'मीरते सिकन्दरी' मे देखा है और इलियट और डासन अनुवाद मे प्राप्त है ।

मालवा के सुलतान नसीरुद्दीन की हजारो बेगमो की कथा भी ऐतिहासिक ही है—जहागीर ने उसके पाप की कथा से अवगत हो उसकी कब्र को तुडवा दिया था।

इसमे किवदन्तियो का भी उपयोग है जैसे नरवर के किले के रस्से द्वारा नट-नटनियो का प्रसग । कही-कही किवदतियों मे मानसिह की २०० रानियो की बात है, परतु लेखक ने इसे नही माना है क्योकि उसके विलासी होने से सघर्ष और कर्त्तव्य की दृढता का विश्वास जम नही पाता ।

'मृगनयनी' मे ऐतिहासिक वातावरण के साथ ही मूल घटनाए और पात्र भी ऐतिहासिक है । अटल, लाखी, बोधन ब्राह्मण, विजयजगम भी ऐतिहासिक चरित्र हैं ।

'टूटे कांटे'

'टूटे काटे' यह भी एक ऐतिहासिक कृति है जिसमे लेखक ने इतिहास की सामग्रियो का यथेष्ठ उपयोग किया है । उसमें 'बाजीराव का दिल्ली पर १७३७ मे एकाएक झपट्टा मारना, मुहम्मदशाह के दरबारी और इनकी रग-रेलिया, मीर हसनखा दरबारी की हेकडी और गुण्डागीरी, निजामुल मुल्क और सादतखा की महत्वाकाक्षाए और अपनी-अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए नादिरशाह को उन दोनो का न्योता, जाटो का उत्थान, शासन की घोर अव्यवस्था इत्यादि प्रसग को इतिहासो मे कम-बढ ब्योरे के साथ मिले । उत्तर-भारत का साधारणजन विपदग्रस्त था और विपण्ण था ।" (परिचय, लेखक) ।

फ्रेजर कृत नादिरशाह, आनन्दराम मुखलिस कृत 'तजकिरह' डॉसन की पुस्तक[2] आदि ने लेखक को ऐतिहासिक तथ्य दिए हैं । नूरबाई जो अलोच्य कृति मे मुख्य पात्री है उसका वर्णन लेखक को ख्वाजा अब्दुल करीमखा कश्मीरी की पुस्तक 'बयाने वुकाय' (या 'बयाने वाकई' ?) से मिला है। नूरबाई का नादिरशाह के कठोर अभियानो

---

१ बघर्रा के भोजन के सम्बन्ध में वर्मा जी ने लिखा है । "...डेढ़सौ पके केले, सेर भर शहद और सेर भर मक्खन यह रोज का कलेवा था । किसी दिन रात में जागने के कारण कुपथ हो गया तो केले केवल सौ । शहद और मक्खन की तौल में कोई कसर नहीं ।" (पृष्ठ ७५) और "थाल की एक बाजू ढाई सेर पके हुए चावल और दूसरा ओर भी सोने के थालों में सजे हुए ढाई सेर । इस करवट आँख खुली, हाथ बढ़ाया और ढाई सेर चावल साफ । फिर तीन चार घटे बाद दूसरे करवट आँखें खुलीं, हाथ बढ़ाया और हूम । ढाई सेर गायब । सवेरे सेर भर घी, सेर भर शहद और डेढ़ सौ केला का कलेवा हुआ शान्ति से मौजूद । उसमें कोई नोन मेख नहीं ।" पृ० ४३६-४३७ ।

२ History of India as told by its own Historians' के आठवें खण्ड के पृष्ठ ७६-९८ में तत्कालीन तथ्य मिलते हैं ।

के पश्चात मनोरजन का समय निकालना, उसके सम्मुख नृत्य-गान करना, उसे ईरान ले जाने का आदेश मिलना और भारतीय नूरवाई का जाने की कठिनाई से वच निकलना अदि घटनाओ का उल्लेख Moguls by Irvine, Vol II, पृष्ठ ३७१ मे प्राप्त है।

मुहम्मदशाह, नूरवाई, नादिरशाह, सादतखा आदि ऐतिहासिक चरित्र हैं।

सादतखा का नूरवाई के प्रति प्रेम, पुन उसकी आत्महत्या, मुहम्मदशाह का नादिरशाह द्वारा मानमर्दित होना, नादिर का अत्याचार, रक्तपात, घन लूट (लूट् की चर्चा The Imperial Treasury of the Indian Moguls, पृष्ठ ५५१-५५७ मे है) और जन वध (यूरोपीय यात्री हैंनवे के मत से सहमत हो, लेखक ने इसे उपन्यास मे ग्रहण किया है) आदि ऐतिहासिक सत्य हैं।

तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति के सही रूप को रखकर भी उसमे वर्मा जी ने कल्पना का यथेष्ठ सहारा लिया है। फिर भी तोता आदि वहुत से पात्र उनके काल्पनिक हैं।

'अहिल्यावाई'

इतिहासकारो ने 'अहिल्यावाई का काल १७५५-१७९५ माना है जो "इतिहास-प्रसिद्ध सूबेदार मल्हारराव होलकर के पुत्र खडेराव की पत्नी थी। उस समय चारो ओर गडवडी मची हुई थी। शासन और व्यवस्था के नाम पर घोर अत्याचार हो रहे थे। प्रजाजन—साधारण गृहस्थ, किसान-मजदूर—अत्यन्त हीन अवस्था मे सिसक रहे थे। (परिचय, लेखक) और इसी परिस्थिति के मध्य अहिल्या ने पीडा सहकर जो किया वह ऐतिहासिक महत्व की वस्तु है। इन्दौर के इतिहास मे यह स्मरणीय है, अमर है।

ग्राट डफ की पुस्तक 'History of The Marathas', श्री जी० एस० सरदेसाई की 'New History of the Marathas', डा० यदुनाथ सरकार की 'Fall of the Mughal Empire', Irvine की Later Moguls' आदि से लेखक ने ऐतिहासिक सत्वो को ग्रहण किया है। इसके अतिरिक्त अहिल्यावाई के जीवनगत घटनाओ को लेखक ने कहा से ग्रहण किया है, यह देखें। (१) मल्हार विपयक घटनाओ को इतिहास साची साधनें (पत्र क० २६० ता० ८-१२-१७८९) और तुकोजी का पत्र अहिल्यावाई को (क्र० २६२ ता० १८-१२-१७८९) रूक्मावाई का पत्र अहिल्यावाई को (क्र० २६८ ता० ३-२-१७९०), अहिल्यावाई का पत्र तुकोजी को (क्र० २७३ ता० १-४-१७९०) आदि से लिया गया है जिसमे मल्हार के अत्याचारो का वर्णन है। (२) यशवन्तराय गगाधर का पत्र अहिल्यावाई को (ता०२-४-१७९०) रूक्मावाई का पत्र अहिल्यावाई को (क्र० २७९ ता० ५-५-१७९०), तथा पत्र क्र० ~९५, ३०१, ३०३, ३१५, ३१७, ३३२, ३३९, ३४७, ३८९, ३९९, ४०२, ४०३, ...गाई की New History of the Marathas, Vol III आदि मे नाना फडनीस ...हादजी का सिन्धिया के प्रति वैर तथा मल्हार के चरित्र का पूर्ण वर्णन है।

(३) श्री सरदेसाई के ग्रन्थ New History of the Marathas, Vol III, 211) मे लिखा है कि अहिल्यावाई ने धार्मिक कार्यों और मन्दिरो के निर्माण मे

विशेप अन्धाधुन्ध खर्च किया, सेना-सगठन आदि पर नही। देसाई ने The Main Currents of Maratha History मे इन मदिरो को Out-posts of Hindu religion कहा है। यह सत्य है कि अहिल्यावाई धार्मिक भावना की थी (जिस रूप मे लेखक ने ग्रहण भी किया है) वी वी ठाकुर कृत Life and Life-work of Shri Devi Ahilya Bai Holkar के पृष्ठ १५५ मे सप्रमाण लिखा है कि तुकोजीराव होलकर के पास वारह लाख रुपये थे जव वह अहिल्यावाई से रुपये की माँग पर माँग कर रहा था और ससार को दिखलाता था कि रुपये-पैसे से तग हू तो इस आधार पर अहिल्यावाई दोपमुक्त हो जाती हैं और यही स्वरूप अहिल्यावाई उपन्यास मे है।

(४) इसमे चित्रित तत्कालीन अन्धविश्वासो का भी आधार है। प० रामगोपाल मिश्र कृत 'तपोभूमि' (पृष्ठ ३०६), जिसमे नर्मदा तीर स्थित खडी पहाडी से कूदकर आत्महत्या से मोक्ष प्राप्ति मानी जाती थी, और मराठी पुस्तक 'श्रीक्षेत्र अवन्तिका' (पृष्ठ १७०) तथा मुक्तावाई का पत्र अहिल्यावाई ता० १६-४-१७८९ (जिसमे उज्जैन स्थित सिद्धवट पर मनोरथ की सिद्धि के लिए बलि चढाना बताया गया है)। यह सत्य है कि अहिल्यावाई इन अन्धविश्वासो को समाप्त न कर सकी।

"उपन्यास मे जिन स्थानो का वर्णन किया गया है वे आज भी हैं। अनेक घटनाए ऐतिहासिक हैं, कुछ काल्पनिक। सिन्दूरी, आनन्दी और भोपत के नाम भर बदल दिये गए है। वैसे वास्तविक हैं। अन्य चरित्र ऐतिहासिक हैं, नाम भी उनके वे ही हैं।" (परिचय—लेखक, पृष्ठ ५)

(५) मल्हार कैसे और कहा पकडा गया यह यशवन्तराव गगाधर के पत्र मे, जो सरकार पुस्तकालय की १६ वी पुस्तक है, प्रकट है।

(६) अहिल्यावाई की शासन-व्यवस्था, दान, न्याय आदि का आधार भी लेखक ने इतिहाससाची वातमी पत्रें, होलकर शहीच्या इतिहास (वी० वी० ठाकुर कृत Life and Lifework of Shri Devi Ahilya Bai, पृ० ५७०, उदयभानु कृत देवी अहिल्यावाई (हिंदी), देवी श्री अहिल्यावाई होलकर (मराठी), पुण्यश्लोक देवी श्री अहिल्यावाई (मराठी), होलकराची कैफियत, सरदेसाई कृत New History of the Marathas, Vol III और The Main Currents of Maratha History आदि से लिया है। जान मालकम ने अहिल्यावाई के चरित्र की वडी प्रशसा की है।

कई पुस्तको मे अहिल्यावाई पर देवत्व आरोपित किया गया है—लेखक ने उसे महामानव स्वीकार किया किया है जो वैज्ञानिक युग के लिए ठीक ही है।

'भुवन विक्रम'

वर्मा जी अभी तक प्राय· मध्ययुगीन ऐतिहासिक कालखण्डो को अपने उपन्यासो मे सफलता एव प्रामाणिक रूप से ग्रहण करते रहे, परतु 'भुवन-विक्रम' मे उत्तर-वैदिक युग को ग्रहण करते, वे ईमानदारी और सत्यता से उसके निर्वाह मे प्रयत्नशील रहे हैं, और साथ ही उस काल के वर्णन की चेष्टा मे सफल रहे हैं। डा० नारायण चन्द्र व धोपाध्याय की पुस्तक Economic Life and Progress in Ancient India" मे रोमक के राज्य मे भयानक अकाल का उल्लेख है। इसमे राजा का नाम

रोमपाद लिखा है। अकाल की चर्चा वाल्मीकि रामायण मे भी आयी है। लेखक ने रोमपाद नाम ग्रहण न कर रोमक रखा है, क्योकि उन्हे यह नाम अच्छा लगने के अतिरिक्त, अयोध्या नरेशो की वशावलि मे रोमपाद नाम नही है, रोमक है। रोमक के पुत्र का नाम भी कल्पित है।

उपर्युक्त पुस्तक मे तत्युगीन प्रथा मे दास बनने और दासोद्धार की चर्चा भी है। निश्चय ही उस युग के वातावरण और समाज की स्थिति का चित्रण वर्मा जी ने सफलतापूर्वक किया है। उस युग की मनोदशाओ के जीते-जागते चित्र हैं रोमक, भुवन, मेघ, धौम्य, आरुणि, कपिजल आदि। राजा प्रतिनिधियो के बहुमत पर बनते थे। सीमित या असीमित काल के लिए राज्यच्युत होना भी ऐतिहासिक सत्य है जो डा० राधा कुमुद मुकर्जीकृत Hindu Civilisation मे उल्लखित है। ईशान आदि का नाम भी वैदिक है। इस प्रकार लेखक ने पूरी तत्परता से उस युग के आवेष्ठन, परिवेश, वेशभूपा, आभूपण, सामाजिक प्रचलित पद्धति, भावभूमि आदि का चित्रण किया है।

उस युग मे वेदगान और इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि की पूजा होती थी—'भुवन-विक्रम' मे भी ऐसा ही उपस्थित किया गया है।

दास प्रथा का उस युग मे पूर्ण प्रचार था। ऋण के कारण द्विज तक दास हो जाते थे। डाक्टर वन्द्योपाध्याय ने दासोद्धार के कुछ प्रचलित तत्वो पर भी अपनी पुस्तक मे प्रकाश डाला है। वर्मा जी ने दास होना और उद्धार की चेष्टा इसी आधार पर प्रस्तुत की है। दासो के साथ अत्यन्त कटु और अमानवीय व्यवहार किए जाते थे। 'भुवन विक्रम' मे दासो की स्थिति पर सहानुभूतिपरक ढग से विचार किया गया है। उदाहरणार्थ उक्त पुस्तक के पृष्ठ ७-२० आदि देखे जा सकते हैं। एक दास अपनी करुण दशा स्पष्ट करते हुए कहता है—"जितना पसीना बहाते हैं उतने की तौल का भी तावा नही मिलता। एक जून पेट भर लेते है तो दूसरी जून अध पेट।" (पृष्ठ ७)

डा० रागेय राघव के उपन्यास 'मुर्दों का टीला' मे भी दासो का बडा कटु और करुण परतु जीवत चित्रण है।

पणि (फनीशियन) का आर्यावर्त मे व्यापार हेतु आना और जम कर व्यापार करना भी ऐतिहासिक प्रमाण है और जिस रूप मे लेखक ने नील को रखा है।

उत्तर-वैदिककालानुसार राजा को चुनने और निकाल देने आदि का अधिकार जनता को था, यह ऐतिहासिक तथ्य है जिसके लिए अथर्व वेद तथा डा० राधा कुमुद मुकर्जीकृत Hindu Civilisation, पृष्ठ ९९, आदि देखे जा सकते हैं। रोमक का जनता द्वारा राज्यच्युत होना (कुछ समय के लिए) इन्ही आधारो पर है।

धौम्य भी ऐतिहासिक पात्र है, जिनकी चर्चा मिलती है। फिर भी कुछ पात्रो को लेखक ने कल्पना द्वारा उपस्थित किया है और लेखक ने स्वय लिखा भी है—"चेष्टा की है कि उस काल के वातावरण में उनको प्रस्तुत किया जावे।" (परिचय, पृष्ठ ७) परन्तु सामाजिक, धार्मिक चित्रण मे राहुल जी और वृन्दावनलाल वर्मा की दृष्टि मे बहुत अतर है जिसकी चर्चा राहुल जी से वर्मा जी के तुलनात्मक अध्ययन मे विस्तार से की जा चुकी है।

रोमपाद लिखा है। अकाल की चर्चा वाल्मीकि रामायण मे भी आयी है। लेखक ने रोमपाद नाम ग्रहण न कर रोमक रखा है, क्योंकि उन्हे यह नाम अच्छा लगने के अतिरिक्त, अयोध्या नरेशो की वशावलि मे रोमपाद नाम नही है, रोमक है। रोमक के पुत्र का नाम भी कल्पित है।

उपर्युक्त पुस्तक मे तत्युगीन प्रथा मे दास बनने और दासोद्धार की चर्चा भी है। निश्चय ही उस युग के वातावरण और समाज की स्थिति का चित्रण वर्मा जी ने सफलतापूर्वक किया है। उस युग की मनोदशाओ के जीते-जागते चित्र हैं रोमक, भुवन, मेघ, धौम्य, आरुणि, कपिजल आदि। राजा प्रतिनिधियो के बहुमत पर बनते थे। सीमित या असीमित काल के लिए राज्यच्युत होना भी ऐतिहासिक सत्य है जो डा० राधा कुमुद मुकर्जीकृत Hindu Civilisation मे उल्लखित है। ईशान आदि का नाम भी वैदिक है। इस प्रकार लेखक ने पूरी तत्परता मे उस युग के आवेष्ठन, परिवेश, वेशभूषा, आभूषण, सामाजिक प्रचलित पद्धति, भावभूमि आदि का चित्रण किया है।

उस युग मे वेदगान और इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि की पूजा होती थी—'भुवन-विक्रम' मे भी ऐसा ही उपस्थित किया गया है।

दास प्रथा का उस युग मे पूर्ण प्रचार था। ऋण के कारण द्विज तक दास हो जाते थे। डाक्टर बन्धोपाध्याय ने दासोद्धार के कुछ प्रचलित तत्वो पर भी अपनी पुस्तक मे प्रकाश डाला है। वर्मा जी ने दास होना और उद्धार की चेष्टा इसी आधार पर प्रस्तुत की है। दासो के साथ अत्यन्त कटु और अमानवीय व्यवहार किए जाते थे। 'भुवन विक्रम' मे दासो की स्थिति पर सहानुभूतिपरक ढग से विचार किया गया है। उदाहरणार्थ उक्त पुस्तक के पृष्ठ ७-२० आदि देखे जा सकते हैं। एक दास अपनी करुण दशा स्पष्ट करते हुए कहता है—"जितना पसीना बहाते हैं उतने की तौल का भी तावा नही मिलता। एक जून पेट भर लेते हैं तो दूसरी जून अध पेट।" (पृष्ठ ७)

डा० रागेय राघव के उपन्यास 'मुर्दों का टीला' मे भी दासो का बडा कटु और करुण परतु जीवत चित्रण है।

पणि (फनीशियन) का आर्यावर्त मे व्यापार हेतु आना और जम कर व्यापार करना भी ऐतिहासिक प्रमाण है और जिस रूप मे लेखक ने नील को रखा है।

उत्तर-वैदिककालानुसार राजा को चुनने और निकाल देने आदि का अधिकार जनता को था, यह ऐतिहासिक तथ्य है जिसके लिए अथर्व वेद तथा डा० राधा कुमुद मुकर्जीकृत Hindu Civilisation, पृष्ठ ९९, आदि देखे जा सकते हैं। रोमक का जनता द्वारा राज्यच्युत होना (कुछ समय के लिए) इन्ही आधारो पर है।

धौम्य भी ऐतिहासिक पात्र है, जिनकी चर्चा मिलती है। फिर भी कुछ पात्रो को लेखक ने कल्पना द्वारा उपस्थित किया है और लेखक ने स्वय लिखा भी है—"चेष्टा की है कि उस काल के वातावरण में उनको प्रस्तुत किया जावे।" (परिचय, पृष्ठ ७) परन्तु सामाजिक, धार्मिक चित्रण में राहुल जी और वृन्दावनलाल वर्मा की दृष्टि मे बहुत अतर है जिसकी चर्चा राहुल जी से वर्मा जी के तुलनात्मक अध्ययन मे विस्तार से की जा चुकी है।

अत पिता-पुत्र का वैमनस्य, मनमुटाव आदि भी वैन्टेले के आधार पर स्वीकृत है। गन्ना बेगम की कब्र ग्वालियर से उत्तर पश्चिम मे ११-१२ मील दूरी पर नूराबाद स्टेशन के निकट है। गन्ना बेगम, उम्दा बेगम के कारण पुस्तक मे रोचकता बढ़ गई है।

'उपन्यास में जिन प्रमुख व्यक्तियो और घटनाओ का वर्णन आया है—वे वढ इतिहास सम्मत है।' (परिचय, पृ० १०)। इन समग्र कृतियो के अध्ययन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि उनमे इतिहास का सावधानीपूर्वक निर्वाह है। उन पात्रो और घटनाओ मे प्राण फूकने मे वर्मा जी पूरे सिद्धहस्त लगते हैं। कल्पना और इतिहास के समुचित सम्मिश्रण के फलस्वरूप उनकी कला अधिक समृद्ध और सफल हुई है जो विश्व के कम ऐतिहासिक लेखको मे प्राप्य है। यह भी स्मरणीय है, उनकी कल्पना इतिहास रक्षा मे बाधा नही बनी है जिससे उनका इस क्षेत्र मे अपूर्व महत्व स्वीकार करना पडता है और मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हू, निष्पक्ष आलोचक और साहित्यिक मेरे ही मत से सहमत होंगे।

: १० :

वर्मा जी के उपन्यास-साहित्य के कुछ प्रमुख दोष

वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास-साहित्य मे अनेक गुण हैं, जिन पर विस्तार से प्रकाश डाला जा चुका है। परन्तु यहाँ उनके प्रमुख दोषो की चर्चा होगी, जो उनके साहित्य मे दृष्टिगत है। यह भी पूर्ण सत्य है कि सभी दृष्टियो से कोई भी वस्तु पूर्ण नही हो सकती क्योकि मनुष्य स्वय पूर्ण नही है। पुन काल और परिस्थिति भी उक्त दिशा मे महत्वपूर्ण हाथ रखती है। साथ ही यह भी सम्भव है कि एक तत्व किसी को गुण प्रतीक हो, दूसरे को अवगुण। 'गोदान'(प्रेमचद), 'राम रहीम' (राजा राधिकारमण), 'कामायनी' (जयशकर प्रसाद), 'गीताजलि' (रवीन्द्रनाथ ठाकुर), 'रामचरित मानस' (तुलसीदास), 'मदर' (गोर्की), 'मेघदूत', 'रघुवशम्', 'शाकुन्तलम्' (कालिदास), 'कादम्बरी' (बाणभट्ट), 'श्रीकान्त' (शरतचन्द), 'Ivanhoe' (स्काट) आदि किसी मे भी कुछ दोष निकाले जा सकते है, जो स्वाभाविक है। परन्तु न्यूनतम दोषो को गुणो के बाहुल्य के सम्मुख अधिक महत्व नही मिलता, यही वस्तुस्थिति वर्मा जी के साथ भी है। फिर भी जो सामान्य प्रमुख दोष हमें दीख पडे हैं, उन्हे स्पष्टता से कहना हमारा आलोच्य कर्म है।

(क) वर्मा जी के किसी-किसी उपन्यास का आरम्भ आकर्षक नही हो पाया है। मालूम पडता है जैसे कोई इतिहास की पुस्तक हो (आरम्भ की दृष्टि से)। तथ्यो की जानकारी, वश आदि का परिचय जब वर्मा जी देने लगते हैं तो ऐसा दोष उत्पन्न हो जाता है। यह दोष 'झासी की रानी-लक्ष्मीबाई', 'अहिल्या बाई', 'माधवजी सिन्धिया' आदि मे देखा जा सकता है। 'माधवजी सिन्धिया' मे यह दोष अत्यधिक प्रबल रूप मे उभर गया है। परन्तु 'कचनार', 'मुसाहिबजू' 'टूटे काटे,' 'विराटा की पद्मिनी' आदि इस दोष से मुक्तप्राय हैं। स्मरण रहे, यह दोष उनके कुछ ऐतिहासिक उपन्यासो मे ही है, सामाजिक उपन्यासो मे नही। उदाहरणार्थ 'प्रत्यागत', 'लगन', 'प्रेम की भेंट' को देखा जा सकता है। यह भी सत्य है, इन अनाकर्षण की स्थिति कुछ पृष्ठो तक ही सीमित है आगे तो इतनी सरसता, वेग और रोचकता आ जाती है कि पाठक बिना पूर्ण किए छोड नही सकता। हा, 'माधवजी सिन्धिया' मे इतिहास की अत्यधिक प्रबलता के फलस्वरूप अधिक आगया है।

(ख) दूसरा दोष जो और भी प्रबल रूप मे उनके औपन्यासिक साहित्य मे पाते हैं, वह है तथ्यो का वर्णनात्मक होना। कई कृतियो मे ऐसा प्रतीत होने लगता है, जैसे सारे तत्वो की बातो की सूचना लेखक बिना हिचकिचाहट के पाठको को दे देना चाहता है। ऐसी स्थिति मे रोचकता और वेग मे बाधा होती है। उदाहरणार्थ, हम 'अमर बेल', 'माधवजी सिन्धिया', 'अहिल्याबाई' आदि कुछ कृतियो को देख सकते हैं। 'अहिल्याबाई' के पृष्ठ १८६-१९० देखें, यहाँ यही प्रवृत्ति कार्य करती प्रतीत होती है।

(ग) किसी-किसी रचना मे इतनी विस्तृत कथावस्तु होती है कि कथानक स्मरण ही नही रह पाती । उन जटिल-भूमि मे पाठक थोडा धैर्य खोने लगता है । ऐसी स्थिति 'माधवजी सिंधिया' के पठन-काल मे होती है । इसमे सम्पूर्ण भारत, अफगानिस्तान को ग्रहण किया है ।

(घ) वर्मा जी के 'सोना' उपन्यास मे मुझे नामकरण के सबध मे दोष मालूम पडता है । यदि 'सोना' नारी पात्र के आधार पर नामकरण किया गया है तो यह उचित और सतुलित नही लगता । उसमे रूपा (नारी पात्र) इतनी प्रबल और महत्त्व-पूर्ण हो उठी है कि 'रूपा' नामकरण ही उचित होता । 'माधवजी सिंधिया' के नामकरण के सबध मे भी यह कहा जा सकता है कि इसमे सारी कथावस्तु, घटनाए माधवजी से सुसबद्ध या केन्द्र बनाकर उपस्थित नही है । इसमे तो कुछ विशेष काल की प्रमुख घटनाए और स्थिति ही विशेष रूप से हैं । माधवजी का व्यक्तित्व भी आरभ मे ३०० (लगभग) पृष्ठो तक नही के बराबर है ।

(ङ) यह सत्य है, वर्मा जी ने जीवन के विस्तृत, गहन अनुभवो का भडार एकत्र किया है । कृषि, शिकार, भ्रमण और सघर्ष ने उन्हे महत्त्वपूर्ण उपलब्धिया दी हैं । परन्तु कचनार द्वारा तीज कराना उचित प्रतीत नही होता है । जब कचनार के सम्मुख दलीपसिंह की मृत्यु हो जाती है और उसका शव श्मशान ले जाया जाता है, तब उस वैधव्यावस्था मे तीज करना, बडा खटकता है । स्मरण रहे, विधवाए मगल, शनि आदि पर्व करती हैं परतु तीज नही । इसे सुहागिनें ही करती हैं ।

(च) इसी प्रकार 'विराटा की पद्मिनी' मे 'स्वर्ण को लजाने वाली लट' कहना अधिक उचित नही लगता क्योकि यहा काले केशो की महत्ता है । पाश्चात्य देशीय प्रवृत्ति ही सुनहला बाल पसद करती है ।

(छ) वर्मा जी ने अपने उपन्यासो मे यत्रतत्र बुदेली एव स्थानीय शब्दो और वाक्यो का नि सकोच प्रयोग किया है । प्राय निम्नस्तर के पात्रो से ऐसे प्रयोग कराए गए हैं । मेरे मतानुसार हिन्दी-साहित्य की पुस्तकें लिखते समय हिंदी-भाषा-साहित्य के प्रयोग की सजगता अपेक्षित है । यद्यपि यह प्रयोग प्रेमचद, विष्णु प्रभाकर, अमृतलाल नागर, नागर्जुन, उदयशकर भट्टआदि की कृतियो मे भी पाते हैं, परतु यह दोष अतर्गत ही स्वीकार किया जाएगा । वर्मा जी कृत 'मृगनयनी', 'झासी की रानी-लक्ष्मीबाई', अमर-बेल', 'सोना' आदि मे यह प्रवृत्ति ध्यातत्व है । उदाहरणार्थ इन शब्दो को देखें—एरच, कोलना, रायसा, डिडकार, भकुरना, बीधना, आसे, गुदनोठा, ततूरी, दुन्द, अचार, उसार, आवरा, समोना, छपका, पटपटा, बरकाना, भांवना, छपका आदि ये सभी बुदेलखण्डी जनपदीय शब्द है ।

'मृगनयनी' मे तो इन शब्दो के अत्यधिक प्रयोग के फलस्वरूप हिंदी सम्मत शब्दार्थ भी देना आवश्यक हुआ है । उदाहरण के लिए 'मृगनयनी' का परिशिष्ट पृष्ठ ४८९–४९४ देखा जा सकता है । इनके उपन्यासो मे यत्र-तत्र वार्तालाप भी इसी बोली मे उपस्थित किए गए हैं । 'सोना' मे भी ऐसे प्रयोग खटकते हैं । 'गढ कुडार' का पात्र अर्जुनसिंह बोलता है, "मैं हो अर्जुन, जानत कै नई । कै महाभारत मे अर्जुन हते, कै अब मैं हो ।" 'झासी की रानी-लक्ष्मी बाई' मे ग्रामीण आदि अपनी स्थानीय बोली

का भी पर्याप्त उपयोग करते हैं। ऐसे प्रयोग मे सबसे बडी कठिनाई यह है कि सम्भव है उक्त शब्दो के अर्थ, अन्य हिंदी-भाषी, जो दूसरे प्रात और क्षेत्र के हो, न समझें। ऐसे प्रयोगो मे व्याकरण आदि की उपेक्षा भी आवश्यक है, जिससे खतरा ही उत्पन्न होने की सम्भावना है।

(ज) वर्मा जी की कृतियो मे कहीं-कहीं भाषागत दोष भी मिलते हैं। इसका एक कारण यह भी है कि वे इस पर विशेष ध्यान नही देते। व्याकरण का उल्लघन इनकी कई कृतियो मे पाते है जैसे, "बहुत पानी बरसता रहा था।" ('भुवन विक्रम')

(झ) कहीं-कहीं विचित्र प्रयोग भी देखने को मिलते हैं। मेरे मतानुसार वर्मा जी को इस विषय पर थोडा ध्यान अवश्य देना चाहिए। उदाहरण 'माधवजी सिंधिया' के पृष्ठ ८३ और ४०९ आदि देखें—

(i) 'पिता का कुछ रुपया यहा चाहिए है।' (ii) 'आप भी मत देना।'

इसके अतिरिक्त भी अन्य छोटे-मोटे दोषो पर प्रकाश उपन्यासो की आलोचना करते समय डाला जा चुका है।

श्री ज्ञानचन्द जैन और डा० रामचरण महेंद्र का मत है कि 'प्रेमचद, जैनेंद्र, निराला आदि ने वर्तमान जीवन तथा समस्याओ को चित्रित कर सामाजिक जीवन की बहुमुखी आलोचना की है, वहा वर्मा जी के उपन्यासो में वर्तमान जीवन के चित्रो का अभाव मिलता है।'[1] परन्तु यह हमारे मतानुसार सत्य नही है। क्योंकि उनके अनेक उपन्यास 'अमर बेल', 'लगन', आदि ऐसे हैं जिनमे वर्तमान जीवन तथा समस्याए पूर्णतया चित्रित है और पूर्ण मनोयोग पूर्वक। पुन उनके ऐतिहासिक उपन्यासो मे भी इस दिशा मे प्रकाश पडता है जैसे 'भुवन विक्रम', 'मृगनयनी' आदि मे देखें। इनके नाटको आदि मे भी यही सत्य है। वृन्दावनलाल जी ने स्वय लिखा है, "ऐतिहासिक उपन्यास मे तत्कालीन वातावरण की अवतारणा लेखक के लिए अनिवार्य है। दूसरी कठिनाई है, आज और आने वाले कल के लिए भी तो उसमे कुछ हो। केवल ऐतिहासिक वर्णन या मनोरजन मात्र अभीष्ट नही है। जीवन-चरित्र की प्रणाली से काम बनता न दिखा तो मैंने उपन्यास लिखने की सोची।" (अहिल्याबाई, परिचय, पृष्ठ २–३)।

डा० रामचरण महेन्द्र का आक्षेप भी कि वर्मा जी मे 'आतरिक जीवन के विश्लेषण की कमी है'[2] भ्रामक लगता है। वर्मा जी ने तो अपने पात्रो को पूरी ईमानदारी से ग्रहण किया है, उनके अन्दर उठने वाले विचार, द्वन्द्व, मानसिक प्रवृति, प्रतिक्रिया, सभी को सफलतापूर्वक अपनाया है। 'माधवजी सिन्धिया', 'भुवन विक्रम' 'मृगनयनी' सभी के साथ यह सत्य द्रष्टव्य है। उदाहरणार्थ 'मृगनयनी' के पृष्ठ ११५-११९ देखें, जिसमे निन्नी और लाखी, दोनो की सूक्ष्म मनोदशाओ तथा आतरिक भावो पर प्रकाश है। एक ही नट के खेल से उक्त दो भिन्न मनोदशा और मन स्थितियो की युवतियो पर किस रूप और किस ढग से भिन्न भिन्न प्रभाव पडते हैं। उक्त पुस्तक मे ही पृष्ठ २८८ देखें जिसमे मृगनयनी के आतरिक जीवन सम्बद्ध मनोविज्ञान को बडे सहज ढग से प्रस्तुत किया गया है।

---

१. वृन्दावनलाल वर्मा की उपन्यास, कला, पृष्ठ ८७-८८, लेखक रामचरण महेन्द्र।
२ वही, पृष्ठ ८८।